

पंचकर्म संग्रह
PANCHAKARMA SANGRAH

लेखक

डॉ. मनोज के. शामकुवर

एम.डी. (पंचकर्म), पी.एच.डी.

वितरक

धन्वंतरी बुक्स अँड स्टेशनर्स

जगनाडे चौक, नंदनवन, नागपूर

फोन:- (0712) 2741035, मो.:- 9373105737

© सर्व हक्क लेखकाधीन

प्रथम आवृत्ती 2013.

किंमत: 425/- (Hard Binding)

किंमत: 325/- (Paper Back Binding)

प्रिंटर्स

लक्ष्मी प्रिंटर्स, नागपूर

ISBN-978-93-5104-140-5 (Hard Binding)

ISBN-978-81-928335-6-9 (Paper Back Binding)

या पुस्तकाची झेरॉक्स प्रत वापरणे किंवा या पुस्तकातील मजकूर परवानगीशिवाय
छापणे कायदेशीर गुन्हा आहे, असे आढळल्यास कायदेशीर कारवाई करण्यात येईल.

अनुक्रमणिका

| | |
|--|-----------|
| 1. पंचकर्म परिचय | 1 |
| ➤ परिचय | 1 |
| ➤ पंचकर्म महत्त्व व उपयोगिता | 3 |
| ➤ पंचकर्म व शोधन संबंध | 5 |
| ➤ पंचकर्म सामान्य सिद्धांत | 6 |
| ➤ त्रिविध कर्म - पूर्वकर्म, प्रधानकर्म, पश्चातकर्म | 7 |
| ➤ ऋतुनुसार शोधनाची उपयोगिता | 10 |
| ➤ परिहार्य विषय | 12 |
| ➤ बदलत्या काळात पंचकर्माची आवश्यकता | 14 |
| ➤ पंचकर्म केंद्र | 15 |
| 2. स्नेहन | 19 |
| ➤ स्नेह द्रव्याचे गुण | 19 |
| ➤ स्नेह भेद | 20 |
| ➤ स्नेहन प्रकार | 24 |
| ➤ चतुर्विध स्नेह | 26 |
| ➤ विचारणा | 32 |
| ➤ अच्छ स्नेह | 35 |
| ➤ आभ्यंतर स्नेहन | 38 |
| ➤ शमन स्नेह | 47 |
| ➤ बृहण स्नेह | 48 |
| ➤ सद्य स्नेह | 50 |
| ➤ अवपीडक स्नेह | 51 |
| ➤ स्नेहन कार्मुकता | 52 |
| ➤ बाह्य स्नेहन विधी | 56 |
| ◆ अभ्यंग | 56 |
| ◆ मर्दन-उन्मर्दन | 65 |
| ◆ पादाघात | 65 |
| ◆ संवाहन | 67 |

| | |
|---|-----|
| ♦ कर्णपूरण | 67 |
| ♦ अक्षितर्पण | 69 |
| ♦ शिरोमास्तिष्क्य - मुर्ध्नितैल | 73 |
| + शिरोअभ्यंग | 74 |
| + शिरोपरिषेक - तैलधारा, तक्रधारा, क्षीरधारा | 75 |
| + शिरोपिचु | 80 |
| + शिरोबस्ति | 81 |
| + तलपोटिचिल | 84 |
| + तलम | 86 |
| ♦ लेप | 89 |
| ♦ गण्डूष | 92 |
| ♦ कवल | 94 |
| ♦ प्रतिसारण | 96 |
| ♦ उद्वर्तन | 96 |
| ♦ पूटपाक | 99 |
| ♦ अंजन | 100 |

3. स्वेदन 102

| | |
|-----------------------------|-----|
| ➤ स्वेदन महत्त्व व उपयोगिता | 102 |
| ➤ स्वेदन द्रव्य व गुण | 103 |
| ➤ स्वेदन प्रकार | 108 |
| ➤ स्वेदन योग्य-अयोग्य | 116 |
| ➤ स्वेदन मुल्यांकन | 119 |
| ➤ स्वेद विधी | 122 |
| ➤ स्वेदन कार्मुकता | 123 |
| ➤ पिण्डस्वेद | 126 |
| ♦ पत्र पिण्डस्वेद | 126 |
| ♦ षष्टिशाली पिण्डस्वेद | 128 |
| ♦ अन्नलेपन | 131 |
| ♦ चूर्ण पिण्डस्वेद | 133 |
| ♦ जम्बीर पिण्डस्वेद | 135 |
| ♦ धान्याम्ल पिण्डस्वेद | 136 |

| | |
|---|------------|
| ♦ कुक्कुटांड पिण्डस्वेद | 138 |
| ♦ वालुका स्वेद | 139 |
| ♦ इष्टिका स्वेद | 141 |
| ➤ नाडीस्वेद | 142 |
| ➤ बाष्पस्वेद | 144 |
| ➤ क्षीरधूम | 146 |
| ➤ अवगाह स्वेद | 148 |
| ➤ परिषेक स्वेद | 150 |
| ♦ पिङ्गिचिल | 150 |
| ♦ धान्याम्ल धारा | 153 |
| ♦ कषाय धारा | 155 |
| ♦ क्षीरधारा | 156 |
| ➤ उपनाह स्वेद | 157 |
| ➤ बाह्य बस्ति | 160 |
| ➤ Sauna Bath | 166 |
| 4. वमन | 168 |
| ➤ निरुक्ति व परिचय | 168 |
| ➤ वमन महत्त्व व उपयोगिता | 169 |
| ➤ वम्य व अवाम्य | 170 |
| ➤ वामक द्रव्य व गुणधर्म | 173 |
| ➤ औषधद्रव्य संग्रह व संरक्षण | 176 |
| ➤ वमन विधी | 179 |
| ➤ कोष्ठनिर्णय व अग्निपरिक्षा | 180 |
| ➤ वमन व्यापद व चिकित्सा | 194 |
| ➤ वमन कार्मुकता | 197 |
| ➤ वामकद्रव्य - मदनफल, कुटज, मधुयष्टि, वचा, निंब | 200 |
| 5. विरेचन | 210 |
| ➤ निरुक्ति व परिचय | 210 |
| ➤ विरेचन महत्त्व व उपयोगिता | 211 |
| ➤ भेद | 211 |
| ➤ विरेचक द्रव्य व त्यांचे गुणधर्म | 213 |

| | |
|---|-----|
| ➤ विरेचन कल्पना | 215 |
| ➤ कोष्ठनिर्णय व अग्नि निर्णय | 218 |
| ➤ विरेचन योग्य-अयोग्य | 218 |
| ➤ विरेचनापूर्वी वमनाचे महत्त्व | 220 |
| ➤ विरेचन विधी | 221 |
| ➤ विरेचन व्यापद व चिकित्सा | 230 |
| ➤ विरेचन कार्मुकता | 238 |
| ➤ विरेचक द्रव्य - त्रिवृत्त, एरण्ड, आरग्वध, कुटकी, जयपाल, | 242 |

6. बस्ति 253

| | |
|------------------------------------|-----|
| ➤ निरुक्त व परिचय | 253 |
| ➤ महत्त्व व उपयोगिता | 253 |
| ➤ प्रकार | 254 |
| ➤ बस्तियंत्र | 261 |
| ➤ बस्तिद्रव्य | 267 |
| ➤ निरुह बस्ति | 271 |
| ◆ निरुह बस्ति योग्य-अयोग्य | 272 |
| ◆ बस्ति विधी | 277 |
| ◆ बस्ति व्यापद व चिकित्सा | 285 |
| ➤ अनुवासन बस्ति | 292 |
| ◆ अनुवासन योग्य-अयोग्य | 293 |
| ◆ बस्ति विधी | 295 |
| ◆ अनुवासन व्यापद व चिकित्सा | 298 |
| ➤ मात्रा बस्ति | 300 |
| ➤ बस्ति कार्मुकता | 302 |
| ➤ विशिष्ट बस्ति | 308 |
| ◆ एरण्डमूलादि निरुह | 308 |
| ◆ पिच्छा बस्ति | 309 |
| ◆ क्षीर बस्ति | 309 |
| ◆ तिक्तक्षीर बस्ति | 310 |
| ◆ यापन बस्ति - मुस्तादि यापन बस्ति | 310 |
| ◆ माधुतैलिक बस्ति | 314 |

| | |
|---|------------|
| ➤ विरेचन कल्पना | 215 |
| ➤ कोष्ठनिर्णय व अग्नि निर्णय | 218 |
| ➤ विरेचन योग्य-अयोग्य | 218 |
| ➤ विरेचनापूर्वी वमनाचे महत्त्व | 220 |
| ➤ विरेचन विधी | 221 |
| ➤ विरेचन व्यापद व चिकित्सा | 230 |
| ➤ विरेचन कार्मुकता | 238 |
| ➤ विरेचक द्रव्य - त्रिवृत्त, एरण्ड, आरग्वध, कुटकी, जयपाल, | 242 |
| 6. बस्ति | 253 |
| ➤ निरुक्ति व परिचय | 253 |
| ➤ महत्त्व व उपयोगिता | 253 |
| ➤ प्रकार | 254 |
| ➤ बस्तियंत्र | 261 |
| ➤ बस्तिद्रव्य | 267 |
| ➤ निरुह बस्ति | 271 |
| ♦ निरुह बस्ति योग्य-अयोग्य | 272 |
| ♦ बस्ति विधी | 277 |
| ♦ बस्ति व्यापद व चिकित्सा | 285 |
| ➤ अनुवासन बस्ति | 292 |
| ♦ अनुवासन योग्य-अयोग्य | 293 |
| ♦ बस्ति विधी | 295 |
| ♦ अनुवासन व्यापद व चिकित्सा | 298 |
| ➤ मात्रा बस्ति | 300 |
| ➤ बस्ति कार्मुकता | 302 |
| ➤ विशिष्ट बस्ति | 308 |
| ♦ एरण्डमूलादि निरुह | 308 |
| ♦ पिच्छा बस्ति | 309 |
| ♦ क्षीर बस्ति | 309 |
| ♦ तिक्तक्षीर बस्ति | 310 |
| ♦ यापन बस्ति - मुस्तादि यापन बस्ति | 310 |
| ♦ माधुतैलिक बस्ति | 314 |

| | |
|---------------------------------------|------------|
| ♦ पंचप्रासृतिकी बस्ति - पटोल निम्बादि | 315 |
| ♦ क्षार बस्ति | 315 |
| ♦ वैतरण बस्ति | 316 |
| ♦ कृमिघ्न बस्ति | 317 |
| ♦ लेखन बस्ति | 317 |
| ♦ सर्वरोगहर बस्ति | 318 |
| ♦ बृहण बस्ति | 319 |
| ♦ वातघ्न | 320 |
| ♦ पित्तघ्न | 321 |
| ♦ कफघ्न | 321 |
| ➤ उत्तर बस्ति | 322 |
| 7. नस्य | 329 |
| ➤ निरुक्ति, व्याख्या | 329 |
| ➤ नस्यकर्म महत्त्व व उपयोगिता | 329 |
| ➤ नस्यद्रव्य | 330 |
| ➤ नस्यभेद | 331 |
| ➤ नस्य योग्य-अयोग्य | 333 |
| ➤ नावन नस्य | 335 |
| ➤ अवपीड नस्य | 337 |
| ➤ ध्मापन/प्रधमन नस्य | 338 |
| ➤ धूम नस्य | 339 |
| ➤ प्रतिमर्श व मर्श नस्य | 340 |
| ➤ कार्मुकतेनुसार प्रकार | 343 |
| ♦ विरेचन नस्य | 343 |
| ♦ बृहण/तर्पण नस्य | 343 |
| ♦ शमन नस्य | 344 |
| ➤ नस्य काल व मात्रा | 345 |
| ➤ नस्य विधी | 347 |
| ➤ धूमपान | 351 |
| ➤ नस्य कार्मुकता | 360 |

| | |
|----------------------------------|------------|
| 8. रक्तमोक्षण | 364 |
| ➤ व्याख्या | 364 |
| ➤ रक्तमोक्षणाचे सामान्य सिद्धांत | 364 |
| ➤ रक्तमोक्षणाचे महत्त्व | 365 |
| ➤ प्रकार | 366 |
| ➤ रक्तमोक्षणाचे नियम | 367 |
| ➤ रक्तमोक्षण योग्य-अयोग्य | 368 |
| ◆ जलौकावचरण | 370 |
| ✦ शास्त्रीय विवेचन | 370 |
| ✦ भेद | 371 |
| ✦ जलौकावचरण योग्य-अयोग्य | 372 |
| ✦ जलौकावचरण विधी | 372 |
| ✦ व्यापद व चिकित्सा | 375 |
| ◆ श्रृंगावचरण | 376 |
| ✦ योग्य-अयोग्य | 376 |
| ✦ विधी | 376 |
| ✦ व्यापद व चिकित्सा | 377 |
| ◆ अलाबू अवचरण | 377 |
| ◆ घटीयंत्र | 378 |
| ◆ सिराव्यध | 379 |
| ➤ रक्तमोक्षण कार्मुकता | 386 |
| 9. Physiotherapy | 390 |
| ➤ Definition | 390 |
| ➤ History | 390 |
| ➤ Infrared Therapy | 391 |
| ➤ Ultrasound Therapy | 392 |
| ➤ Wax Bath | 393 |
| 10. Biomedical Waste | 395 |

पंचकर्म परिचय

जगभरात चिकित्सा पध्दतीत नवनवीन पर्याय शोधले जात आहेत. प्रत्येक देश त्यांच्या स्वदेशीय चिकित्सा पध्दतींना जोमाने पुढे आणण्याचे प्रयत्न करीत आहेत. WHO ने 'स्वस्थ' व्यक्तीची परिभाषा करतांना कुठेतरी आयुर्वेदाने वर्णन केलेल्या परिभाषेशी सहमती दर्शवली आहे. शारीरिक स्वास्थ्यासोबत मानसिक स्वास्थ्याचा विचार आयुर्वेदाव्यतिरिक्त कदाचितच, कोणी केला असेल.

आयुर्वेदाने व्याधी प्रशामनाबरोबरच स्वस्थ व्यक्तीच्या स्वास्थ्य रक्षणाचीही जबाबदारी घेतली आहे.

(1) स्वस्थ व्यक्ती मध्ये आयुर्वेदाचे खालीलप्रमाणे कार्य महत्त्वाचे आहेत:

- (i) **स्वास्थ्य रक्षण (Maintenance of Health):-** आयुर्वेदाने यासाठी विभिन्न ऋतुचर्या, दिनचर्या यामध्ये आहार, विहार, आचरण, पंचकर्म इ. चा समावेश केला आहे.
- (ii) **प्रजनन (Promote and production):-** यासाठी प्रामुख्याने रसायन व वाजीकरण या दोन महत्त्वाच्या अंगांचे वर्णन केलेले आहे.

(2) आतुरप्रशामनार्थ चिकित्सा:- चिकित्सा 3 प्रकारची आहे.

- (i) **दैवव्यपाश्रय** - होम, हवन, मंत्र, मणी, दैवी चिकित्सा
- (ii) **युक्तव्यपाश्रय** - दोषांची चिकित्सा
- (iii) **सत्वावजय** - प्रामुख्याने मानसिक बाबीशी निगडित चिकित्सा.

युक्तव्यपाश्रय चिकित्सा 3 प्रकारांची सांगितलेली आहे.

- (a) अंतःपरिमार्जन चिकित्सा
- (b) बहिःपरिमार्जन चिकित्सा
- (c) शस्त्रप्रणिधान

चिकित्सेचे सामान्य सिध्दांत:-

- i) "क्षीणा बृंहयितव्या, वृध्दा निर्हरितव्या, समा परिपाल्या" - क्षीण दोष असल्यास त्यांना वाढविणारी चिकित्सा करावी, वृध्द असल्यास त्यांना निर्हरण करणारे उपाय करावे. सम अवस्थेत असलेल्या दोषांना त्याच स्थितीत ठेवण्याचे प्रयत्न करावे.

ज्यावेळी बहुदोष अवस्था असेल किंवा दोष उत्कलष्ट अवस्थेत असल्यास त्यांचे शोधन करणे आवश्यक आहे. शोधनासाठीचे उपक्रम म्हणजे पंचकर्म.

पंचकर्मांमध्ये खालील पाच कर्मांचा समावेश आहे.

i) वमनं रेचनं नस्यं निरूहश्चानुवासनम्।

एतानि पंचकर्माणि कथितानि मुनीश्वरैः॥

शा.उ.खं. 8/63

ii) अन्येतु संशोध्यस्य पाचन स्नेहन स्वेदनानि पूर्वकर्म,

वमन विरेचन बस्ति नस्य सिरामोक्षणानि प्रधानकर्म,

पेयाद्यन्न संसर्जनं पश्चात्कर्म

(सु.सू. 5/1 - डल्हण)

(1) वमन, (2) विरेचन, (3) नस्य, (4) निरूहबस्ति, (5) अनुवासन बस्ति.

सुश्रुत आचार्यानी रक्ताला चतुर्थ दोष मानल्याने 'रक्तमोक्षण' हा शोधनोपाय सांगितला आहे. आस्थापन व अनुवासन यांना एकत्र 'बस्ति' हा कर्म मानून, रक्तमोक्षण हे पंचकर्मातील पाचवे कर्म मानल्यास पंचकर्मांचे पाच कर्म पूर्ण होतात. व्यवहारातही वमन, विरेचन, बस्ति, नस्य, रक्तमोक्षण हे पंचकर्म मानले जातात.

थोडक्यात पंचकर्म चिकित्सा ही एक प्रकारची संशोधन चिकित्सा आहे ज्या अंतर्गत पाच प्रकारचे प्रमुख शोधन कर्म मनुष्याच्या स्वास्थरक्षणासाठी तथा रोगनिवारणासाठी केले जातात. या पाच कर्मांना 'पंचकर्म' म्हटले जाते कारण अन्य उपक्रमांच्या अपेक्षा या कर्मांमध्ये दोष निर्हरण करण्याची शक्ती अधिक आहे. (इह वमनादिषु कर्म लक्षणं बह्विक्कर्वव्य तयोत्रिदोषनिर्हरणशक्ति जायस्त्वम्। च.सू. 2/15 च.पा.) बहू + अति कर्तव्य (Multiple + Broad action)

विभिन्न आचार्यानुसार पंचकर्म:

| अ.क्र. | शोधनकर्म | चरक | सुश्रुत | वाग्भट |
|--------|------------|-----|---------------|---------------|
| 1 | वमन | + | + | + |
| 2 | विरेचन | + | + | + |
| 3 | निरूह | + | + | + |
| 4 | अनुवासन | + | बस्तीसह एकत्र | बस्तीसह एकत्र |
| 5 | नस्य | + | + | + |
| 6 | रक्तमोक्षण | - | + | + |

चरकांनी चिकित्सेचे सहा उपक्रम वर्णिलेले आहेत. लंघन, बृंहण, रुक्षण, स्नेहन, स्वेदन व स्तंभन हे सहा उपक्रम आहेत. पंचकर्माचा उगम ह्या षडुपक्रमातून झालेला आहे.

पंचकर्माचे महत्त्व व उपयोगिता:- पंचकर्म स्वस्थ व्यक्तीचे स्वास्थ्य रक्षण करणे व रोगी व्यक्तीच्या व्याधीचे शमन करणे ह्या दोन्ही प्रयोजनांची सिद्धी करतो. पंचकर्म हे अष्टांग आयुर्वेदातील चिकित्सेचे महत्त्वाचे साधन आहे. त्यामुळे चिकित्सेतून पंचकर्म वेगळे करणे म्हणजे चिकित्सेतील आत्मा काढण्यासारखे होय. पंचकर्माचे महत्त्व, उपयोगिता अनन्यसाधारण आहे.

(1) स्वस्थ व्यक्तीमध्ये

स्वास्थ्य रक्षणार्थ:- स्वस्थ व्यक्तीमध्ये स्वास्थ्य रक्षणार्थ व व्याधि मोक्षणार्थ पंचकर्म उपयोगी आहे. याकरीता दिनचर्यानुसार व ऋतुनुसार पंचकर्म वर्णिलेले आहेत.

(a) **दिनचर्या व पंचकर्म:-** रोज अभ्यंग, मूर्ध तैल, नस्य, कर्णपूरण, पादाभ्यंग, मात्राबस्ति कर्म करता येऊ शकतात ज्यामुळे शरीर स्वस्थ बलवान, सुदृढ राखले जाते. तसेच अकाली येणारे वार्धक्य टाळले जाते. Allergic disease पासून रक्षण केले जाते.

(b) **ऋतुचर्या व पंचकर्म:-** ऋतुनुसार शरीरातील दोषांची स्थिती बदलत असते. ऋतुनुसार शरीरामध्ये दोषांची चय, प्रकोप व प्रशमावस्था असते. या काळात त्या-त्या दोषांच्या प्राधान्यानुसार व्याधी होण्याची शक्यता असते. त्यामुळे प्रतिरोधात्मक व स्वास्थरक्षणार्थ पंचकर्म केले जातात व प्रकुपित दोषांचे निर्हरण केले जाते.

वसंत - वमन - कफ वृद्धीकाल (फेब्रुवारी - मार्च)

वर्षा - बस्ति - वात वृद्धीकाल (जुलै - ऑगस्ट)

शरद - विरेचन - पित्त वृद्धीकाल (ऑक्टोबर - नोव्हेंबर)

हरेद् वसन्ते श्लेष्माणं पित्तं शरदि निर्हेत् ।

वर्षासु शमयेद् वायु प्राग्विकार समुच्छ्रयात् ॥

सु.सू. 6/38

(2) बहुदोषांमध्ये पंचकर्म:-

बहुदोषः संशोध्यः कुष्ठी बहुशोऽनुरक्षता प्राणान् ।

दोषे ह्यतिमात्रहते वायुर्हन्यादबलमाशु ॥

च.चि. 7/41

स्थूलः प्रमेही बलवानिहैकः कृशस्तथैकः परिदुर्बलश्च ।

संबृंहणं तत्र कृशस्य कार्यं संशोधनं दोषबलाधिकस्य ।

च.चि. 6/15

प्रमेह, कुष्ठ व्याधी ह्या बहुदोष असणाऱ्या व्याधी आहेत. अशा व्याधीमध्ये आधी दोषांचे संशोधन करून दोष बाहेर काढण्याचे उपदेश केले आहेत. त्यामुळे बहुदोष व्याधीमध्ये 'पंचकर्म' आवश्यक आहे. एवढेच नाही तर आचार्यांनी अशा व्याधीमध्ये वारंवार शोधन करण्यास सांगितले यावरून पंचकर्माची उपयोगिता स्पष्ट होते.

ज्याप्रमाणे तलावास शुष्क करण्यासाठी पाणी बाहेर काढण्यासाठी आधी बांध तोडून पाणी वाहू द्यावे लागते व नंतर अल्प जल असल्यास सूर्यतापाने ते आटवावे लागते त्याच प्रमाणे बहुदोषांमध्ये पंचकर्मनि आधी दोष बाहेर काढावे व उरलेल्या दोषांसाठी शमन चिकित्सा करावी.

बहुदोष लक्षणः- अविपाक, अरूचि, स्थौल्य, पांडूता, गौरव, क्लम, पिडिका, कोठ, कंडू, अरति, आलस्य, श्रम, दौर्बल्य, दुर्गन्ध, अवसाद, श्लेष्मसमुत्कलेश, पित्तसमुत्कलेश, निद्रानाश, अतिनिद्रा, तंद्रा, क्लैब्य, अबुध्दत्व, अशस्तस्वप्नदर्शन.

(3) **पंचकर्मनि अपुनर्भवः-**

दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिता लंघन पाचनैः।

जिताः संशोधनैये तु न तेषां पुनरुद्भवः।।

च.सू. 16/20

आचार्य चरकांनी पंचकर्मांचे महत्त्व स्पष्ट करतांना स्पष्ट केले आहे की, इतर उपक्रमांनी शमन झालेले दोष कदाचित पुन्हा प्रकुपित होऊ शकतील परंतु संशोधनाने (पंचकर्म चिकित्सेने) व्याधी पुन्हा होण्याची शक्यता नसते. त्यामुळे वारंवार उद्भवणाऱ्या व्याधींमध्ये पंचकर्म चिकित्सा अधिक प्रभावशाली ठरू शकते. उदा. Psoriasis, Br. Asthma.

(4) **रसायन चिकित्सा व पंचकर्मः-** आज जरी च्यवनऋषीसारखे वृद्धांना तरूण करणे सहजसाध्य नसले तरी रसायनाने वार्धक्य गती निश्चित कमी करता येऊ शकते. रसायन चिकित्सा केवळ वार्धक्य थांबविण्यापुरती मर्यादित नाही तर व्याधीनुसार, वयानुसार, अवयवांनुसार, वेगवेगळे रसायन प्रयोग केले जातात. प्रत्येक रसायनापूर्वी आवश्यक यश मिळण्यासाठी शोधन महत्त्वाचे आहे म्हणून रसायनकर्मापूर्वी पंचकर्मांचे स्थान वेगळे आहे.

पंचकर्मांचा रसायन कर्मात प्रत्यक्ष दोन पध्दतीने उपयोगी आहे-

1. **रसायन चिकित्सेसाठी पूर्वकर्म म्हणून** - रसायन चिकित्सेपूर्वी आचार्यांनी ज्याप्रमाणे मलीन वस्त्रावर रंग देता येत नाही त्याचप्रमाणे विना संशोधन केलेल्या पुरुषास रसायन चिकित्सा देता येत नाही असे सांगून महत्त्व स्पष्ट केले आहे.
2. **प्रत्यक्ष रसायन कर्म म्हणून** - पंचकर्मातील अनेक क्रिया उदा. वमन, विरेचन, बस्ति, रक्तमोक्षण हे उत्तम रसधातुच्या निर्मितीसाठी कारणीभूत ठरतात. रसायन कर्म म्हणजे उत्तम रसधातुची निर्मिती व त्यापासून पुढील धातुची उत्तमोत्तम निर्मिती होय. यासाठी पंचकर्म कारणीभूत ठरून रसायन कार्य होते. तसेच या व्यतिरिक्त पंचकर्मातील अनेक पूर्वकर्म, उपकर्म उदा. अभ्यंग, स्वेदन, शिरोधारा इ. रसायन कार्य करतात.

(5) **वाजीकरण व पंचकर्मः-** उत्तम प्रजा निर्मितीसाठी उत्तम शुक्र (sperm) व बीजाणूंची (ovums) निर्मिती होणे आवश्यक आहे. सद्यस्थितीमध्ये नपुंसकत्व (Impotency) चे प्रमाण वाढत चालले आहे त्यामुळे प्रजा निर्मिती व सुप्रजा धोक्यात आहे. अशावेळी वाजीकरण चिकित्सा महत्त्वाची

आहे. वाजीकरण चिकित्सेमध्ये रसायनासारखेच पंचकर्मांचे महत्त्व अनन्यसाधारण आहे.

- (6) **शमन चिकित्सेची मर्यादा:-** पूर्वीच्या व आजच्या काळात द्रव्यांचे वीर्य, कार्मुकता यांचा विचार करता बराच बदल झाला आहे. आज द्रव्यांचे वीर्य तेवढेसे प्रभावी नाही, चिकित्सक वर्ग दुकानदारांवर अवलंबून असल्याने मिळणारी द्रव्ये शुध्द स्वरूपात असतीलच याची शाश्वती नाही. त्यामुळे एकंदर शमन चिकित्सेलाच मर्यादा आल्या आहेत. त्यामुळे पंचकर्मांचे दोषांचे शोधन करून अधिकाधिक दोष बाहेर काढणे आजच्या चिकित्सेत महत्त्वाचे ठरले आहे.
- (7) **काळानुसार पंचकर्म:-** बदलत्या काळामध्ये मानसिक तणाव, व्यवसायामुळे व्याधी, खाणपानाच्या सवयीमुळे होणाऱ्या व्याधी एकंदर Life style disorders ची संख्या वाढत चालली आहे. त्यामुळे यामध्ये पंचकर्मच उपयोगी ठरणारे आहे.
- (8) **अष्टांग आयुर्वेद व पंचकर्म:-** अष्टांग आयुर्वेदातील प्रत्येक अंगामध्ये पंचकर्म चिकित्सेचे महत्त्व अबाधित आहे. विष चिकित्सा, ग्रहचिकित्सा, बालचिकित्सा, शल्य, उर्ध्वजत्रू व्याधी प्रत्येक अंगामध्ये पंचकर्मांशिवाय चिकित्सा पूर्णच होवू शकत नाही एवढी पंचकर्म चिकित्सेची उपयोगिता आहे.
- (9) **पंचकर्मांचे बहुविध परिणाम:-** दोषांचे निर्हरण करणे हे पंचकर्मांचे प्रमुख कार्य आहे. वर वर बघता ही अपतर्पण चिकित्सा असली तरी पंचकर्मांचे शमन व बृंहण कार्य केले जाते. विविध द्रव्यांचा उपयोग करून शमन बसित, बृंहण बसितच किंवा स्तम्भन बसित चिकित्सेमध्ये वापरली जाते. यावरून पंचकर्मांचे बहुविध कर्म स्पष्ट होतात.

पंचकर्मांचे चिकित्सेतील महत्त्व व उपयोगितेचा विचार करता अष्टांग आयुर्वेदातील हे अंग स्वतंत्र 9 वे अंग निर्माण झाले असे म्हटल्यास वावगे ठरू नये.

संशोधनाचे गुण:- (च.सू. 16-19)

- | | |
|------------------------------|----------------------------|
| (i) अग्निदीप्ति | (vi) बल वृध्दी |
| (ii) रोगशमन | (vii) शरीर पुष्टी |
| (iii) इंद्रिय प्रसन्नता | (viii) अपत्य/संतानोत्पत्ती |
| (iv) मन व बुध्दी कार्य योग्य | (ix) वीर्यवृध्दी |
| (v) वर्णप्रसादन | (x) वृध्दावस्था उशीरा येणे |
| (xi) रोगरहित दीर्घ आयुष्य | |

पंचकर्म व शोधन संबंध:-

शोधन चिकित्सा म्हणजे दोषांना बाहेर काढण्याची चिकित्सा. दोषांना बाहेर काढण्यासाठी जे उपक्रम केले जातात ते सर्व शोधन कर्म आहेत.

शोधन करण्यासाठी पंचकर्मातील वमन, विरेचन, निरूह बस्ति, नस्य, रक्तमोक्षण हे कर्म केले जातात. पंचकर्माचे कार्य प्रामुख्याने शोधन करणे आहे. परंतु केवळ शोधन कर्म म्हणजे पंचकर्म नाही. पंचकर्मांने बहुतांशी शोधन केले जाते, पंचकर्मांने शमन व बृंहणही केले जाते. उदा. अनुवासन बस्ति, शमन नस्य (चतुष्प्रकारा संशुद्धि। च.सू. 22/18, च.पा. चतुष्प्रकारा संशुद्धिः इति अनुवासनं वर्जयित्या तस्य बृंहणत्वात्)

बहुदोष अवस्थेत, रसायनकर्मापूर्वी शोधन आवश्यक असते. शोधनाचे साधन म्हणून पंचकर्मातील दोषानुसार वमन, विरेचन, बस्ति कर्माची आवश्यकता असते.

काही व्याधीमध्ये किंवा अवस्थांमध्ये दोषांचे वारंवार शोधन करणे आवश्यक असते अशावेळी पंचकर्मातील वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण या कर्मांनीच दोषांचे शोधन केले जाते.

वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण ही शोधन कर्मे आहेत तर बस्ति व नस्याचे शमन, लेखन, शोधन असे प्रकार आहेत. यावरून असे लक्षात येते की, पंचकर्म हे केवळ शोधन करणारे नाही तर प्राधान्याने शोधन करणारे उपक्रम आहेत. पंचकर्म हे शोधनाचे साधन असून शोधन सुध्दा बल्यकर व रसायनकारी असू शकते.

पंचकर्मांचे सामान्य सिद्धांत (दोष कोष्ठगत आणण्याचे उपाय):

व्याधीच्या उत्पत्तीसाठी दोषांचे संचय, प्रकोप होणे आवश्यक आहे. संप्राप्ति घडत असतांना दोष कोष्ठातून शाखेत जातात. व्यायाम, प्रक्षोभक, उष्ण-तीक्ष्ण अहितकर आहार विहाराने दोष चलीत होवून कोष्ठातून धातुगत (शाखागत) होतात व व्याधी उत्पन्न करतात. हा व्याधी उत्पत्तीचा सामान्य नियम आहे. शोधन चिकित्सा करतांना हे शाखागत दोष पुनः कोष्ठामध्ये आणून जवळच्या मार्गांनी बाहेर काढणे हा चिकित्सेचा सामान्य नियम आहे.

वृद्ध्या विष्यन्दनात्पाकात् स्रोतोमुख विशोधनात्।

शाखामुक्त्वा मलाः कोष्ठं यांति वायोश्च निग्रहात्।। च.सू. 28/33

चिकित्सेच्या वेळी दोष शाखेतून कोष्ठात आणण्यासाठी खालील उपाय करावे लागतात जे केवळ पंचकर्मांनीच शक्य आहे.

- 1) दोषांची वृद्धी करून
- 2) दोषांचे विष्यंदन किंवा विलयन करून
- 3) दोषांचे पाक करून
- 4) स्रोतसाचे मुख विस्फारीत, मोकळे करून
- 5) वायूचे निग्रहण (जिंकून) करून

वरील सर्व उपाय केवळ पंचकर्मातील पूर्वकर्मांनीच शक्य आहेत. पूर्वकर्मांमध्ये प्रथम स्नेहन केले जाते, स्नेहनाने दोष द्रवीभूत होतात व दोषांचे विलयन होऊन मृदू केले जातात. त्यानंतर क्लेद वृद्धी

होऊन दोषांचा उत्कलेश होतो व दोष वृद्धी होते. त्यानंतर स्वेदन केले जाते ज्यामुळे दोषांचा पाक होतो, साम दोष स्रोतसामध्ये चिकटले असतात, स्वेदनाने दोषपाक झाल्यामुळे दोष सुटे होऊन स्थान सोडतात, स्रोतस मुख विस्फारीत होऊन दोष चलायमान होण्यासाठी मदत होते नंतर दोष कोष्ठाकडे येतात. या सर्व प्रक्रियेत 'वायू' चे स्थान महत्त्वाचे आहे कारण तिन्ही दोषांमध्ये केवळ वायू चलायमान असून पित्त व कफ दोषांनाही वायूच चलायमान करतो त्यामुळे वायूचे निग्रहण आवश्यक असते जे स्नेहन व स्वेदन या क्रियेने होते. अशाप्रकारे दोष कोष्ठामध्ये आणले जातात. यासाठी पूर्वकर्म आवश्यक असतात त्यानंतर वमन विरेचनासारख्या संशोधन क्रियेने दोष शरीराबाहेर काढले जातात.

सुश्रुतांनी चिकित्साकर्म तीन प्रकारांमध्ये विभक्त केले आहेत. हे तिन्ही कर्म पंचकर्मांमध्ये सामावले जाऊ शकतात.

त्रिविधकर्म - पूर्वकर्म, प्रधानकर्म पश्चात कर्मेति (सु.सू. 5/1)

अन्येतु संशोध्यस्य पाचन स्नेहन स्वेदनानि पूर्वकर्म, वमन विरेचन बस्ति नस्य सिरामोक्षणानि प्रधानकर्म, पेयाद्यन्न संसर्जनं पश्चात्कर्म (सु.सू. 5/1 डल्हण टिका)

- 1) पूर्वकर्म (Preoperative procedure)
- 2) प्रधानकर्म (Operative procedure)
- 3) पश्चातकर्म (Post operative procedure)

पूर्वकर्म सामान्य परिचय महत्त्व व उपयोगिता

- 1) पूर्वकर्म:- i) लंघन ii) पाचन
iii) स्नेहन iv) स्वेदन

दोष बाहेर काढण्यासाठी आधी दोषांना उत्कलित करून कोष्ठामध्ये आणणे आवश्यक असते त्यासाठी पूर्वकर्म गरजेचे आहेत.

i) लंघन:- यत् किञ्चित् लाघवकरं देहे तत् लंघनं स्मृतम् ॥ च.सू. 22/9

ज्यामुळे शरीरात लाघव उत्पन्न होते त्यास लंघन म्हणतात, ज्या रुग्णामध्ये दोषांचे बल अल्प आहे त्यास 'लंघन' चिकित्सा करण्यास सांगितले आहे.

लंघनयोग्यः

- (1) त्वकरोगी (2) अतिस्निग्ध
- (3) अभिष्यन्दी (कफवृद्धी असणारा) (4) स्थूल
- (5) वातप्रधानरोगी - शिशिर ऋतूमध्ये

त्वग्दोषिणां प्रमिढानां स्निग्धाभिष्यंदि बृंहिणाम् ।

शिशिरे लङ्घनं शस्तमपि वातविकारिणाम् ॥ च.सू. 22/24

लाभ -

(1) अग्निदीप्ति

(2) वायू वृद्धी - यामुळे दोष शुष्क केले जातात.

ii) पाचन:- ज्या क्रियेद्वारे औषधांनी 'आम' पाचन केले जाते त्यास 'पाचन' म्हणतात. ज्या रुग्णामध्ये दोषांचे बल मध्यम आहे अशा रुग्णांमध्ये 'पाचन' करण्यात सांगितले आहे.

लंघन पाचने तु मध्यबलदोषाणाम्।।

च.वि. 3/44

पूर्वकर्मामध्ये महत्त्व व उपयोगिता:-

(1) ज्या रुग्णांमध्ये आम दोष आहे त्यांचे आधी दोष निराम्म करणे आवश्यक असते त्याशिवाय स्नेहन करू नये. म्हणून पाचन चिकित्सा आवश्यक आहे.

(2) पाचनाने अल्प रूक्षण होते त्यामुळे स्नेह पचनासाठी व स्रोतसांमध्ये पोहचण्यासाठी मदत होते.

(3) अग्निवृद्धी होते.

iii) स्नेहन:- स्नेहनं स्नेह विष्यन्दमार्दव क्लेदकारकम्।। च.सू. 22/11

ज्या कर्माद्वारे शरीरात स्निग्धता, मृदूता होऊन दोषांचे विलयन केले जाते ते कर्म 'स्नेहन' होय. स्नेहनाचे दोन प्रकार आहे.

(1) आभ्यंतर स्नेहन

(2) बाह्य स्नेहन

पंचकर्मातील मुख्य पूर्वकर्म व चिकित्सेमध्ये व्याधीनुसार प्रधानकर्म म्हणूनही 'स्नेहन' कर्माचा वापर केला जातो.

पूर्वकर्मामध्ये महत्त्व व उपयोगिता:-

(1) पंचकर्माच्या सामान्य सिद्धांताप्रमाणे शाखेतून दोष कोष्ठामध्ये आणण्यासाठी, दोषांचे विलयन, दोष वृद्धी, क्लेद उत्पन्न करण्याचे कार्य स्नेहनाने होते.

(2) बाह्य स्नेहनाने दोष शाखेतून कोष्ठात आणण्यासाठी मदत होते.

(3) वायूला नियंत्रित करण्यासाठी स्नेहन उपयोगी.

iv) स्वेदन:- स्तम्भगौरवशीतघ्नं स्वेदनं स्वेदकारकम्।। च.सू. 22/11

ज्या कर्माद्वारे शरीरात स्वेद उत्पन्न होवून स्तम्भ, गौरव व शीतलतेचा नाश केला जातो त्यास स्वेदन म्हणतात. स्वेदन पूर्वकर्माशिवाय प्रधानकर्म म्हणून ही चिकित्सेमध्ये उपयोगात आणले जाते. अग्नि व निराग्नि असे दोन प्रकारचे स्वेद आहेत.

पूर्वकर्मामध्ये महत्त्व व उपयोगिता:-

- (1) पंचकर्माच्या सिध्दांताप्रमाणे दोषांची वृद्धी करून शाखेतील दोष कोष्ठामध्ये आणण्यासाठी महत्त्वाची भूमिका.
- (2) दोषांचे पाक करून स्रोतसांमध्ये चिकितलेले दोष सोडवून त्यांना चलायमान स्वेदनकर्माने केले जाते.
- (3) दोष चलायमान होण्यासाठी व कोष्ठाकडे येण्यासाठी स्रोतसमूख विस्फारण्याचे कार्य स्वेदनाने होते.
- (4) वायूचे नियंत्रण करणे.

(2) **प्रधानकर्म:-** प्रत्यक्ष शोधनासाठीच्या कर्मास प्रधानकर्म म्हणतात. हे खालीलप्रमाणे पाच आहेत.

i) **वमन:-** उर्ध्वमार्गाने दोषांचे निर्हरण करणे म्हणजे 'वमन' होय. वमन प्राधान्यता बहुदोष व्याधीमध्ये, कफप्राधान्य व्याधीमध्ये केले जाते. स्वास्थ्य रक्षणासाठी स्वस्थ व्यक्तीनी कफाच्या प्रकोप काळी म्हणजे वसंत ऋतूमध्ये वमन केल्यास कफाचे व्याधी टाळता येतात. वमनाने रसायनकर्म साधले जाते.

ii) **विरेचन:-** अधोमार्गाने (गुदमार्गाने) दोषांचे निर्हरण करण्याची क्रिया 'विरेचन' होय. विरेचन बहुदोष व्याधीच्या व्यतिरिक्त पित्तप्रधान व रक्तदोषज व्याधीमध्ये केले जाते. स्वास्थ्य रक्षणासाठी स्वस्थ व्यक्तीमध्ये शरद ऋतूमध्ये 'विरेचन' करण्यास सांगितले आहे. विरेचन पित्तदोषांच्या व्याधीसोबतच 'वात' दोषाचीही उत्तम चिकित्सा आहे.

iii) **बस्ति:-** बस्ति यंत्राद्वारे गुदमार्गाने औषधीद्रव्य प्रविष्ट करण्याची क्रिया 'बस्ति' होय. यामध्ये व्याधीनुसार, रुग्णानुसार वेगवेगळ्या प्रकारांचे बस्तिद्रव्यांची निवड केली जाते. बस्ति चिकित्सा ही आयुर्वेद चिकित्सेमध्ये अर्धी चिकित्सा मानली जाते यावरून बस्तिचे चिकित्सेतील महत्त्व स्पष्ट होते. बस्तिचे क्वाथ प्राधान्य व स्नेह प्राधान्यानुसार प्रमुख दोन भेद पडतात.

बस्ति शोधन, लेखन, बृंहण, शमन, रसायन व वाजीकरण कार्य करणारी चिकित्सा आहे. दोष प्राधान्यानुसार 'वात' दोषांची प्रमुख चिकित्सा असून स्वस्थ व्यक्तीसाठी 'वर्षा' ऋतू बस्तिचा उत्तम काळ आहे.

बस्तिचे स्थानानुसार 4 भेद आहेत. यात मूत्रमार्ग व योनिमार्गाने दिल्या जाणाऱ्या बस्तिकर्मास उत्तरबस्ति म्हणतात. गर्भाशय, मूत्ररोग यामध्ये श्रेष्ठ चिकित्सा उत्तरबस्ति मानली जाते.

iv) **नस्य:-** नासा मार्गाद्वारे औषधी देण्याची क्रिया 'नस्य' होय. उर्ध्वजत्रुगत व्याधीमध्ये श्रेष्ठ चिकित्सा नस्य आहे. नस्याने शोधन, शमन केले जाते. नस्य व्याधी व्यतिरिक्त स्वस्थ व्यक्तीमध्येही केले जाते. दैनंदिन व्यवहारातही 'नस्य' चिकित्सा केली जाऊ शकते.

v) **रक्तमोक्षण:-** दुषीत रक्ताचे शरीरातून निर्हरण करणे रक्तमोक्षण होय. आचार्य सुश्रुत व वाग्भट यांनी प्रमुख शोधन कर्मात रक्तमोक्षण समाविष्ट केले आहे. रक्तप्रदोषज व्याधी व

रक्ताच्या आश्रयाने राहणारे पित्त यांची चिकित्सा करण्यासाठी रक्तमोक्षण हे सर्वश्रेष्ठ कर्म आहे. दोष, रुग्ण यांचा विचार करून रक्तमोक्षणासाठी विभिन्न भेद वर्णन केलेले आहेत. उदा. जलौकावचरण, श्रृंग, अलाबू, घटीयंत्र व सिरावेध. व्याधी व्यतिरिक्त स्वस्थ व्यक्तीमध्येही शरीर स्वास्थासाठी रक्तमोक्षण केले जाऊ शकते.

(3) **पश्चातकर्म:-** प्रधान कर्मानंतर अग्निमांद्य निर्माण होते, शरीरामध्ये क्षोभ निर्माण होतो त्यामुळे अग्नि प्रदिप्त होईपर्यंत व शरीराची प्राकृत अवस्था आणण्यासाठी आहार-विहार व औषधांची जी योजना केली जाते त्यास पश्चातकर्म म्हणतात.

- i) **संसर्जन क्रम:-** वमन-विरेचन शोधनोपक्रमानंतर अग्निमांद्याची स्थिती उत्पन्न होते. या काळात सामान्य आहार अहितकर असते. अशावेळी अग्निसंधुक्षणासाठी लघु द्रव आहारापासून तर गुरू-स्थूल आहारापर्यन्त क्रमाने आहार योजना करावी लागते त्यास 'संसर्जन क्रम' म्हणतात. यामध्ये पेया, विलेपी, युष, मांसरस अशी आहार योजना केली जाते.
- ii) **संतर्पण क्रम:-** 'वमन' कर्मानंतर शोधन अल्प झाल्यास संसर्जन क्रमाएवजी संतर्पण क्रम पाळण्यास सांगितले आहे. यामध्ये लाजा, सत्तु यांचा मंथ दिला जातो.
- iii) **रसायनादि क्रम:-** रसायन व वाजीकरण चिकित्सा करावयाची असल्यास तत्पूर्वी शोधन आवश्यक असते. त्यामुळे रसायन-वाजीकरण पंचकर्मांचे पश्चात कर्म मानले जाते.
- iv) **शमनचिकित्सा:-** बहुदोषामध्ये पंचकर्म केल्यानंतर उर्वरीत दोषांची चिकित्सा करण्यासाठी संसर्जन क्रमानंतर शमन औषधांची व्याधीनुसार-दोषानुसार रोगनिवारणासाठी शमन चिकित्सेची योजना केली जाते.

ऋतुनुसार शोधनाची उपयोगिता (Usefulness according to seasons):-

चिकित्सेमध्ये सामान्य-विशेष सिध्दांत महत्त्वाचा आहे. वृद्ध दोषांचे निर्हरण करणे हा चिकित्सा सिध्दांत आहे. निसर्गाच्या चक्राप्रमाणे शरीरातही बदल घडत असतात. दोषांची अवस्था बदलत असते. स्वस्थ राहण्यासाठी ह्या दोषांना सतत साम्यावस्थेत ठेवणे आवश्यक असते.

सुर्याच्या प्रभावानुसार काळ दोन भागात विभागला गेला आहे.

- 1) आदान काळ - या काळात शरीरबल कमी होते.
 - 2) विसर्ग काळ - या काळात शरीराचे बल वाढते.
- हे दोन्ही काळ सहा ऋतूंमध्ये विभागले गेले आहे.

1) आदान काळ -

- (1) शिशिर (डिसेंबर - जानेवारी),
- (2) वसंत (फेब्रुवारी - मार्च),
- (3) ग्रीष्म (एप्रिल - मे - जून)

2) विसर्ग काळ -

- (1) वर्षा (जून-जुलै-ऑगस्ट),
- (2) शरद (ऑगस्ट-सप्टें.-ऑक्टों.),
- (3) हेमंत (ऑक्टोंबर-नोव्हेंबर-डिसेंबर)

शीतोद्भवं दोषचयं वसन्ते विशोधयन् ग्रीष्मजं अध्रकाले ॥

घनात्यये वार्षिकं आशु सम्यक् प्राप्नोतिरोगान् ऋतुजां न जातु ॥ अ.ह.सू. 4/34

शीतकाळात संचित होणाऱ्या दोषांचे वसंत ऋतूत शोधन करावे. ग्रीष्म ऋतूत संचित होणाऱ्या दोषांचे वर्षा ऋतूत तर वर्षा ऋतूमध्ये संचित होणाऱ्या दोषांचे शरद ऋतूत शोधन करावे म्हणजे ऋतुनुसार होणारे रोग उत्पन्न होत नाहीत. शोधनासाठी प्रावृट् (वर्षा ऋतूचा पूर्वीचा काळ) शरद व वसंत ऋतू उत्तम आहेत. व्याधीनुसार शरीरासाठी शोधनासाठी कोणत्याही ऋतूचा किंवा काळाचा नियम नाही.

श्रावणे कार्तिक चैत्रे मासि साधारणे क्रमात ।

ग्रीष्मवर्षाहिमचितान् वाय्वादीनाशु निर्हरत ॥ अ.ह.सू. 13/33

वाताचे श्रावण मासात (जुलै-ऑगस्ट) पित्ताचे कार्तिक मासात (नोव्हेंबर-डिसेंबर), कफाचे चैत्र मासात (मार्च-एप्रिल) शोधन करावे याउलट ग्रीष्म ऋतूत अतिउष्णता असतांना, वर्षा ऋतूत अति वृष्टि असतांना व शीत कालात अत्याधिक शीतता असतांना शोधन करू नये.

अत्युष्णवर्षशीता हि ग्रीष्मवर्षाहिमागमाः ।

सन्धौ साधारणे तेषां दुष्टान् दोषान् विशोधयेत् ॥ अ.ह.सू. 13/34

ऋतूनुसार खालीलप्रमाणे पंचकर्म केली जातात.

1) शिशिर ऋतू:- अधिक शीतता असल्याने अधिक रूक्षता उत्पन्न होते.

पंचकर्म:- (1) अभ्यंग

(2) स्वेदन - उष्णगृह

(3) स्नेह - आभ्यन्तर घृतपान

2) वसंत ऋतू:- कफसंचय व प्रकोप काळ अग्निमांद्य असल्याने अग्निमांद्यजनित व कफ वृद्धीचे व्याधी उत्पन्न होतात.

पंचकर्म:- (1) वमन - कफ उत्क्लेश असल्यास

(2) तीक्ष्ण विरेचन - पित्त संसृष्ट कफासाठी

(3) आस्थापन - वातपित्त प्रकोप असल्यास

(4) अनुवासन - वातपित्त प्रकोप असल्यास

(5) नस्य

- 3) ग्रीष्म ऋतूः- सूर्याच्या अती उष्णतेमुळे शरीरातील द्रव धातुची कमतरता आल्याने रूक्षता उत्पन्न होते. वात दोषाचा संचय काळ.
 - (1) आभ्यन्तर स्नेहपान
- 4) वर्षा ऋतूः- वातदोषाचा प्रकोप काळ व पित्ताचा संचय काळ. वर्षाऋतूमध्ये अग्निमांद्य असते.
 - (1) बस्ति
 - (2) विरेचन - दुर्दिन सोडून
- 5) शरद ऋतूः- पित्ताचा प्रकोप काळ. पित्त व रक्तप्रदोषज व्याधी होण्याची शक्यता.
 - (1) विरेचन - तिक्तकघृतांचे स्नेहपान करून
 - (2) रक्तमोक्षण.
- 6) हेमंत ऋतूः-
 - (1) अभ्यंग
 - (2) उत्सादन
 - (3) आतपसेवन (स्वेदन) - उन्हात बसणे
 - (4) उष्णसदन/स्वेदन - उबदार घरात बसणे.
 - (5) जेंताक स्वेद
 - (6) मूर्ध तैल (शिरोभागी तैल/तैलपिचू धारण करणे)

पंचकर्माचे वेळी परिहार्य विषय (General Precautions): (च.चि. 12/10-11, च.सि. 1/55)

परिहार म्हणजे अहितकर आहार-विहाराचे सेवन न करता संयमाने राहणे. पंचकर्म क्रियेच्या वेळी किंवा पश्चात काही विषय वर्ज्य करावे लागतात त्यास 'परिहार विषय' म्हणतात. जेवढे दिवस हे विषय वर्ज्य करावयाचे असतात त्यास परिहार काल म्हणतात. सामान्यता बस्तिमध्ये जेवढे दिवस बस्ति चिकित्सा केली त्याचे दुप्पट दिवस 'परिहार काल' पाळावा लागतो. अष्टमहादोषकर भाव वर्ज्य व बस्तिसाठी वर्जित सांगितलेले विषय परिहार विषय समजावे. सामान्यतः खालीलप्रमाणे परिहार विषय समजावे.

अत्यासन स्थान वचांसि यानं स्वप्नं दिवा मैथुनवेगरोधान्।

शीतोपचारातप शोक शेषां त्यजैदकालाहित भोजनं च। च.सि. 1/55

- 1) उच्चैर्भाष्यम्:- उंच स्वरात बोलणे टाळावे. शिक्षक, वक्ता, यासारख्या लोकांनी शोधना दरम्यान आपल्या व्यवसायानुसार पथ्य पालन करणे आवश्यक आहे. पालन न केल्यास हनुस्तम्भ, उरःशूल, पार्श्वशूल, स्वरभेद इ. लक्षणे उत्पन्न होतात.

चिकित्सा:- स्नेहपान, नस्य, वातनाशक उपचार, मौनधारण.

- 2) **रथक्षोभः**:- सायकल, स्कुटर, बस, विमान इ. वाहनांनी प्रवास टाळावा. यामुळे कटिशूल, मन्यादौर्बल्य, स्फिक्-वंक्षण शूल ही लक्षणे उत्पन्न होऊ शकतात. सकाळी विमानाने जाऊन एक दिवसात परत येणारे तथाकथित पंचकर्माच्या नावावर क्रिया केल्याने आवश्यक ते लाभ मिळत नाही उलट पंचकर्म चिकित्सा मात्र बदनाम होते.
- 3) **अतिचंक्रमणः**:- शोधनकाळात अधिक फिरणे, व्यायाम टाळावा या काळात दौर्बल्य असतांना अतिचंक्रमण केल्यास पिण्डकोद्वेषन, अंगमर्द, सक्थिसाद (मांडीच्या ठिकाणी शूल गौरवता), श्वास हे लक्षणे उत्पन्न होऊ शकतात. याकाळात नोकरीच्या ठिकाणी जाणे व श्रमज कार्य करणे टाळावे.
चिकित्सा:- अभ्यंग, स्वेदन
- 4) **अत्यासनः**:- एकाच ठिकाणी अधिक काळपर्यंत बसून राहणे (Continuous sitting work): उदा. ऑफीसमधील सततची बसून कामे करणे, कम्प्युटरचे काम करणे, इ. टाळावे.
- 5) **अजीर्णाध्यशनः**:- अजीर्ण अवस्थेत पुन्हा पुन्हा जेवन करणे. अजीर्ण होणार नाही व अध्यशन होणार याची काळजी घ्यावी. याचे पालन न केल्यास उदरशूल, तृष्णा, च्छर्दि, अतिसार ही लक्षणे उत्पन्न होऊ शकतात.
- 6) **विषमाहिताशनः**:- विषम व अहितकर भोजन करू नये. दही, उडीद, राजमा, पावटे, इ. गुरू पदार्थ वर्ज्य करावे. या काळात आधीच अग्निमंद असते अशावेळी विषम-अहित पदार्थांचे सेवन केल्यास ग्रहणी, अर्श, अरुचि इ. व्याधी उद्भवल्याची संभावना असते.
- 7) **दिवास्वप्नः**:- दिवसा झोपू नये. रात्रपाळी करणाऱ्यांनी शोधनकाळात रात्रपाळी करणे टाळावे. दिवास्वापाने अरुचि, अजीर्ण, शरीर गौरवता, तंद्रा ही लक्षणे उत्पन्न होऊ शकतात.
- 8) **व्यवायः**:- शोधनकाळात मैथून पूर्णतः वर्ज्य करण्यास सांगावे. शोधनामुळे आधीच बलहानी झालेली असते, मैथूनाने अधिक बलहानी होऊन मेद्व, उरू, जानु, जंघाशूल ही लक्षणे उत्पन्न होतात. हृदगती तीव्र होते, श्वास वृद्धी होते.
- 9) **शीतजलपानः**:- परिहार कालात शीतजलाचे सेवन वर्ज्य करावे. शीत जलाने अग्निमांड्य अधिक वाढण्याची शक्यता असते.
- 10) **शीत जलस्नानः**:- शीत जलाने स्नान करण्यास मज्जाव करावा. शोधन काळात व शोधनपश्चात दोष निर्हरणार्थ स्रोतोमुख विस्फारीत असणे अपेक्षित असते. शीतस्नानाने स्रोतस संकुचित होऊन अपेक्षित शोधनाचे परिणाम साध्य होणार नाहीत.
- 11) **शीत हवेत बसणे, फिरणे टाळावे.** AC रूम, AC गाडीत फिरणे पूर्णतः वर्ज्य करण्यास सांगावे.
- 12) **शोक, क्रोधः**:- शोधन परिहार काळात रुग्णास शोक, क्रोध या मानसिक वृत्तीपासून दूर राहण्यास सांगावे. याचे शरीरावर परिणाम होत असल्याने अपेक्षित यश मिळणार नाही.
- 13) **आतप सेवनः**:- अधिक ऊन्हामध्ये फिरणे टाळावे.

सध्याच्या काळात IT professionals, BPO-Call centre वर काम करणारे, सतत विमान यात्रा करणारे, रात्रपाळीत काम करणारे, सतत Air conditioned room मध्ये बसून काम करणाऱ्या लोकांना पंचकर्म करतांना चिकित्सक वर्गाने वरील परिहार विषयाचा विचार करूनच चिकित्सा करावी या बाबीचा विचार केल्यास यश मिळू शकते अन्यथा लाभ होत नाही म्हणून शास्त्राची हानी होण्याची शक्यता असते.

सद्य काळातील पंचकर्माची संबधता/(Relevance of Panchakarma in present era)

ग्लोबल मार्केटिंगच्या जगात प्रत्येक चिकित्सा पध्दती स्वतःचे अस्तित्व टिकविण्यासाठी स्पर्धा करीत आहेत. आधुनिक चिकित्सा शास्त्रामध्ये प्रचंड क्रांति झाली तरी त्यांनाही मर्यादा पडल्या आहेत त्यामुळेच जग पर्यायी चिकित्सा पध्दतीच्या शोधात आहे. प्रत्येक देश स्वतःच्या चिकित्सा पध्दती आंतरराष्ट्रीय पातळीवर मान्यता मिळविण्यासाठी प्रयत्नशील आहे. यात भारतही मागे नाही. लोकांना जे हवे ते आपण देऊ शकलो नाही तर आपल्यासारखे आपणच कमनशीबी.

पंचकर्म हा आयुर्वेद चिकित्सेचा आत्मा आहे. पंचकर्माशिवाय चिकित्सा जवळपास शून्य आहे. नवीन काळानुसार लोकांच्या सवयी बदलल्या, आहार-विहाराचे नियम बदललेत, ग्लोबल वॉर्मींगच्या प्रभावाने, विज्ञानाच्या प्रगतीने ऋतूचक्र बदलले त्यामुळे आयुर्वेदाला पर्यायाने पंचकर्मालाही थोडेसे लवचीक व्हावे लागेल. या बदलत्या काळात पंचकर्माची संबधता आणखी प्रभावी ठरणार आहे.

बदलत्या काळात पंचकर्माच्या आवश्यकतेचे कारण:-

- (1) आहारामध्ये Fast food, junk food, विरोधी आहार (Milk shake, mix juices, cold drinks), इ. चे प्रमाण वाढलेले आहे. आहारातील सकसपणा कमी झाला आहे. खाद्य वस्तूवरील रसायनांचा वापर वाढला.
- (2) विहारामध्ये रात्री जागरण - काही सवयीमुळे तर काही व्यवसायामुळे (IT professionals, BPO, MNC मध्ये काम करणारे कर्मचारी), दिवास्वप्न, बैठे काम.
- (3) मानसिक - मानसिक तणाव प्रचंड वाढलेला, ऑफीसच्या कामामुळे, आंतरीक कुटूंबातून, पैशाच्या स्पर्धेतून मानसिक तणाव वाढलेला आहे.
- (4) बहुदोषाच्या व्याधी
- (5) औषधी द्रव्यांचे वीर्य कमी झाले, भेसळ वाढली त्यामुळे शमन चिकित्सेला मर्यादा आल्यात म्हणून शोधन आवश्यक.
- (6) Antibiotics, NSAIDS ना मर्यादा, यांच्या सततच्या वापरामुळे, सध्याच्या आहारामुळे शरीरात Toxins पडून असतात. Toxins बाहेर काढण्यासाठी पंचकर्माची मदत होते.

सध्याच्या काळातील सर्वाधिक आढळणारे व्याधी:-

- | | |
|-----------------------------------|------------------------|
| (1) Life style disorders | (2) प्रमेह (Diabetes) |
| (3) Heart diseases (Heart Attack) | (4) Cancer |
| (5) Obesity | (6) Hyper tension |
| (7) Depression | (8) Mental illness |
| (9) Impotency | (10) Computer syndrome |
| (11) Spondylitis, arthritis | (12) Digestion upset |

पंचकर्माची उपयोगिता:-

वरील सर्व गोष्टींचा विचार करता पंचकर्म आजच्या काळात पावलोपावली उपयुक्त ठरणार आहे यात शंका नाही. शोधन चिकित्सेने शरीरातील Toxin बाहेर काढण्यासाठी मदत होते तसेच बहुदोषाच्या व्याधीवर शोधन चिकित्सा महत्त्वाची ठरणार आहे.

- सद्यकाळातील आजारांची यादी बघता पंचकर्मातील उपकर्माचीही चिकित्सेसाठी मदत होईल. शिरोधारा, सर्वांग धारा, कटिबस्ति, मन्याबस्ति, मात्राबस्ति यांचाही चिकित्सेमध्ये उपयोग केल्याने life style disorders यामध्ये पंचकर्म उपयोगी ठरू शकतो.
- Wellness centre उघडून त्याचे मानांकन (Minimum standard) ठरवून दिल्यास स्वस्थ व्यक्ती व रुग्ण दोन्ही लोकांना सद्यकाळात आपले स्वास्थ्य टिकविण्यासाठी मदत होईल. सोबतच पंचकर्म चिकित्सकांना रोजगाराच्या संधीही उपलब्ध होतील.
- IT companies, Financial Firms, Day-night काम करणाऱ्या, time bound work असणाऱ्या, multi national companies (MNC) सोबत पंचकर्म सेंटर ची सांगड घातली गेल्यास या कंपनीमध्ये काम करणाऱ्या कर्मचाऱ्यांचे स्वास्थ्य टिकवता येऊ शकते पर्यायाने कंपनीच्या कार्याचा लेख (Efficiency performance) वाढवला जाऊ शकतो.
- Medical tourism: - देशाची आर्थिक सुधारणा करण्यासाठी प्रत्येकाचा सहभाग असणे आवश्यक आहे. Medical tourism च्या माध्यमातून पंचकर्माच्या साहयाने 'आर्थिक स्रोत' वाढविण्यासाठी मदत होऊ शकते.
- सौंदर्य चिकित्सा:- आजच्या काळात प्रत्येकजण सौंदर्यासाठी सजग असतो. त्यामुळे त्वचा, केस सौंदर्यवाढीसाठी, तारूण्य राखण्यासाठी पंचकर्माच्या साहयाने चिकित्सा केली जाते. यासाठी शिरोधारा, अभ्यंग, उद्वर्तन, लेप, अवगाह, सर्वांगधारा यांच्या साहयाने सौंदर्य चिकित्सेसाठी मदत होते.

पंचकर्म केंद्र (Specification of Panchakarma Theater)

पंचकर्माची बाहेरच्या देशात वाढती लोकप्रियता बघून आयुष विभागातर्फे जर्मनीमध्ये पंचकर्म केंद्र चालविण्यासाठी मानके ठरविलेली आहेत. आयुर्वेद चिकित्सकाच्या देखरेखी खाली सर्व कर्मे व्हावीत

यासाठी नियमावली तयार केली आहे. पंचकर्म केंद्रांना जर्मनीमध्ये मान्यता देण्यासाठी. Governing Body of IM (Traditional Indian Medicine) ची स्थापना करून 1 मे 2003 पासून नियमावली प्रसारीत केलेली आहे. (source: www.indianmedicine.nic.in)

पंचकर्म केंद्र : आयुष विभाग, भारत सरकार यांचेकडून पंचकर्म केंद्रांना एक समान गुणवत्तेवर आणण्यासाठी काही निकष लावलेले आहेत त्यानुसार पंचकर्म केंद्राची स्थापना केली जावी पंचकर्माच्या दृष्टीने भारत सरकारद्वारे आणखी ठोस पावले उचलली जात आहेत. ती म्हणजे तारांकीत हॉटेलमध्ये चालणारी स्पा सेंटर आयुर्वेदाच्या अधिपत्याखाली आणण्याचे. मसाज सेंटर च्या नावाने होणारी बदनामी, अशास्त्रीय पद्धतीने चाललेले 'स्पा' मधील कर्म थांबविण्यासाठी निश्चित मदत होईल National Accreditation board of Hospital (NABH) ही संस्था आयुर्वेद हॉस्पिटलला मानांकन देते त्यासाठी काही निकष ठरविण्यात आले आहे.

आयुष विभागांतर्गत CS(MA) rules, - 1944, शासकीय कर्मचाऱ्यांना पंचकर्म सुविधा उपलब्ध व्हाव्यात यासाठी आयुर्वेद चिकित्सालय व पंचकर्म केंद्रांना मान्यता देण्यात येते यासाठी काही निकष ठरविले आहेत त्यानुसार किमान गुणवत्तेसाठी खालीलप्रमाणे पंचकर्म केंद्राची रचना असावी व किमान उपकरणे कर्मचारी पंचकर्म केंद्रास उपलब्ध असावेत

A) जागा

| | | |
|---------------------------|---------------------------|---------------------------------|
| 1) पंचकर्म | 1) स्नेहन कक्ष | - 100 स्क्वे. फिट |
| | 2) स्वेदन कक्ष | - 100 स्क्वे. फिट |
| | 3) शोधन कक्ष | - 100 स्क्वे. फिट |
| | 4) इतर कर्म कक्ष | - 100 स्क्वे. फिट |
| | 5) स्टॉफ रुम | - 100 स्क्वे. फिट |
| | 6) प्रसाधन गृह व नहाणीगृह | - 100 स्क्वे. फिट |
| 2) अंतःरुग्णविभाग बेड) | 1) सामान्यवार्ड | - 600 स्क्वे. फिट (किमान 10 |
| | 2) स्वतंत्र खाजगी कक्ष | - 200 स्क्वे. फिट (किमान 4) |
| | 3) उपखाजगी कक्ष | - 200 स्क्वे. फिट (2 बेड युक्त) |
| | | - 300 स्क्वे. फिट (3 बेड युक्त) |
| 3) बाह्य रुग्ण | | - 300 स्क्वे फिट |
| 4) औषधी निर्माण व भांडार | | - 300 स्क्वे फिट |
| 5) औषधी वितरण कक्ष | | - 200 स्क्वे फिट |
| 6) स्वयंपाक खोली | | - 100 स्क्वे फिट |

B) कर्मचारी

- | | |
|--------------------------------------|-----------------------|
| 1) पंचकर्म विशेषज्ञ (स्त्री व पुरुष) | - 2 |
| 2) निवासी/वैद्यकीय अधिकारी | - 1 |
| 3) पंचकर्म सहाय्यक | - 4 |
| 4) स्टॉफ नर्स | - 4 (round the clock) |
| 5) कल्पक (pharmacist) | - 2 |
| 6) Sanitation staff | - 1 |
| 7) लिपिक (clerk cum record keeping) | - 1 |
| 8) स्वयंपाकी (kitchen staff) | - आवश्यकतेनुसार |

C) उपकरणे

- | | |
|---|----------------------|
| 1) पंचकर्म टेबल (लाकडी/फायबर)अभ्यंग/पिड्डिंचल | 2) पंचकर्म टेबल |
| 3) स्वेदन यंत्र | 4) शिरोधारा यंत्र |
| 5) बस्ति यंत्र | 6) द्रोणी/Bath tub |
| 7) गिझर | 8) स्नानासाठी tub |
| 9) Physiotherapy instruments | 10) Hot Plate |
| 11) पातले आवश्यकतेनुसार | 12) weighing machine |
| 13) अवगाह स्वेद यंत्र (spinal bath tub) | 14) Steam inhaler |
| 15) नस्यपीठ | 16) नस्ययंत्र/गोकर्ण |
| 17) Proctoscope | 18) Diagnostic sets |
| 19) रक्तमोक्षणासाठी यंत्र व शस्त्र, जलौका | 20) वमनपीठ |

वरील साधन व बांधकाम किमान आहेत. योग्य संपूर्ण सोयीयुक्त पंचकर्म केंद्रासाठी पुरुष व स्त्री पंचकर्माची स्वतंत्र व्यवस्था असणारी इमारत असावी प्रत्येक कर्मासाठी स्वतंत्र कक्ष असावेत. ते पूर्णतः सुसज्ज असावेत. खालील दर्शविलेल्या आराखड्याप्रमाणे पंचकर्माची रचना केल्यास उत्तम पंचकर्म केंद्र निर्माण होऊ शकेल.

D) आवश्यक औषधी द्रव्ये

तैल

- | | | |
|------------------|------------------|--------------------------|
| 1) धन्वन्तरम तैल | 2) बला तैल | 3) चंदन बला लाक्षादि तैल |
| 4) सहचरादि तैल | 5) चंदनादि तैल | 6) एरण्ड तैल |
| 7) पिण्ड तैल | 8) क्षीर बला तैल | 9) षडबिंदू तैल |
| 10) सैधवादि तैल | 11) विषगर्भ तैल | 12) महामाष तैल |
| 13) नारायण तैल | 14) महनारायण तैल | 15) निर्गुण्डी तैल |
| 16) पंचगुण तैल | 17) ब्राह्मी तैल | 18) कार्पास्यादि तैल |

घृत

- | | | |
|-----------------|------------------|------------------|
| 1) पंचतिक्त घृत | 2) महातिक्तक घृत | 3) फलघृत |
| 4) कल्याणघृत | 5) त्रिफलाघृत | 6) ब्राह्मीघृत |
| 7) दाडिमादिघृत | 8) धान्वन्तरघृत | 9) इंदुकान्ताघृत |
| 10) जात्यादिघृत | 11) कंटकारीघृत | 12) वासाघृत |
| 13) सुकुमारघृत | | |

चूर्ण

- | | | |
|-------------------|-------------------|-------------------|
| 1) सैधव | 2) हिंवाष्टक | 3) लवणभास्कर |
| 4) टंकण | 5) मधुयष्टी | 6) गिलोय |
| 7) त्रिकटू | 8) हरिद्रा | 9) रास्नादि चूर्ण |
| 10) अविपत्तिकर | 11) त्रिफला चूर्ण | 12) निशोथ चूर्ण |
| 13) वचा चूर्ण | 14) मदनफल | 15) पंचसकार |
| 16) शतपुष्पा | 17) कट्फल | 18) मरिच |
| 19) मयुरपिच्छामषी | | |

यवकूटचूर्ण

- | | | |
|------------------|-----------------|----------------|
| 1) मधुयष्टी | 2) अश्वगंधा | 3) एरंडमूल |
| 4) बलादियापन | 5) मुस्तादियापन | 6) दशमूल |
| 7) सहचरादि | 8) पंचतिक्त | 9) पिच्छाबस्ति |
| 10) निम्बपटोलादि | 11) मदनफल | 12) क्षीरबलादि |
| 13) गिलोय | 14) कुलत्थ | |

लेप

- | | | |
|--------------|-----------------|-----------------|
| 1) दशांग लेप | 2) कोलकुलत्थादि | 3) कोट्टमचुकादि |
|--------------|-----------------|-----------------|

वटी

- | | | |
|--------------------|-----------------|----------------|
| 1) शंखवटी | 2) चित्रकादिवटी | 3) सुतशेखर |
| 4) संजीवनी | 5) इच्छाभेदी | 6) अभयादि मोदक |
| 7) धन्वन्तर गुटीका | | |

रसौषधी

- | | | |
|-----------------------|------------------|----------------|
| 1) हेमगर्भ पोट्टली रस | 2) बोलबद्ध रस | 3) निद्रोदय रस |
| 4) कस्तूरी भैरव रस | 5) प्रवाळ पिष्टि | |

अवलेह

- | | |
|--------------------|------------------|
| 1) त्रिवृत्त अवलेह | 2) कल्याणक अवलेह |
|--------------------|------------------|



2

स्नेहन (Oleation Therapy)

स्नेहन हे शोधनातील पूर्वकर्म आहे. पंचकर्माच्या सिध्दांतानुसार कुपीत दोषांचे शोधन करण्यासाठी त्यांना कोष्ठात आणणे गरजेचे असते. त्या दोषांना कोष्ठात आणण्याचे साधन 'स्नेहन' आहे. स्नेहन ज्या प्रमाणे पूर्वकर्म आहे त्याचप्रमाणे प्रधान कर्मही आहे. ज्या प्रमाणे शुष्क काठी (लाकूड) स्नेहन-स्वेदन न करता वाकवण्याच्या प्रयत्न केल्यास तुटते त्याचप्रमाणे शरीरास स्नेहन स्वेदनाशिवाय शोधन केल्यास शरीर विदीर्ण होऊ शकते (अ.ह.सू. 18-59). आयुर्वेदामध्ये स्नेहास आहार व औषध म्हणून फार महत्त्व दिले आहे. वातासाठी तिल तैल व पित्तासाठी गोघृत उत्तम औषध आहे. ज्या ठिकाणी कफ प्राधान्य आहे त्या ठिकाणी संस्कारीत स्नेहनाने चिकित्सा केली जाते.

निरूक्ति:-

1. 'स्निह्' धातु + णिच्, ल्युट प्रत्यय - स्नेहन, अभ्यंग
2. स्निग्ध + घञ = स्नेह (पु.) अर्थ - प्रेम

व्याख्या:- स्नेहनं स्नेह विष्यन्दं मार्दवं क्लेदकारकम् (च.सू. 22/11)

ज्या क्रियेद्वारे शरीरामध्ये स्निग्धता निर्माण होऊन, दोषांचे विष्यंदन होते, शरीरास मृदूता व क्लेदता उत्पन्न होते त्याला स्नेहन म्हणतात. वास्तविक विष्यंद, मार्दव व क्लेद उत्पन्न होणे स्नेहनाचे कार्य आहेत.

स्नेह द्रव्यांचे गुण

द्रवं सुक्ष्मं सरं स्निग्धं पिच्छिलं गुरु शीतलं ।

प्रायो मंदं मृदू च यत् द्रव्यं तत्स्नेहनं मतम् ॥ च.सू. 22/15

गुरु शीत सर स्निग्धं मंदं सुक्ष्म मृदू द्रव । अ.ह.सू. 16/1

सामान्यतः स्नेह द्रव्यांमध्ये खालीलप्रमाणे गुणधर्म असतात.

- | | | | | |
|-------------|-------------|-------------|---------|----------|
| (1) द्रव | (3) सर | (5) पिच्छिल | (7) शीत | (9) मृदू |
| (2) सुक्ष्म | (4) स्निग्ध | (6) गुरु | (8) मंद | |

1. **द्रव:-** जल प्राधान्य शरीरात क्लेदनता उत्पन्न करणारा गुण. या गुणामुळे दोषांचे विलयन व प्रसरण करण्याचे कार्य होते. तसेच शरीरावर स्नेह द्रव्य शीघ्रतेने प्रसरण होते. या गुणामुळे दोषांना विलयन करून कोष्ठात आणण्याचे कार्य होते.

महाभूत प्राधान्य - जल

2. **सुक्ष्म:-** स्नेहाच्या सुक्ष्म गुणामुळे स्नेह स्रोतसामध्ये सहजतेने प्रवेश करून अणु स्रोतसापर्यन्त कार्य करण्याची क्षमता असते.

महाभूत प्राधान्य - आग्नेय, आकाश, वायू.

3. सर:- सर गुण हा गतीचा द्योतक आहे. द्रव गुणांप्रमाणेच स्नेहाचे प्रसरण होऊन दोषांचे विलयन करण्याचे व त्यांना कोष्ठगत आणण्याचे कार्य या गुणामुळे होतात.
4. स्निग्ध:- स्नेहाचा प्रमुख गुण असून शरीरात स्निग्धता, कोमलता आणण्याचे कार्य या गुणामुळे होते. स्निग्ध गुण वातनाशक व कफकर असून वर्ण्यकर आहे. स्निग्ध गुणामुळे दोषांचे विलयन व क्लेदन होण्यास मदत होते.
5. पिच्छिल:-विशद गुणाच्या विपरीत लेपन करणारा गुण आहे (सु.सू. 41/41). या गुणामुळे आवरण करण्याची क्षमता असते. पिच्छिल गुणामुळे स्नेह द्रव्य दृढतर, जीवन वाढविण्याचे कार्य करतात (सु.सू. 46/51)

महाभूत प्राधान्य - जल

6. गुरू:- गौरवता उत्पन्न करणारा गुण, पचनासाठी जड, स्नेहाची मात्रा ठरवतांना या गुणाचा विचार करणे आवश्यक. स्नेहाच्या गुरू गुणांमुळे स्नेहपान काळात लघू आहार सांगितला आहे.

महाभूत प्राधान्य - पृथ्वी

7. शीत:- शीतलता उत्पन्न करणारा आल्हादकर, तृष्णाहरण, दाहप्रशमन, स्वेदहर व मूर्च्छाहर कार्य करणारा गुण. शीत गुणाच्या स्तम्भन कार्याने शरीरावयवांस स्थिरत्व व दृढता प्रदान करण्याचे कार्य होते.

महाभूत प्राधान्य - जल

8. मंद:- मंदत्व, हळुहळू कार्य करणे, दोषांचा प्रक्षोभ रोखण्याचे कार्य मंद गुणांमुळे होते. स्नेह द्रव्य दोष-धातु-मलासोबत अधिक काळापर्यन्त थांबविण्याचे कार्य मंद गुणामुळे होते.

महाभूत प्राधान्य - जल

9. मृदू:- शरीरास कोमलता प्रदान करण्याचे कार्य या गुणामुळे होते. मृदू गुणामुळेच दोष स्रोतसामधून सहजतेने विचलीत होऊन कोष्ठाकडे येतात.

महाभूत प्राधान्य - जल, आकाश

स्नेह द्रव्य सुक्ष्मातिसुक्ष्म स्रोतसामध्ये जाऊन दोषांचे शमन करण्याचे कार्य किंवा शोधनासाठी वाढलेल्या दोषांचे विलयन करून कोष्ठाकडे आणण्याचे कार्य करतात. वरील गुण कमी-अधिक मात्रेत सर्व स्नेह द्रव्यात असतात. त्यांच्या या गुणांच्या अधिकता व न्यूनतेचा विचार करून रुग्ण, व्याधी, दोष, अग्नि इ. च्या विशेषतेनुसार स्नेहद्रव्यांची निवड करणे आवश्यक असते.

स्नेह भेद (Classification)

- I) योनिभेदाने:- 'योनि' चा अर्थ 'उत्पत्ती'. उत्पत्तीच्या आधारावर स्नेह द्रव्यांचे दोन प्रकार आहेत.
 - i) स्थावर स्नेह ii) जांगम स्नेह.

i) **स्थावर स्नेह (Plant Origin):**— ज्या स्नेहांची उत्पत्ती वनस्पतीपासून होते त्यास स्थावर स्नेह म्हणतात. उदा. तिल तैल, एरंड तैल, करंज तैल.

'तैल' ही संज्ञा 'तिल' पासून उत्पन्न झाली आहे. मात्र सर्व प्रकारच्या वनस्पतीजन्यं स्नेहांना 'तैल' ही संज्ञा रूढ झाली.

स्नेहाशयः—ज्या वनस्पतीपासून स्नेह प्राप्त होते त्यास 'स्नेहाशय' म्हणतात.

आचार्य चरकांनी 18 स्नेहाशय वर्णन केलेले आहेत. (च.सू. 13/10-11)

- | | | | |
|-------------------|---------------------------------------|--------------|--------------------|
| (1) तिल | (2) बिल्व | (3) अभिषुक | (4) अरूक (भल्लातक) |
| (5) प्रियाल | (6) मूलक | (7) विभीतक | (8) अतसी |
| (9) चित्रा (दंती) | (10) निकोष्ठु | (11) एरण्ड | (12) अखरोट |
| (13) सर्षप | (14) करंज | (15) कुसुम्भ | (16) शिगु |
| (17) मधुक | (18) अभया (सविस्तर वर्णन तालिकेमध्ये) | | |

आचार्य सुश्रुतांनी वनस्पती स्नेह कर्माच्या आधारावर वर्णिले आहेत.

तत्र तिल्वकैरंड दद्रु कुष्ठकिटिभेषु ।सु.चि. 31/4

- (1) **विरेचनार्थः**— तिल्वक, एरण्ड कोशाम्न, जयपाल, द्रवन्ती, शंखिनी, विषाणिका, इंद्रायण, अमलतास, नलिनी जनरल प्रॅक्टीसमध्ये प्रामुख्याने एरण्ड, जयपाल, अमलतास यांचा उपयोग केला जातो.
- (2) **वमनार्थः**— जीमुतक, कुटज, कृतवेधन, इक्ष्वाकु, मदनफल
- (3) **शिरोविरेचनीयः**— विडंग, खरमंजिरी, ज्योतिष्मती, सर्षप
- (4) **दुष्टव्रणासाठीः**— करंज, कृतमाल, किराततिक्त, मस्तुलुंग
- (5) **कुष्ठ (महाव्याधी):**— तुवरक, कपित्थ, भल्लातक, पटोल, कम्पिल्लक
- (6) **मूत्रसंगः**— काकडी, खीरा, तुम्बी, कुष्मांड
- (7) **अश्मरीः**— ब्राह्मी, बाकुची, हरीतकी
- (8) **प्रमेहः**— सर्षप, कुसुंभ, पिचुमर्द, कडतुंबी, अपराजिता, निम्ब
- (9) **पित्तसंसृष्ट वायू** :— ताल, नारिकेल, फणस, केळ, बिल्व, मधूक, श्लेष्मांतक
- (10) **कृष्णीकरणार्थ (In Hypopigmentation):**— शिवत्र, दग्धव्रणाच्या उपद्रव स्वरूप श्वेत त्वचेसाठी, विभीतक, भल्लातक, मदनफल
- (11) **पाण्डूकरणार्थ (In Hyperpigmentation):**— श्रवण, प्रियंगू, श्योनाक
- (12) **दद्रु किटिभ कुष्ठ (Ringworm, scaling condition):**— देवदारू, शीशम, अगरू
वरील स्नेहाशयाचा व्याधी व रुग्ण यांचा विचार करून द्रव्यांचा स्नेह काढून किंवा द्रव्याने स्नेह

सिद्ध करून चिकित्सेसाठी वापरावा. या व्यतिरिक्त चिकित्सकांनी आपल्या विवेकाने रुग्ण, व्याधीचा विचार करून द्रव्यांच्या गुण कर्मानुसार सिद्ध स्नेह पंचकर्मासाठी उपयोगात आणावा.

ii) जांगम स्नेह (Animal Origin):- जो स्नेह प्राण्यांपासून प्राप्त केला जातो त्यास जांगम स्नेह म्हणतात. दूध, दही, घृत, वसा, मज्जा इ. चा स्नेह प्रयोग चिकित्सेत केला जातो. पशु, पक्षी, मत्स्य यांच्यापासून जांगम स्नेहाची प्राप्ती केली जाते. (च.सू. 13/11)

चरकोक्त स्नेहाशय तालिका

| द्रव्यनाव (स्नेहाशय) | Latin Name | गुण | रस | विपाक | वीर्य | गुणधर्म | विशेष उपयुक्तता |
|-----------------------------|--|---------------------------------|------------------------------|-------|-------|---|--|
| तिल | <i>Sesamum indicum</i> | गुरु, स्निग्ध | कटु, तिक्त, मधुर, कषाय | मधुर | उष्ण | उष्ण, ज्वच्य, कफ-पित्त नाशक, वातघ्न | केश्य, बल्य, दीपन, वृष्य |
| प्रियाल | <i>Buchanania lanzan</i> | स्निग्ध, गुरु, सर | मधुर | मधुर | शीत | स्निग्ध, विकटंभी, जामवर्धक, हृदय वात पित्त शामक | उदरप्रशामन, कुष्ठघ्न |
| अभिषुक द्रव्य | औतरपथिक (चक्रपाणि) काबुली पिस्ता | - | - | - | - | - | - |
| बिभीतक | <i>Terminalia bellirica</i> | रुक्ष, लघु | कषाय | मधुर | उष्ण | उष्णवीर्य, लघु भेदन, वातकफ शामक | छेदन(श्लेष्मर) कृमिघ्न |
| चित्रा 1) लोहित एरण्ड | <i>Ricinus communis</i> | सूक्ष्म स्निग्ध तीक्ष्ण | मधुर, कषाय | मधुर | उष्ण | उष्ण, गुरु, वातघ्न शूलघ्न, विड भेदन | वेदनारथापन भेदन, कृमिघ्न आमपाचन |
| 2) जयपाल | <i>Croton tiglium</i> | गुरु, रुक्ष, तीक्ष्ण | कटु | कटु | उष्ण | तीक्ष्ण, उष्ण, सारक दीपन, पित्तघ्न | तीक्ष्णविरेचन लेघन, विषघ्न |
| अभया | <i>Terminalia chebula</i> | लघु, कक्ष | लवणवर्ज्य पंचरस कषाय | मधुर | उष्ण | उष्ण, रुक्ष, अनुलोमन, बृहण | रसायन वेदनास्थापन, बल्य मृदुरेचन, कुष्ठघ्न |
| एरण्ड | <i>Ricinus Communis</i> | सूक्ष्म, स्निग्ध, तीक्ष्ण | मधुर, कषाय | मधुर | उष्ण | उष्ण, रुक्ष, वातघ्न, शूलघ्न, विडभेदन | वेदनास्थापन, भेदन, कृमिघ्न आमपाचन |

| | | | | | | | |
|---------|---|---|------------------|-----------|------|---|--|
| मधूक | <i>Madhuca indica</i> | गुरु, स्निग्ध | मधुर | मधुर | शीत | शीत, गुरु, वातपित्तनाशक बृहण | बृहण, कोहन, वृष्य, आर्तवजनन |
| सर्षप | <i>Brassica Compestris</i> | तीक्ष्ण, रुक्ष (शाक), स्निग्ध (बीज/तैल) | कटु, तीक्त | कटु | उष्ण | स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण, कफवातनाश | कण्डूघ्न, प्लीहनाशन दीपन, विदाही, गर्भाशयोत्तेजक |
| कुसुम्भ | <i>Carthamus Tinctorius</i> | लघु, स्निग्ध | कटु, तीक्त | तीक्त | उष्ण | वातकारक, कफनाशक | रक्तपित्तशामक |
| बिल्व | <i>Aegle marmelas</i> | लघु, रुक्ष | कषाय | कटु | उष्ण | रुक्ष, लघु, | ग्राही, बल, पाचन, रक्तस्तम्भन |
| अरुक | औतरपथिक द्रव्य(चक्रपाणि) भल्लातक(गंगाधर) <i>Semecarpus anacardium</i> | लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण | कटु, तीक्त, कषाय | मधुर | उष्ण | लघु, उष्ण, वातकफघ्न | कुष्ठघ्न, भेदन, छेदन, स्वेदजनन |
| मूलक | <i>Raphanus Sativus</i> | तीक्ष्ण, लघु | कटु | कटु | उष्ण | तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, पाचन, त्रिदीघ्न | अश्मरीहर, कर्णशूलहर सारक, लेखन |
| अतसी | <i>Linum Vsitatissimum</i> | गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल | मधुर, | कटु तीक्त | उष्ण | स्निग्ध, उष्ण कफपित्तघ्न | मृदुविरेचन मूत्रल, शुक्रनाशक |
| निकोठक | <i>Alangium Salvitolium</i> | लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, सर | कटु, | कटु कषाय | उष्ण | स्निग्ध, उष्ण, लघु, रेचन, कफपित्तघ्न | विषघ्न, प्रवरोपन, रक्ताभार, दाहप्रशामन |
| अक्षोड | <i>Jugelans regia</i> | गुरु, स्निग्ध | मधुर | मधुर | उष्ण | कफपित्तकृत | बृहण, वृष्य, बल्य अनुलोमक |
| करंज | <i>Pongamia Pinnata</i> | लघु, तीक्ष्ण | तीक्त, कटु, कषाय | कटु | उष्ण | उष्ण, तीक्ष्ण, कफनाशक, भेदन | कण्डूघ्न, शिरोविरेचन कासदर, मूत्रसंग्रहणीय |
| शिगु | <i>Moringa oleifera</i> | लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण | कटु, तीक्त | कटु | उष्ण | तीक्ष्ण, उष्ण लघु, अग्निदीपन कफवात शामक | स्वेदोपग, शिरोविरेचन, सारक कृष्ठघ्न, चक्षुष्य |

स्नेहन प्रकार

शरीरावर स्नेहाचा उपयोग करण्याच्या पध्दतीनुसार स्नेहनाचे दोन प्रकार पडतात.

- (A) बाह्य स्नेहन:- स्नेहाचा बाह्यतः उपचार पध्दतीसाठी वापर केला जातो. उदा. अभ्यंग, लेप, मर्दन, उद्वर्तन, संवाहन, पादाघात, कर्णपूरण, अक्षितर्पण, शिरोमस्तिष्क.
- (B) आभ्यन्तर स्नेहन:- स्नेहनासाठी आभ्यन्तरतः स्नेह प्रयोग केला जातो. उदा. पान, नस्य, बस्ति. आभ्यन्तर पानाचे त्यांच्या कर्मानुसार 3 प्रकार आहेत:

- (1) शोधनार्थ स्नेहन:- दोषांना बाहेर काढण्यासाठी ज्या स्नेहाचा वापर केला जातो त्यास शोधन स्नेह म्हणतात. उदा. वमनोपयोगी, विरेचनापयोगी किंवा नस्यार्थ ज्या स्नेहाचा वापर केला जातो. दुसऱ्या अर्थाने शोधनार्थ स्नेहन म्हणजे पूर्वीचा अन्न पचल्यानंतर उत्तम मात्रेमध्ये शोधनासाठी अच्छ स्नेह देणे होय. (अ.ह.सू. 16/18) अशाप्रकारे उत्तम मात्रा वमन विरेचनाच्या पूर्वकर्मांमध्ये दोषांना उत्कलित करण्यासाठी दिली जाते.
- (2) शमनार्थ स्नेहन:- दोषांना शमन करण्यासाठी मध्यम मात्रेत दिलेले स्नेह शमन स्नेह होय. शमनासाठी स्नेह पूर्वीचे अन्न पचल्यानंतर रुग्णास क्षुधा असतांना अच्छस्नेह पान केले जाते. (अ.ह.सू. 16/19). उदा. मूत्रसंग, कुष्ठ, दुष्टव्रण, अश्मरी इ. मधे स्नेह.
- (3) बृंहणार्थ स्नेहन:- या स्नेहनाने शरीराचे बल वाढविले जाते व शरीर पुष्ट केले जाते यास बृंहण स्नेह म्हणतात. बृंहण स्नेह अल्प मात्रेत मांसरस, भोजन या सोबत दिले जाते. बृंहणार्थ स्नेह बाल, वृद्ध, कृश, पिपासीत, स्नेहद्विष्ट, मद्यपी, मैथूनप्रसक्त, मृदूकोष्ठीमध्ये दिले जाते.

स्नेहपाक व उपयोगिता

क्वाथ, स्वरस, दुग्ध इ. औषधी द्रव्यांना घृत वा तैला मध्ये शिजविण्याची क्रिया 'स्नेहपाक' होय.

घृत व तैल सिध्द केल्याने त्या त्या द्रव्यांचे गुणधर्म स्नेहामध्ये विलीन होतात व द्रव्यांच्या गुणानुसार घृत तैल कार्य करतात म्हणून स्नेहपाक अर्थात सिध्द स्नेह चिकित्सेमध्ये फार उपयुक्त आहेत.

स्नेहपाक करण्यासाठी स्नेह, कल्क व द्रव आवश्यक असतात. स्नेहपाकासाठी सामान्यता एक भाग कल्क, चार भाग स्नेह व सोळा भाग द्रव द्रव्ये घेवून त्याचा पाक करावा. (शा.म.ख. 3/1)

स्नेहपाकासाठी क्वाथ:- क्वाथ्य द्रव्यांच्या चार पट जलाने क्वाथ तयार करावा, चतुर्थांश शेष असल्यानंतर क्वाथास गाळून घ्यावे. क्वाथ तयार करतांना मृदू द्रव्यांस चारपट, कठिण द्रव्यांस आठपट व अत्यंत कठिण द्रव्यांस सोळापट पाण्याने सिध्द करावे.

स्नेहपाक विधी:- कल्क, स्नेह व द्रव पदार्थ यांना एका पातेल्यामध्ये घेऊन मंद आचेवर शिजविण्यास ठेवावे. फळीद्वारे वारंवार शिजत असलेल्या स्नेहास हलवत राहावे. स्नेहपाकाचे सम्यक लक्षणे आल्यानंतर अग्नि बंद करून शीत होऊ द्यावे. शाङ्गधरानुसार घृत, तैल एकाच दिवशी तयार करू नये. पहिल्या दिवशी थोडा पाक करून दुसऱ्या दिवशी उर्वरीत पाक पूर्ण करावा. रात्रभर ठेवल्याने स्नेहामधे विशेष गुण येतात. (शा.म.खं. 9/18)

सम्यक स्नेहपाक लक्षणः-

- (1) वर्तिवत् स्नेहकल्क :- स्नेहकल्काचा अंगूलिद्वारे मर्दन केल्यास वर्ती तयार होते.
- (2) शब्दहीन अग्नी:- स्नेहास अग्नीवर टाकल्यास किंवा वर्ती अग्नीवर ठेवल्यास 'चट्चट्' आवाज न होणे.
- (3) तेलामध्ये फेन येण्यास सुरूवात होणे किंवा घृतामध्ये फेन शांत होणे व योग्य गंध, वर्ण, रसाची उत्पत्ती होणे सम्यक स्नेहपाकाची लक्षणे आहेत.

स्नेहपाक भेदः- स्नेहपाकाचे तीन प्रकार आहेत:

- (1) मृदूपाक
- (2) मध्यम पाक
- (3) खरपाक

वाग्भटांनी मंदपाक, चिककणपाक व खरचिककण पाक असे नामाभिदान केले आहे. हे अनुक्रमे मृदू, मध्यम व खरपाक आहेत.

| शास्त्रकार | मृदूपाक गुण लक्षण | उपयोग | मध्यमपाक गुण लक्षण | उपयोग | खरपाक गुण लक्षण | उपयोग |
|-------------------------|--|-------|----------------------|-------------|--------------------------------|-----------------|
| चरक | कल्क व स्नेह वेगळे | नस्य | कल्क कोमल व सांद्र | पान बस्ती | कल्क दाबल्याने वर्ती तयार होते | अभ्यंग |
| सुश्रुत (सु.चि. 31/11) | स्नेहन कल्क पृथक् | पान | कल्क मोम समान निर्मल | अभ्यंग नस्य | औषधी दग्ध, कृष्ण वर्ण | बस्ती, कर्णपूरण |
| वाग्भट अ.ह.सू. 6/19-20 | औषधी व कल्क समान, वर्ती निर्माण न होणे | नस्य | हलव्याप्रमाणे कल्क | पान बस्ती | कृष्ण | अभ्यंग |
| शाड्गर्धर शा.म. 9/14-17 | कल्क रस युक्त | नस्य | कल्क रस रहीत व कोमल | पान, बस्ती | कल्क कठीण | अभ्यंग |

मृदूपाकाच्या पूर्वीची अवस्था आमपाक होय तर खरपाकाच्या नंतरची अवस्था दग्धपाक होय. या दोन्हीचा चिकित्सेत उपयोग नाही. वरील आचार्यांच्या स्नेहपाकाचा तुलनात्मक अभ्यास केल्यास शाड्गर्धरांनी सरळ व सोप्या भाषेत स्नेहपाकाविषयी वर्णन केलेले आहे व ते अधिक व्यवहारीक (Practical) आहे.

चतुर्विध स्नेह/उत्तम स्नेह

सर्पिमज्जा वसा तैलं स्नेहेषु प्रवरं मतम् ।

तथापि चोत्तमं सर्पिः संस्कारस्यानुवर्तनात् ॥ अ.ह.सू. 16/2

घृत, मज्जा, वसा व तैल हे उत्तम स्नेह आहेत. यात सर्वश्रेष्ठ घृत आहे कारण संस्काराने घृतामध्ये द्रव्यांचे गुण येतात. घृत एक प्रकारे गुणांचा वाहक (vehicle) म्हणून कार्य करतो.

उत्तम स्नेहामध्ये सर्पि, मज्जा, वसा व तैल यथा पूर्व पित्तघ्न आहेत. अर्थात घृत अधिक पित्तघ्न आहे, त्यामानाने मज्जा कमी पित्तघ्न, त्यापेक्षा वसा कमी पित्तघ्न आहे. तैल पित्तघ्न नाही. याच्याच विपरीत मज्जा वातघ्न, मज्जापेक्षा वसा अधिक वातघ्न व वसापेक्षा तैल अधिक वातघ्न आहे.

पचनासाठी घृतापेक्षा तैल गुरू, तैलापेक्षा वसा गुरू व वसापेक्षा मज्जा गुरू आहे.

| | | | | |
|------------|-------|-------|-----|-----------|
| पित्तघ्न ← | +++ | ++ | + | |
| | सर्पि | मज्जा | वसा | तैल |
| | | + | ++ | +++ |
| | | | | → वातघ्न |
| | सर्पि | तैल | वसा | मज्जा |
| | + | ++ | +++ | ++++ |
| | | | | → गुरुत्व |

घृत

घृत हा दूधाचा विकार आहे. गाय, अजा, माहिष यांच्या दूधापासून तयार केलेल्या घृतांमध्ये गोघृत सर्वश्रेष्ठ आहे. एक वर्ष जुन्या घृतास पुराणघृत म्हणतात. दोषानुसार गुणानुसार सिद्ध करून चिकित्सेमध्ये सिद्ध घृत वापरले जातात. उदा. ब्राह्मीघृत, त्रिफलाघृत इ.

गुण:-

- (1) पित्त वात शामक
- (2) वर्णप्रसादक
- (3) रस, शुक्र व ओजवर्धक
- (4) अग्निदीपक
- (5) बलवर्धक
- (6) बुद्धी, स्मृती वर्धक
- (7) मृदूकर

उपयुक्तता-स्नेहनार्हः-

- (1) वात-पित्तज व्याधी
- (2) दृष्टी क्षमता अल्प (e.g- macular degeneration)
- (3) बालक, वृद्ध, स्त्री
- (4) संतानेच्छुक
- (5) धी, धृती, मेधा इच्छिणारे
- (6) कफाधिक्य (क्षार त्रिकटू युक्त घृत)
- (7) बुद्धीचे कार्य अधिक करावे लागते अशा लोकांमध्ये (e.g. तत्वचिंतक, psychiatric patients)
- (8) रूक्ष व्यक्तीमध्ये

घृतपानासाठी उत्तम कालः- शरद ऋतू

मात्राः- स्वास्थ्य रक्षणार्थ - बालक - 25 ग्रॅम प्रतिदिन
स्त्री - 35 ग्रॅम प्रतिदिन
पुरुष - 50 ग्रॅम प्रतिदिन
औषधी मात्रा - 50 ग्रॅम प्रतिदिन

Physical properties of Ghee:-

| Sr.No. | Properties | Cow Ghee | Buffalo Ghee |
|--------|-----------------------------|-------------------|----------------|
| 1. | Moisture | 0.24% | 0.21% |
| 2. | Colour unit | 15.90 | 3.56 |
| 3. | Butyro refracto meter value | 42.31 | 41.52 at 400 C |
| 4. | Melting point | 34.20 C | 35.80 C |
| 5. | Specific gravity | 0.8988 | 0.9161 |
| 6. | Viscosity | 29.8624 to 30.893 | |

Chemical composition:-

| Constituents | Cow Ghee | Buffalo Ghee |
|----------------------------------|----------|--------------|
| Saponifiable constituents | | |
| 1. Fat | 99-99.5 | 99-99.5 |
| 2. Salts Cu, Fe | Traces | Traces |
| 3. Saturated fat | NA | 46 |
| 4. Cis-monoene | NA | 29 |
| 5. Trans-monoene | NA | 7 |
| 6. Diene | NA | 13 |
| 7. Polyene | NA | 5 |

| Constituents | Cow Ghee | Buffalo Ghee |
|-------------------------------------|------------|--------------|
| Triglycerides | | |
| 1. Short chain | 36-40 | 43-49 |
| 2. Long chain | 62.4 | 54.7 |
| 3. Trisaturated | 32-42 | 32-47 |
| 4. High melting | 3-7 | 6-12 |
| 5. Unsaturated | 54.5 | 56 |
| Partial glycerides | | |
| 1. Diglycerides | 4.3 | 4.5 |
| 2. Monoglycerides | 0.7 | 0.6 |
| 3. Phospholipids | 3.8 | 42.5 |
| Total cholesterol | 330 | 275 |
| 1. Lutiene (μg) | 4.2 | 3.1 |
| 2. Carotene (μg) | 7.2 | 0 |
| 3. Vit.A (μg) | 9.2 | 9.5 |
| 4. Vit.E (μg) | 30.5 | 26.4 |
| 5. Ubiquinone (μg) | 5 | 6.5 |
| 6. Total free fatty acids (mg) | 5.99-12.29 | 5.83-7.58 |
| 7. Total lactones (μg) | 30.3 | 35.4 |

Ghrita is complex lipid having combination of glycerides, phospholipids, sterol, fat soluble vitamins A,D,E,K carbonyls, hydrocarbon, small traces of Ca, phosphorous, iron, zinc, carotinodes (present only in cow ghee).

Action of Ghee:-

- Short chain fatty acids easily metabolized and release the energy.
- Long chain fatty acids are not completely metabolized, responsible for thrombosis and cancer.
- Monosaturated fat considered to be very healthy and resistant to oxidation. High quantity associated with heart disease.
- Lauric acid present in cow ghee (2.70) has antimicrobial activity and able to raise metabolism. It releases enzyme in intestinal tract which activate thyroid and promotes weight loss because it is a healthy medium chain fatty acids.
- Myristic acid (11.80%) enhances immune system

- Palmitoleic acid (3.3%) omega 6-monounsaturated fatty acid has antioxidant property and delaying age (रसायन) caused by free radicals. It prevents damage of heart to maintain BP through production of nitric oxide.
- Stearic acid (12.5%) acts as lubricant and soften the tissues.
- Oleic acid (26.2%) Omega 9 fatty acid help in boosting memory.
- Rita Rani & Vinod K. Kansal reported anticancerous property of cow ghee in their study. Carcinogen detoxification activities of uridinediphospho glycuronosyl transferase (UDPGT) and quinone reductase (QR) in liver and γ -glutamyltraspeptidase (GTP) and QR in mammary tissue were significantly higher in cow.

[Rita Rani and Vinod K. Kansal, Indian Med. Res., 2012; 136 (3): 460-PMCEDIPMC 35010893]

तैल

तेलाचा पंचकर्मातील क्रियांमध्ये सर्वाधिक उपयोग केला जातो. 'तैल' या शब्दाचा अर्थ सामान्याने 'तिल' तैल असा होतो.

गुणधर्म:-

| | | |
|-------|---|--|
| रस | - | मधूर |
| विपाक | - | मधूर |
| वीर्य | - | उष्ण |
| गुण | - | उष्ण, तीक्ष्ण, मधूर, सुक्ष्म, विशद, विकासी |
| कर्म | - | स्नेहन, लेखन |

- | | |
|-----------------|----------------------|
| (1) वात-कफ नाशक | (5) मूत्रावरोधक |
| (2) लेखन कार्य | (6) मार्दवकर |
| (3) कृमीघ्न | (7) रोपण कार्यकरणारा |
| (4) शूलघ्न | |

उपयोगिता/स्नेहनार्ह:-

ग्रन्थिनाडीकृमिश्लेष्ममेदोमारूतरोगिषु। तैलं लाघवदाढ्यार्थिक्रूरकोष्ठेषुदेहिषु।। अ.ह.सू. 16/9

प्रवृद्धश्लेष्म नाडीभिरर्दिता।। च.सू. 13/44-45

- | | |
|---|--|
| (1) ग्रंथी व्याधीमध्ये (glands, tumors) | (6) क्रूरकोष्ठी पुरुषांमध्ये |
| (2) नाडीव्रणामध्ये (fistula/sinuses) | (7) बलवर्धनासाठी व शरीरासस्थिरत्व देण्यासाठी |
| (3) कृमी (parasites) | (8) स्थौल्य रुग्णांमध्ये (obese) |
| (4) कफ मेदोरोगी | (9) प्रमेहामधे (Diabetes insipidus) |
| (5) वातव्याधीमध्ये उपयुक्त | |

तैलपानासाठी उत्तम काल:- वर्षाऋतूची सुरुवात (प्रावृट्)

Sesame oil is a power antioxidant, high source of Vit E, phytoestrogen (lignan) and low in saturated fat having property of anti-cholesterol agent.

Composition:-

| | | |
|---------------------------------|---|----------|
| Energy | - | 884 Kcal |
| Carbohydrate | - | Nil |
| Protein | - | Nil |
| Fat | - | 100% |
| Saturated | - | 14.6% |
| Monosaturated fatty acid (MUFA) | - | 39.7% |
| Poly unsaturated fatty acid | - | 41.7% |
| Vit E | - | 4% |
| Vit K | - | 13.6 mcg |

Fatty acid constituents:-

| | | |
|-------------|---|--------|
| Palmitic | - | 7-12% |
| Palmitoleic | - | 0.5% |
| Stearic | - | 3.5-6% |
| Oleic | - | 35-50% |
| Linoleic | - | 35-50% |
| Linolenic | - | 1% |
| Eicosenoic | - | 1% |

The Sesame oil has a high percentage of PUFA (omega-6-fatty acid) and it keeps in room temperature because it contains sesamol and sesamin which are natural preservatives. The study suggested that the presence of high level PUFA and compound of sesamin, lignan in oil help to control blood pressure. Sesame, lignans inhibit the synthesis and absorption of cholesterol. [eurekalerl.org/pub-releases/2003-04]

It is also suggested that it has antibacterial effect & slowing down certain types of cancer.

Shankar D *et al* (2006)* reported in their pilot study that sesame oil has antihypertensive, antidiabetic properties. In this study sesame oil was supplied to the volunteers with mild to moderate HT & DM. They were instructed to use sesame oil cooking for 45 days. After analysis body weight, girth of waist: hip, waist: hip ratio, BMR were reduced, plasma glucose, HbA1C, TC, LDL, TG were decreased, while activities of enzymic and level of non-enzymic antioxidants were increased. So sodium level decreased and Sr. potassium level were increased. [* Shankar D *et al*, Med food, 2006 fall; 9(3) 408-12]

Sesame oil has antiaging effect (रसायन) as sesame lignans are having synergistic effect with vit.E which prevents the breakdown of the vitamins.

On the skin, fat soluble toxins are attracted to the sesame oil molecules which can be washed by hot water.

The study was conducted to investigate the acute and long term effect of sesame oil. The findings revealed that in the acute phase, peripheral and aortic BP decreased after 1 hour of

consumption. In the long term phase peripheral systolic BP(pssp) was reduced in first 15 days, assessment of arterial stiffness and pulse waves reveled. Heart rate corrected. Augmentation Index (AI) was reduced and TAC was elevated which proves the significant effect of sesame oil in human hemodynamics. In vitro studies, it is documented that sesamin may enhance nitric oxide (NO) production and inhibit endothelin-1 synthesis inducing vasodilation. NO as well as endothelin-1 have been directly related to wave reflection, PWV and arterial stiffness. [Kalliopikaratzi *et al* (2012) Sesame oil effects on Hemodynamics. The Journal of clinical hypertension 14(9), 630-36]

वसा

मांस धातुचा उपधातु. प्राण्यांच्या प्रकारानुसार वसाचे गुणधर्म बदलत असतात उदा. आनुप प्राण्यांची वसा गुरु तर जांगल प्राण्यांची वसा लघु, कषाय.

गुणधर्म:-

रस - मधुर

गुण - गुरू, उष्ण, वातघ्न

कर्म - उपचयकर (पुष्टीकर), कर्ण शिरोरूजा शामक

वसाद्वारा स्नेहनार्ह:-

(1) क्षीणधातु असणारे रोगी - अधिक चालल्याने, अधिक ओझं, अधिक वायूच्या संपर्काने, अधिक सुर्याच्या उष्णतेमुळे, अधिक मैथूनाने धातुक्षीण झालेले रुग्ण.

(2) क्लेश (strain) सहन करणारे

(3) अग्नि तीक्ष्ण असणारे

(4) संधि अस्थि रूजा (e.g. chronic RA)

(5) वातावृत्त स्रोतस

(6) कोष्ठ रूजा (Abdominal pain)

(7) दग्धाहत (Pain due to burns, injury)

(8) भ्रष्टयोनि (Prolapsed uterus)

(9) कर्णरूजा (Earache)

(10) शिरोरूजा (Headache)

वसापानासाठी उत्तम काळ:-वसंतरतू (माधव)

मज्जा

मज्जा सप्तधातुं मधील मेदानंतरचा धातु आहे. अस्थिंमध्ये असलेला हा धातु शरीराचे बल वर्धन करणारा आहे.

गुणधर्म:- रस -मधुर

गुण -गुरू, स्निग्ध

कर्म - बल, शुक, मेद, कफ व मज्जा वर्धक, अस्थिंना बल देणारा.

बलशुक्ररसश्लेष्ममेदोमज्जाविवर्धनः। मज्जा विशेषतोऽस्थां च बलकृत्स्नेहने हितः।। (च.सू. 13/16-17)

मज्जाद्वारा स्नेहनाहर्यः-

- (1) क्षीण धातु (वसाप्रमाणे)
- (2) तीक्ष्ण अग्नि असणारे
- (3) वातावृत्त पथ (स्रोतस)
- (4) Menier's disease*
- (5) Multiple myeloma*

[* L Mahadevan, Snehanam, Snehasvedangal seminar paper 2008.]

मज्जापानासाठी उत्तम कालः-वसंतऋतू (माधव)

स्नेहपानासाठी कालः

तैल त्वरायां शीतेऽपि पित्ततो दिवा। अ.ह.सू. 16/13-14

अत्युष्णे वा दिवा पीतो वातपित्ताधिकेन वा। मूर्च्छा पिपासामुन्मादं कामलां वा समीरयेत।।

शीते रात्रौ पिबन्स्नेहं नरः श्लेष्माधिकोऽपि वा। आनाहमरूचि शूलं पाण्डूतां वा समृच्छति।।

च.सू. 13/19-20

| दोषप्राधान्य | ऋतू | काळ | विरुद्ध वेळ दिल्यास व्यापद |
|------------------|-------------|-----------------|----------------------------|
| पित्त, वात पित्त | ग्रीष्म ऋतू | रात्रीच्या वेळी | मूर्च्छा, तृष्णा, कामला |
| कफ, वातकफ | शीत ऋतू | दिवसा | आनाह, अरूचि, शूल, पाण्डू |

अत्यावस्थेत तैल शीतऋतूमध्ये तर घृत ग्रीष्मऋतूमध्ये वापरावा. (अ.ह.सू. 16/13-15 च.सू. 13/19-20)

स्नेहपानासाठी ऋतू व काळाचे बंधन दोष साम्यावस्थेत असतांना व शमन स्नेहासाठी असावेत. शोधनासाठी, दोषांचा उत्क्लेश असतांना ऋतू व काळाचे बंधन शिथिल आहेत.

विचारणा

युक्त्याऽवचारयेत् स्नेहं भक्ष्याद्यन्नेन बस्तिभिः।

अ.ह.सू. 18/14

स्नेहन करण्यासाठी दुसऱ्या भोज्य पदार्थासोबत मिश्रीत करून किंवा वेगळ्या क्रियेद्वारे स्नेहाचा वापर करणे म्हणजे विचारणा (प्रविचारणा) होय. विचारणा केवळ आभ्यन्तर स्नेहापुरतीच मर्यादित नाही तर बाह्य स्नेहनाचा सुध्दा प्रविचारणेमध्ये अंतर्भाव होतो. पिझ्जिचिल सारख्या कायसेक सुध्दा प्रविचारणाचाच एक प्रकार होय.

आयुर्वेदामध्ये 24 प्रमुख विचारणा वर्णिल्या आहेत.

ओदनश्च विलेपि च रसो मांसं पयो दधि। यवागुः सुपशाकौ च यूषः काम्बलिकः खडः॥

सक्तबस्तिपिष्टं च मद्यं लेहास्तथैव च। अक्षयमभ्यञ्जनं बस्तिस्तथा चोत्तरबस्तयः॥

गण्डूषः कर्णतैलं च नस्तःकर्णाक्षितर्पणम्। चतुर्विंशतिरित्येताः स्नेहस्य प्रविचारणाः॥

(च.सू. 13/23-25)

- (1) ओदन (भात):- 'अन्नं पञ्चगुणे साध्यं'। स्वच्छ तांदूळ 2-3 वेळा धुवून पाच पट पाण्यात शिजविले जातात. (भा.प्र)
- (2) विलेपी:- विलेपीघनसिक्था स्यात्सिद्धा नीरे चतुर्गुणे। शा.सं.म. 2/166
तांदूळ भरड करून 4 पट पाण्यात शिजविले जातात. तांदूळ शिजल्यानंतर थोडी घट्ट व जलांश कमी असतांना अग्निवरून उतरून घ्यावे. विलेपीमध्ये पाण्याचा अंश कमी व सिक्थ (कणभाग) अधिक असतो. यात सैधव, पिप्पळी, मरिच, सुंठी चूर्ण यथा प्रमाण असावे.
- (3) मांसरस:- ताजेमांस जलामध्ये शिजवून घ्यावे. जलाची मात्रा एवढी असावी ज्याने मांस गळल्या जाईल व अस्थिस्थित मज्जा जलात पूर्णतः मिसळली जाईल.

| | | | |
|-------------------|---|----------------|-------------|
| घनमांसरस | - | मांस 350 ग्रॅम | जल 650 मिली |
| मध्यम मांसरस | - | मांस 240 ग्रॅम | जल 650 मिली |
| तनु (पातळ) मांसरस | - | मांस 160 ग्रॅम | जल 650 मिली |

कृतमांस रस - लवण, मरीच, सुंठी, पिप्पली, हिंग अम्ल द्रव्याने व घी-तैलामध्ये संस्कारीत (फोडणी) दिलेले.
अकृतमांस रस - वरील द्रव्याने संस्कारीत न केलेले.
- (4) मांस:- मांस शिजवून ते खाण्यास देणे.
- (5) पय (दूध):- स्नेह दूधामध्ये मिश्रीत करून स्नेहनासाठी दिले जाते.
- (6) दधी:- दूधापासून तयार करून स्नेहासोबत दिली जाते. सद्यमनासाठी दधी सोबत स्नेहपान दिला जातो.
- (7) यवागुः:- तांदळाच्या 6 पट पाण्यात शिजवले जाते. विलेपी पेक्षा तांदूळ कण अधिक असतात व द्रव कमी असतो.
- (8) सूप:- शिम्बी धान्यांना 18 पट पाण्यात शिजविले जाते. ही द्रव कल्पना आहे.
- (9) शाक:- वनस्पती द्रव्यांचे फल, पत्र, पुष्प इ. चे स्नेह संस्कारीत पाक करणे.
- (10) यूष:- मुंग, मसुर, इ. शिम्बी धान्यांना 4 ते 8 पट पाण्यात अर्ध व चतुर्थांश शेष पर्यन्त शिजविणे यूष कल्प होय.

- (11) **काम्बलिकः**:- दधिमस्तु (दहीच्या वरील पाणी) 2 लीटर व मूंग 250 ग्रॅम यांच्या पासून सिध्द 'यूष' तयार करून त्यात सौवर्चललवण, जीरे, लिंबु, दालचिनी इलायची, लवंग, मिसळून तयार केलेली द्रव कल्पना काम्बलिक होय. (सु.सू. 46/326 वर डल्हण टिका)
- (12) **खडः**:- हे यूष विशेष आहे. हे दोन प्रकारांनी तयार केले जाते.
- (a) शमीधान्य (मूंग, मसूर, तिल, कुलत्थ) 250 ग्रॅम भरड 4 लिटर तक्रामध्ये पाक करावे. धान्य शिजल्यानंतर घृतामध्ये संस्कारीत (फोडणी) करावे यात जीरा, लवण, शुंठी मरिच घालावे. (सु.सू. 46/376 वर डल्हण टिका)
- (b) 2 लीटर तक्रामधे कपित्थ, चांगेरी, मरीच, जीरे, चित्रकमूल यथावश्यक घेवून पाक करावे अर्धावशेष राहील्यानंतर यथारूची लवण घालावे. (सु.सू. 46/376 वर डल्हण टिका)
- (13) **सत्तूः**:- चण्याची डाळ, गहू यांना भाजून पीठ तयार करून ठेवणे.
- (14) **तिलपिष्टः**:- तिल बीज वाटून कल्क तयार केला जातो व त्यासोबत स्नेहपान दिला जातो.
- (15) **मद्यः**:- मद्यांसोबत स्नेह देणे.
- (16) **लेहः**:- चाटण्यायोग्य (लाप्सी सारखा) भोज्य पदार्थ तयार करून त्या सोबत स्नेहपान दिला जाऊ शकतो.
- (17) **भक्ष्यः**:- खाण्या योग्य पदार्थासोबत स्नेहपान दिला जाऊ शकतो. (जे लेहय नाहीत किंवा द्रव नाही असे पदार्थ)
- (18) **अभ्यंगः**:- बाह्य स्नेहन
- (19) **बस्तिः**:- गुदमागनि स्नेह प्रविष्ट करून शरीराचे स्नेहन करणे.
- (20) **उत्तरबस्तिः**:- मूत्र वा अपथ्यमागनि स्नेह प्रविष्ट करणे.
- (21) **गण्डूषः**:- मुखामध्ये स्नेह धारण करणे.
- (22) **कर्णतेलः**:- कानामध्ये तैलाने पूरण करणे.
- (23) **नस्यः**:- नाकामध्ये स्नेह बिंदू घालणे.
- (24) **अक्षितर्पणः**:- नेत्रामध्ये स्नेहाद्वारे तर्पण करणे.

वरील विचारणा व्यतिरिक्त षडरसाच्या एकमेकांसोबतच्या मिश्रणाने 63 प्रविचारणा व अभ्यंगादि एक असे मिळून एकूण 64 प्रविचारणा होतात. या सर्वांचा उद्देश शरीरामध्ये स्नेहन करण्यासाठी कोणत्या तरी माध्यमाचा उपयोग करून 'स्नेहन' कर्म साध्य करणे हे आहे. चिकित्सकांनी आपल्या बुद्धीचातुर्याने याचा उपयोग करणे अपेक्षित आहे.

प्रविचारणा योग्य (Indications for Vicharna):-

स्नेहव्दिषः स्नेहनित्याः मृदूकोष्ठाश्च ये नराः। क्लेशासहामद्यनित्यास्तेषमिष्टा विचारणा।।

- | | |
|----------------------------|--------------------------------------|
| (1) स्नेहद्वेषी | (2) नित्य स्नेह सेवन करणारे |
| (3) मृदूकोष्ठी | (4) क्लेश सहन न करू शकणारे (सुकुमार) |
| (5) नित्य मद्य सेवन करणारे | |

अच्छस्नेह

अच्छपेयस्तु यः स्नेहो तामाहुर्विचारणाम्।

स्नेहस्य स भिषग्दृष्टः कल्पः प्राथमकल्पिकः॥ च.सू. 13/26

वरील 24 विचारणांसोबत स्नेह न देता केवळ 'स्नेह' देणे अच्छस्नेह होय. स्नेहामधे अच्छ स्नेह श्रेष्ठ आहे.

स्नेह सात्म्यः क्लेशसहः काले नात्युष्ण शीतले।

अच्छमेव पिबेत स्नेहं अच्छपान हि पूजितम्॥ सु.चि. 31/21

अच्छस्नेह देण्यासाठी योग्य (Indication):-

- (1) ज्यांना स्नेह लवकर जीर्ण होतो.
- (2) स्नेह सात्म्य असणारे
- (3) क्लेशसह (कष्ट सहन करणारे)

अयोग्य (Contraindication):-

स्नेहद्वेषी क्षामो मृदूकोष्ठः स्नेहमद्यनित्यश्च।

अध्वप्रजागरस्त्रीश्रान्ता नाच्छं पिबेयुस्ते॥ का.सू. 22/52

- | | |
|------------------------------------|-----------------------|
| (1) क्षाम (दुर्बल) | (2) मृदूकोष्ठी |
| (3) नित्य स्नेह घेणारे | (4) नित्य मद्य घेणारे |
| (5) रात्री जागरण, मैथुनाने थकलेले. | |

योग्य काल:- (1) अती उष्ण नसणारा काल (मे - जून वर्ज्य)
(2) अती शीत नसणारा काल (नोव्हेंबर - डिसेंबर वर्ज्य)

संयोगाने स्नेह भेद:-

उत्तम स्नेहाच्या एकमेकासोबत संयोगामुळे स्नेहाचे तीन प्रकार पडतात.

(1) यमल/यमक स्नेह:-दोन स्नेहांच्या मिश्रणाने

- | | |
|--------------------|------------------|
| उदा. (i) घृत + तैल | (iv) मज्जा + घृत |
| (ii) तैल + वसा | (v) मज्जा + तैल |
| (iii) वसा + मज्जा | (vi) घृत + वसा |

उदा. सुकुमारघृत

(2) त्रिवृत्त स्नेहः-तीन स्नेहांच्या मिश्रणाने

- (i) घृत + तैल + वसा
- (ii) घृत + तैल + मज्जा
- (iii) तैल + वसा + मज्जा
- (iv) घृत + वसा + मज्जा

उदा. पंचस्नेहम्

(3) महास्नेहः-चारही उत्तम स्नेहांच्या मिश्रणाने

घृत + तैल + वसा + मज्जा

बाजारामध्ये काही नामांकित कंपन्याचे महास्नेह उपलब्ध आहे.

स्नेहन योग्य (Indications):-(च.सू. 13/52, अ.ह.सू. 16/5-4)

- (1) स्वेद्य - ज्यांचे स्वेदन करणे आहे.
- (2) संशोध्य (वमन-विरेचन करण्यापूर्वी)
- (3) अति मद्यपान करणारे
- (4) नित्य मैथून करणारे
- (5) अधिक व्यायाम वा शारीरिक श्रम करणारे
- (6) चिंतन करणारे (Scientist, thinkers, journalist etc.)
- (7) वृद्ध, बालक व स्त्रियां
- (8) रूक्ष, कृश व्यक्ती
- (9) रक्तक्षय व क्षीणशुक्र असणारे
- (10) वातव्याधीने पिडीत (Osteoarthritis, Spondylitis, Hemiplegia etc.)
- (11) तिमीर रोगी
- (12) दारूण प्रतिबोधिनः ज्यांचे डोळे उघडत नाही असे.

वरील स्नेहनाहर्य अवस्थांचा विचार करता स्नेहानाहं खालील प्रमाणे वर्गीकरण केले जाऊ शकतात.

- (1) **स्वेद्यः**:- काही अपवादात्मक व्याधी उदा. आमवात किंवा अवस्था उदा. साम, रक्तावृत वगळता स्वेदनापूर्वी स्नेहन आवश्यक असते.
- (2) **शोधनपूर्वः**:- वमन-विरेचन या संशोधनापूर्वी पूर्वकर्म म्हणुन स्नेहन केले जाते.
- (3) **वातवृद्धीः**:- धातुक्षय, रूक्षता वा इतर कारणांमुळे वायू -वृद्धी होत असल्यास त्याचे शमन करण्यासाठी स्नेहन आवश्यक आहे.

स्नेहन अयोग्य (Contraindication):- (च.सू. 13/53-56, सू.चि. 31/46-48, अ.ह.सू. 16/6-7)

- | | |
|--|---|
| (1) रूक्षणाहर्य (ज्यांना रूक्षण आवश्यक आहे असे) | (12) दुर्बल |
| (2) कफ-मेद वाढलेले | (13) विष पीडीत |
| (3) अभिष्यानन - लाला स्राव अधिक असणारा (Excessive salivation) | (14) प्रतान्त (Dehydrated) |
| (4) अभिष्यणगुद-प्रवाहिका | (15) स्नेहग्लानी (स्नेहामुळे ग्लानी येत असल्यास) |
| (5) अतिमंदाग्नि | (16) मदातूर (मद रोगाने पीडित) |
| (6) तृष्णाधिक्य | (17) अजीर्ण (Indigestion) |
| (7) मूर्च्छा | (18) नवज्वर |
| (8) गर्भिणी | (19) अकाल प्रसूता स्त्री (गर्भाशयास्थित रक्त व क्लेद मंदाग्नि अवस्थेत त्यामुळे स्नेहनाने दुसऱ्या व्याधीची उत्पत्ती) |
| (9) तालूशोष | (20) बस्ति, नस्य, विरेचन दिलेल्यांना |
| (10) चर्दि (vomiting) | (21) अति तीक्ष्णाग्नि |
| (11) आम प्रधान व्याधी | (22) अतिसार |

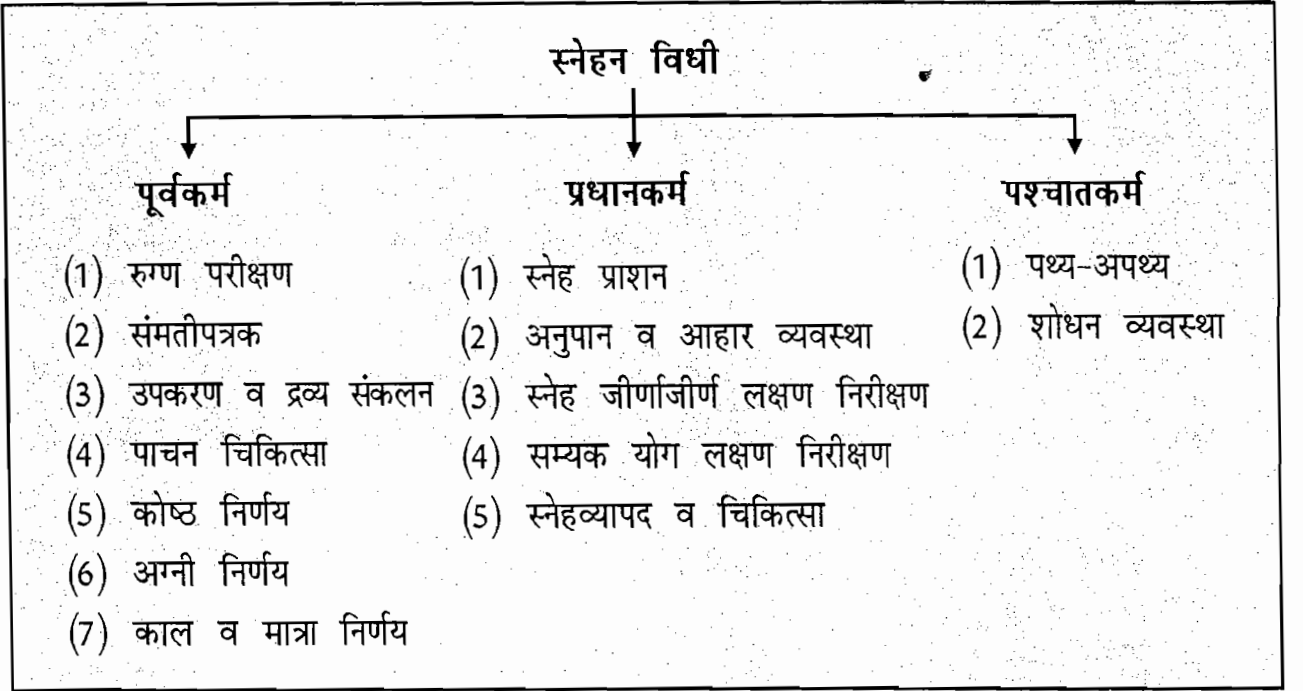
वरील स्नेहन अयोग्य अवस्थांचा विचार करता प्रामुख्याने खालीलप्रमाणे या अवस्थांचे वर्गीकरण केले जाऊ शकते.

- (1) **रूक्षणार्ह:-** ज्या रुग्णामध्ये रूक्षण चिकित्सा आवश्यक आहे अशा व्याधी, तसेच कफ, मेद प्रमाण वृद्धी असलेल्या अवस्थामध्ये स्नेहन निषेध आहे.
- (2) **अग्नी:-** स्नेहनामध्ये 'अग्नी' हा घटक फार महत्त्वाचा आहे. अत्यंत तीक्ष्णाग्नि किंवा अति मंदाग्निमध्ये स्नेहन करू नये. तसेच मंदाग्निमुळे आम उत्पन्न होतो अशा व्याधीमध्येही स्नेहन करू नये.
- (3) **स्रोतारोध:-** ज्या व्याधीमध्ये स्रोतारोध प्रधान आहे. उदा. उरुस्तंभ अशा व्याधीमध्ये स्नेहन करू नये अन्यथा स्रोतारोध आणखी वाढून व्याधी लक्षणांची वृद्धी होईल.
- (4) **विषावस्था:-** स्नेह व्यवायी व सुक्ष्म असल्याने स्रोतसांमध्ये गतीने पोहचतो. विष स्नेहासोबत तीव्र गतीने शरीरात पसरू शकतो म्हणून विषाक्त अवस्थेत स्नेहपान निषेध आहे.

स्नेहन विधी:-

आभ्यंतर स्नेहन (शोधनार्थ स्नेह विधी)

आभ्यंतर स्नेहन चिकित्सेमध्ये शोधनासाठी, शमनासाठी वा बृंहणासाठी केले जाते. पंचकर्मातील शोधन क्रिया वमन, विरेचनाचे पूर्वकर्म म्हणुन जे स्नेहन केले जाते ते शोधनार्थ स्नेह होय. याचा उपयोग दोषांना उत्क्लेशित करून कोष्ठाकडे आणण्यासाठी होतो. स्नेहविधीचे सौकार्यासाठी तीन कर्मांमध्ये विभाजन केले आहे.



पूर्वकर्म:-

1) **आतुर परीक्षण:-** पंचकर्म चिकित्सांनी रुग्ण स्नेह योग्य ठरविल्यानंतर दशविध परीक्षण करणे आवश्यक असते. यामुळे दोष व रुग्ण दोन्हीची अवस्था, बल याचे ज्ञान होते सोबतच रुग्णास स्नेह देतांना मात्रा स्नेहकल्प, प्रकर्षकाळ इ. ठरविण्यास सोपे जाते. स्नेहपूर्व रुग्णाचे अष्टविध परीक्षण ही करणे आवश्यक आहे.

स्नेहपानापूर्वी मध्य व पश्चात रुग्णाचे प्रयोगशालीन परीक्षण करावे.

- Lipid profile
- Blood sugar fasting, PP
- L.F.T. आवश्यकतेनुसार

2) **संमतीपत्रक (Written consent) :-** रुग्णास समजेल अशा भाषेत पंचकर्मातील विधीमुळे होणारे फायदे व संभावीत व्यापद समजावून लिखित पत्रकावर रुग्णाची व/अथवा नातेवाईकांची स्वाक्षरी/अंगठा घ्यावा.

3) उपकरण व द्रव्य संकलन:-

(1) स्टील पात्र

(2) ग्लास

(3) मोजपात्र

(4) स्नेह - आवश्यकतेनुसार- तैल, गोघृत वा सिद्धघृत- (30 मिली ते 300 मिली दिवसांनुसार)

4) दीपन-पाचन चिकित्सा:- रुग्णाची, अग्निदीप्ती करण्यासाठी दीपन व पाचन औषधी दिली जाते. पाचन व शोषण होण्यास मदत होते. तसेच दोष सामावस्थेतून निरामावस्थेत येतात. पाचनासाठी 3 ते 7 दिवस स्नेहनापूर्वी चित्रकादि वटी 250 मिलीग्रॅम दोन/तीन मात्रेत द्यावी.

मांसल, स्थौल्य व कफ प्रधान व्यक्तींमध्ये, ज्यांची विषमग्नि (Unpredictable digestion), नित्य स्नेह सेवी, स्नेह्य योग्य रुग्णास प्रथम विरूक्षण करून स्नेहपान करावे व नंतर शोधन करावे. या मुळे स्नेहनाचे व्यापद टाळले जातात व स्नेहसात्म्य होत नाही आणि स्रोतसातील दोष बाहेर काढण्यासाठी मदत होते. (अ.ह.सू. 16/37)

5) कोष्ठ निर्णय:- 'वमन' करण्यापूर्वी स्नेहन-स्वेदन या क्रिया महत्त्वाच्या आहेत. त्यामुळे स्नेहपान करण्यापूर्वी रुग्णाची अग्निपरीक्षा व कोष्ठ परीक्षा करणे आवश्यक आहे. यामुळे एकतर स्नेहाची मात्रा ठरवली जाते व दुसरे वमनासाठी द्रव्याची मात्रा. यामध्ये चिकित्सकाची चूक होवू नये अन्यथा स्नेहाच्या व वमनाच्या व्यापदांना सामोरे जावे लागेल. असेही कोष्ठ निर्णय केवळ वमनासाठीच नव्हे तर प्रत्येक संशोधनासाठी आवश्यक आहे.

बहुपित्तो मृदुःकोष्ठःक्षीरेणापि विरिच्यते।

प्रभूत मारूतः क्रूरः कृच्छ्राच्छ्यामादिकैरपि।।

अ.ह.सू. 18/32, च.सू. 13/66-6

मृदू कोष्ठ - पित्त प्रधान व्यक्ती केवळ दुग्ध युक्त रस पिल्यानंतरही विरेचन होते.

क्रूर कोष्ठ - वात प्रधान व्यक्तीमध्ये निशोथासारखे तीक्ष्ण विरेचन दिल्यानंतरही कठीण पुरीष प्रवृत्ती.

6) अग्नी निर्णय:- 'वमन' करण्यापूर्वी स्नेहन स्वेदन या क्रिया महत्त्वाच्या आहेत. त्यामुळे स्नेहपान करण्यापूर्वी रुग्णाची अग्निपरीक्षा व कोष्ठ परीक्षा करणे आवश्यक आहे. यामुळे एकतर स्नेहाची मात्रा ठरवली जाते व दुसरे वमनासाठी द्रव्याची मात्रा. यामध्ये चिकित्सकाची चूक होवू नये अन्यथा स्नेहाच्या व वमनाच्या व्यापदांना सामोरे जावे लागेल. असेही कोष्ठ निर्णय केवळ वमनासाठीच नव्हे तर प्रत्येक संशोधनासाठी आवश्यक आहे.

बहुपित्तो मृदुःकोष्ठःक्षीरेणापि विरिच्यते।

प्रभूत मारूतः क्रूरः कृच्छ्राच्छ्यामादिकैरपि।।

अ.ह.सू. 18/32, च.सू. 13/66-6

मृदू कोष्ठ - पित्त प्रधान व्यक्ती केवळ दुग्ध युक्त रस पिल्यानंतरही विरेचन होते.

क्रूर कोष्ठ - वात प्रधान व्यक्तीमध्ये निशोथासारखे तीक्ष्ण विरेचन दिल्यानंतरही कठीण पुरीष प्रवृत्ती.

7) काल व मात्रा निर्णय:- स्नेहपानासाठी साधारणतः सूर्योदयाचा काळ (6 am-7 am) उत्तम आहे. निरभ्र आकाश असतांना सकाळी स्नेहपान द्यावा.

मात्रा निर्णय हे पूर्णतः अग्निवर अवलंबून आहे. मात्रा 3 प्रकारच्या आहेत. ऱ्हस्व मात्रा मध्यममात्रा व उत्तम मात्रा. वाग्भटांनी ऱ्हसियसी मात्रांचा उल्लेख केलेला आहे. ही मात्रा एक प्रकारचा test dose आहे. मात्रेने कोष्ठ व अग्नि समजली जाते. ही स्नेहाची सर्वात कमी मात्रा आहे. (प्रथममेव ऱ्हसियसी कल्पयेत। इंदूटिका-अ.ह.सू. 16-16/17). यावरून स्नेहाची पुढील मात्रा ठरविली जाते. ऱ्हसियसी मात्रा एक याम म्हणजे तीन तासांत पचनारी आहे. ही मात्रा 25 मिली 30 मिली एवढी असावी. एवढ्याच मात्रेत वर्धमान क्रमाने 7 दिवसपर्यन्त किंवा सम्यक स्नेहन लक्षणापर्यन्त स्नेह मात्रा वाढवून द्यावे.

| ऱ्हस्व मात्रा | मध्यम मात्रा | उत्तम मात्रा |
|--|---|---|
| स्नेहाची कमी मात्रा | स्नेहाची मध्यम मात्रा | स्नेहाची उत्तम / प्रवर मात्रा |
| स्नेह 6 तासांत (2 याम) जीर्ण होते. | स्नेह 12 तासाने (4 याम) पचते | स्नेह 24 तासाने (8 याम) पचते. |
| स्नेहव्यापद अत्यल्प प्रमाणात बृंहणार्थ दिले जाते. | स्नेहव्यापद कमी प्रमाणात | पथ्यापथ्य न पाळल्यास व्यापद गंभीर |
| गुण- बृंहण, वाजीकर, अग्निवर्धक | शमनार्थ अधिक बलहानी न करणारी | शोधनार्थ दूषित दोष स्रोतसांतून काढणारी, शरीर बल वृध्दीवर इंद्रिय व मनास पुष्टीकर |
| योग्य:- वृध्द, बाल, सुकुमार, अवरबल, मंदाग्नि, रिक्तकोष्ठत्व | योग्य:- मृदूकोष्ठी, मध्यमबल, मध्यदोष, अधिक मात्रेत भोजन न करणारे. | योग्य:- स्नेहनित्य-नेहमी स्नेह घेणारे, क्षुधा, पिपासा सहन करणारे, उत्तम अग्निबल व शारीरिक बल असणारे. |
| व्याधी- अल्प दोष, चिरसमूत्थ ज्वर (Chronic fever) चिरसमूत्थ अतिसार (Chronic diarrhea) चिरसमूत्थ कास (Chronic cough) | व्याधी- अरूष्क (Pushular eruption) पिडिका, स्फोट, कंडू, पामा (Scabies) अर्दित, कुष्ठ, प्रमेह, वातशोणित (Ischaemic limb disease) | व्याधी- गुल्म (Abdominal swelling), सर्पदंश, विसर्प (Pemphigus), उन्मक्त (Insanity), मूत्रकृच्छ्र, गाढवर्चस (Hard stools) |

आचार्य सुश्रुतांनी वरील तीन मात्रां व्यतिरिक्त 18 तासांत स्नेह जीर्ण होणारा एक अतिरिक्त मात्रा प्रकार वर्णन केला आहे. ही मात्रा प्रामुख्याने बहुदोषांत दिली जाते.

स्नेह कालावधी:- त्र्यहमच्छं मृदौ कोष्ठे क्रूरे सप्तदिनं पिबेत्

सम्यक् स्निग्धोऽथवा यावदतः सात्स्यीभवेत् परम् (अ.ह.सू. 16/29)

| | | |
|---------------------|---|--|
| मृदूकोष्ठीरुग्णास | - | 3 दिवस |
| मध्यमकोष्ठी रुग्णास | - | 5 दिवस |
| क्रूरकोष्ठी रुग्णास | - | 7 दिवस किंवा सम्यक स्निग्ध लक्षणे दिसेपर्यंत |

7 दिवसानंतर स्नेह दिल्यास सात्म्य होतो म्हणून 7 दिवसापेक्षा अधिक स्नेह देऊ नये.

प्रत्यक्षात स्नेहपान देण्याची पध्दती (आरोहन मात्रा):-

| दिवस | मात्रा | | |
|------------|----------|----------|----------|
| प्रथम दिवस | 30 मिली | 50 मिली | 50 मिली |
| दुसरा दिवस | 60 मिली | 100 मिली | 75 मिली |
| तिसरा दिवस | 90 मिली | 150 मिली | 100 मिली |
| चवथा दिवस | 120 मिली | 200 मिली | 150 मिली |
| पाचवा दिवस | 150 मिली | 250 मिली | 200 मिली |
| सहावा दिवस | 180 मिली | 300 मिली | 250 मिली |
| सातवा दिवस | 210 मिली | 350 मिली | 300 मिली |

शाड्गर्धर व भावमिश्र यांनी ऱ्हस्व, मध्यम व अवर मात्रा अनुक्रमे 2, 3 व 4 तोळे सांगितली आहे. परंतु प्रत्यक्षात शोधनासाठी ही मात्रा कमी पडते. शोधनासाठी मात्रा कशी ठरवावी हा आताही शोधाचा विषय आहे. प्रत्यक्षात आरोहक्रमात (वर्धमान क्रमात) स्नेहपान करावे असा स्पष्ट उल्लेख बृहत्रयीत नाही, तरी चक्रपाणिंनी टिका लिहितांना (च.सि. 1/6 वर) स्नेहाचे सात्म्य होऊ नये याची खबरदारी घेण्यास सांगितले आहे. त्यामुळे चिकित्सा करतांना वर्धमान (आरोह) क्रमात स्नेहपानाची पध्दत आहे.

स्नेहपूर्व भोजन (Diet Regimen):-

द्रवोष्णमनभिष्यन्दि भोज्यमन्नं प्रमाणतः।

नातिस्निग्धमसंकीर्णश्चःस्नेहं पातुमिच्छिता।।

च.सू. 13/60

भोज्योऽन्नं मात्रया पास्यन श्वः पिबन पीतवानपि।

द्रवोष्णमनभिष्यन्दि नातिस्निग्धमसङ्करम्।।

अ.ह.सू. 16/25

ज्या रुग्णास स्नेहपान करावयाचे आहे त्यास स्नेहपाना आधीच्या दिवशी व स्नेहपाना दरम्यान आहार द्रव्य प्रामुख्याने द्रव, उष्ण व प्रमाणामध्ये द्यावे. आहारात अभिष्यन्द (उदा. दही) अतिस्निग्ध किंवा संकीर्ण (विरूद्ध गुणाचे पदार्थ एकत्र करून उदा. Milkshake) पदार्थ नसावेत.

आहारामध्ये द्रव पदार्थ दिल्याने पचनास हलके होते व स्नेहपानाच्या वेळी अग्नि दीप्त असतो. उष्ण आहाराने पाचन योग्य होऊन वातानुलोमन व्यवस्थीत होते तसेच आहार प्रमाणात असल्यास योग्य पाचन होऊन कोष्ठ शुध्दी होते. याउलट अभिष्यन्दि, अतिस्निग्ध व संकीर्ण पदार्थ आहारामध्ये असल्यास अग्निमांद्य होऊन अजीर्ण होण्याची शक्यता असते व सामता वाढून इतर व्यापद उद्भवू शकतात.

प्रधानकर्म:-

(1) स्नेहप्राशन (Administration of Sneha):- स्नेहपान निरभ्र आकाश असतांना, सकाळी सुर्योदयाच्या काळी, उपाशीपोटी द्यावा. रुग्णास सम्यक मल मूत्र शुध्दी झाल्यानंतर दंतधावन-स्नान विधी आटोपून स्नेहपानासाठी खूर्चीवर आरामाने बसण्यास सांगावे.

रुग्णास पेल्यामध्ये मात्रेनुसार कोष्ण स्नेह करून स्वस्तिर्वचनानंतर स्नेहप्राशन करण्यास सांगावे. यावेळी रुग्णास स्नेहपानाने होणारे फायदे इ. समजावून स्नेहपान करते वेळी धीर द्यावा.

काही रुग्ण स्नेहाच्या गंधामुळे किंवा दर्शनानेही हल्लास - च्छर्दिचा इतिहास सांगत असल्यास नेत्र व नाक यांचेवर कापडाचे पट्टबंधन करून स्नेहपान द्यावे. याने स्नेहपान करण्यास रुग्णास सोपे पडते. अशाप्रकारे स्नेहपान प्रतिदिन सम्यक स्नेहाचे लक्षणे रुग्णामध्ये दिसेपर्यंत करावे.

(2) अनुपान:- जलमुष्णंघृते पेयं यूषास्तैलेऽनुशस्यते।

वसामज्जोस्तुमण्डःस्यात् सर्वेषूष्णमथाम्बु वा ॥

च.सू. 13/22

उष्णोदक - घृतासाठी-वातानुलोमक

यूष - तैलासाठी-Protein प्रधान Alkaline (PH-6.6)*

मंड - वसा व मज्जा पान केल्यास - मंड Starch प्रधान Acidic असल्यामुळे वसा व मज्जा पचनासाठी उपयुक्त* [*Mahadevan L, Snehanan, Sheha Swedangal, 2009: PP. 16]

स्नेहपानानंतर कोष्ण द्रवच द्यावे. स्नेहपानाच्या काळात उष्णोदकच घेण्यास सांगावे. उष्णोदकाने स्नेह पचण्यास मदत होते, वातामुलोमन योग्य होते तसेच स्नेहपानाच्या वेळी होणारी मुखातील स्निग्धता, चव व गंध निघण्यास मदत होते.

तुवरक तैल व अरुष्कर तैलाचे पान केल्यास उष्णोदक पान करू नये. (अ.ह.सू. 16/23)

आहार व्यवस्था:- स्नेहपानापूर्वी आहार व्यवस्था सांगितल्या प्रमाणेच स्नेहपान काळात आहार व्यवस्था असावी. रुग्णास पूर्णतः अग्निदीप्ती झाल्यानंतर स्नेहपचनानंतर क्षुधा लागल्यासच लघु आहार द्यावा.

(3) स्नेहजीर्णाजीर्ण लक्षण निरीक्षण:- स्नेह प्राशनानंतर स्नेह पचण्यासाठी काही काळ लागतो या काळात शरीरात स्नेहपचनाच्या विविध क्रिया होत असतांना काही लक्षणे दिसतात यास जीर्यमान लक्षणे म्हणतात. सम्यकक्षुधा, शुध्द उद्गार ही लक्षणे असल्यास स्नेह जीर्ण झाले असे समजावे. स्नेह जीर्ण झालेले नाही असे वाटत असल्यास वारंवार उष्णोदक पिण्यास सांगावे. त्यामुळे स्नेह पचून क्षुधा, उद्गार शुध्दी, लघुता हे लक्षणे उत्पन्न होतील. स्नेहाचे जीर्यमान व जीर्ण लक्षणे पूढीलप्रमाणे दिसतात.

(अ.सं.सू. 25, सू.चि. 31/33)

| जीर्यमान | जीर्ण लक्षण |
|---|--|
| <ul style="list-style-type: none"> शिरोरूक (Headache) भ्रम (Giddiness) निष्ठीव (Excess salivation) मूर्च्छा (Syncope/Fainting) साद (Tiredness) अरति (Restlessness) क्लम Sense of Exhaustion दाह Burning sensation | <ul style="list-style-type: none"> तद्शांती (इतर जीर्यमान लक्षणांचे शमन) लाघव (Lightness of body) वातानुलोमन (Proper flatulence) क्षुधा (Proper hunger) तृष्णा (Proper thirst) शुद्ध उद्गार Odourless eructation |

एक-दोन दिवसातच अधोमागानि स्नेह येत असल्यास, स्नेहाचे अजीर्ण समजावे.

4. सम्यक योग लक्षण निरिक्षण :-

वातानुलोम्यं दीप्ताग्नि वर्चः स्निग्धमसंहतम्।

मार्दवं स्निग्धतां चांगे स्निग्धानामुपजायेते।।

च.सू. 13/58

सुस्निग्धा त्वक्वित् शैथिल्यं दीप्तोऽग्निर्मुद्गात्रता।

ग्लानिलीघवमंजनात् अधस्ताद स्नेहदर्शनम्।।

सु.चि. 31/53

वातानुलोम्यं दीप्तोऽग्निर्वचः स्निग्धमसंहतम्।

स्नेहोद्वेगः क्लमः सम्यक स्निग्धे, रूक्षे विपर्ययः

अतिस्निग्धे तु पाण्डुत्वं घ्राणवक्त्रगुदस्रवाः।।

अ.ह.सू. 16/30-31

पुरीषं ग्रथितं रूक्ष वायू : रप्रगुणो मृदुः।

पक्ता खरत्व रौक्ष्यंच गात्रस्य अस्निग्ध लक्षणम्।।

पाण्डुता गौरवं जाड्यं पुरीषस्याविपक्वता।

तन्द्रारूचिः उत्क्लेशः स्यादतिस्निग्ध लक्षणम्।।

च.सू. 13/57-59

वरील लक्षणांवरून सम्यक स्नेहाची लक्षणे रुग्णामध्ये दिसल्यास स्नेहपान थांबवून घ्यावे तसेच अस्निग्ध किंवा अतिस्निग्धाची लक्षणे दिसल्यास अयोग व अतियोगाची चिकित्सा करून त्याप्रमाणे पुनः स्नेहन करावे. (सम्यक योग, अयोग, अतियोगाची लक्षण तालिका पूढील पानावर)

| अग्नि संबंधीत | सम्यक स्नेह लक्षण | अयोग लक्षण | अतिस्निग्ध लक्षणे |
|-----------------|---|--|---|
| वायू संबंधीत | अग्निवृद्धी स्नेहद्वेष स्नेहोद्वेग वातानुलोमन | मंदाग्नि कृच्छ्रात अन्नमविपच्यते उरोविदाह (Substernal burning) अप्रगुण वायू (Incomplete evacuation) | अरूचि भक्तद्वेष - |
| पुरीष संबंधीत | असंहत वर्च (loose stool) स्निग्ध वर्चा अधस्ताद् स्नेहदर्शनि | ग्रंथीत पुरीष (Hard stool) रूक्ष पुरीष (Dry stool) | गुदस्राव (Discharge from anus) प्रवाहिका (Dysentery) पुरीष अतिप्रवृत्ती गुददाह |
| त्वक् संबंधीत | अंगमार्दव (softness) स्निग्धांग (oiliness) स्निग्धत्वक् (Greasiness) | गात्रखरत्व (Roughness) गात्ररौक्ष्य (Dry skin) | - |
| सार्वदे- हीक | ग्लानि (No interest of taking food) क्लम (Tiredness) अंगलाघव (Lightness) अंगसाद (Tiredness feeling) | दौर्बल्य (general debility) | पांडुता, शरीर गौरव, जाडयता (Sluggishness) तंद्रा उत्क्लेश (Nausea) मुखस्राव (Excessive salivation) घ्राणस्राव (Discharge from nose) |

अधस्ताद्स्नेहदर्शनि - पाण्यामध्ये मळ टाकल्यास स्नेह पाण्यामध्ये तरंगतांना दिसणे

5. स्नेहव्यापद व चिकित्सा:- कोणत्याही कर्माचे व्यापद हे पादचतुष्टयाच्या (वैद्य, रुग्ण, परिचारक, औषध) कमतरतेमुळेच होतात. स्नेहनामधेही पादचतुष्टयांनी त्यांचे कार्य योग्य न केल्यामुळे व्यापद दिसतात.

कारणे:- अमात्रयाऽहितोऽकाले मिथ्याहार विहारतः । अ.ह.सू. 16/32

अकाले च हितश्चैव मात्रया न च योजितः

स्नेह मिथ्योपचाराश्च व्यापद्येतातिसेवितः ॥ च.सू. 13/74

1. चिकित्सकामुळे - अग्नि, कोष्ठाचे योग्य ज्ञान न झाल्यास मात्रा कमी-अधिक दिल्यामुळे अयोग-अतियोगाचे व्यापद होऊ शकतात, स्नेहपानाचा काळ योग्य न ठरविल्यास.
2. रुग्णामुळे - रुग्णाने पथ्यापथ्याचे पालन न करता मिथ्योपचार केल्यास.
3. परिचारक - परिचारकांनी चिकित्सकांनी सांगितलेल्या आज्ञेचे पालन न केल्यास.
4. औषध - मुख्यतः भेसळ असल्यास उदा. शुध्द घृत न मिळता वनस्पती घृतासोबत भेसळ असल्यास कंडू, अजीर्णासारखे लक्षणे उत्पन्न होतात.

व्यापद:-

स्नेहःकरोति शोफार्शस्तन्द्रास्तम्भ्विसंज्ञताः।

कण्डू कृष्ठ ज्वरोत्क्लेश शूलानाहभ्रमादिकान्॥ अ.ह.सू. 16/32

(च.सू. 13/75-76, अ.सं.सू. 25/52-53, सु.चि. 31/31)

स्नेहामुळे व्यापदांचे दोन भागात विभाजन केले जाऊ शकते. वरील व्यापदांमध्ये काही व्यापद लगेच चिकित्सा करून शमन केले जाऊ शकतात तर काही व्यापदांमध्ये दीर्घ काळ चिकित्सा करावी लागते. मा. वैद्य ह.श्री. कस्तूरे यांनी आयुचिकित्स्य व चिरचिकित्स्य व्यापद असे वर्णन केले आहे. (आयुर्वेद पंचकर्म विज्ञान, पृष्ठ 71-72)

आशुचिकित्स्य व्यापद:-

(1) अत्युष्णे वा दिवा पीतो वातपित्तधिकेन वा

मूर्च्छा पिपासामुन्मादं कामलां वा समीरयेत्॥ च.सू. 13/20

योग्य काळात स्नेहपान न केल्यास व्यापद उद्भवतात. वात-पित्त प्रकृतीच्या व्यक्तीने उष्ण काळामधे दिवसा स्नेहपान केल्यास खालील व्यापद उद्भवू शकतात.

- (i) मूर्च्छा (Syncope)
- (ii) पिपासा (Excessive thirst)
- (iii) उन्माद (Insanity)
- (iv) कामला (Icterus)

(2) शीते रात्रौ पिबन् स्नेहं नरः श्लेष्माधिकोऽपि वा।

आनाहमरुचिं शूलं पाण्डुतां वा समृच्छति।।

च.सू. 13/21

श्लेष्म प्रकृतिच्या व्यक्तीने शीत ऋतूमधे रात्री स्नेहपान केल्यास खालील व्यापद उद्भवू शकतात.

- (i) आनाद (Tympanitis)
- (ii) अरुचि (Anorexia)
- (iii) शूल (Pain in Abdomen)
- (iv) पांडूता (Pale)

(3) विसंज्ञता - पित्त प्रधान रुग्णास केवळ घृत देऊ नये विशेषतः साम पित्तामधे केवळ घृत दिल्यास विसंज्ञता (Unconscious) उद्भवू शकते.

(4) Hypoglycemia- स्नेहपान काळात रुग्णास Hypoglycemia हे लक्षण उत्पन्न होऊ शकते त्यामुळे रुग्णास अतिस्नेद, तृष्णाधिक्य, भ्रम ही लक्षणे दिसतात.

चिकित्सा:- मिथ्याचारात बहुत्वाद्वा यस्य स्नेहो न जीर्यन्ति।

विष्टम्भ्य चापि जीर्येत् वारिणोष्णेन वामयति।।

सु.चि. 31/31

तक्रारिष्टखलोलुद्यालयवश्यामाककोद्रवाः। पिप्पलीत्रिफलाक्षौद्रपथ्या गोमूत्रगुग्गुलु।

यथास्वं प्रतिरोगं च स्नेहव्यापदि साधनम्।।

अ.ह.सू. 16/33-34

- (1) स्नेहव्यापदामध्ये उष्णोदक पान हे सर्वश्रेष्ठ औषध आहे. उष्णोदक स्नेहपाचक व अनुलोमक आहे.
- (2) अजीर्ण लक्षण असल्यास कोष्ण जलाने वमन करावे.
- (3) क्षुधाप्रवृत्ती झाल्यास भोजन न करणे.
- (4) स्वेदन, रूक्ष अन्नपान करावे.
- (5) तक्रारिष्ट, खल, यव उडददाल, शामक, पिप्पली, मधु, हरीतकी, गोमुत्र, गुग्गुळ इ. ने स्नेहव्यापदानुसार चिकित्सा करावी. ही सर्व द्रव्ये रूक्षण करणारी असून अति योगासाठी उपयुक्त आहेत.

(खल - व्यञ्जन विशेषः। उध्दालः शालि विशेषः - अरूणदत्त टिका अ.ह.सू. 16/33-34)

(6) लक्षणानुसार चिकित्सेसाठी, हिंवादि वटी, सूतशेखर वटी, शंखवटी, संजीवनी वटी यांचा उपयोग करावा.

(7) स्नेहजन्य तृष्णामधे शीत पायस

(स्नेहन पैत्तिक शीतलं पायसं तेन तृष्णा तस्य प्रशाम्यति - भा.प्र. पू. खं)

चिरचिकित्स्य व्यापदः-

- | | | | |
|----------|------------|--------------|---------|
| (1) कंडू | (2) कुष्ठ | (3) पाण्डु | (4) शोथ |
| (5) उदर | (6) ग्रहणी | (7) वाक्ग्रह | |

चिकित्सा:- व्याधीनुसार निर्देशीत चिकित्सा करावी.

पश्चातकर्म

स्नेहपानानंतर स्नेहन योग्य होण्यासाठी व व्यापद टाळण्यासाठी पथ्यापथ्य आवश्यक आहेत अन्यथा स्नेहाचे व्यापद उद्भवण्याची शक्यता राहिल. स्नेहपान काळात, स्नेहपानानंतरही तेवढेच दिवस पथ्यापथ्य पालन करावे. हे पथ्यापथ्य सर्व शोधनार्थ कर्मासाठी तसेच व्याधिमुळे क्षीण झालेल्या रुग्णांसाठी आवश्यक आहेत. (सर्वकर्मस्वयं प्रायो व्याधिक्षीगषु च क्रमः। अ.ह.सू. 16/24)

1. पथ्यः- आहार- उष्णोदक, अनभिष्यन्दि, न अतिस्निग्ध, कोष्ण
विहार- ब्रह्मचर्य, क्षपाशय (रात्री जागरण न करणे)
2. अपथ्यः- आहार- शीत जल, अभिष्यन्दि (दही इ.) अतिस्निग्ध
विहार- व्यायाम, हिम-आतप (थंडी व ऊन वातावरणात जाणे) हवेमध्ये जाणे, प्रवास (गाडीवर वा पायी) उच्चभाषण, अधिक वेळ बसणे (long sitting job), दिवास्वाप, रात्री जागरण, अधिक जाड वा पातळ उशी (pillow) घेणे.
मानसिक- क्रोध, शोक

3. शोधन व्यवस्था:-

शोधन कर्मासाठी स्नेहन हे पूर्वकर्म आहे. स्नेहनाने उत्क्लेशीत दोष कोष्ठात येतात. सम्यक स्नेहपानाची लक्षणे आल्यास स्नेहपानानंतर एक दिवसाची विश्रांती देऊन वमन करण्यास सांगितले आहे तर 3 दिवसाच्या विश्रांतीनंतर विरेचन करण्याचे निर्देश आहेत. स्नेहपीत अवस्थेत बस्तिचा व रक्तमोक्षणाचा निषेध आहे. मात्र डल्हणांनी सिरावेधापूर्वी यवागुने सद्यस्नेह देण्यास सांगितले आहे.

शमन स्नेह

शमनः क्षुद्धतोऽनन्नो मध्यमात्रश्च शस्यते। अ.ह.सू. 16/19

अच्छ एव पेय इत्यर्थः। अन्नेन सहापि कुपितदोषशमनाय प्रयुज्यते इति प्राप्तो निषेधः

सोऽपि मध्यमात्रश्च शस्यते। हृदयबोधिका टिका - अ.ह.सू. 16/18

मध्यम मात्रेमध्ये भूक असतांना आहार शिवाय (अच्छपान) स्नेहपान केले जाते. दोषांच्या शमनासाठी चिकित्सा म्हणून शमन स्नेहाचा उपयोग केला जातो. जीर्ण व्याधीमध्ये दोष शमनासाठी व जे रुग्ण उत्तम मात्रा सहन करू शकत नाही अशा रुग्णांमध्ये शमन स्नेहपान केले जाते. या प्रकाराने दोष शोधनाचे उद्दिष्टे साध्य होत नाही.

शमन योग्य व्याधी (Indication):-

- | | |
|---------------------------------------|-----------------------------------|
| (1) कुष्ठ (Skin disease) | (4) मूत्रसंग (Retention of urine) |
| (2) किटिभ, मंडलकुष्ठ (Psoriasis etc.) | (5) अश्मरी शर्करा |
| (3) दुष्ट व्रण (Non healing ulcer) | (6) प्रमेह (Diabetic insipidus) |

पूर्वकर्म

1. संभार संग्रह:-

1. स्नेह (व्याधी-रुग्ण इ. नुसार)
2. मोजपात्र
3. ग्लास
4. टॉवेल
5. पट्ट (Cotton)

2. **रुग्णपरिक्षण:-** रुग्णाचे वय, बल, व्याधी प्रकार, व्याधीबळ याचे परीक्षण करून घ्यावे. त्याचप्रमाणे स्नेहपानापूर्वी आवश्यकतेनुसार Lipid profile, Blood sugar-fasting & PP, KFT या प्रयोगशालेय तपासण्या करून घ्याव्यात.

3. **काल व मात्रा निर्णय:-** शमन स्नेह आधीच्या रात्री अन्न पचल्यानंतर, भूक लागली असतांना द्यावे. **देण्याचा काळ** - सकाळी 10.30

मात्रा - स्नेहाची मध्यम मात्रा (100-120 मिली)

(मध्यम मात्रा 12 तासात स्नेह जीर्ण होण्याची मात्रा होय. यासाठी सुरुवातीस रुग्णास 25 मिली मात्रा देवून स्नेह पचण्याच्या काळानुसार 12 तासाची मात्रा काढावी.) व्यवहारात बरीचशी वैद्य 20-30 मिली ही मात्रा शमनासाठी वापरतात.

कालमर्यादा - व्याधी शमनापर्यन्त स्नेहपान करावे. शमन स्नेह किती दिवस घ्यावे याला मर्यादा नाही.

प्रधानकर्म

स्नेहपान (Administration of Sneha): शोधन स्नेहाच्या विधीप्रमाणे शमनमात्रेत आधीचे अन्न पचन झाल्यानंतर क्षुधा अवस्थेत रुग्णास स्वस्तीवर्चनानंतर स्नेहपान (अच्छपान) करण्यास सांगावे. स्नेहाचे उपलेप काढण्यासाठी स्नेहपानानंतर मुखातील स्निग्धता काढण्यासाठी कोष्ण जल पिण्यास द्यावे.

उत्तरभावितक स्नेह:

भोजनोपरान्त स्नेह देणे उत्तर भक्तिक स्नेह होय. या प्रकारचे स्नेह उर्ध्वजत्रुगत व्याधी उदा. तालुशोष, तृष्णा इ. मध्ये चिकित्सार्थ दिले जाते. (च.चि. 8/92)

बृहण स्नेह

बृहणो रसमद्याद्यैः सभक्तोऽल्पः हितः स च ।

अ.ह.सू. 16/20

स्नेहाची अल्प मात्रा बृहण कार्यासाठी देणे बृहण स्नेह होय. बृहण स्नेह मांसरस, क्षीर, गुळ इ. द्रव पदार्थासोबत दिले जाते. त्यामुळे बृहण स्नेह एक प्रकारचा विचारणा स्नेह आहे आणि वातातपीक रसायनासारखे आहे. यात अच्छपान अपेक्षित नाही.

बृहण योग्यः- बालवृध्वपिपासार्त स्नेह व्दिग्मद्यशीलिषु ॥

स्त्री स्नेह नित्यमन्दाग्नि सुखितक्लेशभीरूषु ।

मृदुकोष्ठाल्पदोषेषु काले चोष्णे कृशेषु च ॥

अ.ह.सू. 16/20-21

सुकुमारं कृशं वृध्दं शिशुं स्नेहव्दिषं तथा ।

तृष्णार्तमुष्णकाले च सह भक्तेन पाययेत् ॥

सु.चि. 31/37

- | | |
|----------------------------|--------------------------------------|
| (1) बाल | (2) सुकुमार |
| (3) वृध्व | (4) तृष्णाधिक्य (excessive thirst) |
| (5) स्नेहव्देषी | (6) मद्यपी (alcoholic) |
| (7) मैथूनआसक्त (daily sex) | (8) स्नेहनित्य (नियमित स्नेह घेणारे) |
| (9) मंदाग्नि (dyspepsia) | (10) सूखीत |
| (11) भीरू (feared) | (12) मृदूकोष्ठी |
| (13) अल्पदोषयुक्त व्याधी | (14) कृश (thin) |
| (15) ग्रीष्म ऋतूमध्ये | |

संभार संग्रहः- (1) स्नेह - आवश्यकतेनुसार 15-30 मिली

(2) मांसरस/क्षीर/युष आहार

रुग्ण परीक्षणः- आवश्यकतेनुसार Lipid profile, वय, देश, काल यांचा विचार करून

कालः- जेवणा सोबत

स्नेहपान विधीः- आवश्यकतेनुसार अल्पमात्रेत स्नेह मांसरस, सूप, दुग्ध, गुळ वा जेवणासोबत रोज घेण्यास सांगावे.

बृहण स्नेह चिकित्सेच्या अपेक्षा शरीर स्वास्थासाठी, रसायनकर्म म्हणून घेतले जाते. या शिवाय आचार्यानी स्नेहाचा भोजन कालानुसार शरीरावर होणारा परिणाम याचा संबंध वर्णन केला आहे.

प्राङ्मध्योत्तरभक्तोऽसावधोमध्येर्ध्वदेहजान।

व्याधीञ्जयेद्बलं कुर्याद्ङ्गानां च यथाक्रमम्। अ.ह.सू. 16/22, अ.सं.सू. 25/32-33

स्नेह भोजनापूर्वी घेतल्यासः- शरीराच्या अधःभागासाठी बल वर्धक आहे उदा. ऊरू, जंघा, कटीच्या ठिकाणी बल वर्धन करणारे आहे. वेगानुलोमन करणारे असून अधःशाखेच्या व्याधीमध्ये उपयुक्त.

स्नेहमध्ये (भोजनासोबत) घेतल्यासः- अग्निबलवर्धक, शरीरास स्थिरता देणारे, कुक्षीशूल कमी करणारे.

भोजनोत्तर स्नेह घेतल्यासः- इंद्रिय स्थिर करणारे, मूर्ध (Head) व उर्ध्वजत्रुगत व्याधी नष्ट करण्यासाठी उपयोगी.

सद्य स्नेह

कमी कालावधीमध्ये स्नेहन करण्यासाठी किंवा अधिक दिवस स्नेहपान करू न शकणाऱ्या रुग्णांमध्ये तात्काळ स्नेहन करण्यासाठी स्नेहनाची (स्नेहपानाची) क्रिया सद्य स्नेह होय. सद्य स्नेह शोधनासाठी पूर्वकर्म म्हणून केले जाते.

सद्य स्नेह योग्य:-

बालवृद्धादिषु स्नेहपरिहारासहिष्णुषु ।

योगानिमाननुद्देगान् सद्यः स्नेहान् प्रयोजयेत् ॥ अ.ह.सू. 16/39

- (1) बाल (3) स्नेहाचा परिहार पालन न करू शकणारे
(2) वृद्ध (4) तात्काळ शोधन अपेक्षित असणाऱ्या व्याधीमध्ये (उदा. तमकश्वास वेगावस्था)

सद्य स्नेह योग:-

| चरक च.सू. 13/86 | सुश्रुत सू.चि. 31/38-44 | वाग्भट अ.ह.सू. 16/40-42 |
|---|--|--|
| (1) पांच प्रसूतिक पेया - घृत, तैल, वसा, मज्जा व तण्डूल प्रत्येक एक प्रसूत | (1) पिंपळी, लवण, घृत, तैल, वसा, मज्जा, दधि, मस्तू एकत्र करून | (1) अधिक मात्रेत आनुप/ जांगल मांस शिजवून मांसरस तयार करणे व स्नेह म्हणून देणे. |
| (2) पांच प्रसूतिकी पेया, दुग्ध, माष | (2) मांसरसामध्ये स्निग्ध यवागू व राब (3) तण्डूल, दुग्धमिश्रीत यवागु व अधिक प्रमाणात घृत (4) पिप्पली, सैधव, घृत, तिलपिष्ट, वसा (5) घृत व खांड ठेवून त्याच पात्रात दूध दोहून प्राशन करणे (6) बोर (कोल) कुलत्थ यांचा क्वाथ, पिप्पली कल्क, दूध, दही, सूरा, घृतसिद्ध करणे | (2) स्नेहभुर्जात पेया व मांसरस (3) तिल पिष्ट + स्नेह + फाणित (4) तिलपिष्ट + स्नेह + फाणित व कृशरा (5) दुग्ध + पेया व अधिक मात्रेत घृत (6) दह्याची मलाई + गुळ (7) पञ्चप्रसूता (घृत, तैल, वसा, मज्जा एक प्रस्थ) + तण्डुल (1 प्रस्थ) |

स्नेह निषेध:-

गुडानूपामिषक्षीरतिलमाषसुरादधि ।

कुष्ठशोफ प्रमेहेषु स्नेहार्थं न प्रकल्पयेत् ॥ अ.ह.सू. 16/53

गुळ, मांस, क्षीर, तिल, उडद, मद्य, दधी या सोबत खालील व्याधीमध्ये स्नेह देऊ नये.

- (1) कुष्ठ
- (2) प्रमेह
- (3) शोथ

संभार संग्रह:-

- (1) तण्डूल - 100 ग्रॅम
- (2) घृत - 50 मिली
- (3) सैधव - यथावश्यक
- (4) दूध - 500 मिली
- (5) पातेले -

निर्माण विधी: - स्वच्छ केलेले तांदूळ दूध व पाण्यात पेयासारखे शिजवावे ह्यात घृत व सैधव मिसळून घ्यावे.

स्नेहपान विधी: - सकाळी 7 ते 7.30 वाजता सद्य स्नेह स्नेहपान विधीने द्यावे.

एकूण काल: - चक्रपाणि (च.सू. 13/51) यांनी सद्य स्नेह 3 दिवस पर्यन्त देण्यास सांगितले आहे. रुग्ण व व्याधीनुसार स्नेहपान 1 ते 3 दिवस करावे. (च.पा.च.सि. 1/6 वर)

पथ्य: - उष्णोदक

घृतासोबत लवण हे सद्य स्नेह म्हणून वापरले जाते. लवण अभिष्यन्दी आहे व रूक्षण न करणारे आहे. लवण सुक्ष्म, उष्ण व व्यवायी गुणामुळे स्नेह स्रोतसांपर्यन्त पोहचविण्याचे कार्य करतो.

अवपीडक स्नेह

अन्नावपीडितं च मध्यभोजनपीतं घृतंभवति। च.पा.च.चि. 15/209

भोजनाद्वारे स्नेहाचे अवपीडन होते म्हणून यास अवपीडक स्नेह म्हणतात. जेवणापूर्वी (प्राग्भक्त) व भोजन पचनानंतर (जीर्णान्तिक) अवपीडन स्नेह दिले जाते. हा शमन स्नेहाचा प्रकार होय.

स्नेह योग्य:- मूत्रजेषु तु पाने च प्राग्भक्तं शस्यतेघृतम्।

जीर्णान्तिकं च उत्तमया मात्राया योजनाद्वयम्।।

अवपीडकं एतद् च।

अ.ह.सू. 4/6-7

- (1) मूत्र वेगधारणाने होणारे व्याधी
- (2) मूत्रकृच्छ्र, Urethral stricture, BPH
- (3) अधोनाभीगत वातव्याधी

संभार संग्रह:-

- (1) स्नेह- रुग्णानुसार / उत्तम मात्रा
- (2) मोजपात्र
- (3) ग्लास
- (4) पट्टबंधनार्थ cotton, gauze

रुग्ण परीक्षण:- आवश्यकतेनुसार Urogram, KFT, BSL इ. तपासणी करून रुग्णाचे परीक्षण करावे.

मात्रा निर्णय:- अवपीड स्नेहाची मात्रा ही उत्तम मात्रा असावी. त्यामुळे रुग्णाचे वय, बल, कोष्ठ व अग्नि परीक्षण करून न्हसीयसी मात्रा 25 मिली आदल्या दिवशी देऊन स्नेह जीर्ण काल ठरवावा व त्यानुसार उत्तम मात्रा ठरवावी. उत्तम मात्रेचे दोन भाग करावेत.

विधी:- या स्नेह प्रकारामध्ये स्नेहाची योजना दोन वेळा (योजनाव्दय) करावी लागते भोजनपूर्व व भोजनपश्चात स्नेहाचे दोन भाग करून 1/3 मात्रा सुरूवातीस द्यावी व त्यानंतर उष्णोदक देऊन रुग्णास भोजन करण्यास सांगावे.

भोजन जीर्ण झाल्यानंतर शुध्द उद्गार, वातानुलोमन, लघुत्व, क्षुद्रप्रवृत्ती नंतर उरलेले 2/3 स्नेह पान करण्यास द्यावे व उष्णोदक द्यावे.

रुग्णाचे सम्यक स्नेह जीर्ण लक्षणांचे परीक्षण करावे.

अवपीडक स्नेहाची मात्रा समभागात विभाजन करून (50%-50%) सुध्दा दिली जाते.

आभ्यन्तर स्नेहन कार्मूकता (Mode of Action)

स्नेह आयुर्वेदातील औषधांचा दुवा आहे. पंचकर्मातील प्रत्येक कर्मांमध्ये स्नेह अपेक्षितच आहे. ज्याप्रमाणे 'वात' हा सर्वदोषांमध्ये प्रधान असून 'गतीत्व' हे त्याचे कार्य आहे, या गतीचे नियंत्रण बिघडले तर त्याला साम्यावस्थेत आणण्याचे कार्य स्नेहच करू शकतो. आयुर्वेदामध्ये चिकित्सेमध्ये वात दोषाचे महत्त्व त्याच्या व्याधीच्या संख्येवरून दिसून येते त्यामुळे वायू ला नियंत्रण करण्याचे प्रमुख कार्य स्नेहाकरवीच होऊ शकते म्हणून स्नेहनाला विशेष महत्त्व आहे.

स्नेहन हे पूर्वकर्म व प्रधानकर्म दोन्ही रुपाने आवश्यक आहे. शोधनासाठी शाखेतील दोष कोष्ठात आणण्यासाठी उपाय म्हणून पूर्वकर्मांमध्ये स्नेहन हे महत्त्वाचे कर्म आहे. दोष शाखेतून कोष्ठात आणण्यासाठी दोषांची वृद्धी करून विष्यन्दन केले जाते. दोषांचे विलयन झाले की स्रोतसांचे मुख विस्फारीत करून दोष कोष्ठात आणले जातात हे स्नेहाच्या स्निग्ध, चल, अणुप्रवणभाव या गुणांनी व स्वेदनाच्या साह्याने शक्य होते.

आचार्य भेल यांचेनुसार स्नेहनामुळे विकृतिस्थानामध्ये रस व क्लिन्नता उत्पन्न केली जाते आणि ज्याप्रमाणे जल उंचावरून खाली वाहतो त्याचप्रमाणे स्नेहानंतर क्लिन्न दोष कोष्ठाकडे येऊ लागतात (भे.सं.सू. 14)

स्नेहपूर्वप्रयुक्तेन स्नेदनावजितेऽनिले।

पुरीषमूत्ररेतांसि न सज्जन्ति कथञ्चन।।

च.सू. 14/4

स्नेहनाचे कार्य शोधनासाठी सहाय्यक म्हणून स्नेहन स्वेदन केल्याने वायूचा निग्रह करून मल, मूत्र व शुक्राच्या प्राकृत गतीमध्ये संग होत नाही.

स्निग्धात् पात्राद्यथातोयमयत्नेन प्रणुद्यते।

कफादयः प्रणुद्यन्ते स्निग्धाद्येहात्तथौषधैः।।

च.सि. 6/11

ज्याप्रकारे पात्रास स्निग्ध करुन त्यामध्ये जल भरल्यानंतर त्यास पालथा केल्याने जल खाली पडतांना पात्रास चिकटून राहत नाही त्याचप्रकारे स्नेहना नंतर उत्किलष्ट दोष धातूंमध्ये राहात नाहीत.

मलीनवस्त्र स्वच्छ करण्यासाठी स्नेहाचा (साबण) वापर केल्यास मळ वस्त्रामधून निघून जातो त्याचप्रमाणे शरीर शोधन करण्यासाठी स्नेहाने दोषांचे उत्कलेशन करणे आवश्यक असते.

स्नेहनाचे मुख्य कार्य विष्यन्द, क्लेदकारक व मृदुकर आहे. त्यामुळे पूर्वकर्मामध्ये दोषांचे विलयन करणे, विष्यंदन करणे व उत्कलेषित करणे हे कार्य स्नेहाने होते ज्यामुळे शोधनासाठी मदत होते.

स्नेहन पूर्वकर्मामध्ये ज्याप्रमाणे महत्त्वाचा आहे त्याचप्रकारे प्रधान कर्म म्हणून चिकित्सेत स्नेहनाचे स्थान अनन्यसाधारण आहे. आयुर्वेदानुसार मुळातच शरीर हे स्नेहसार आहे. शरीरातील महत्त्वाचे अवयव स्नेहप्रधान आहेत, स्नेहाच्या आश्रयाने राहणारे आहेत उदा. मस्तिष्क, त्यामुळे त्यांचे पोषकांशाच्या रूपाने स्नेहन आवश्यक आहे. स्नेह वाताची (तिळतैलाने) व पित्ताची (घृताने) प्रधान चिकित्सा आहे. शरीरास स्थैर्य व बल स्नेहनामुळे मिळते.

घृत अग्नि व मेधा वृद्धीकर सांगितले आहे त्यामुळे मस्तिष्कसंबंधी व्याधीमध्ये व अग्निप्रदीपक म्हणून घृत प्राधान्यक्रमाने वापरण्यास सांगितले आहे.

चरकांनी स्नेह 'वातशामक' म्हटले आहे. पूर्वी वर्णिल्याप्रमाणे स्नेहाचे गुण वात गुणाच्या परस्पर विरोधी असल्याने स्नेहामुळे वात निग्रहाचे कार्य होते त्यामुळे दुषीत वात आपल्या सम अवस्थेत येऊन इतर दोषांना शाखेतून कोष्ठाकडे आणण्यासाठी मदत करतो. अशाप्रकारे स्नेह वातास त्याची प्राकृत गती येण्यासाठी मदत करतो.

स्नेहोऽनिल हन्ति मृदूकरोति देहं मलानां विनिहन्ति संगम।

च.सि. 1/7

स्निग्ध व मृदू गुणामुळे स्नेह शरीरास मृदुत्व देण्याचे कार्य करते त्यामुळे शरीरास लवचिकता मार्दवता ही लक्षणे स्नेहामुळे प्राप्त होतात. यासाठी उपमा देताना आचार्यांनी ज्याप्रमाणे एखाद्या शुष्क काष्ठास स्नेहाने लवचिकता आणता येते त्याप्रमाणेच शरीरास स्नेहाने लवचिकता आणता येते, हे स्पष्ट केले आहे. कोष्ठ रुक्ष असल्यास मलसंग हे लक्षण उत्पन्न होते. मलसंग व स्रोतोरोध दूर करण्याचे कार्य स्नेहामुळे केले जाते.

आधुनिक शास्त्राच्या मतानुसार आभ्यंतर स्नेहनाची कार्मुकता घृत व तैलाच्या वर्णनांमध्ये स्पष्ट केलेली आहे.

Modern View :

In alternative therapies in health and medicine 2002, reported the study in Germany that, most of the today's environmental toxins are lipophils that accumulate in fatty tissues of the body. These fat soluble toxins are associated with a range of diseases such as hormone disruption, immune system suppression, allergies, diseases of liver, skin, cancer, neurological illness, etc. In this study result showed blood levels of PCBs (poly chlorinated biphenyl) and several other toxins lowered in detoxification (Panchakarma) group than control within days of Panchakarma therapy. This study clearly indicates the role of snehapana and gati of doshas from shakha to koshttha.

Many vitamins are Fat soluble, many biochemical reactions occur in the human body with the help of fat media.

The researchers are of the opinion that many herbal drugs acting on nervous system can act through medium of fat only. Fat is an excellent medium to drugs so Sneha is good medium to accumulate the toxins and act as a vehicle to travel from one part to another part of the body. The large quantity or 'Vardhaman' Sneha interfere with the chain of free radicals and produce the metabolite in the cells. After reaching the threshold, metabolites enter into the systemic circulation and reach the liver. These metabolites are detoxified within the liver and excreted via bile. So the quality of bile changes and further fat may not digest and appear in the stool i.e. adhastad snehadarshanam [Mahadevan L, 2008]

The procedure of abhyang, swedana and diet before shodhan facilitates the excretion of metabolities into alimentary canal which are available for shodhana.

Bruhan sneha - to build up cellular components, *Shaman sneha* - to stimulate and modify metabolic reaction. *Shodhan sneha*- to help for excreting metabolites from the cells.

Fat Metabolism :

Fat : Fats are organic compound are the source of energy. Fat provide 9 calories per gram. Fat is essential for body to perform the proper function. Essential fatty acids i.e. linoleic and linolenic acid are important for controlling inflammation, blood clotting, brain development. Healthy skin and hair can be maintained by fat.

Saturated fats : These are cause of LDL levels they are found in animal products such as butter, cheese, whole milk. They also found in coconut, palm.

Unsaturated fats: These help to lower blood cholesterol, they have high calories. Liquid vegetable are unsaturated. They are of two types.

- 1) Mono-unsaturated fats - olive oil
- 2) polyunsaturated fats - fish, sunflower, soyabean

Fat metabolism in relation to snehan :

As part of metabolism, the body produces toxin or toxins entered from outside have to be eliminated. The body has evolved to get rid of toxins by several ways.

- 1) Liver - detoxification by oxidation, conjugation
- 2) Fat soluble toxins can be excreted in the bile. The toxins combined with bile to a fat soluble form can be excreted via bowel (Shodhan)
 - Most of the Fat is in the form of triacylglycerol (TAG) which consists of three fatty acids linked to glycerol.
 - TAG is hydrolysed by the enzyme lipase to release free fatty acids and monoglycerides.
 - Lipase is water soluble and works only on surface of fat globules.
 - Bile contains bile salts and phospholipids which are amphipathic and are helpful to break down the fat globules into smaller droplets.
 - Emulsification occurs by breaking up fat into smaller emulsion droplets at the site of digestion. It increases the surface area where lipase can work to digest TAG.
 - Micelles, 200 times smaller than emulsion droplets are formed after digestion, they help to transport poor soluble monoglycerides and fatty acids to the surface of enterocyte where they can be absorbed (anupravanbhav of sneha).
 - Inside the enterocyte monoglycerides and fatty acid are resynthesized in TAG.
 - The TAG then packaged with cholesterol, fat soluble vitamins into chylomicrons which is lipoproteins and special designed for the transport of lipids in blood circulation.
 - Chylomicrons deliver absorbed TAG to body cells. Lipoprotein lipase an enzyme found in capillary endothelial cells hydrolyse TAG in chylomicrons. Monoglycerides and fatty acids released from digestion of TAG then diffuse into cells and tissues.
 - Most of the triglyceride are used up (when they are in small quantity), they left over (when in large quantity) goes to the liver.

The liver detoxifies harmful substances which come from internal source such as fat metabolism. Many of the toxins that enter the body are fat soluble. They dissolve only in fatty or oil solutions (peoplecomcollege.edu) and not in water hence snehan is essential prior to shodhan.

The liver play role in detoxification, it filters the blood to remove large toxins. It makes the toxins water soluble that can be excreted from the body easily (Shodhan).

बहिःपरिमार्जन चिकित्सा (बाह्य स्नेहन निधी)

बहिःपरिमार्जन चिकित्सा ही बाह्यभागावर करणाऱ्या विविध चिकित्सा होत. आभ्यन्तर स्नेहनामध्ये प्राधान्याने शोधन अपेक्षित आहे, परंतु प्राधान्याने बहिःपरिमार्जन चिकित्सा शोधन अल्प-शमन प्रधान आहेत. केरळ भागामध्ये ह्या क्रियांना अधिक विकसीत केल्या गेले.

बाह्य स्नेह व्याधी, प्रकृती, बल, काल, वय, दोष या सर्वांचा विचार करून चिकित्सकांनी ठरविणे आवश्यक असते. त्यामुळेच पंचकर्मांमध्ये ह्या क्रियेची एवढी व्याप्ती आहे.

बाह्य स्नेहनामध्ये खालील क्रियांचा समावेश केला जातो.

- | | | |
|-------------------|------------------|-----------------------|
| 1) अभ्यंग | 2) लेप | 3) उद्वर्तन-उत्सादन |
| 4) मर्दन-उन्मर्दन | 5) पादाघात | 6) परिषेक (पिड्डिचिल) |
| 7) संवाहन | 8) गंडूष | 9) मूर्ध-तैल |
| 10) नेत्रतर्पण | 11) नासातर्पण | 12) कर्णपूरण |
| 13) मास्तिष्क्य | 14) स्नेह-अवगाहन | |

अभ्यंग (Massage)

निरुक्ति-अभि+अंग

अंग = गती (movement)

व्याख्या: शरीरावर तेल लावण्याची क्रिया अभ्यंग होय. अभ्यंगासाठी तैल, घृत वा यमक स्नेहाचा वापर केला जातो.

अभ्यंग पंचकर्मातील पूर्वकर्म आहे त्याचसोबत विशिष्ट अवस्था व व्याधीमध्ये प्रधानकर्म म्हणूनही केले जाते. अभ्यंग हे व्याधी अवस्थेमध्ये तसेच स्वस्थ रक्षणार्थही केले जाते.

इतिहास: पुराण शास्त्रानुसार अभ्यंग प्रामुख्याने भारत, चीन, जपान, इजिप्त, कोरिया, रोम, ग्रीस या देशांमध्ये पुराणकाळापासून वापरात असल्याचे वर्णन आढळून येते.

बृहत्रयीमध्ये अभ्यंगाचे व्याधीनुसार, प्रकृतीनुसार, काळानुसार शास्त्रीयदृष्ट्या वर्णन आढळून येते.

खि.पू. 722-481- नेईजिंग या चीनच्या पुस्तकामध्ये 30 विविध प्रकरणांमध्ये अभ्यंगाचे वर्णन केलेले आहे.

खि. पू. 700 - बियान क्यू हा चिकित्सक अभ्यंग चिकित्सा करीत होता.

खि. पू. 500 - जीवक (शिवागो कोमर्पज) हा थाई मसाज (Nuad Boran) आणि थाई चिकित्सेचा जनक मानला जातो. थाई मसाज हे भारत व चीन यांच्या पद्धतीचा संयोग आहे.

इ.स. 581 - डॉ. सन सि मीआव यांनी बाल्यावस्थेतील व्याधीसाठी दहा प्रकारच्या Massage पद्धती विकसीत केल्या.

सद्यकाळात जगात सर्वत्र अभ्यंग चिकित्सापद्धती लोकप्रिय झाली. अभ्यंग खेळांमध्ये व्यवसायामध्ये खाजगी कंपनीमध्ये वापरली जाऊ लागली. 1996 मध्ये 'अटलांटा येथील ऑलिम्पिक मध्ये प्रथमतः अमेरिकेतील ऑलिम्पिक संघासाठी Massage प्रयोग करण्यात आला. 2010 मध्ये भारतात झालेल्या ऑलिम्पिक स्पर्धेमध्ये खेळाडूंसाठी मसाजची विशेष व्यवस्था करण्यात आली.

महत्त्व व उपयोगिता :

अन्नात् अष्टगुणं पिष्टं पिष्टात् अष्टगुणं पयः।

पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसात् अष्टगुणं घृतमा।

घृतात् अष्टगुणं तैलं मर्दने न तु भोजने ।

वृं मा. 81/29

वृन्दमाधवांनी अभ्यंगाचे महत्त्व स्पष्ट करतांना सांगितले की, अन्नापेक्षा पिष्ट (starch) आठपट प्रभावी गुणकारी आहे तर पिष्टापेक्षा आठपट दूध गुणकारी आहे, दूधापेक्षा आठपट मांस, मांसापेक्षा आठपट घृत गुणकारी आहे तर घृतापेक्षा तैलाने अभ्यंग आठपट प्रभावी आहे.

अभ्यंग हा दिनचर्येतील एक उपक्रम सांगून स्वास्थ्यरक्षणार्थ प्रतिदिवसातील त्याचे महत्त्व स्पष्ट केले आहे.

स्नेहाभ्यङ्गघ्ना कुम्भश्चर्म स्नेहविमर्दनात्।

भवत्युपाङ्गादक्षश्च दृढः क्लेशसहोयथा।।

तथा शरीरमभ्यङ्गाद्दृढं सुत्वक् च जायते।

प्रशान्तमारुताबाधं क्लेशव्यायामसंसहम्।।

च.सू. 5/85-86

ज्याप्रकारे स्नेह वारंवार लावल्याने मातीचा घडा, चर्म (चामडे) दृढ व मुलायम होतात. गाडीच्या चाकांची धुरा वारंवार स्नेहनाने (वंगण घातल्याने) झीज रोखण्या इतपत दृढ होते त्याचप्रमाणे अभ्यंगाने शरीर दृढ होऊन त्वचा सुंदर होते व वातव्याधी सहज सहन करेल असा शरीर तयार होतो. शरीर व्यायाम (श्रम) व क्लेश सहन करण्यासाठी समर्थ होते.

वायू त्वचाश्रित असून स्पर्शनिद्रिय त्वचा आहे. त्यामुळे वायूस जिंकण्यासाठी व स्पर्शनिद्रिय स्वस्थ राखण्यासाठी त्वचेवर स्नेहाभ्यंग महत्त्वपूर्ण आहे.

पादाभ्यंगाने दृष्टी उत्तम राहाते. पायांना बल व दृढता येते. पायांचे खरत्व, स्तब्धता (cramps, stiffness) श्रम, सुप्ती (sensory loss) नष्ट केली जाते. बाल, वृद्ध व रुग्णांमध्ये अभ्यंग नित्य करावे (कै.नि.)

उपयोगिता

- 1) अनेक वातव्याधींची प्रधान चिकित्सा
- 2) शोधनार्थ दोष कोष्ठात आणण्यासाठी पूर्वकर्म म्हणून
- 3) स्वेदनाचे पूर्वकर्म म्हणून
- 4) त्वचा मार्दव व सुंदर ठेवण्यासाठी
- 5) रसायन व वाजीकरण म्हणून
- 6) स्वास्थ्य रक्षणार्थ

अभ्यंग योग्य (Indication)

- 1) वातव्याधी,
उदा. अ) पक्षाघात (Hemiplegia)
ब) कटि-पृष्ठ गतगत (Spondylitis)
क) संधिगतवात (Osteoarthritis)
- 2) शोधनार्थ पूर्वकर्म म्हणून (वमन, विरेचन, बस्ति, नस्य कर्मापूर्वी)
- 3) स्वास्थ्य रक्षणार्थ

अयोग्य (contraindication) (सू.चि. 24/35-37)

वज्र्योऽभ्यंग कफग्रस्त कृत संशुद्धयजीर्णिभिः।।

अ.ह.सू. 2/9

- | | |
|--|-------------------------------------|
| 1) कफ प्राधान्य व्याधी | 2) कृत संशुद्धय (वमन विरेचन झालेले) |
| 3) अजीर्ण झालेले | 4) आमावस्था |
| 5) तरुण ज्वर (Acute fever) | 6) निरुह बस्ति दिलेला |
| 7) संतर्पणोत्थ व्याधी उदा. प्रमेह, स्थौल्य | 8) अग्निमांद्य |
| 9) Inflammation due to fracture | |

संभार संग्रह

- | | |
|---|-----------------------|
| 1) द्रोणी (Massage table) | 2) तैल - 150-200 मिली |
| 3) स्टील पातेले (250) | 4) टॉवेल |
| 5) बेसणपीठ (मुंगाचे)/साबण | 6) रास्नादि चूर्ण |
| 7) पंचकर्म सहाय्यक (Attendant/messures) 1-2 आवश्यकतेनुसार | |

अभ्यंग विधी

पूर्वकर्म - तत्र प्रकृतिसात्म्यतुदेशदोषविकारवित् तैलं घृतं वा मतिमान युज्याद्भ्यङ्गसेकयोः।।

सू.चि 4/34

- 1) **रुग्णपरीक्षा** - अभ्यंगापूर्वी रुग्णाचे नियमित परीक्षण करुन घ्यावे. रुग्णाचे BP, Pulse इ. तपासणी केलेली असावी. कोणत्या तैलाची allergy इ. चा इतिहास विचारावा.
- 2) **संमतीपत्रक (written consent)** - रुग्णाची व नातेवाईकांची संमतीपत्रावर स्वाक्षरी घ्यावी.
- 3) व्याधी, रुग्णप्रकृती, देश, दोष यांचा विचार करुन आवश्यक त्या तैलास कोष्ण करावे. तेलाचे तापमान सहाय्यकाने आपल्या हातास स्पर्शून सहन होईल एवढा ठेवावा.

सामान्यता तापमान - 38°C ते 44°C सें.

योग्यकाल - सूर्योदयाच्या वेळी

प्रधानकर्म

आदल्या रात्रीचे भोजन पचल्यानंतर सकाळी प्रातःविधी आटोपून उपाशीपोटी सर्वप्रथम रुग्णास कमीत कमी कपड्यामध्ये (केवळ लंगोट बांधून) द्रोणीवर पाय पसरून बसण्यास सांगावे. त्यानंतर सुखोष्ण तैल सर्वप्रथम डोक्यावर लावावे. त्यानंतर क्रमाने कान, हस्ततल व पादतलभागी तैल लावून हलक्या दाबाने मर्दन करावे.

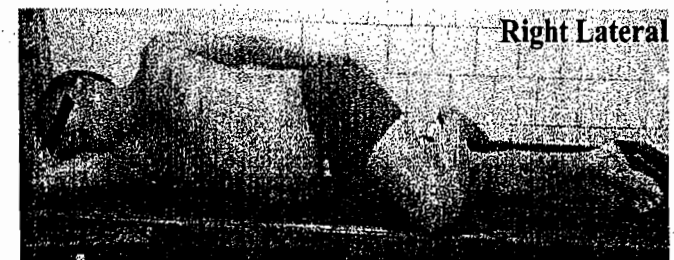
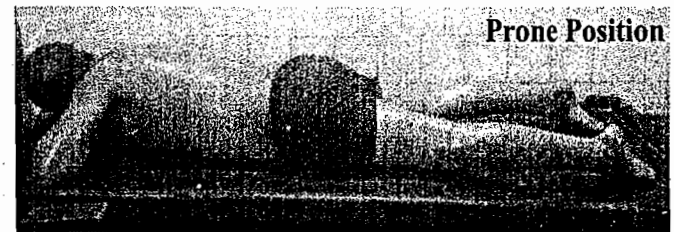
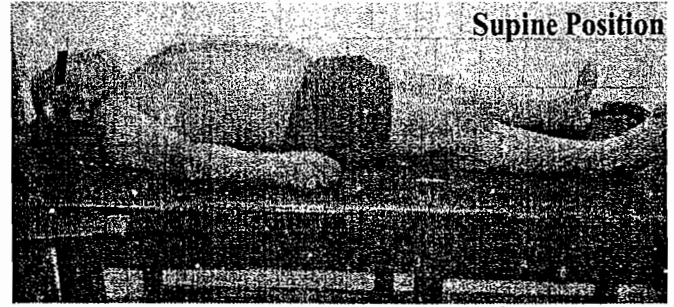
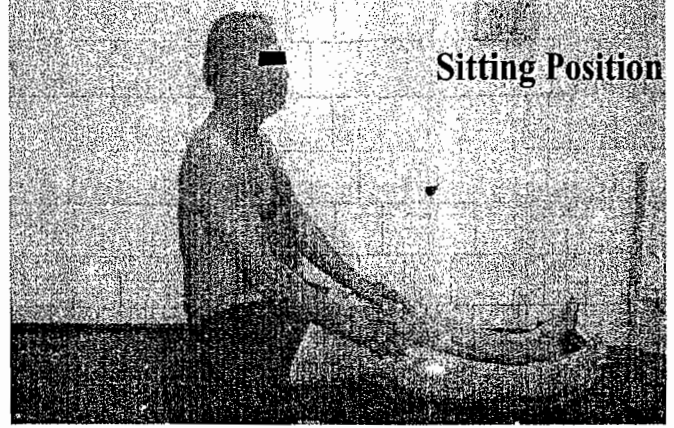
अभ्यंग करतांना रुग्णास व सहाय्यकास सोईस्कर होईल अशापद्धतीने रुग्णाची स्थिती (आसन/position) असावी. सामान्यतः अभ्यंग खालील 7 स्थितींमध्ये केले जाते.

- 1) बसलेल्या अवस्थेत (पाय पसरून) (sitting position)
- 2) उत्तान अवस्थेत (supine position)
- 3) वामपार्श्व (left lateral position)
- 4) पालथा अवस्थेत (prone position)
- 5) दक्षिण पार्श्व (right lateral)
- 6) उत्तान/उताणा अवस्थेत (supine position)
- 7) बसलेल्या अवस्थेत

PID, kyphosis, lordosis इ. सारख्या अवस्था असलेल्या रुग्णांना सहन होणे शक्य नसल्यास वरील अवस्थांपैकी शक्य त्या अवस्थांमध्येच अभ्यंग करावे.

गती - अभ्यंग साधारणतः अनुलोम गतीने करावे काही विशिष्ट अवस्थेत दोषांनुसार वातासाठी अनुलोम, कफासाठी प्रतिलोम व पित्तासाठी दोन्ही (आलटून पालटून) गतीने करावे

हस्तपाद- अनुलोम गतीने सरळ रेषेत (Linear) संधिस्थानी वर्तुलाकार (circular)



| अवस्था | अवयव | गती |
|---|---|--|
| 1) बसलेल्या अवस्थेत (Sitting position) | शिरः कपाल 1) उर्ध्वशाखा (upper limb) 2) पृष्ठ कटि-(dorsal & lumber) 3) Spine 4) अधःशाखा (lower limb) | दोन्हीबाजूस 1) अंस ते हस्तांगुली 2) उरः ते हस्तांगुली 3) पृष्ठ ते हस्त 4) मणिबंध संधी (वर्तुलाकार) कटि ते पृष्ठ cervical to sacrum with thumbs both hands 1) उरु (Thigh) 2) जानुसंधी (Knee joints) 3) गुल्फसंधी व अधःशाखा 4) पादतल-अंगुली |
| 2) उत्तान अवस्था (Supine position) | 1) उदर (abdomen) 2) उरः (chest) 3) अधःशाखा (lower limb) | उदर ते हस्त उदर स्थानी वर्तुलाकार (anticlockwise then clockwise) उरः ते हस्त अंतः पार्श्व (anterior & lateral) उरु, जानुसंधी ते पादतल |
| 3) वामपार्श्व (Left lateral) | 1) पृष्ठ (dorsal) 2) सर्वांग 3) spine | उर्ध्वपृष्ठ (Upper back) ते हस्त द हस्त ते द पाद अधःशाखा - वंक्षण (hip joint), उरु (thigh), जंघा (calf) |
| द. पार्श्व (Right lateral) | वरीलप्रमाणे | वाम हस्तपाद |
| पालथा अवस्था (Prone position) | 1) spine 2) पृष्ठ (Back) | cervical to sacrum अंस ते पृष्ठ अंसप्रदेशी वर्तुलाकार |

कालावधी - कैयदेव निघण्टु मध्ये अभ्यंगाचा काल 5 मुहूर्त (4 तास) सांगितला आहे.

प्रत्यक्षात 35 मिनिट ते 1 तास (डल्हणानुसार स्नेहन मज्जापर्यंत पोहचण्यास 900 मात्रा = 5 मिनिटे) लागतात त्यामुळे 7 अवस्थांमध्ये अभ्यंगास अंदाजे 35 मिनिटे)

पश्चातकर्म

- 1) विश्राम - अभ्यंगानंतर किमान 15 मिनिटपर्यंत रुग्णास निर्वात स्थानी (Non Ac बंद रुम) विश्रांती करण्यास सांगावे
- 2) स्वेदन - अभ्यंगानंतर रुग्णास स्वेदन आवश्यक असल्यास स्वेदन क्रिया करावी.
- 3) स्नान - कोष्ण जलाने मूंग/चना दाळीच्या पीठाने स्नान केल्यानंतर मूर्ध स्थानी रास्नादि चूर्ण लावावे.
- 4) आहार - रुग्णास भूक लागल्यास लघु आहार द्यावा.

ध्यावयाची काळजी:

- 1) अभ्यंगानंतर BP, Pulse इ. चे परिक्षण,
- 2) अभ्यंगानंतर लगेच शीत वातावरणात (Fan, AC इ.) निषेध

अभ्यंगाचे धातुंवर प्रभाव (डल्हण टिका सू. चि 24/30 वर)

अभ्यंगाच्या क्रियेमुळे स्नेह प्रत्येक धातुंमध्ये पोहचतो. डल्हणानी आपल्या टिकेमध्ये प्रत्येक धातुंमध्ये पोहचण्यासाठीचा कालावधी वर्णन केलेला आहे. याचा अर्थ असा नसावा की, तेवढ्या कालावधीमध्ये प्रत्यक्ष स्नेह त्या धातुपर्यंत प्रत्यक्षात प्रवेशीत होईल. मात्र तेवढ्या कालावधीच्या अभ्यंगाने त्या-त्या धातुंवर परिणाम होतील.

| धातु | कालावधी | 1 मात्रा = 19/60 सेकंद |
|------------|--------------|------------------------|
| रोमांत | 300 मात्रा = | 1 मि. 35 से. |
| त्वक् (रस) | 400 मात्रा = | 2 मि. 07 से. |
| रक्त | 500 मात्रा = | 2 मि. 40 से. |
| मांस | 600 मात्रा = | 3 मि. 10 से. |
| मेद | 700 मात्रा = | 3 मि. 42 से. |
| अस्थि | 800 मात्रा = | 4 मि. 14 से. |
| मज्जा | 900 मात्रा = | 4 मि. 45 से. |

त्यामुळे उत्तम फलप्राप्तीसाठी (मज्जाधातुपर्यंत) अभ्यंगाचे परिणाम प्राप्तीसाठी अभ्यंग काल एका स्थितीमध्ये किमान 5 मिनिटे असावा.

अभ्यंगाचे गुण/फलप्राप्ती:

सामान्य फायदे

अभ्यंग आचरेर्नित्यं स जरा श्रमवातहा।

दृष्टिः प्रसाद पुष्टयायुः स्वप्न सुत्वक्दाढ्यकृत्।।

अ.ह. सू. 2/8

तथा शरीरमभ्यंगात् दृढं सुत्वक् च जायते।

प्रशांत मारुता बाधं क्लेश व्यायाम संसहम्।।

च.सू. 5/85

अभ्यंग मार्दवकरः कफवात निरोधिनः।।

धातुनां दृष्टिजननो मृजा वर्ण बलप्रद।।

सु.चि. 24/30

नचाभिघातभिहतं गात्रमभ्यंग सेविनः।

च.सू. 5/87

- 1) जराहर - वृद्धत्व उशीरा येते.
- 2) श्रमहर - अभ्यंगानं श्रमकरणान्यांच्या पेशीतील थकवा दूर होतो.
- 3) वातहर - वृद्धवायू नष्ट केला जातो
- 4) दृष्टिकर - दृष्टि सुधारण्यास मदत होते
- 5) पूष्टिकर - धातु पुष्टी होते
- 6) आयुःकर - धातु पुष्टी, श्रमहर, जराहर इ. गुणांमुळे पर्यायाने आयुची वृद्धी होते
- 7) स्वप्नकर - उत्तम निद्रा येते
- 8) त्वक् दृढता - त्वचा कोमल होऊन दृढता येते
- 9) क्लेशहर - शारिरीक व मानसिक क्लेश सहन करण्याची शक्ती वाढते.
- 10) मार्दवकर - शरीरास मृदूता येते
- 11) कफवात निरोधिन - कफ व वात शमन होते
- 12) मृजाप्रद - त्वचेची शुद्धी होते
- 13) वर्ण-बलप्रद - त्वक् वर्ण कांती सुधारली जाऊन बलवृद्धी होते
- 14) अभिघातसहत्वं - अभ्यंगाने अभिघात सहज करण्याची शक्ती येते.

स्थानानुसार

1) पादाभ्यंगाचे फायदे:

खरत्वं स्तब्धता रौक्ष्यं श्रमः सुप्तिश्च पादयोः। सद्य एवोपशाम्यन्तिपादभ्यङ्गनिषेवणात्।।

जायते सौकुमार्यं च बलं स्थैर्यं च पादयोः। दृष्टिः प्रसादं लभते मारुतश्चोपशाम्यति ।।

च.सू. 5/90-91

- i) पादभागातील खरता (roughness), स्तब्धता (stiffness), रुक्षता (dryness), सुप्ति (numbness) यांचा नाश
- ii) पायामध्ये सुकुमारता (Soft) येते
- iii) पायामध्ये बल व स्थैर्य येते
- iv) दृष्टीकर
- v) वायूचे नियंत्रण होऊन वातव्याधीमध्ये उपयोगी

2) शिरोऽभ्यंगः (च. सु. 5/ 80-85)

शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्।

(अ.ह.सु. 2/9)

- i) शिरःशूलामध्ये उपयोगी
- ii) निद्राकर
- iii) खालित्य व पालित्य होत नाही
- iv) इंद्रिय पुष्टीकर
- v) केश दृढ व कृष्ण होणे

अभ्यंग कार्मुकता (Mode of Action)

अभ्यंग कर्मानुसार वातहर, पित्तहर व कफहर आहे. अभ्यंगामध्ये क्रिया व अभ्यंगामध्ये वापरण्यात येणारे द्रव्य दोन्हीही तेवढेच कार्य करतात. त्यामुळे प्रत्यक्षात कर्म व द्रव्य दोन्ही महत्त्वाचे आहेत. अभ्यंग क्रिया व स्नेह द्रव्य यांचे गुण स्निग्ध व गुरू असल्यास वायूच्या रुक्ष व लघु गुणाच्या साम्यावस्थेत ठेवण्यासाठी मदत होते व वायूचे कार्य सम्यक राहते (सु.शा/9)

अभ्यंगाने भ्राजक पित्ताचे कार्य सम्यक होऊन त्वकप्रसादन होते शरीरास मृदूता येऊन सिरा स्नायुंमधील स्तंभ, संकोच नष्ट होऊन शरीर लवचिक होतो.

डल्हणांनी सुश्रुतावरील टीकेमध्ये (सु.चि 24/30 वर) 900 मात्रेपर्यंत (5 मिनिटे) अभ्यंग केल्यास मज्जाधातुपर्यंत स्नेह जाण्याचे स्पष्ट केले आहे. अर्थात स्नेह त्वचेमधून शोषला जाऊन उत्तरोत्तर धातुपर्यंत त्याचे कार्य होत असते. शरीरामध्ये सर्वत्र पसरलेला इंद्रिय म्हणजे स्पर्शनिद्रिय त्वचेच्या आश्रयाने राहतो त्वचा हा वायू चा आश्रय स्थान आहे. त्यामुळे अभ्यंगाने वायू चे शमन करण्याचे कार्य होते व स्पर्शनिद्रियाचे पोषण करण्याचे कार्य घडते, सोबतच त्वचेची कांती, मृदू, वर्ण योग्य ठेवण्याचे कार्य होते. पर्यायाने अभ्यंगामुळे जराहर व रसायन कार्य घडते.

अभ्यंग शूलप्रधान व्याधीमध्ये उपयुक्त सांगितलेला आहे. शूल हे लक्षण वायू मुळे होते व वायूच्या शमनासाठी अभ्यंग ही उत्तम चिकित्सा आहे त्यामुळे शूल प्रशमनासाठी अभ्यंग उपयुक्त ठरते.

Modern view :

Vagal Stimulation : Massage therapy is useful for weight gain (धातु पुष्टिकर). In the research study it is noted a significant increase in vagal activity which is interpreted from ECG. There is significant increase in gastric motility in post massage period which leads to good absorption of the nutrient and proves good weight gain.

Preterm infants who received massage (15 min for 10 days) showed increase in S. insulin & S.IGF-1 (insulin like growth factor) levels and increased their weight [Field *et al*, 2008]

In Abhyang process there is increase in peripheral circulation and vasodilation which is responsible to increase more oxygenated blood to the muscles and helps to produce energy in fatigue muscles as well as removal of waste products from the body.

Ronald Melzack and Patrick Wall proposed theory of a gate control of pain . It exists within dorsal horn of the spinal cord and brains. The pain theory accounts for primarily psychological and then it provides physiological complex. In the gate control theory the experience of pain depend on a combine interplay of CNS and PNS as pain signals originated in nerves pass through PNS to spinal cord and to the brain. However, in this theory before reaching to the brain pain signals encounter nerve gate in the spinal cord that open or close when the gate is opened the pain sensation reaching the brain and can be experienced and when it is closed pain signals are prevented from reaching the brain and may not be experienced.

There are two types of fibers are responsible to carry the pain signals to the spinal cord

1. A-delta nerve fibers to carry electrical message to spinal cord @ 40 mph. (Fast pain)
2. C-fibers carry electrical message @ 3 mph (slow/continuous pain)

The role of abhyang upon this theory is activation of other types of nerve fibers can modify or block the sensation of pain.

After biting, kneading, rubbing the area, feels some relief. The procedure of abhyang activates other sensory nerve fibers that are even faster than A-delta fibers and these fibers send information about touch and pressure to the spinal cord and brain to oversee pain massages carried by A-delta and C-fibers. Even it works psychologically due to touch. [William W. Deardorff; Modern ideas; The gate control theory of chronic pain]

Action of plasma oxytocin : Oxytocin is hormone known to responsible by social bonding and touch may affect oxytocin (OT) release. Morhenn *et al* (2012) in his study found massage of associated with an increase in oxytocin level and reduction in ACTH, nitric oxide and beta endorphin. This increase in OT level is responsible for decrease in basal cortisol and increase in parasympathetic tone, enhance immune function and decreases anxiety and depression (जराहर, श्रमहर, क्लेषहर)*

[*Mark Repaport; A model for the mechanism of action of massage NIH report 2009]

oxytocin has been formed to regulate the digestive mechanism. It stimulates the release of digestive hormones and gastric enzymes which lead to more effective absorption of nutrients (Linda Fores, 2010). Thus abhyang helps to improve Agni and Dhatupushti.

मर्दन उन्मर्दन

मर्दन म्हणजे शरीरावर अधिक पीडन देऊन अभ्यंगासारखी क्रिया करणे. उन्मर्दन म्हणजे नेमकी कशी क्रिया असावी यात मत-मतांतरे आहेत. उन्मर्दन म्हणजे उत-मर्दन अर्थात दाबलेल्या भागाला वर करणे (वैद्य कस्तुरे). काही चिकित्सक मर्दन व उन्मर्दन यांना अनुक्रमे अनुलोम व प्रतिलोम गतीने पीडन करणे असे मानतात.

मर्दनाने मांस धातुस स्थैर्य बळकटी येण्यास मदत होते.

योग्य (Indications):

स्नेहाभ्यङ्गोपनाहश्च मर्दनालेपनानि च।

त्वक्मांसासृक सिराप्राप्ते कुर्यात् चासृग्विमोक्षणम् ।

स्नेहोपनाहाग्निकर्मबन्धन्मर्दनानि च।।

सु.चि. 4/7-8

- | | |
|----------------|-----------------------|
| 1) त्वक्गतवात | 2) मांसगतवात |
| 3) रक्तगतवात | 4) सिरागतवात |
| 5) स्नायूगतवात | 6) संधिगतवात |
| 7) अस्थिगतवात | 8) स्वस्थव्यक्तीमध्ये |

संभारसंग्रह - अभ्यंगास लागणारे

विधी :- अभ्यंगासारखी केवळ पीडनासह अभ्यंग करावे.

मर्दनाने फायदे

- | | |
|--------------------------|---------------------|
| 1) पेशीमध्ये बल प्राप्ती | 2) स्नायूशूल कमी |
| 3) शरीर लाघवता | 4) व्याधी लक्षण कमी |

पादाघात (Foot Massage)

पायाच्या साह्याने रुग्णाच्या अंगावर पीडन करणे पादाघात होय. ही केरळमध्ये प्रसिद्ध चिकित्सा पद्धती आहे. पदभ्यामुद्वर्तितस्य पादाभ्यां बहुकृतमर्दनस्येत्यर्थः। (सु.चि. 24/40 वर डल्हण टिका) या क्रियेमध्ये परिचारकाने हाताएवजी पायाने उभे राहून मर्दन केल्यामुळे मर्दन क्रियेपेक्षा अधिक दाब दिला जातो. वाग्भटांनी पादाघात हेमंत ऋतूमध्ये करण्यास सांगितले आहे.

वातघ्नं तैलैरभ्यंगं मूर्ध तैलं विमर्दनम्।

नियुद्धं कुशलैः सार्धं पादाघातं च युक्तिततः

अ.ह.सू. 3/10

योग्य (Indication):

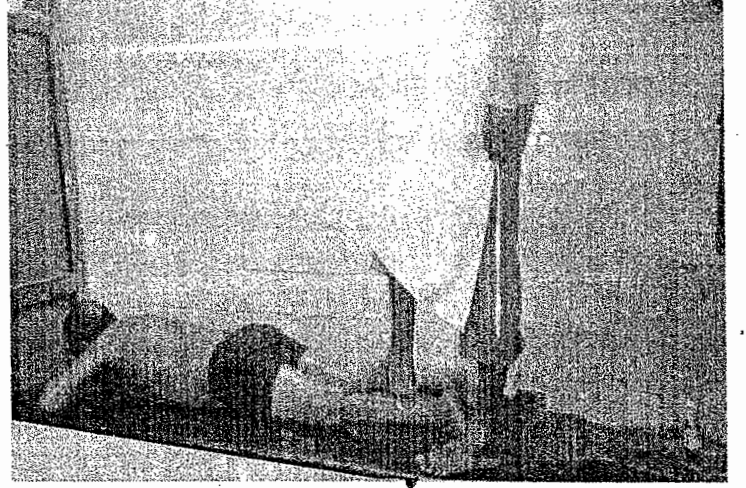
- | | |
|---------------------|-----------------------------------|
| 1) हेमंत ऋतु | 2) व्यायामोत्तर (after wrestling) |
| 3) स्नायु, मांस शूल | 4) कटिगतवात (lumbago) |

अयोग्य

- 1) prolapsed IV disc
- 2) कृश, सुकुमार
- 3) Deep vein thrombosis

संभारसंग्रह

- 1) चटई
- 2) अभ्यंगासाठी रुग्णानुसार तैल - 150 मिली
- 3) तलम करण्यासाठी तैल - 250 मिली
- 4) टॉवेल



विधी :

पूर्वकर्म: अभ्यंगात वर्णिल्याप्रमाणे रुग्णाचे परीक्षण करून घ्यावे व अभ्यंगाप्रमाणेच पूर्वकर्माचे पालन करावे.

पादाघात क्रियेसाठी एका रुममध्ये खाली चटई किंवा जाड सतरंजी अंथरून परिचारकाचा हात पुरेल एवढ्या उंचीवर मजबूत दोरी किंवा साखळी बांधावी.

प्रधानकर्म: रुग्णास संतरंजीवर झोपवून तलम करावे व अभ्यंग करावे त्यानंतर रुग्णाच्या हस्त पाद अंगावर परिचारकाने कटि पृष्ठ कटी नितंब जागी उभे राहून वरच्या दोरीच्या आधाराने पादाघात करावा. रुग्णास सहन होईल एवढा दाब असावा. उर: व उदर प्रदेशी भार हलका असावा व मर्दनाची दिशा अभ्यंग सारखा असावी. सुश्रुतांनी अभ्यंग केल्यानंतर अर्धशक्ती व्यायाम करण्यास सांगितले त्यानंतर पादाघात करण्यास सांगितले आहे. (सु.चि. 24/40)

पश्चातकर्म: 15 मिनिटे विश्रांती व त्यानंतर कोष्णजलाने स्नान करावे. स्नानासाठी बेसणाचा वापर करावा.

ध्यावयाची काळजी - परिचारकाचे पाय स्वच्छ, मृदु (crack नसलेले) असावे अधिक वजन नसावे रुग्णाच्या शरीरावर अधिक दाब देऊ नये.

पादाभ्यंगाने लाभ -

- 1) शरीर दृढ होते,
- 2) व्याधीक्षमत्व वाढते.

संवाहन

संवाहनं सुखकरस्पर्शः।

सु.चि. 4/24 वर डल्हण टिका

संवाहन म्हणजे सुखकर स्पर्श (gentle touch) किंवा मृदु मर्दन. हळुवार शरीरास मर्दन करण्याची क्रिया संवाहन होय. संवाहन अभ्यंगानंतर किंवा अभ्यंग न करताही करता येतो.

संवाहन योग्य (Indications)

- 1) वातव्याधी (सु.चि. 4/24)
- 2) पित्तप्रधान व्याधी (सु.क. 5/38)
- 3) वातरक्त (Gouty arthritis)
- 4) निद्रानाश (Insomnia)

संवाहनाचे लाभ :

प्रीतीनिद्राकरं वृष्यं कफवात श्रमापहम्।

संवाहनं मांसरक्तत्वक्प्रसादकरं सुखम्।।

सु.चि 24/83

- 1) प्रीतीकर (Affection)
- 2) निद्राकर
- 3) वृष्य (Aphrodisiac)
- 4) कफ, वात शामक
- 5) श्रमहर
- 6) मांस, रक्त व त्वचा प्रसादक

कर्णपुरण

तैलेन कर्णस्य पूरणम्

(सु.चि. 24/29)

ज्या क्रियेमध्ये कानामध्ये औषधीयुक्त स्नेह घातले जाते त्यास कर्णपुरण किंवा कर्णतर्पण म्हणतात. ही क्रिया अभ्यंगाच्या वेळी किंवा कर्ण व शिरोरोगामध्ये स्वतंत्र चिकित्सा म्हणून केली जाते. चरकांनी स्नेह विचारणा म्हणूनही या क्रियेचा उल्लेख केला आहे. (च.सू. 13/25)

योग्य (Indications)

हनुमन्याशिरः कर्णशूलघ्नं कर्णपूरणम्।

सू.चि.24/28

न कर्णरोगा वातोत्था न मन्याहनुसंग्रहः।

नोच्चै श्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यकर्णतर्पणात्।।

च.सु. 5/84

- 1) वात प्राधान्यकर्णरोग
- 2) मन्याग्रह (Stiffness of neck, cervical spondylosis)
- 3) हनुग्रह (Stiffness of mandible, jaw lock)
- 4) कर्णशूल (Earache)

- 5) शिरःशूल (Headache)
- 6) बाधिर्य (Deafness)
- 7) मन्याशूल (Pain in neck region)
- 8) कर्णनाद (Tinnitus)

अयोग्य (Contraindication)

- 1) कर्णस्त्राव (Perforation)

| | |
|----------------------|--------------|
| औषधी स्नेह - कर्णनाद | - सर्षप तैल, |
| कर्णबाधिर्य | - बिल्व तैल, |
| कर्णशूल | - पंचगुण तैल |

संभार संग्रह-

- 1) अभ्यंग टेबल
- 2) स्नेह - अभ्यंगासाठी तेल 50 मिली
कर्णपुरणासाठी तेल 5 मिली
- 3) टॉवेल
- 4) गॅस स्टोव्ह
- 5) स्टील पातेले
- 6) गोकर्ण किंवा dropper
- 7) cotton pad

पूर्वकर्म

- 1) **रुग्णपरीक्षण** - सर्वप्रथम रुग्णाचे Torch, Earoscope च्या सहाय्याने कर्णाचे परिक्षण करावे. त्यानंतर स्त्राव किंवा कर्णगुथ असल्यास earbud ने स्वच्छ करून घ्यावे.
- 2) **रुग्ण आसन (Position of the patient)** - पार्श्वभागावर झोपवून कर्णपूरण करावे. ज्या बाजूच्या कर्णाचे तर्पण करावयाचे आहे. त्याच्याविरुद्ध बाजूच्या पार्श्वभागावार (Lateral position) रुग्णास टेबल वर झोपवावे व रुग्णास हात डोक्याखाली दुमडून ठेवण्यास सांगावे.
- 3) **अभ्यंग व स्वेदन** - कर्ण, कर्णपाली (Pinna), कर्णाच्या सभोवती मन्याप्रदेशी मृदु अभ्यंग करून त्या भागावर टॉवेलच्या साह्याने मृदु स्वेद करावा

प्रधानकर्म

कर्णपुरण विधी - अभ्यंग व स्वेदानंतर 3 ते 5 मिली सुखोष्ण करून गोकर्णामध्ये घ्यावे व कर्णपाली

(Pinna), हलक्या दाबाने बाहेरच्या बाजूस ओढून वरच्या बाजूस ओढावे व गोकर्णाच्या साह्याने संतत धारेने कर्णामध्ये तैल सोडावे. सोबतच कर्णमूलाच्या ठिकाणी मर्दन करावे.

- योग्यकाल - सकाळी 9 ते 10
मात्रा (कालावधी) - स्वस्थ व्यक्तीमध्ये 1000 मात्रा = 5.3 मिनिटे
व्याधी अवस्था - रुजाशमनापर्यंत (अ.ह.सु. 22/32)

पश्चातकर्म

कर्णपूरण केल्यानंतर कॉटनच्या साह्याने कान बंद करावा ज्यामुळे तैल बाहेर येणार नाही. दुसऱ्या कानाचे कर्णपूरण करावयाचे असल्यास वरील विधीने कर्णपूरण करावे.

दुसऱ्या दिवशी सकाळी कानातील कॉटन प्लग काढून कर्ण अंतः प्रदेश स्वच्छ करावा. तीक्ष्ण तैल असल्यास अर्धा ते एक मिनिटानंतरच कान स्वच्छ करावा

उपद्रवः 1) दग्ध, 2) Fungal Infection

अक्षितर्पण (नेत्रतर्पण)

तृप+ल्यूट = तर्पण

नेत्राचे पोषण/तृप्ती करणारी क्रिया म्हणजे अक्षितर्पण. शालाक्य तंत्रात अतिशय लोकप्रिय व प्रभावी चिकित्सा पद्धती. व्याधी अवस्था सोबतच नेत्राचे स्वास्थ्य रक्षणार्थ स्वस्थ व्यक्तीमध्येही अक्षितर्पण क्रिया केली जाते.

तर्पण व पूटपाक दोन्ही विधी नेत्राच्या वासन (retention) करणाऱ्या क्रिया आहेत. शिरोबस्ति सारखीच तर्पण ही नेत्रबस्ति आहे. तर्पणामध्ये स्नेह (तैल व घृत) अपेक्षित आहे तर पूटपाक क्रियेमध्ये पूटपाक विधीने तयार केलेले पत्रस्वरस, मांसरंस यांचा उपयोग केला जातो. विशेष म्हणजे तर्पण व पूटपाक ह्या क्रिया अशोथजन्य व्याधी मध्ये (Non inflammatory condition) उपयुक्त आहेत तर आश्चोतन व अंजन ह्या क्रिया शोथयुक्त अवस्थांमध्ये (inflammatory condition) उपयुक्त आहे.

| विधी | द्रव्य | अवस्था |
|---------|-------------|----------------------|
| तर्पण | स्नेहप्रधान | Non inflammatory |
| पूटपाक | स्वरस | Non inflammatory |
| आश्चोतन | क्वाथ | Acute inflammatory |
| अंजन | घनद्रव्य | Chronic inflammatory |

अक्षितर्पण योग्य (Indication): (अ.ह.सू. 24/1-3)

अक्षितर्पण विविध नेत्राच्या वातप्रधान व्याधीमध्ये केली जाते.

- | | |
|---|---|
| 1) अर्दित (Bel's palsy) | 2) नयने ताम्यति (Fatigued eyes) |
| 3) नेत्र स्तब्धता (inactive) | 4) नेत्रशुष्कता (dryness of eyes) |
| 5) नेत्ररुक्षता (Roughness) | 6) अभिघात (Injury) |
| 7) वात-पित्त-दुष्टी-रुग्ण | 8) नेत्र जिह्मता (Squint) |
| 9) जीर्णपक्ष्म (Loss of eye lashes) | 10) आविलेक्षण (Cloud or blurring of vision) |
| 11) कृच्छ्रोन्मिलन (Difficulties in opening eyes) | 12) सिराहर्ष (congestion of conjunctival blood vessels or orbital cellulitis) |
| 13) सिरोत्पात (Pannus) | 14) तम (Black out, darkness in front of eyes) |
| 15) अर्जुन (Sub conjunctival hemorrhage) | 16) अभिष्यंद (conjunctivitis) |
| 17) अधिमंथ (Glaucoma) | 18) अन्यतोवात (Trigeminal neuralgia) |
| 19) वातपर्यय (5th cranial disorder) | 20) शुक्रक (शुक्लक) (corneal opacity) |
| 21) नेत्रशूलानंतर (after painful eyes) | 22) संरभ (swollen eyes) |
| 23) अश्रुस्त्रावानंतर (after excessive lacrimation) | |

अयोग्य (Contraindication): - 1) भ्रम, 2) मनः उद्वेग

संभारसंग्रह

- 1) टेबल
- 2) उडीद पीठ 250 ग्रॅम किंवा तर्पण गॉगल
- 3) दोष - व्याधीनुसार घृत उदा. त्रिफला घृत
- 4) कापूस (cotton)

पूर्वकर्म

- 1) रुग्णपरीक्षण - रुग्णाचे नेत्रपरिक्षण करून घ्यावे.
- 2) रुग्णआसन - रुग्णास उत्तान शायिन (supine) अवस्थेत द्रोणी वर झोपवावे. रुग्णावर योग्य प्रकाश पडेल अशी व्यवस्था करावी. सरळ सूर्यप्रकाश किंवा प्रखर प्रकाश (High voltage light) नेत्रावर पडणार नाही याची दक्षता घ्यावी. त्यानंतर कोष्ण त्रिफला क्वाथाने नेत्राचे धावन-मृदुस्वेदन करावे.
- 3) पाळी तयार करणे - रुग्णाच्या नेत्राभोवती उडीदपीठाने 2 अंगुल (3 सेमी) उंच पाळी तयार करावी. सद्याच्या काळात swimming goggle द्वारे तयार केलेले यंत्र (नेत्र तर्पण यंत्र) वापरणे सोयीचे ठरते.

प्रधानकर्म

पाळी तयार केल्यानंतर रुग्णास नेत्र बंद करण्यास सांगावे, कोष्ण घृत/नेत्रतर्पणार्थ द्रव्य मंद गतीने पाळीमध्ये भरावे. पक्ष्मापर्यंत घृत भरलेले असावे. यावेळी रुग्णास डोळ्यांची उघडझाप करण्यास सांगावे.

योग्य कालावधीनंतर अपांग बाजूस (outer canthus) पाळीस छिद्र पाडून स्नेह काढून घ्यावा. अन्यथा कापसाद्वारे पाळीतील स्नेहास काढून घ्यावे.

कालावधी - एक दिवसाआड - पित्तज,
दोन दिवसाआड - स्वस्थ व सन्निपातज,
तीन दिवसाआड - कफज किंवा सम्यक योग लक्षणापर्यंत,
एक दिवस, 2 दिवस वा 3 दिवस (सु. उ. 18/11)

वेळ (मात्रा) -

| व्याधी | मात्रा(वेळ) | |
|------------------------|-------------|---------|
| | मात्रा | सेकंद |
| स्वस्थ | 500 | 159 |
| कफप्रधान | 600 | 150.8 |
| पित्तप्रधान | 800 | 254.4 |
| वातप्रधान | 1000 | 318 |
| संधिगतव्याधी (Canthus) | 300 | 95.4 |
| वर्त्मगत (Palpebra) | 100 | 31.8 |
| शुक्लगत (Sclera) | 500 | 159 |
| कृष्णगत (Iris) | 700 | 222.6 |
| दृष्टीगत (Pupillary) | 800+1000 | 254-318 |
| अधिमंथ (Glaucoma) | 1000 | 318 |

पश्चातकर्म

स्नेह काढून घेतल्यानंतर उडीदाची पाळी काढून घ्यावी, व कोष्ण जलाने किंवा त्रिफला क्वाथाने नेत्र स्वच्छ करावा आवश्यकतेनुसार पूटपाक करावे (अ.ह.सू. 24/12)

धूमपान (अ.ह.सू. 24/9) कफाचे शोधन करण्यासाठी

पथ्य - धूळ, धूर, प्रवास, प्रखर प्रकाश, अतिशीत हवा (AC) वर्ज्य करावे.

सम्यक योग लक्षण (अ.ह.सू. 24/11) सू.उ. 18/12-13

- 1) प्रकाशक्षमता (ability to withstand bright light)
- 2) स्वास्थ्य नेत्र (Healthy eyes)
- 3) विशदं नेत्र (clarity of vision)
- 4) लघु लोचनम् (lightness of eye)
- 5) सुख स्वप्न (Sound sleep)
- 6) वर्णपाटवम् (clearly identifications of colour)
- 7) निर्वृति (तात्कालिक सुख उत्पन्न) (Subside of disease)
- 8) क्रिया लाघव (निमेष-उन्मेष क्रिया शीघ्रकरता येणे, नेत्र हलके वाटणे)
- 9) सुखबोधित्वम् (Easy awakening)

अतियोग- (सू.उ. 18/19)

- 1) नेत्र गौरव (heaviness)
- 2) अश्रुस्राव (excessive lacrimation)
- 3) अविल नेत्रता (blurred vision)
- 4) कंडू (Itching in eye)
- 5) अतिस्निग्ध नेत्र

अयोगः (सू.उ. 18/15)

- 1) रुक्ष नेत्र (dryness)
- 2) आविलता (exhaustion)
- 3) अस्त्राढय (अश्रुबहुलता) (excessive lacrimation)
- 4) असहं रूपदर्शन (Intolerance to light)
- 5) व्याधीवृद्धी (worsening of the disease)

शिरोमास्तिष्क्य (मास्तिष्क्य)

मूर्धतैल (मूर्ध्नि तैल)

मूर्ध प्रदेशी म्हणजे डोक्यावर तैल लावण्याची क्रिया मूर्ध तैल होय. या प्रकारामध्ये शिरोभागी वेगवेगळ्या पद्धतीने तैल लावले जाते. मूर्ध तैल क्रियेचे चार प्रकार आहेत.

अभ्यंगम् परिषेकश्च पिचुर्बस्तिरिति क्रमात्।

मूर्ध तैलम् चतुर्था स्यात् बलवत् च यथोत्तरम् ॥ शा.उ.खं. 11/120

अभ्यंगसेकपिचवो बस्तिश्चेति चतुर्विधम्।

मूर्ध्नि तैलं बहुगुणं तद्विद्यादुत्तरात्तरम्।।

अ.ह.सू. 22/24

1) अभ्यंग, 2) परिषेक, 3) पिचु 4) शिरोबस्ति

ह्या क्रिया गुणाने उत्तरोत्तर अधिक बलवान आहेत.

व्याधी व रुग्ण बलानुसार मूर्ध तैल क्रिया तसेच वापरण्यात येणारे तैल याची निश्चिती चिकित्सकांनी आपल्या विवेकाने करावी.

उपयोगिता (Benefits):

न खालित्यं न पालित्यं न केशाः प्रपतान्ति च।

बलं शिरः कपालानां विशेषेणाभिवर्धते।।

दृढमुलाश्च दीर्घाश्च कृष्णा, केशा भवन्ति।

इन्द्रियाणि प्रसीदन्ति सुत्वग्भवति चाननम्।।

निद्रालाभः सुखं च स्यानमूर्ध्नि तैल निषेवणात्।। च.सू. 5/81-84 अ.ह.सू. 22/34

- | | |
|--|---|
| 1) न खालित्य (No baldness) | 2) न पालित्य (No graging of hairs) |
| 3) न केश प्रपतन्ति (no falling of hairs) | 4) शिर व कपालाची बल वृद्धी (Strong scalp) |
| 5) केशमूल दृढ होणे | 6) केश वृद्धी होणे |
| 7) केश कृष्णवर्णी होणे | 8) इंद्रिय प्रसाद (Improve ability to sense organs) |
| 9) सुत्वग्भवतिच आनन - मुखकान्तीवृद्धी (fairness of face) | |
| 10) निद्रालाभ (sound sleep) | 11) स्वरवृद्धी (improves strength of voice) |
| 12) हनुबल वृद्धी (strength to lower jaw) | 13) शिरोव्याधी - (cranial nerve disorders) |
| 14) Antihypertensive | 15) Antistress |
| 16) मानसव्याधीमध्ये उपयुक्त | |

1. शिरोअभ्यंग

शिरोभागी तैल लावून अभ्यंग करण्याची क्रिया शिरो:अभ्यंग होय

शिरोअभ्यंग (Indications) योग्य अवस्था:

तत्राभ्यंगःप्रयोक्तव्यो रौक्ष्यकण्डूमलादिषु।

अ.ह.सू. 22/25

- 1) शिरोरुक्षता (Dryness of scalp)
- 2) कण्डु (Itching)
- 3) मल (Filth of scalp)
- 4) Scalpsoriasis

वरील अवस्था विशेष अवस्था आहेत. मूर्ध्नीतैलाचे फायदे ज्या व्याधीमध्ये होतात अशा सर्व व्याधीमध्ये शिरोअभ्यंग करता येते.

संभारसंग्रह

- 1) खुर्ची (Saloon chair)
- 2) तैल - प्रकृति व्याधीनुसार
- 3) पंचकर्म सहाय्यक 01

| | | |
|----------------|---|--------------------------------------|
| तैल - Dandruff | - | दूर्धुरपत्रादि तैल |
| पालित्य | - | नीलीभृंगादि, महाभृंगराज तैल |
| प्रकृतिनुसार | - | |
| वात | - | नारायण तैल |
| पित्त | - | चंदन बला लाक्षादि तैल, क्षीरबला तैला |
| कफ | - | त्रिफलादि तैल |

विधी - रुग्णास वेग निस्सारणानंतर खुर्चीवर बसण्यास सांगावे. मन्यापासून खालील भाग टॉवेल/ वस्त्राद्वारे झाकावे. पंचकर्म सहाय्यकांनी स्वस्तीर्वचनानंतर रुग्णाच्या पाठीमागील बाजूस उभे राहावे. आवश्यक मात्रेमध्ये तैल कोष्ण करुन रुग्णाच्या शिरोभागी लावावे.

तैल शिरोभागी हळुहळु पसरवावे व हलक्या दाबाने अभ्यंग करावा. शिरोभागी मन्याभागी व कर्णपाली या भागात हलक्या दाबाने अभ्यंग करावा.

अभ्यंग करतांना आवश्यकतेनुसार रुग्णांची अवस्था बघून दोन्ही हातांच्या पंजांनी हलक्या दाबाने ताडन करावे.

| | | |
|---------------|---|-------------|
| तैलाचे तापमान | - | अंदाजे 40°C |
| योग्य काल | - | प्रातःकाळी |
| कालावधी | - | 30-40 मिनिट |

घ्यावयाची काळजी : - 1) अभ्यंग करतांना झटक्याने रुग्णाचे शिर मागे-पूढे हलवू नये

2. शिरोपरिषेक (शिरोधारा)

पर्याय- शिरोधारा शिरःसेक, शिरःसेचन, शिरोअवषेक

शिरोभागी औषधी द्रवांचे परिषेचन (irrigation) करणे म्हणजेच शिरः कपाल भागी धारा सोडण्याची क्रिया शिरोपरिषेक होय. शिरोधारा ही तैलाच्या व्यतिरिक्त व्याधी, प्रकृती नुसार दूध, तक्र, क्वाथ (कषायाचे) इ. औषधी द्रव द्रव्यांची केली जाते. द्रव्यांच्या वापरानुसार दुग्धधारा (क्षीरधारा) तक्रधारा, कषाय (क्वाथ)धारा, तैलधारा अशी नावे पडली आहेत. सद्य काळात पंचकर्माच्या नावाखाली सर्वाधिक लोकप्रिय क्रिया असून 'शिरोधारा' ही पंचकर्माचा symbol बनली आहे.

योग्य (Indications) -

अरुंधिकाशिरस्तोददाहपाक व्रणेषु तु।परिषेकः.....।।

अ.ह.सु. 22/25

- 1) अरुंधिका (dandruff eruption of scalp)
- 2) शिरस्तोद (Headache)
 - i) वातज (Tension headache) ii) पित्तज (Vascular headache)
- 3) दाह (Burning sensation)
- 4) पाक (Suppuration, dermatological condition of scalp)
- 5) व्रण (Ulcers on scalp)
- 6) Hypertension
- 7) मानस व्याधी - i) Stress, ii) Psychological disease, iii) Anxiety
- 8) अर्दित (Facial palsy due to peripheral nerve lesion*) [A.H.S. Commentary by T. Sreekumar]
- 9) निद्रानाश (Insomnia)

तैलधारा

संभारसंग्रह-

- | | |
|---------------------|---------------------------------------|
| 1) धारा टेबल/द्रोणी | 2) तैल 2 लिटर (व्याधी व प्रकृतीनुसार) |
| 3) धारा पात्र यंत्र | 4) gauze piece |
| 5) bandage | 6) रास्नादि चूर्ण 5 ग्रॅम |
| 7) टॉवेल | 8) पंचकर्म सहाय्यक 2 |

धारापात्र - 1.5 ते 2 लीटर द्रव मावेल अशा आकाराचा मातीचा किंवा धातुचा (स्टील, तांबे, पीतळ) पात्र असावा. मुखभाग विस्तारलेला असावा. धारापात्राच्या मूखभागी समांतर अंतरावर तीन छिद्र पाडून त्यामध्ये साखळी अडकवून तिन्ही टोक एकत्र करावे. पात्राच्या मध्यभागी कनिष्ठिका अंगुलीएवढे छिद्र असावे.

नारळाच्या कवटीचा (coconut shell) अर्धाभाग घेवून गोलाकार भागास दंतूरीत करावे. व मध्यभागी एक छिद्र करावे. त्यानंतर दंतूरीत भाग खाली राहिल अशापद्धतीने धारापात्रामध्ये पालथी ठेवावी. जाड सुती कापड घेवून त्याची वर्ती तयार करावी. वर्तीचे एक टोक 2 सेमी लांब आडव्या काडीस बांधून दुसरे टोक नारळाच्या छिद्रामधून व पात्राच्या छिद्रामधून बाहेर काढावे वर्तीची लांबी अंदाजे 8 इंच असावी.

सद्य स्थितीमध्ये स्वयंचलीत शिरोधारा यंत्र उपलब्ध आहेत. परंतु शास्त्रीय क्रियेचा रुग्णावर पडणाऱ्या मानसिक प्रभावास विशेष महत्त्व आहे.

| | |
|--------------------------|---|
| वातदुष्टी | - क्षीरबला तैल - शमन, बृहण धन्वन्तर तैल - वातपित्त शामक, सुतिका बृहण बला तैल |
| पित्तदृष्टी | - चंदनबला लाक्षादि तैल - पित्तवात शामक, बृहण मधुयष्ट्यादि तैल - वातपित्त शमन क्षीरबला तैल |
| कफदुष्टी | - एलादि तैल - उष्ण, वातकफशामक रक्तप्रसादन, Psoriasis कार्पस्यादि तैल - उष्ण, बृहण |
| Dandruff/scalp Psoriasis | - दुर्वादि तैल, दूर्धूरपत्रादि तैल |
| खालित्यपालित्य | - भृंगराज तैल, नीलीभृंगादि तैल |
| निद्रानाश | - ब्राह्मी तैल |

पूर्वकर्म

रुग्णपरीक्षण - रुग्णाचे BP Pulse आवश्यकतेनुसार EEG, MRI, CT Scan व इतर संबंधीत व्याधीचे परीक्षण करून घ्यावे. रुग्णास क्रियेविषयी सविस्तर समजवून सांगावे.

आतुरसिद्धता - रुग्णास वेग निर्हरणानंतर शिरोभागी आवश्यकतेनुसार तैलाचे तलम करून आस्य, मन्या व अंसप्रदेशी अभ्यंग करून कपालप्रदेशी नेत्रापासून दोन अंगुल वर पट्टबंधन करावे (किंवा लांब व जाड कापडी दोरी बांधावी) यामागे शिरोधारा करतांना द्रव नेत्रामध्ये जाऊ नये हा मुख्य उद्देश आहे. कानामध्ये पिचू ठेवावे. अशा पद्धतीने रुग्णांची तयारी केल्यानंतर रुग्णास द्रोणीमध्ये उत्तान शयनावस्थेत (supine position) झोपण्यास सांगावे. यावेळी रुग्णाच्या मानेखाली rolled towel किंवा लहान उशी ठेवावी ज्यामुळे रुग्णास अधिक काळ शिरोभाग एकाच स्थितीत ठेवणे सुखकर होईल.

औषध सिद्धता - योग्य तेलाची निवड करून त्यास कोष्ण करावे.

सामान्य तापमान - 40°C

प्रधानकर्म

रुग्णास धारा टेबलवर झोपविल्यानंतर धारापात्राची उंची रुग्णाच्या कपाल प्रदेशापासून 3 इंच उंचीवर असेल अशा पद्धतीने स्थिर करावे. धारापात्रातील छिद्रास सहाय्यकानी अंगुलीद्वारे बंद करून कोष्ण स्नेह धारापात्रामध्ये चालावे. छिद्रावरील अंगुली बाजूला करून शिरोभागी स्नेहाची धार पडू द्यावी धारा मध्यभागी पडत आहे याची खात्री करून घ्यावी. धारा एकसारखी अखंडीत असावी (uniform & uninterrupted). धारा चालू असतांना पात्र दोलायमान असावा. (दोलायमान असण्यासाठी वैद्यवर्गामध्ये मत मतांतरे आहेत.)

धाराटेबलाखाली असलेल्या पात्रात तैल जमा करावे व त्यास कोष्ण करून पुनः धारापात्रामधे घालावे. ही क्रिया धारा करतांना खंड पडू नये अशा पद्धतीने चालू असावी.

कालावधी - 45-60 मिनिट, 7-14 दिवस

योग्यकाल - प्रातः सकाळी 7 वाजता, सायं 5-6 वाजता

पश्चातकर्म

शिरोभागावरील पट्टबंधन व कर्णपिचू काढावे. शिरोभागातील तैल पुसून काढावा त्यानंतर रास्नादि चूर्ण लावून रुग्णास 15-20 मिनिटे विश्रांतीचा सल्ला द्यावा. आवश्यकतेनुसार नंतर कोष्णजलाने स्नान करण्यास परवानगी द्यावी.

ध्यावयाची काळजी -

- 1) तैल अधिक उष्ण नसावा
- 2) धार खंडीत नसावी
- 3) धार नेत्रामध्ये जाणार नाही याची काळजी घ्यावी

व्यापद -

- 1) शिरःशूल (धारा उंचावरून केल्यास)
- 2) शिरोगौरव (धारा कमी वेगाने केल्यास)
- 3) भ्रम (अतिवेगाने धारा केल्यास)
- 4) प्रतिश्याय (शीत तैल असल्यास)
- 5) नेत्रदाह (तैल अधिक उष्ण असल्यास)

चिकित्सा - (धाराकल्प 21-22)

- 1) नस्य - प्रथमन, रुक्ष नस्य
- 2) गंडूष
- 3) अंजन
- 4) सुंठी धान्यक पान
- 5) सैध्व मिश्रित स्नेह बस्ति तिसऱ्या दिवशी
- 6) 4 थ्या दिवशी व्यापदानुसार चिकित्सा
- 7) 5 व्या दिवशी धारा पुन्हा सुरु करता येऊ शकते.

तैल बदलण्याचे नियम : स्नेह पुनःप्रयोग - प्रथम दिवसाचा शेष स्नेह एकत्र करुन त्यात दुसऱ्या दिवशी कमी पडलेली मात्रा नवीन स्नेहाची घालावी असे पूढील दोन दिवस कराते चवथ्या दिवशी पूर्णतः नवीन स्नेह घ्यावा आणि यात आधीच्या विधीप्रमाणे पूढील दोन दिवस उपयोगात आणवा सातव्या दिवशी तिसऱ्या व सहाव्या दिवशीचा स्नेह एकत्र करुन उपयोगात आणावा. जूना स्नेह वापरतांना त्यास गरम करुन त्यातील जलांश जाळून घ्यावे व गाळून घ्यावे.

तक्रधारा

तक्रधारा ही सिद्ध तक्राने शिरोभागी धारा करण्याची क्रिया हाये. तक्र कफ पित्त शाम (बाह्य उपचाराने) असल्याने प्रामुख्याने कफ-पित्त प्रधान व्याधीमध्ये तक्रधारा अधिक उपयोगी आहे.

तक्रधारा योग्य (indication)

क्लमापची शिरोदाह रुजोन्माद प्रमेहिणाम्।

कफपित्तापयोनमितरेषऽच शस्यते।

शीर्षतस्तक्रयुक्तेन धात्रीक्वाथेन सेचनम्।

- | | |
|--|---|
| 1) क्लम (fatigue) | 2) अपची (lymphadenitis) |
| 3) शिरोदाह (burning sensation) | 4) शिरोरुजा (Headache) |
| 5) उन्माद (Insanity) | 6) प्रमेह (Diabetes neuropathy) |
| 7) केश शुक्ल (पालित्य) (premature graying of hair) | 8) करचरण तोदन (prinking pain of hands & feet) |
| 9) ओजःक्षय | 10) दोषकोप |
| 11) मूत्रदोष (disease related to urine) | 12) संधिविश्लेष (Laxity of joints) |
| 13) हृदयरुजा (cardiac pain) | 14) अग्निमांद्य (lower digestion) |
| 15) अरुची (Anorexia) | 16) कर्ण-नेत्ररोग (disease related ear & eye) |
| 17) psoriasis | 18) Acid peptic disease |
| 19) Irritable bowel syndrome | |

संभारसंग्रह

- | | |
|---------------------|--------------------------|
| 1) धारा टेबल/द्रोणी | 2) धारा पात्र यंत्र |
| 3) तक्र - 1.5 लीटर | 4) आमलकीक्वाथ - 1.5 लीटर |
| 5) रास्नादि चूर्ण | 6) तैल (तलम) - 10 मिली |
| 7) Gauze piece | 8) Bandage |
| 9) टॉवेल | 10) पंचकर्म सहाय्यक - 2 |

पूर्वकर्म

औषधी निर्माण -

क्वाथ - आमलकी 200 ग्रॅम घेऊन 8 लीटर पाण्यामध्ये क्वाथ विधीने एक चतुर्थाष (2 लीटर) पर्यंत आटवावे. त्यातील 1.5 लिटर क्वाथ तक्रामध्ये मिश्रण करण्यासाठी वापरावे व उरलेले अर्धा लीटर क्वाथ शिरधावन करण्यासाठी उपयोगात आणावे.

तक्रनिर्माण - प्रथम विधी - आवश्यकतेनुसार योग्य प्रमाणात दूध घेवून मंद आचेवर गरम करावे. त्यानंतर त्यास थंड होऊ द्यावे. नंतर या दूधामध्ये थोडेसे तक्र घालून रात्रभर ठेवल्यास उत्तम दही तयार होते 12 तासानंतर दह्यास घूसळून तक्र तयार करावे व क्वाथासोबत तक्र हा नेहमी (कमी अम्ल) वापरावा. 'अपची' मध्ये पात्र अपवाद आहे यात जुने तक्र वापरतात.

द्वितीय विधी - 1.5 लीटर दूधामध्ये 6 लीटर (हे प्रमाण 1:4, 1:3, किंवा 1:2 असेही वापरण्यात येते) जल घालावे. सोबतच 100 ग्रॅम मूस्ता (भरड) एका जाळीदार कापडाच्या पिशवीमध्ये बांधून यास पातेल्यावर आडवी काठी ठेवून दोलायंत्र पद्धतीने मूस्ताची पिशवी दूधामध्ये ठेवावी व मंद आचेवर गरम करावे. जलांश आटल्यानंतर केवळ दूध शेष असल्यास मूस्तायुक्त पिशवी बाहेर काढावी व दूध थंड होऊ द्यावे. नंतर वरील वर्णिल्याप्रमाणे तक्र तयार करावे. दोष प्राधान्यानुसार खालीलप्रमाणे औषधी सिद्ध तक्र उपयोगात आणले जातात.

| | | |
|------------------------|---|----------|
| कफ प्राधान्य व्याधी | - | मूस्ता |
| पित्त प्राधान्य व्याधी | - | मधुयष्टी |
| कफवात व्याधी | - | बिल्वमूल |
| पित्तवात व्याधी | - | शतावरी |

आतूर परिक्षण - BP, Pulse, EEG (आवश्यकतेनुसार)

विधी - तैलशिरोधारा विधी प्रमाणेच तक्राचीही धारा केली जाते. काही आचार्यांच्या मते शिरोभागावरील उंची 2 अंगुल (3 सेमी) वर्णिलेली आहे.

तक्रधारा करतेवेळी आवश्यकतेनुसार शरीराभ्यंग करण्याची पद्धत केरळ मध्ये फार प्रचलीत आहे.

| | | |
|-----------|---|---|
| योग्य काळ | - | प्रातः 7 सांय 4-6 |
| कालावधी | - | 7 ते 14 दिवस |
| काळ | - | 45 - 90 मिनट (3¼ नाडीका) {1 नाडीका = 24 मिनट} |

पश्चातकर्म

धारा केल्यानंतर शिल्लक आमलकी क्वाथाने शिरोभाग स्वच्छ करावे. नंतर टॉवेलने शिरःप्रदेश कोरडे करून रास्नादि चूर्ण लावावे रुग्णास विश्रांतीचा सल्ला द्यावा.

- व्यापद -
- 1) शीतता अनुभूती - क्रिया थांबवून उष्णोपचार करावे.
 - 2) प्रतिश्याय - प्रतिश्याय चिकित्सा करावी.

क्षीरधारा

औषधी सिद्ध दुग्धाद्वारे धारा केली जाते. प्राधान्याने पित्त व वात पित्त प्रधान व्याधीमध्ये क्षीर धारा केली जाते. दोष व व्याधिअवस्थानुसार गोदुग्ध, स्त्रीदुग्धाचा उपयोग केला जातो. चंदन, यष्टीमधू, पंचगंध गणातील द्रव्य यासाठी प्राधान्याने वापरली जातात.

क्षीरधारा योग्य (Indication)

- 1) उन्माद (Insanity)
- 2) अपस्मार (Epilepsy)
- 3) निद्रानाश (Insomnia)
- 4) शिरोदाह (Burning sensation of head)

औषधी निर्माण - 800 मिली गोदूग्ध घेऊन त्यात आठ पट 6400 मिली पाणी घालावे. स्वच्छ बलामूल व शतावरी भरड एका वस्त्रात घेऊन पोटली बांधावी व जलमिश्रित दूधात दोलायंत्र पद्धतीने अडकवून ठेवावे दूधाचे पात्र मंद आचेवर ठेवावे. जलांश आटवून 800 मिली दूग्ध शेष राहिल तो पर्यंत पाक करावा. त्यानंतर दूधास शीत होऊ द्यावे. पोटली पिळून बाहेर काढावी व दूधास गाळून घ्यावे. व सिद्ध दूधामध्ये धारा करतेवेळी तेवढ्याच मात्रेत (800 मिली) नारिकेल जल मिश्रित करुन तैलधारा/तक्रधारा विधिने धारा करावी.

3. शिरोपिचू

कार्पास पिचू स्नेहाने आलोडीत करून शिरःप्रदेशी / मूर्ध स्थानी ठेवण्याची क्रिया शिरोपिचू होय. यामध्ये अभ्यंग-मर्दनासारखी क्रिया नसल्याने व्रण, शोथ इ. सारख्या अवस्थांमध्ये करण्यास सोपी आहे.

योग्य (Indication)

पिचुःकेशशातस्फुटन धूपने।

नेत्रस्तम्भे च।।

अ.ह.सू. 22/26

- | | |
|--------------------------------------|------------------------------------|
| 1) केशशात (Hair fall, alopecia) | 2) केशस्फुटन (Splitting of hair) |
| 3) धूपन (Burning sensation of scalp) | 4) नेत्रस्तम्भ (Immobility of eye) |
| 5) अर्दित (Facial palsy) | |

संभारसंग्रह

- | | |
|---|-------------------------------|
| 1) खुर्ची (Comfortable armed chair) | 2) आवश्यक स्नेह - 50-100 मिली |
| 3) कार्पास पिचु (Gauze piece 3-4 inch गोलाकार, उंच 1 इंच) | |
| 4) कापड 8 × 8 इंच | 5) रास्ना चूर्ण 5 ग्रॅम |
| 6) टॉवेल | 7) पंचकर्म सहाय्यक - 1 |

| | |
|---------------------|---|
| योग - वात | - क्षीरबला तैल, कार्पस्यादि तैल (उष्ण, बृहण) |
| पित्त | - चंदनबलालाक्षादि, क्षीरबला तैल, मधुयष्ट्यादि तैल |
| कफ | - एलादि, कार्पस्यादि तैल |
| केशपातन | - निलीभृंगादि, महाभृंगराज, दुर्वादिकेर तैल |
| अर्दित | - नारायण तैल, कार्पस्यादि तैल |
| अरुंधिका (dandruff) | - दूर्धुरपत्रादि, दुर्वादिकेर तैल |

पूर्वकर्म

रुग्णाचे केश कमी केलेले असावे. सूर्योदयानंतर वेग विसर्जनानंतर शिरोभाग स्वच्छ करून/स्नानानंतर स्वस्तीर्वचन केल्यानंतर रुग्णास आरामदेह खूर्चीवर बसवावे व मन्यापासून सर्वांगावर वस्त्र आच्छादित करावे ज्यामुळे स्नेह शरीरावर पडणार नाही.

प्रधानकर्म

गोलाकार तयार केलेला कार्पास पिचू (cotton pad) मूर्ध/ब्रह्मरंध्रा (vertex of head) च्या जागी मधोमध ठेवावे. सुखोष्ण केलेले तैल पिचूवर सोडावे पिचूमध्ये स्नेह पूर्ण शोषण होईपर्यंत स्नेह पिचूवर सोडत राहावे.

18 × 18 इंच कापडास त्रिकोणाकार करून पिचूवर शिरोभागी बांधावे ज्यामुळे पिचू एकाच जागी स्थिर राहिल.

पिचूधारण कालावधी - 30 ते 60 मिनिट

योग्य काळ - प्रातः 7

पश्चातकर्म

30-60 मिनिटानंतर शिरोभागावरील कापड काढून पिचू काढून घ्यावे, टॉवेलनी शिरोप्रदेश पुसून काढावे व त्यानंतर शिरःप्रदेशी रास्ना चूर्ण लावावे. रुग्णास थोडा काळ विश्रांतीचा सल्ला द्यावा. आवश्यकतेनुसार स्नान करण्याची परवानगी द्यावी.

घ्यावयाची काळजी - Allergic स्थिती उद्भवल्यास तात्काळ पिचू काढावा.

4. शिरोबस्ति

शिरोभागी तैल काही काळापर्यंत ठेवण्याची मुर्ध तैलप्रकारातील एक क्रिया शिरोबस्ति होय, यासाठी चर्मपट्ट (leather) द्वारे तयार केलेला यंत्र शिरोभागी घट्ट बांधून त्यामध्ये स्नेह काही काळ ठेवले जाते. यास शिरोतर्पण असेही म्हटले जाते.

योग्य (Indication)

बस्तिस्तु प्रसूप्यदितजागरे।

नासास्य शोषे तिमिर शिरोरोग च दाहतो ॥

अ.ह.सू. 26/22

- 1) प्रसुप्ति (loss of sensation of scalp)
- 2) अर्दित (facial palsy specially UMN Pathology)
- 3) अनिद्रा ((insomnia)
- 4) नासाशोष (dryness of nose)
- 5) आस्यशोष (dryness of mouth)
- 6) तिमिर (defective vision)
- 7) शिरोरोग (दारुण अवस्था) (Diseases of head)
 - i) Trigeminal neuralgia
 - ii) Tension headache (वात')
 - iii) Migraine (पित्त')
 - iv) Sinus headache (कफ')
- 8) खालित्य - पालित्य
- 9) पक्षाघात (CVA)
- 10) Schizophrenia
- 11) IBS
- 12) Depression

संभारसंग्रह -

- 1) खूर्ची
- 2) शिरोबस्ति यंत्र - तयार चामडा किंवा रेकझीन पट्टयापासून तयार केलेली टोपी. उंची साधारणतः 12 इंच डोक्याच्या घेरानुसार कमी अधिक करता येईल असा व्यास.
- 3) 3 इंच रुंद व 18 इंच लांब x 2 कापडाची पट्टी
- 4) उडीद पीठ - 200 ग्रॅम
- 5) पातेले
- 6) गॅस, स्टोव्ह
- 7) कापूस (Cotton)
- 8) तैल - 1.5 लिटर
- 9) रास्नादि चूर्ण - 5 ग्रॅम
- 10) पंचकर्म सहाय्यक - 1

तैल - वातप्राधान्यामध्ये

1) नारायण तैल, 2) धन्वन्तरम् तैल, 3) क्षीरबला तैल

पित्तप्राधान्यामध्ये

1) चंदनादि तैल, 2) चंदनबला लाक्षादि तैल, 3) क्षीरबला तैल

कफप्राधान्यामध्ये

1) गुग्गुळु तिक्तक तैल, 2) सर्षप तैल, 3) वचा लसूनादि तैल, 4) त्रिफलादि तैल

पूर्वकर्म -

रुग्णपिरीक्षण - रुग्णाचे BP Pulse आवश्यकतेनुसार EEG, MRI, CT Scan व इतर संबंधीत व्याधीचे परिक्षण करून घ्यावे. रुग्णास क्रियेविषयी सविस्तर समजवून सांगावे.

आतुरसिद्धता - वमन-विरेचन शोधन झालेल्या रुग्णास अभ्यंग व स्वेदन करून शिरोबस्ति करावे (अ.ह. सू. 22/27) परंतु सद्यकाळात शिरोबस्ति पूर्वी शोधन क्रिया प्रचलीत नाहीत. शिरोबस्तिसाठी उत्तमकाळ सायंकाळ आहे. रुग्णाचे डोक्यावरील केस काढून टाकावेत मल, मूत्र विसर्गानंतर अभ्यंग मृदू स्वेदनानंतर रुग्णास जानूएवढ्या उंचीच्या खूर्चीवर बसण्यास सांगावे.

200 ग्रॅम उडीदपीठामध्ये 100 मिली पाणी घालून मळून घ्यावे व चिकट माषकल्क तयार करावा शिरोबस्तियंत्र धारण - 18 इंच लांब कापडी पट्टीवर माष कल्क पसरवून पातळ थराने चिकटवावा त्यास मध्ये दुडपून घ्यावा याचा वापर बस्तियंत्र लावतांना leak होणार नाही यासाठी करावा.

खूर्चीवर बसलेल्या रुग्णाच्या शिरोभागी कपाळावर कर्ण-व भ्रु यांचे वर वरील पट्टी गुंडाळावी. पट्टीचे शेवटचे टोक माषकल्काच्या साहय्याने चिकटवावे

शिरोबस्ति यंत्र शिरोभागी पट्टीवर बरोबर बसेल असे बसवावे. यंत्रातील घट्ट करणाऱ्या पट्ट्या व्यवस्थीत आवळून कुठेही तैल ओघळणार नाही याची दक्षता घ्यावी. त्यावर माषकल्काने बस्ति यंत्र व शिरोभाग यांचा संधी भाग व्यवस्थीत भरून (sealing) घ्यावा.

शिरोबस्तियंत्र बाहेरच्या बाजूने माषकल्क लावलेल्या पट्टीद्वारे वेष्टित करावे.

प्रधानकर्म

कोष्ण तैल कापड किंवा स्पंज बुडवून नंतर बस्तियंत्रामध्ये शिरोभागी पिळून टाकावे किंवा केरळमध्ये नारीकेल पत्र शिरोबस्ति यंत्रामध्ये तिरकस धरून दुसऱ्या टोकांनी पत्राद्वारे तैल टाकण्याची पद्धत आहे. शिरोभागी तैल अंगुल (1.5 सेमी) उंचीपर्यंत सोडावे. तैल शीत झाल्यासते तैल कापड अलोडीत करून बाहेर काढावे व पुनः कोष्ण तैल घालावे ही क्रिया वारंवार करावी. नासास्त्राव ही लक्षणे उत्पन्न झाल्यास किंवा दोषानुसार मुखस्त्राव व निर्धारित करण्यास क्रिया बंद करावी.

योग्यकाळ: प्रातः 7 ते 9, सायं 4 ते 6
काळ : 30 ते 40 मिनीटे किंवा मुख व नासा स्त्राव होईपर्यंत
कालावधी: 7 दिवस

व्याधीनुसार कालावधी (अ.हृदयानुसार)

| | | | | |
|--------|---|----------------|---|-----------|
| वातज | - | 10 हजार मात्रा | = | 53 मिनिटे |
| पित्तज | - | 8 हजार मात्रा | = | 43 मिनिटे |
| कफज | - | 6 हजार मात्रा | = | 32 मिनिटे |
| स्वस्थ | - | 1 हजार मात्रा | = | 6 मिनिटे |

पश्चातकर्म

निर्धारित काळ किंवा सम्यक लक्षणानंतर कापडाद्वारे तैल बाहेर काढावे. कानाशेजारील बस्तियंत्राच्या संधीमध्ये छिद्र पाडून रुग्णाचे शिर एका बाजूस कलते करुन ही तैल काढता येते.

शिरोबस्ति यंत्र काढून घ्यावे. शिरोभांगी चिकटलेला माषकल्क स्वच्छ करावा. शिरोभागावरील तैल स्वच्छ कापडाने पूसून काढावे व शिरोभांगी, स्कंध, हस्त पाद अभ्यंग करावे. रास्नादि चूर्ण शिरोभागी लावून रुग्णास अल्प विश्रांतीचा सल्ला द्यावा. त्यानंतर कोष्ण जलाने स्नान करण्यास सांगावे.

व्यापद व चिकित्सा -

- 1) प्रतिश्याय - रास्नादि चूर्णाने तलम, धूमवर्ति
- 2) शिरोगौरव/शिरःशूल - क्रिया थांबवावी
- 3) मन्या, पृष्ठ शूल - अभ्यंग
- 4) भ्रम, मूर्च्छा - तात्काळ क्रिया थांबवावी

घ्यावयाची काळजी -

- 1) तैल तापमान पूर्ण क्रियेदरम्यान सारखे असावे.
- 2) तैल बस्तियंत्राच्या संधीस्थानातून ओघळणार नाही याची दक्षता घ्यावी.
- 3) रुग्णास क्रिये दरम्यान शिंकणे, जंभा निद्रा इ. वेग येणार नाही याची काळजी

शिरोलेप (तलपोटिचिल)

औषधी द्रव्यांचा कल्क/पिष्टी शिरोभागी लेपन करण्याची विधी म्हणजे शिरोलेप होय. शिरोलेप हा चिकित्सा प्रकार तलपोटिचिल (THALAPOTHICHIL) म्हणून केरलमध्ये प्रसिध्द आहे. प्राधान्याने शिरोलेप मानसरोगामध्ये उपयुक्त चिकित्सा असुन शिरोबस्ति सारखे गुण आहेत.

योग्य (Indications):-

- 1) मानसरोग (Psychiatric)
- 2) अनिद्रा (Insomnia)
- 3) स्मृती अल्पता (Weakness of memory)
- 4) Dandruff
- 5) खालित्य पालित्य (Falling & graying of hairs)

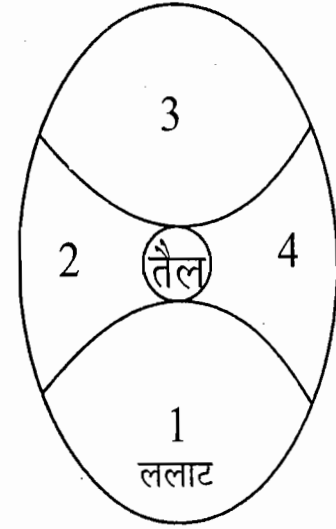
अयोग्य (Contra indications):-

- 1) प्रतिश्याय (Sinusitis)
- 2) श्वास (Breathlessness)

सामान्यतः वापरात येणारे योग:- आमलकी, मुस्ता, पंचगंधम् चूर्ण, कुष्मांड, ब्राह्मी

संभार संग्रह:-

- (1) आवश्यक औषधी द्रव्य उदा. आमलकी (बीजरहीत) 250 ग्रॅम
- (2) तक्र/दुग्ध आवश्यकतेनुसार 900 मि.लि.
- (3) तैल अभ्यंगार्थ 50 मि.लि.
- (4) कमल/कदली पत्र
- (5) कापड
- (6) Bandage
- (7) पातेले
- (8) गॅस स्टोव्ह
- (9) टॉवेल
- (10) रास्ना चूर्ण 5 ग्रॅम



लेप लावण्याचा क्रम

पूर्वकर्म

औषधी निर्माण:-

बीजरहीत आमलकी एक रात्र अंदाजे 900 मि.ली. ते 1 लीटर तक्रामध्ये भिजवून ठेवावे. लेप करण्याच्या दिवशी आमलकी व तक्रामध्ये वाटून कल्क तयार करावा. कल्क वा पिष्टी अधिक पातळ किंवा घट्ट नसावी.

रुग्ण सिध्दता:-

रुग्णाच्या डोक्यावरील केस काढलेले किंवा कमी केलेले असावे. रुग्णास मलमूत्र विसर्जनानंतर खुर्चीवर बसवून घ्यावे. शिरोभागी नेत्र व कर्णाच्या वर पट्टबंधन (वर्ती) करावे.

प्रधानकर्म

पध्दत पहिली:- सर्वप्रथम शिरोभागी अभ्यंग करावे त्यानंतर रुग्णाच्या शिरोभागी कल्क/पिष्टीचा लेप

करावा. लेप 1 ते 3 सेमी पर्यंत जाड असावा. लेप करतांना सर्वप्रथम ललाट भागाकडे (Front) दक्षिण भागास, पश्चिम भागास व शेवटी वाम भागास कल्काचा लेप करावा मध्यभागी थोडासा भाग रिकामा ठेवावा. त्यानंतर मध्यभागी रिकाम्या जागी शक्य तेवढे तैल घालावे. त्यानंतर शिरोभागी पूर्ण कल्क झाकेल अशा पध्दतीने कमलपत्र वा कदलीपत्राचे आवरण करून बांधावे. मध्यभागी छोटे छिद्र ठेवावे- बाहेरच्या बाजूने पत्रास पट्टबंधन करावे.

पध्दत दुसरी:- (चि. संग्रह) रुग्णाच्या शिरोभागी पट्टबंधन करून अभ्यंग करावे. प्रथम तीन चतुर्थाश कल्क लेपासाठी घ्यावा, मध्यभागी कल्काचा लेप करावा नंतर ललाट भागाकडे दक्षिण भागास, पश्चिम भागास व शेवटी वाम भागास लेप करावा. कोणताही भाग रिकामा ठेवू नये. तीन चतुर्थाश कल्क लावून संपल्यानंतर मध्यभागातील 9 ते 12 सेमी एवढा लेप काढून घ्यावा व काढलेल्या जागी पुन्हा नविन कल्काचा लेप करावा. ही क्रिया पुनः पुनः करावी.

साधारण कालावधी - 30-45 मिनिट

योग काल - सायं 4 ते 6 किंवा प्रातः 7 ते 10

पश्चातकर्म

विशिष्ट कालावधीनंतर लेप काढून घ्यावा व अभ्यंग करावे. रास्नादि चूर्ण शीर्ष स्थानी लावावा व रुग्णास विश्राम करण्यास सांगावे. 15 मिनिटांनंतर रुग्णास कोष्णजलाने स्नान करण्याचा सल्ला द्यावा.

घ्यावयाची काळजी:- (1) रुग्णास शीत स्थानी जाण्यास मज्जाव करावा.

(2) वायू, धूळ यापासून बचाव करण्यास सांगावे.

उपद्रव:-

(1) प्रतिश्याय-प्रतिश्याय चिकित्सा करावी.

(2) शिरःशूलाची चिकित्सा करावी. उदा. शिरःशूल वज्र रस

तलम

व्याधीनुसार औषधी द्रव्य शीर्षस्थानी लेप करण्याची क्रिया तलम होय. सुश्रुतांनी 'मास्तिष्क्य' म्हणून वर्णिलेली क्रिया तलम किंवा तळधारण क्रियेशी साम्य राखणारी आहे. (सु.चि. 24/23)

तलम योग्य (Indications):-

- | | |
|--------------------------------------|------------------------------------|
| (1) स्वेदन क्रियेचे पूर्वकर्म म्हणून | (2) मानसरोग (Psychiatric diseases) |
| (3) निद्रानाश (Insomnia) | (4) त्वक्‌रोग (Skin Diseases) |
| (5) Dandruff | (6) शिरःशूल (Headache) |

तलम अयोग्य (Contra Indications):-

- | | |
|---------------------------|---------------------------|
| 1) प्रतिश्याय (Sinusitis) | 2) श्वास (Breathlessness) |
|---------------------------|---------------------------|

सामान्य योग:- पंचगंध चूर्ण,
एलादि चूर्ण,
कर्चूरादि,
बलामूल चूर्ण

संभार संग्रह:-

- (1) आमलकी चूर्ण - 200 ग्रॅम
- (2) तक्र - 800 मि.लि.
- (3) तैल - शिरोभागी अभ्यंगार्थ - 50 मि.ली.
शरीरास अभ्यंगार्थ - 150 मि.ली.
- (4) रास्नादि चूर्ण - 5 ग्रॅम
- (5) पातेले
- (6) खुर्ची
- (7) टॉवेल
- (8) पंचकर्म सहाय्यक - 2

पूर्वकर्म

औषधी निर्माण:- 200 ग्रॅम आमलकी चूर्ण 800 मि.लि. तक्रामध्ये शिजवून घ्यावे. पूर्ण तक्र आटल्यानंतर व आमलकी चूर्ण शेष राहिल्यास गॅसवरून उतरवून घ्यावे. तक्र साधीत आमलकीचूर्णाची पिष्टी तयार करावी.

रुग्णसिध्दता:- रुग्णास शिरोभागी केस कमी किंवा पूर्ण काढलेले असावे. मलमूत्र विसर्जनानंतर रुग्णास खुर्चीवर आसनस्थ करून शिरोभागी योग्य तैलाने लेपन करावे.

प्रधानकर्म

शिरोभागी तैल लावलेल्या रुग्णाच्या शीर्ष/मूर्ध स्थानी आमलकी पिष्टीचा अंदाजे 3 ते 5 सें.मी. जाड लेप करावा. ही क्रिया करत असतांना आवश्यक तैलाने मन्या, स्कंध, पृष्ठ, हस्त भागी अभ्यंग करावे. विशिष्ट कालावधी पर्यन्त ही क्रिया करावी.

योग्य काल- सायं 3 ते 6, प्रातः 7 ते 11

कालावधी - 45 ते 90 मिनीटे

पश्चातकर्म

विशिष्ट कालावधीनंतर पिष्टी काढून घ्यावी व टॉवेलने शिरोभाग पुसून काढावा. त्यानंतर रुग्णास

स्नान करण्यास सांगावे. व्याधीनुसार स्नान वर्ज्य असल्यास पिष्टी काढून पुसल्यानंतर रास्नादिचूणाने मूर्ध भागी घर्षण करावे.

उपद्रव व चिकित्सा:- प्रतिश्याय-लक्षणानुसार चिकित्सा करावी.

शिरोधारा कार्मुकता (Mode of Action of Shirodhara):

Action of shirodhara is supposed to be on Marma, Chakra, Manasvaha strotas. As for modern view there are No. of hypothesis regarding the action on pitutary gland, pineal gland certain studies have been conducted to find out the work of shirodhara on body.

The action of shirodhara on body is anxiolytic, Altered State of Consciousness (ASC) inducing. It changes with the oil used. This may act by

- i) Relaxing action of specific by olfactory nerves,
- ii) Pharmacologic action of substances absorbed through skin,
- iii) Physiologic effect of the procedure which stimulate somato-autonomic reflex through thermosensor, pressure sensors, trigeminal nerve.

Kalpna Dhuri *et al* reported in their study that after shirodhara there is reduction of respiratory rate, mean diastolic BP decreased, dropped mean pulse rate. ECG showed heart rate reduction, EEG showed increased α -waves and decreased β -activity. Score of mood and stress changed significantly.

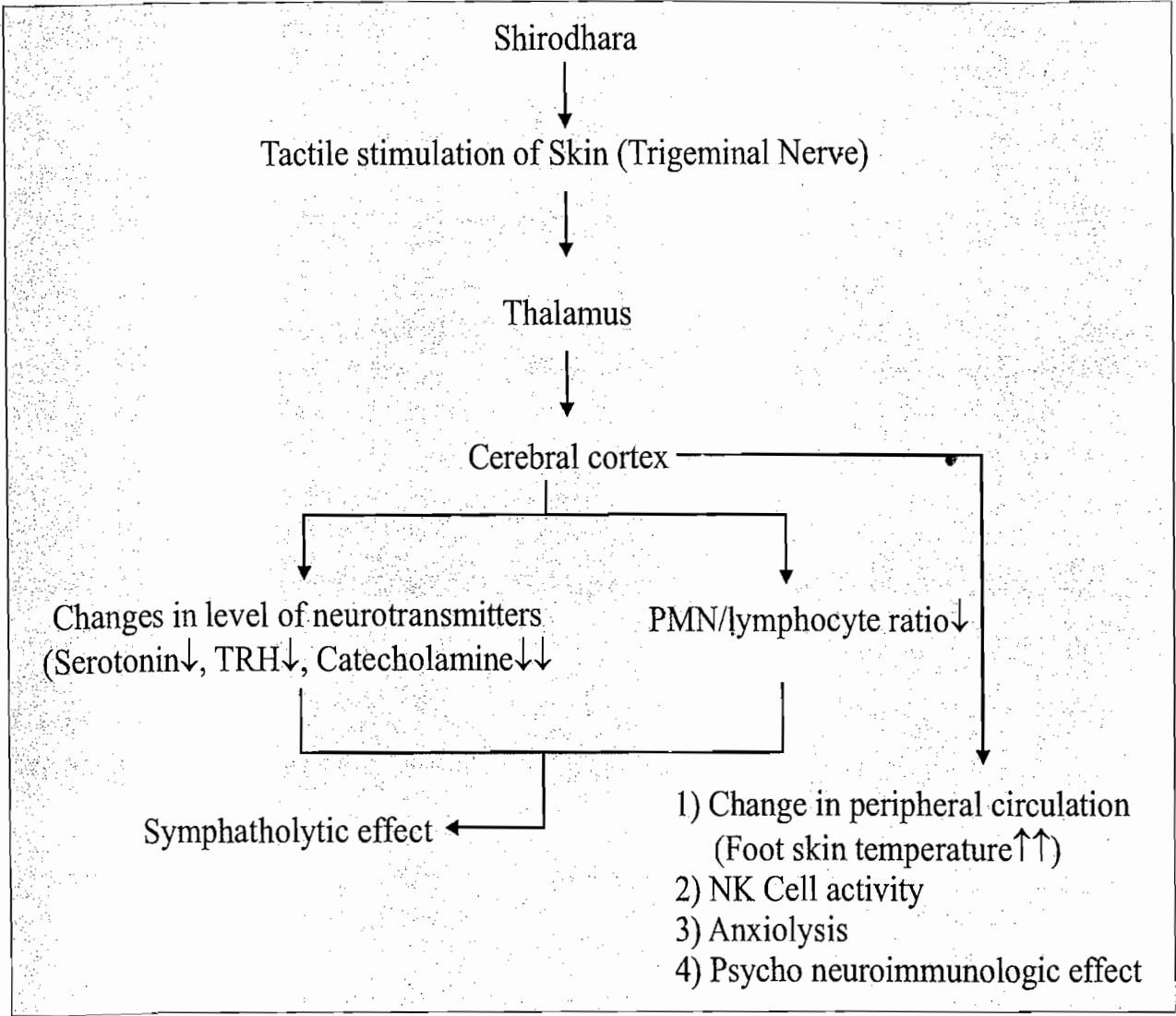
Shirodhara helps in insomnia, psychological disorders. Continuing dripping of oil on forehead exert the pressure which has impulse conduction through tactile and thermo receptors, due to prolonged pressure impulse conduction may interrupt and body may go to rest which causes tranquillizer effect on mind. The procedure may activate the function of thalamus and basal fore brain which bring the amount of serotonin at normal stage inducing sleep.

Skin are having nerve endings. They are spread widely in superficial skin, tissue which are having abundantly pain receptors like bradykinin, serotonin, histamine, potassium ions acetylcholine. They are known to get stimulated by mechanical thermal and chemical stimuli. Shirodhara procedure acts as mechanical and thermal stimuli and regulate the pain.

Kazuo Uebaba *et al* designed interesting experiment of shirodhara and reported the action that it has anxiolytic, ASC inducing effects. It helps in decrease of noradrenaline and exhibit symphatholytic effect.

In their study they reported plasma noradrenaline and urinary serotonin excretion decreased significantly. There was elevation of foot skin temperature than proximal limb, relative natural killer (NK), cell activation.

Anxiolytic effect induced by shirodhara correlated with NK cell and foot temperature elevation. This may be related to autonomic nervous suppression induced by psychological effect of therapy. It is psychoneuro-immunologic effect of shirodhara. Biochemical changes showed significant decrease of noradrenaline, urinary serotonin, decrease of PMN/lymphocyte ratio which may reflect the symphatholytic action of shirodhara.



लेप

औषधी द्रव्यांचे कल्क शरीरावर लेपन करणे म्हणजे 'लेप चिकित्सा' होय. लेप स्निग्ध वा रूक्ष असू शकतो. लेप केवळ स्नेहाद्वारे केला जातो [Dr. G. Shrinivas Acharya, Lepa, PP.No. 181] किंवा औषधीच्या कल्काने केला जातो.

स त्रिविधः प्रलेपः प्रदेह आलेपश्च। तत्र प्रलेपः शीतस्तनुरविशोषी विशोषी वा;।

प्रदेहस्तु उष्णः, शीतो वा बहुलोऽबहुरविशोषीचः मध्यमोऽत्र आलेपः।। सु.सू. 18/6

आचार्य सुश्रुतांनी लेप तीन प्रकारचे वर्णिले आहेत:-

- (1) प्रलेप - विशोषी किंवा अविशोषी. शीत व तनु (पातळ थर) - पित्तशामक, रक्तप्रसादक
- (2) प्रदेह - अविशोषी. शीत किंवा उष्ण, जाड थर, कल्क, पिंडीकृत (डल्हण)

- (1) प्राधान्याने वात, कफ शामक
- (2) व्रण रोपक, व्रण शोधक
- (3) रूजा व शोथ शामक
- (3) आलेप/ निरूध्द आलेप - दोन्हीच्या मधला
 - (1) वात, पित्त, कफ शामक
 - (2) स्रावनिरोधक
 - (3) पूय, मांस अपकर्षण करणारा
 - (4) व्रणशुद्धीकर
 - (5) वेदनाशामक (सु.सू. 16/6)
 - (6) कंडुनाशक (सु.सू. 16/26)
 - (7) शीघ्रपाक करण्यासाठी (सु.सू. 17/15)

लेपयोग्य (Indications):-

- (1) वातरक्त (Gouty arthritis)
- (2) कुष्ठ (Skin diseases)
- (3) विसर्प (Herpes)
- (4) वातव्याधी
- (5) त्वक्गतवात
- (6) मांसगतवात
- (7) स्नायुगतवात

- संभार संग्रह:-
- (1) आवश्यक लेप औषधी
 - (2) घृत, तैल - आवश्यकतेनुसार
 - (3) पातेले
 - (4) गॅस, स्टोव्ह

पूर्वकर्म

व्याधीनुसार औषधी लेप द्रव्य एकत्र करून आवश्यकतेनुसार घृत तैल, मिश्रीत करून पिष्टी तयार करावी. आवश्यकतेनुसार शीत व कोष्ण करावे. सर्वप्रथम ज्या ठिकाणी लेप करावयाचे आहे तो अवयव/ते स्थान स्वच्छ करून घ्यावे.

प्रधानकर्म

व्याधीनुसार चिकित्सकांनी विचारपूर्वक शीत व कोष्ण 'लेप' व्याधीस्थानी लेपन करावा. वर्णिल्याप्रमाणे प्रलेप असल्यास पातळ थर असावा, प्रदेह असल्यास 5 mm जाडीचा थर असावा. 'लेप' करतांना प्रतिलोम गतीने लेप करावा.

पश्चातकर्म

लेप शुष्क किंवा रूजा शमन झाल्यानंतर काढून घ्यावा व कोष्ण जलाने किंवा व्याधीनुसार आवश्यक त्या क्वाथाने (व्रण असल्यास) लेपाची जागा धूवून घ्यावी व स्वच्छ टॉवेल/कार्पास पिचुद्वारे

पूसून घ्यावे.

केवळ सिद्ध तैल व घृताचा लेप असल्यास पुढील लेप क्रियेपर्यंत ठेवल्यास हरकत नाही

घ्यावयाची काळजी:-

- (1) लेप रात्रीच्या वेळी लावु नये (सु.सू. 18/12) अन्यथा लक्षण वृद्धी होण्याची शक्यता असते.
- (2) लेप करतांना गती प्रतिलोम असावी त्यामुळे औषध (Active principle) रोमकुपांमध्ये प्रविष्ट होवून स्वेदवह व सिरामुखांमध्ये शोषले जातील. (सु.सू. 18/4)

काही लेप:-

| अ.क्र. | व्याधी | लेप |
|--------|--------------------|--|
| 1 | वात व्याधी | (1) मधुयष्टी, पिंपळ, त्वक, दालचिनी, जटामांसी, उदुंबर चूर्ण+घृत+दूध (2) यव + दूध + घृत (3) तिळ, सरसो, अतसी, धान्याम्लामध्ये वाटून शीतल प्रदेह |
| 2 | वातरक्त | (1) मधुयष्टी + दूध, घृत, ज्वारीचे पीठ - दाहनाशक (2) जीवनीय सिद्ध घृत - रूजा व दाहशामक (3) तीळ, प्रियाल, मधुयष्टी, कमलनाल, वेतंस + अजादुग्ध - दाह व रूजा शामक (4) पिण्ड तैल |
| 3 | अरुंधिका (Dandruf) | दुर्वादि केर तैलम्, धुर्धुरपत्रादि तैल |
| 4 | शोफ (सु.सू. 37/3) | वातज - मस्तुलुंग, अग्निमंथ, भद्रदारू, रास्ना, सुंठी (सु.सू.37/3) पित्तज आगन्तूज } दुर्वा, मधुक, चंदन, शीतलगण रक्तज कफज - अजगंधा, अश्वगंधा, त्रिवृत्त, कर्कटशृंगी सन्निपातज - लोध्र, हंरीतकी, मदनफल, दुरालभा |
| 5 | तारूप्यपिडिका | (1) लोध्र, धान्यक, वचा - आलेप (शाड्गर्धर) (2) कनकतैल (मधुयष्टी, प्रियंगू, मंजिष्ठा, चंदन, कुमूद, केशर (चक्रदत्त) (3) कुंकुमादि तैलम् (चक्रदत्त) |
| 6 | व्यंग | सिद्धार्थक, वचा, लोध्र, सैधव - प्रलेप (शाड्गर्धर) |

गण्डूष

असञ्चर्यो मुखे पूर्णे गण्डूषः।

अ.ह.सू. 22/12

सुखं सञ्चार्यते या तु मात्रा (सा) कवलः स्मृतः।

असञ्चार्या तु या मात्रा गण्डूषः स प्रकीर्तितः।।

सु.चि. 40/62

औषधी द्रव द्रव्य मुखात धारण करण्याच्या क्रियेस गंडूष म्हणतात. गंडूष तैल, कषाय, मधु, घृत, गोमूत्र, धान्याम्ल इ. मुखामध्ये धारण करून केले जाते. या क्रियेमध्ये मुखांतर्गत द्रव द्रव्यांचा संचार केला जात नाही.

भेदः—गंडूषाच्या कार्मुकतेवरून वाग्भटांनी गंडूषाचे चार प्रकार वर्णिले आहेत.

- (1) **स्निग्ध गंडूषः**— (1) मधुर, अम्ल, सिध्द स्नेहाचा प्रयोग
(2) वातदोषशामक
(3) शुष्कता निर्हरण करणारा
- (2) **शमन गंडूषः**— (1) तिक्त, कषाय, मधुर व शीत द्रव द्रव्य किंवा तैलाचा प्रयोग
(2) पित्तदोष शामक
(3) मुखपाक, दाह शांत करणारा
- (3) **शोधन गंडूषः**— (1) तिक्त, अम्ल, कटू, उष्ण गुण युक्त स्नेह वा क्वाथ
(2) कोष्ण क्वाथ, गोमूत्र, धान्याम्ल, तैलाचा प्रयोग
(3) मुखातील दोष लालाम्राव वृद्धी करून बाहेर काढण्याचे कार्य
(4) कफदोष नाशक
- (4) **रोपण गंडूषः**— (1) तिक्त, कषाय सिध्द द्रव्यांनी
(2) मुखातील व्रणरोपणार्थ उपयोगी

प्रतिदिन गंडूषासाठी तैल किंवा मांसरस याचा उपयोग करावा (अ.ह.सू. 22/5-6)

गण्डूष योग्यः—

- | | |
|--------------------------------------|--|
| (1) दन्तहर्ष (Sensitive teeth) | (2) दन्तचाल (loose teeth) |
| (3) मुखरोग | (4) रसायन कर्म (अ.ह.उ. 39/158) |
| (5) मुखभागी दग्ध (क्षार, अग्नि, विष) | (6) मुखव्रण (Buccal ulcers) |
| (7) शिरोरोग | (8) परिषेक (पिड्डिचिल) च्या अतियोगात (धाराकल्प-25) |

सामान्य गंडूष योग:-

- (1) कोष्णजल तिलपिष्ट - मुखगतवातरोग, दंतहर्ष, दंतचाल
- (2) सिध्दसर्पि किंवा दुग्ध - मुखदग्ध, पाक - पित्तप्रधान मुखरोग
- (3) धान्याम्ल - मुखशोष, मुखदौर्गन्ध्य
- (4) कोष्णजल, क्षार - कफरोग, वक्त्रलाघवतेसाठी (lightness of mouth)
- (5) इरिमेदादि तैल - मुख, दंत रोग
- (6) मधु - मुख व्रण (Ulceration in mouth)

संभार संग्रह:-

- (1) अभ्यंग टेबल
- (2) खुर्ची
- (3) तैल - अभ्यंगार्थ - 50 मि.ली.
- (4) तैल - गंडूषार्थ - 100 मि.ली. किंवा
- (5) क्वाथ, द्रव, गंडूषार्थ 100 मि.ली.
- (6) गॅस स्टोव्ह
- (7) पातेले
- (8) पंचकर्म सहाय्यक - 1
- (9) टॉवेल

पूर्वकर्म

औषध सिध्दता:- क्वाथ, धान्याम्ल विधीवत तयार करून गरज असल्यास कोष्ण करून घ्यावे.

रुग्ण सिध्दता:- प्रातःकाळी मलमूत्र विसर्जनानंतर रुग्णास द्रोणीमध्ये उताना झोपवून आस्यप्रदेशी (face), मन्या, स्कंध प्रदेशी योग्य तैलाने अभ्यंग करून मृदु स्वेद करावा. कपाल, भ्रु, नासा, हनु प्रदेशी एकरेषीय तर कपोल (Cheek) व शंखप्रदेशी वर्तुळाकार गतीने अभ्यंग करावे.

स्वेदनासाठी टॉवेल गरम पाण्यात ओला करून पिळून घ्यावा व त्यानंतर गरम झालेला टॉवेल अंगावर ठेवून स्वेदन करावे.

प्रधानकर्म

अभ्यंग व स्वेद झालेल्या रुग्णास खुर्चीवर बसण्यास सांगावे. त्यानंतर गंडूषार्थ द्रव द्रव्यास कोष्ण (आवश्यकतेनुसार) करून रुग्णास मुखामध्ये धारण करण्यास सांगावे. यावेळी द्रव द्रव्य मुखामध्ये संचार न करता अक्षुब्ध (undisturbed) आरामशीर बसून राहाण्यास सांगावे. रुग्णास मान मागे करून स्वस्थ बसता येईल.

नेत्र व नासा स्राव सुरू झाल्यानंतर रुग्णास मुखातील द्रव्य बाहेर काढण्यास सांगावे.

कालावधी:- खालील लक्षणे दिसेपर्यंत -

- 1) कफपूर्णास्थिता - मुखामध्ये कफ पूर्ण भरे पर्यंत
- 2) घ्राण स्राव - नासास्राव सुरू होईपर्यंत
- 3) अक्षीस्राव - अश्रू येईपर्यंत

योग्यकाळ - सुर्योदयानंतर (अ.ह.सू. 22/10)

पश्चातकर्म

गण्डूष द्रव्य बाहरे टाकल्यानंतर कोष्ण जलाने गुळण्या कराव्यात

सम्यकयोग लक्षणः- सु.चि. 40/65

- (1) व्याधी अपचय - व्याधी नाश
- (2) तुष्टि - सन्तोष
- (3) वैशद्यम् - मुख निर्मलता (Clarity of buccal cavity)
- (4) वक्त्रलाघवम् - मुख लघूता
- (5) इंद्रियप्रसाद - प्रसन्नता (Normal functioning of sense organs)

अयोग लक्षणः- (सु.चि. 40/66)

- (1) जाड्य - जडता (Stiffness of the mouth)
- (2) कफोत्क्लेश - कफवृद्धी (Excessive salivation)
- (3) रस अज्ञान (loss of taste sensations)

अतियोग लक्षणः- (सु.चि. 40/66)

- (1) मुखपाक - Mouth ulcer
- (2) शोष - Dryness
- (3) तृष्णा - Feeling thirsty
- (4) अरूचि - Tastelessness
- (5) क्लम - Sense of exhaustion

आहारः- पथ्य - लघु आहार,

अपथ्य - लाला स्राव अधिक उत्पन्न करणारे खाद्य पदार्थ.

कवल

मुखसंचार्यते या तु मात्रा (सा) कवल स्मृतः। सु.सू. 40/62

औषधी द्रव द्रव्य मुखामध्ये धारण करून सुखपूर्वक संचरण करण्याची क्रिया 'कवल' होय. यास लोक भाषेत 'गुळण्या' म्हणतात. ही क्रिया 'गंडूष' सारखी आहे. केवळ मुखामध्ये संचरण करता येणं म्हणजे कवल होय. गंडूष वा कवल या क्रियांमध्ये औषधी द्रव्यांचे केवळ स्थानिक कार्य होत नसून सर्व शरीरावरही कार्य होतात. कवलग्रहाचे उर्ध्वजत्रुगत परिणाम प्रामुख्याने दिसून येतात.

भेदः- आचार्य सुश्रुतांनी कवल चे 4 भेद वर्णिले आहेत.

- 1) स्नेही कवल:- 1) स्नेह प्राधान्य
2) उष्ण
3) वातदोष शामक
- 2) प्रसादी कवल:- 1) मधुर व शीत
2) पित्तदोष शामक
- 3) शोधन कवल:- 1) कटु, अम्ल, लवण रसात्मक द्रव्यांचा
2) रूक्ष व उष्ण
3) कफशोधक
- 4) रोपण कवल:- 1) कषाय, तिक्त, मधुर, कटू द्रव्यांचा
2) उष्ण
3) व्रण रोपणासाठी

कवल योग्य:- (अ.ह.सू. 22/3)

- | | | |
|-------------------|---|-----------------------------------|
| (1) मन्यारोगी | - | (Occipital to spine region) |
| (2) शिरोरोगी | - | (Diseases related to head) |
| (3) नेत्ररोग | - | (Diseases of eyes) |
| (4) कर्णरोग | - | (Diseases of ears) |
| (5) मुखरोग | - | (Diseases of mouth-buccal cavity) |
| (6) प्रसेक | - | (Ptyalism) |
| (7) कण्ठगत व्याधी | - | (Diseases of throat) |
| (8) वक्त्रशोष | - | (Dryness of mouth) |
| (9) हल्लास | - | (Nausea) |
| (10) तंद्रा | - | (Sleepiness) |
| (11) अरूचि | - | (Anorexia) |
| (12) पीनस | - | (Rhinorrhea) |

सामान्य कवलयोग:-

आचार्य वाग्भटांनी स्वतंत्र कवल योग वर्णन केलेले नाही याचाच अर्थ 'गंडूष' क्रियेसाठी वापरण्यात येणारे कल्प 'कवल' साठी वापरावे असा होतो. काही कल्प सुश्रूतांनी वर्णन केलेले आहेत.

- (1) त्रिकटूकादि कवल:- त्रिकटू, वचा, सर्षप, हरीतकी यांच्या कल्कास तैल, गोमूत्र, कांजी मधु यापैकी एका द्रव्यात मिश्रण करून त्यात लवण घालावे.

- (2) तिलादि कवल:- तीळ, नीलकमल, घृत, शर्करा, दूध, मधू - मुखदाहासाठी
- (3) इरिमेदादि तैल
- (4) पंचवल्कल क्वाथ वा सिध्द तैल

कवल करण्याची क्रिया गंडूष विधीप्रमाणे - केवळ गंडूष क्रियेमध्ये द्रव्यांचा मुखामध्ये संचार करू नये तर कवल विधीमध्ये द्रव्यांचा मुखामध्ये संचार करावा. कवल झाल्यानंतर मुखातून कवल बाहेर काढावा व दुसरा पुनः कवल धारण करावा (सू.चि. 40/64) ही क्रिया सम्यक लक्षणांपर्यन्त करत राहावी.

प्रतिसारण

प्रतिसारणं अंगुल्या घर्षणम्। अरुण दत्त टी. अ.ह.सू. 22/14

जिव्हा वा मुखामध्ये औषधी द्रव्य लावण्याची क्रिया प्रतिसारण होय.

- प्रकारः
- 1) कल्काद्वारे
 - 2) रसक्रियाद्वारे/अवलेहाद्वारे (शा.उ.खं. 10)
 - 3) चूर्णाद्वारे

योग्य (Indications):

- 1) कफरोग
- 2) गदगदत्व
- 3) पक्षाघात सार्दित

द्रव्यः गण्डुष क्रियेमध्ये उपयुक्त द्रव्य (अ.ह.सू. 22/14)

अल्प द्रवामध्ये मिश्रित करुन

विधीः चूर्ण, कल्क, रसक्रिया (घन) अल्प द्रवामधे मिश्रित करुन वा अवलेह मुखामध्ये किंवा जिव्हा भागी लावावे किंवा घासावे याने लालास्राव अधिक होतो.

गण्डुष व प्रतिसारणामध्ये एक सारखी द्रव्ये वापरली जातात मात्र प्रतिसारणामध्ये अधिक तीक्ष्ण (concentrated) असतात. Drugs are more secretory due to hygroscopic potential.

उद्वर्तन

उद्वर्तनं गात्रमर्दनम्। (सू.चि. 24/51 वर डल्हण टिका)

शरीरावर औषधी चूर्णाने किंवा सस्नेह कल्काने प्रतिलोम गतीने मर्दन करण्याच्या क्रियेस उद्वर्तन म्हणतात. चक्रपाणि टीकेमध्ये यास शरीरपरिमार्जन असेही म्हटले आहे (च.सू. 5/93-94 वर च.पा. टिका). प्रामुख्याने रूक्ष चिकित्सा आहे परंतु स्नेहाचा उपयोग करून स्निग्ध चिकित्साही केली जाते.

उद्वर्तनाचे कार्य:-

उद्वर्तनं वातहरं कफमेदोऽनिलापहम्।

स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक्प्रसादकरं परम्।।

सु.चि. 24/51

उद्वर्तनं..... परम्।

अ.ह.सु. 2/15

- | | |
|--|----------------------|
| (1) वातहर | (7) गौरवता नष्ट करणे |
| (2) कफहर | (8) दौर्गन्ध्य नाशक |
| (3) मेद विलयन करणारे | (9) तंत्रा नाशक |
| (4) स्थिरीकरण अंगानाम - शरीरास दृढ व स्थिर ठेवण्याचे कार्य | |
| (5) त्वक प्रसादकर | (10) लाघव कर |
| (6) कांती वृद्धी करणे | (11) कंडू प्रशमन |

भेदः उद्वर्तनाचे खालील दोन प्रकार आहेत.

- 1) उद्वर्तनः- उद्वर्तनमस्नेहहौषध चूर्णादिभिर्घर्षणम्। सू.चि. 24/53 वर डल्हण टिका औषधचूर्णाचे स्नेह मिश्रीत न करता शरीरावर घर्षण करणे उद्वर्तन होय.

उद्वर्तनाचे गुणः-

- | | |
|----------------|---|
| (1) प्रसन्नता | (4) कण्डु, कोठ नाशक |
| (2) शरीरशुद्धी | (5) वातनाशक |
| (3) शरीर लाघव | (6) सिरामुख विस्तृतीकरण (Dilation of opening of channels) |

समुद्र लवणाच्या घर्षणाने उरू लाघवता लक्षण उत्पन्न होते.

- 2) उत्सादनः- सस्नेह कल्केनोद्वर्तनम् उत्सादनम्। डल्हण सु.चि. 24/53 वर

स्नेह युक्त कल्काच्या साहाय्याने किंवा चूर्णामध्ये स्नेह मिश्रीत करून शरीरावर घर्षण करणे म्हणजे उत्सादन होय.

उत्सादन गुणः-

- (1) त्वचास्थित अग्निवृद्धी
- (2) कांतीप्रद-प्राधान्याने स्त्री त्वचेत कांती प्रदान करणे.
- (3) रसायन कर्म
- (4) मांसवर्धनार्थ (सु.सू. 31/30 डल्हण)

उद्वर्तनयोग्यः-

- | | |
|------------------------------|-------------------------------|
| (1) स्वास्थ्यरक्षणार्थ | (2) मानसरोग (उन्माद, अपस्मार) |
| (3) कुष्ठ (Skin diseases) | (4) भगंदर (Fistula) |
| (5) मांसशोष (Muscle wasting) | (6) स्थौल्य (Obesity) |
| (7) प्रमेह | (8) स्वेदाधिक्य |
| (9) Cerebral palsy | (10) पक्षाघात (Hemiplegic) |
| (11) MND | |

सामान्य योगः-

| | |
|------------------------------|---|
| वात व्याधी | कोलकुलत्थादि चूर्ण |
| स्वेदाधिक्य | नागकेशर, उशीर, शिरीषत्वक, लोध्र |
| कुष्ठ | नालपामरादि चूर्ण, कुष्ठादिचूर्ण (च.चि. 7/102) आरग्वधादि कषाय (सु.चि. 9/35) |
| उन्माद | सिध्दार्थक अगद (च.चि. 9/71) आरग्वध अमृतादि (सहस्रयोग) |
| शोष | अश्वगंधा, पूनर्नवा (रक्त, श्वेत) सु.उ. 41/43 |
| अपस्मार | तुलसी, कुष्ठ, हरीतकी, चोरपूष्पी गोमूत्रामध्ये कल्क तयार करून (च.चि. 10/39) |
| उरुस्तंभ | वल्मीकमृत्तिका, करंजमूल, करंजफल, करंजत्वक, इष्टिका चूर्ण यांचे चूर्ण वस्त्रगाळ करून (च.चि. 27/49) |
| युवानपिडिका | निम्ब + आरग्वध कल्क (सू.चि. 20/39) |
| बल, वर्ण, शरीर पुष्टयार्थ | जीवन्ती, शतवीर्या, मंजिष्ठा, अश्वगंधा (च.चि. 8/178) |

उद्वर्तनार्थ

- (1) वातजप्रकृती-हिमसागर तैल प्रकृती
- (2) पित्तजप्रकृती-नालपामरादि तैल, चंदनबलालाक्षादि तैल
- (3) कफजप्रकृती-त्रिफलाद्य तैल

संभारसंग्रहः-

- | | |
|----------------------------------|-------------------------|
| (1) द्रोणी | (4) टॉवेल |
| (2) उद्वर्तनार्थ औषधी चूर्ण, तैल | (5) पातेले |
| (3) गॅसस्टोव्ह | (6) पंचकर्म सहाय्यक - 2 |

विधी

पूर्वकर्म

प्रातःकाळी मलमूत्र विसर्जनानंतर रुग्णास अल्प व्यायाम करण्यास सांगावे व नंतर रुग्णास कमीत कमी वस्त्रात द्रोणीमध्ये झोपण्यास सांगावे. उद्वर्तनासाठी वापरण्यात येणाऱ्या द्रव्यास गॅसवर कोष्ण करावे.

प्रधानकर्म

पंचकर्म सहाय्यकांनी हातामध्ये चूर्ण/कल्क घेऊन रुग्ण शरीरावर प्रतिलोम गतीने घर्षण करावे. अभ्यंगासारख्या सात स्थितीमध्ये रुग्णाच्या अवस्थानुरूप घर्षण करावे.

संधिस्थानी, उरोभागी, हस्ततल, पादतल स्थानी गोलाकार (Clockwise and anticlockwise) गतीने घर्षण करावे बाकी सर्व स्थानी रेषेत प्रतिलोम गतीने घर्षण करावे.

वेळ - प्रातःकाळ: 6 ते 7

कालावधी - 30 - 45 मिनिटे

पश्चातकर्म

योग्य कालावधीनंतर स्वच्छ टॉवेलने शरीरावरील चूर्ण/कल्क पुसून घ्यावे. अर्धा तास रुग्णास विश्रांतीचा सल्ला द्यावा त्यानंतर कोष्ण जलाने स्नान करण्यास सांगावे.

घ्यावयाची काळजी : चूर्ण डोळ्यात, नाकात जाणार नाही याची दक्षता घ्यावी.

पूटपाक

औषधी, मांसरस यांचा पूटपाक विधीने तयार केलेल्या स्वरसाद्वारे नेत्रतर्पण करण्याची क्रिया पूटपाक होय

योग्य (Indications):

1. तर्पणानंतर
2. नेत्रतर्पणामधे वर्णिलेल्या व्याधीमध्ये
3. दृग दौर्बल्य

अयोग्य (Contraindications):

1. अनस्यार्ह
2. नेत्रतर्पणासाठी अयोग्य

प्रकार

सवाते स्नेहनः, श्लेष्मसहिते लेखनो हितः

दृग्दौर्बल्यऽनिले पित्ते रक्ते स्वस्थे प्रसादनः।।

अ.ह.सू. 24/13

| | प्रकार | दोषप्राधान्य | मात्रा/दिवस | उपयोगीद्रव्य |
|---|---------|----------------------------|---------------------|---|
| 1 | स्नेहन | वात | 200/2 (60 सेंकद) | अनुपमांस, भेद, वसा, मज्जा, जीवनीयगण, दुरध |
| 2 | लेखन | कफ | 100/1 (32 सेंकद) | पक्षांचे यकृत व मांस, स्रोतोजन, ताम, सैधव, शंख, मुक्ता, मस्तु, हरताल, मनःशिल इ. |
| 3 | प्रसादन | वात, पित्त, रक्त स्वस्थ | 300/3 (90 सेंकद) | मृग पक्ष्यांचे यकृत, मज्जा, आंत्र, हृदय, मांस मधूरगण द्रव्य घृत, दुध |

पूटपाक स्वरस निर्माण :

मांसाचे व औषधी द्रव्यांची स्वतंत्र बारीक करून दोन वेगवेगळे पिण्ड तयार करावे, त्यानंतर स्नेहनासाठी उरुबूक पत्र (एरण्ड पत्र), लेखनासाठी वटपत्र व प्रसादनासाठी अंभोजपत्र (कमलपत्र) घेवून पिण्डास वेष्टीत करावे त्यानंतर पत्रावर मातीचा लेप करून गोवरी किंवा कोळश्यांच्या निखाऱ्यावर तप्त करावे. रक्त वर्णाचे तप्त झाल्यानंतर त्यास बाहेर काढून शीत करावे व द्रव्यांचा स्वरस काढून स्वच्छ कपड्याने गाळून घ्यावे.

विधी - नेत्रतर्पणासारखी

सम्यक योग, अयोग, अतियोग - नेत्रतर्पणामधे वर्णिल्याप्रमाणे

अंजन

सुक्ष्म कल्क किंवा चूर्ण शलाका वा अंगुलीद्वारे नेत्रामधे लावण्याची क्रिया अंजन क्रिया होय. अंजन क्रिया नेत्र व्याधीमधे केली जाते.

प्रकार

| अ.क्र | सुश्रुत (सु.उ. 18/52) | अष्टांगसंग्रह (अ.सं.सू. 12/8) | अ.हृदय (अ.ह.सू 23/10) | शाडुर्गधर |
|-------|-----------------------|-------------------------------|-----------------------|-----------|
| 1 | लेखन | लेखन | लेखन | लेखन |
| 2 | रोपण | रोपण | रोपण | रोपण |
| 3 | प्रसादन | प्रसादन | प्रसादन | प्रसादन |
| 4 | - | स्नेहन | - | स्नेहन |

कल्प

पिण्डो रसक्रिया चूर्ण स्त्रिधैवाञ्जन कल्पना।

गुरौ मध्ये लघौ दोषे ता; क्रमेण प्रयोजयेत्।।

अ.ह.सू. 23/13

अंजनासाठी खालीलप्रमाणे औषधांचे कल्प तयार करून वापरले जातात.

1. पिण्ड (गुटिका) - गुरुदोषांमधे
2. रसक्रिया - मध्यदोषांमधे
3. चूर्ण - अल्प दोषांमधे

अंजन शलाका

अंजन योग्य (Indications):

सु.उ. 18/51

व्यक्त रूपेषु दोषेषु शुद्ध कायस्य केवले। नेत्र एव स्थिते दोषे प्राप्तमञ्जनमाचरेत्।।

1. दोष व्यक्त अवस्थेत असल्यास (केवळ नेत्ररोग) व शोधनानंतर
2. पक्व लिंगनाश लक्षणानंतर (अल्प कंडू, शोफ)
3. स्राव घन झाल्यानंतर (स्राव रक्तवर्णता, घर्षण कमी झाल्यानंतर)

अयोग्य (Contraindications): अ.ह.सू. 23/22-23, सु.उं. 18/68-69

1. भिरु
2. विरिक्त-वमित
3. श्रम
4. रुदित
5. मद्यपि
6. क्रोध
7. ज्वर
8. वेगआघात
9. शिरादोष
10. शिरोरुक
11. जागरण केलेले
12. दिवास्वाप केलेले
13. शिरःस्नाते
14. धूमपान केलेले
15. अजीर्ण
16. अर्के अदृष्टे (सूर्य दर्शन नसतांना)

योग

1. सिरोत्पात - घृतमाक्षिक
2. सिराहर्ष - मधू व रसांजन
3. तिमीर - अक्षबीजादि
4. अर्म - सितामनःशिलादि
5. सर्व नेत्ररोगांमध्ये - बृहत्वादि नेत्रवर्ति (बृहती, एरण्डमूल, शिग्रु, त्वक, सैधव).

संभारसंग्रह

1. शलाका
2. औषधीयोग
3. कॉटन पॅड

शलाका : 10 अंगूल (15 सेमी) लांब असावी. शलाका मध्यभागी तनु (बारीक) असावी व टोक पुष्पकलिका सारखे असावे. शलाका ताम्र (लेखनकर्मासाठी), लोह वा अंगुलीद्वारे (रोपणकर्मासाठी) आणि सुवर्ण वा रजत (प्रसादनकर्मासाठी) यापासून बनविलेली असावी.

विधी : रुग्णास टेबलवर बसवावे. वाम हस्ताने चिकित्सकाने रुग्णाचे नेत्र उघडून दक्षिण हस्तामध्ये शलाका घेवून योग्य त्या औषधी द्रव्याने कनिनिकापासून अपांगापर्यंत व पुन्हा अपांग ते कनिनिकापर्यंत अंजन लावावे.

काल : सकाळी व सायंकाळी (सायं प्रातर्वाञ्जनं स्यात्। शा. उं. 13/73)

मात्रा

| अंजन प्रकार | पिण्ड व रसक्रिया | चूर्ण |
|-------------|------------------|---------|
| लेखन | 1 कलाय | 2 शलाका |
| रोपण | 2 कलाय | 3 शलाका |
| प्रसादन | ½ कलाय | 4 शलाका |



3

स्वेदन (Sudation Therapy)

निरूक्तिः- 'स्विद् धातु + घञ प्रत्यय - स्वेद

'स्विद् धातु + णिच् ल्युट। गात्रादितो धर्मादिः निस्सारण व्यापदे - शरीरातून स्वेद काढणे.

व्याख्या:- स्तम्भगौरवशीतघ्नं स्वेदनं स्वेदकारकम्।।

च.सू. 22/11

ज्या कर्माने शरीरातील स्तम्भ, गौरव, शीतता ही लक्षणे नष्ट केली जातात व शरीरामध्ये स्वेद निर्माण केला जातो त्या कर्मास स्वेदन म्हणतात.

स्वेद हा मेद धातुचा मल असून शरीरातील दोष व मल काढण्यासाठी मदत करतो. शरीरातील क्लेद धारण करण्याचे कार्य स्वेद करतो. क्लेद शरीरातील जलांश घटक सामान्य स्थितीत राखण्याचे कार्य करतो. पर्यायाने शरीरातील दोष व मल क्लेदाच्या आश्रयाने स्वेदन कर्माने बाहेर पडत असतात व शरीरातील शुध्दता राखली जाते.

स्वेदन हे पंचकर्मातील प्रमुख पूर्वकर्म असून वमनादि शोधनासाठी स्नेहानंतर स्वेदन आवश्यक आहे. दोषांना शाखेतून कोष्ठात आणण्यासाठी व वायूच्या नियंत्रणासाठी 'स्वेदन' हे पूर्वकर्म महत्त्वाचे ठरते. स्वेदन केवळ पूर्वकर्म नाही तर प्रधानकर्मसुध्दा आहे. उदा. आमवात, वातव्याधी यामध्ये प्रधानकर्माच्या रूपाने 'स्वेदन' चिकित्सा केली जाते. स्वेदन हे वात व कफ व्याधीची उत्तम शमन चिकित्सा आहे. (च.सू. 14/3). षडूपक्रमामध्ये स्वेदनाचा अंतर्भाव करून यास प्रमुख चिकित्सा मानली आहे.

स्वेदन महत्त्व व उपयोगिता (Importance & utility)

- (1) स्वेदन हे पूर्वकर्म म्हणून तर काही व्याधीमध्ये प्रधानकर्म म्हणून उपयोगात आणले जाते. वमन, विरेचन या शोधनकर्माचे वेळी दोष आधी शाखेतून कोष्ठामध्ये आणले जातात त्यासाठी स्नेहानंतर स्वेदन कर्म आवश्यक आहे.
- (2) वातव्याधीचे प्रमुख चिकित्सा सूत्रामध्ये स्वेदन करण्यास सांगितले आहे.
'स्नेहनं स्वेदनं संशोधनं मृदू वातस्योपक्रम।। यावरून स्वेदनाची महत्ता लक्षात येते.
- (3) स्वेदनाने शरीरातील स्तम्भ, गौरव, शीतता यांचा नाश केला जातो.
- (4) ज्याप्रकारे शुष्क काठी वाकविण्यासाठी स्नेहन-स्वेदनाची गरज पडते त्याचप्रमाणे स्तब्ध व संकुचीत शरीर अवयवांस सुध्दा नमविले जाऊ शकते एवढे स्वेदनाचे महत्त्व आहे.

शुष्काण्यपि हि काष्ठानि स्नेहस्वेदोपपादनैः।

नमयन्ति यथा न्यायं किं पुनर्जीवितो नरान्।।

च.सू. 14/5

- (5) बस्ति(सारखा) उपक्रमामध्ये स्वेदन पूर्वकर्म व पश्चातकर्म म्हणून उपयोगात आणले जाते.
- (6) स्वेदनमुळे स्रोतोशोधन, स्रोतोमुख विस्फारण व वायूचे नियमन केले जाते. जे शोधनपूर्व कर्मांमध्ये दोष बाहेर काढण्यासाठी आवश्यक असते.
- (7) स्वेदन कर्मांमुळे मलाचे व दोषांचे शोधन केले जाते.
- (8) स्वेदन कफ-वात शामक असल्याने वात व कफ प्राधान्य दोषांची उत्तम चिकित्सा मानली जाते.
- (9) स्वेदनाने अग्निदीप्ती होते व अरूचि नाश होते.
- (10) स्वेदन हे उत्तम त्वकप्रसादक आहे त्यामुळे त्वचेची कांति टिकविण्यासाठी, मृदूता राखण्यासाठी स्वेदन उपयोगी आहे.
- (11) शरीरातील धातूंमधील दोष-मल काढण्याचे कार्य स्वेदन कर्माने केले जाते.

स्वेदनाचे परिणाम: (Beneficial effect of Swedan)

अग्नेर्दीप्ति मार्दवं त्वक्प्रसादं भक्तश्रद्धां स्रोतसां निर्मलत्वम्।

कुर्यात् स्वेदो हन्ति निद्रां सतन्द्रां सन्धीन्स्तब्धांश्चेष्ट्येदाशु युक्तः॥ सु.चि. 32/20

1. अग्नेर्दीप्ति - सम्यक स्वेदनाने जाठराग्नि प्रदीप्त होते
 2. मार्दवं - स्वेदनाने त्वचा मृदु होते
 3. त्वक्प्रसादं - त्वचेची कांती वाढते
 4. भक्तश्रद्धां - अग्नि दीप्त होऊन भोजनाची इच्छा होते
 5. स्रोतस निर्मलत्वम् - स्रोतसांमधील ग्रथीत कफाचे विलयन होऊन स्रोतस निर्मल होतात
 6. अतिनिद्रा हरण - अतिनिद्रा असल्यास स्वेदनाने हे लक्षण दुर होते व सम्यक निद्रा येते
 7. तंद्रा हरण - कफाचा नाश झाल्याने तंद्रा दुर केली जाते
 8. संधीस्तब्धता - स्वेदनाने नष्ट होते व संधीची प्राकृत चेष्टा होण्यास मदत होते.
- या व्यतिरिक्त स्वेदन उपयोगितामध्ये वर्णिलेले लाभ स्वेदनाने होतात

स्वेदन द्रव्य व त्यांचे गुणधर्म (Swedan dravyas & properties):-

स्वेदन द्रव्य शरीरावर त्यांच्या विशिष्ट गुणांमुळे कार्य करतात त्यामुळेच ते वात-कफ शामक तर कधी पित्तशामक असतात. स्वेदन बाह्यतः केले जाते तसेच द्रव्यांच्या गुणांमुळे अंतः स्वेदनपण होते. काही द्रव्य अनग्नि स्वरूपात त्यांच्या गुणांमुळे स्वेदन कार्य करतात उदा. वत्सनाभ व अशी द्रव्य चिकित्सेत उपयोगी ठरतात. स्वेदन द्रव्य प्रामुख्याने खालील गुणांचे असतात.

उष्णं तीक्ष्णं सरं स्निग्धं रूक्षं द्रवं स्थिरम्।

द्रव्यं गुरुच सद् प्रायस्तद्धि स्वेदनमुच्यते॥

च.सू. 22/16

- (1) **उष्ण** - अग्निप्रधान गुण. स्तम्भ, गौरव कमी करणारा गुण, पाचन करण्याचे महत्त्वाचे कार्य या गुणामुळे होते. त्यामुळे आमवस्थेमध्ये शोधनपूर्व आमपाचनाचे कार्य उष्ण गुण करतो. तसेच रस रक्तादि धातुंमधील अग्निमांद्यजनित आम कमी करण्याचे कार्य या गुणामुळे होते. या गुणामुळे स्रोतोमुख विस्फारण्याचे कार्य होते.
- (2) **तीक्ष्ण** - अग्निप्रधान गुण. दाह, पाक करणारा व स्राव करणारा, दोष व मलाचे पाक करून त्यांच्या स्थानातून मार्गस्थ करण्यासाठी स्रवन कार्य करणारा हा गुण आहे. कफ व वातशामक तसेच लेखन कार्य या गुणामुळे होते.
- (3) **सर**- वायू व अग्निप्रधान गुण. अनुलोमन, प्रेरणशील व प्रसरण कार्याने दोषांना शाखेतून कोष्ठाकडे आणण्यासाठी कार्य करणारा हा गुण आहे. (सु.सू. 46/522)
- (4) **स्निग्ध** - जल व पृथ्वी प्रधान गुण. या गुणांमुळे बलवर्धनाचे, वर्णप्रसादन, मृदूता आणण्याचे कार्य होते. वात शामक असल्याने स्वेदनद्रव्यांमध्ये महत्त्वपूर्ण गुण. आम प्राधान्यामध्ये स्निग्ध गुण युक्त द्रव्यांचा निषेध आहे.
- (5) **रूक्ष** - वायू व अग्निप्रधान गुण. स्वेदन स्निग्ध व रूक्ष दोन्ही प्रकाराने होते. दोषांचे आधिक्य बघून रूक्ष किंवा स्निग्ध गुणाचे द्रव्य स्वेदनासाठी निवडावे लागतात. शोषण करणे, मृदूता नष्ट करणे, स्तंभनाचे कार्य रूक्ष गुणांमुळे होते. ज्या व्याधीमध्ये सामता आहे, शोषण व कर्षण अपेक्षित आहे अशा व्याधीमध्ये रूक्ष गुणांचे द्रव्य वापरले जातात.
- (6) **द्रव** - जल महाभूत प्राधान्य गुण. 'द्रवः क्लेदन प्रोक्तः' (सु.सू. 46/520) असे सांगून द्रव गुणांमुळे क्लेदन होते हे स्पष्ट केले आहे. द्रव गुणांमुळे प्रसरण व स्यन्दन कार्य होते. दोषांना स्रोतसामध्ये विष्यंदन करण्याचे व ते शाखेतून कोष्ठाकडे आणण्यासाठी मदत करण्याचे कार्य द्रव गुणांमुळे होते.
- (7) **स्थिर** - पृथ्वी महाभूत प्रधान गुण. स्थिर गुण वात व मल स्तंभन करण्याचे कार्य करतो. 'सर' गुणाच्या विरुद्ध गुण. स्थिर गुणांमुळे स्वेद द्रव्य एकाच विशिष्ट ठिकाणी कार्य करतात. म्हणून एकांग स्वेद, उपनाह या प्रकारच्या स्वेदामध्ये स्थिर गुणयुक्त द्रव्य योजावे लागतात.
- (8) **गुरू** - पृथ्वी व जल महाभूत प्रधान संतर्पण, बृंहण, अवसादकर, उपलेपकर (मलवर्धक) शोषजन्य व्याधीमध्ये अधिक उपयोगी.
- (9) **सुक्ष्म** - आकाश, वायू, अग्नि महाभूत प्रधान गुण. सुक्ष्म स्रोतसांमध्ये स्वेदनाचे कार्य सुक्ष्म गुणांमुळे होते.

स्वेदन द्रव्य

- (1) **स्वेदोपग महाकषायः**-(च.सू. 4/22)जे द्रव्य स्वेदनासाठी सहाय्यक असतात ते 'स्वेदोपग' द्रव्य होत.

- | | | |
|----------------------|------------------------------|------------|
| (1) शिग्रु | (2) एरण्ड | (3) तिल |
| (4) यव | (5) श्वेत पुनर्नवा (वृश्चीर) | (6) कुलत्थ |
| (7) माष | (8) बदर | (9) अर्क |
| (10) पुनर्नवा (रक्त) | | |

(2) दशमूल - लघु पंचमूल व बृहत् पंचमूल मिळून 'दशमूल' तयार होतो. उत्तम वातघ्न स्वेदोपयोगी द्रव्य आहे. जनरल प्रॅक्टीसमध्ये सर्वात जास्त वापरात येणारे द्रव्य. पूर्ण दशमूलाचे द्रव्य मिळणे अवघड आहे. बाजारात भेसळ अधिक प्रमाणात केली जाते.

तत्र त्रिकंटक बृहतीद्वय पृथक्पण्यो विदारीगंधाश्चेति कनीयः।

बिल्वाग्निमंथटिण्डुक पाटलाः काश्मरीचेति महत्।। अवयोर्दशमूलमुच्यते।। सु.सू. 39/70

लघू पंचमूलः (1) गोक्षुर (2) छोटी कंटकारी (3) मोठी कंटकारी (4) शालपर्णी (5) पृश्निपर्णी

बृहत् पंचमूलः (1) बिल्व (2) अग्निमंथ (3) श्योनाक (4) पाटला (5) गम्भारी

(3) पिण्डस्वेद प्रयोगार्थ द्रव्य -

तिलमाष कुलत्थाम्ल घृत तैलमिषौदनं। पायसैः कृशरैर्मासैः पिण्डस्वेदं प्रयोजयेत्।।

गोखरोष्ट्र वराहाश्च शकृत्भिः संतुषैर्यवैः। सिकताप्रासु पाषाण करीषायास पुटकैः।।

च.सू. 14/25-26

- (1) तिल (2) माष (3) कुलत्थ (4) ओदन (5) अम्ल वर्ग द्रव्य (6) घृत (7) तैल (8) मांस
(9) पायस (10) कृशरा (11) शकृत (गाय, उंट इ.) (12) तुष (13) यव (14) वालुका

(4) नाडीस्वेद - अवगाहस्वेदनार्थ द्रवः-

वारूणामृतकैरंड शिग्रुमूलक सर्षपैः। वासावंश करंजार्क पत्रैरश्मन्तकस्य च।

शोभांजनक सैरेय मालती सुरसार्जकैः। पत्रैरुक्त्वात्थ्य सलिलं नाडीस्वेदं प्रयोजयेत्।

च.सू. 14/30-33

- (1) वरूण (2) गुडूचि (3) शिग्रु (4) मूलक (5) सर्षप (6) वासा (7) वंश (8) करंज
(9) अर्क (10) अश्मंतक (11) शोभांजन

(5) उपनाहार्थ द्रव्यः-

अ) काकोल्यादि गणः- (सु.सू. 38/35) (1) काकोली (2) क्षीरकाकोली (3) माषपर्णी
(4) मुद्गपर्णी (5) जीवक (6) ऋषभक (7) जीवन्ती - वातप्रधान व्याधींसाठी

ब) एलादि गणः- (सु.सू. 38/24) (1) एला (2) तगर (3) कुष्ठ (4) जटामांसी (5) दालचीनी
(6) नागकेशर (7) प्रियंगू (8) अगरू - पित्तप्रधान व्याधींसाठी

क) सुरसादि गणः- (सु.सू. 38/18) (1) सुरसा (तुलसी) (2) श्वेत तुलसी (3) कासमर्द
(4) क्षवक (5) काकमाची (6) विषमुष्टि (कुचला) (7) निर्गुण्डी - कफप्रधान व्याधींसाठी

स्वेदन द्रव्य

| अ.क्र | द्रव्यनाम | Botanical Name | रस | वीर्य | गुणधर्म | दोष |
|-------|-----------------------|--------------------------|---------------------------|-------|------------------------------|---------------|
| 1 | शिशु | Moringa oleifera | कटु, तिक्त | उष्ण | लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण | कफघ्न, वातघ्न |
| 2 | एरण्ड | Ricinus communis | मधुर, अनुरस- कटु, कषाय | उष्ण | स्निग्ध, तीक्ष्ण, सुक्ष्म | कफवातनाशक |
| 3 | तिल | Sesammum Indicum | मधुर | उष्ण | गुरु, स्निग्ध | वातशामक |
| 4 | यव | Hordeum vulgare | मधुर, कषाय | शीत | मृदु, रुक्ष | कफपित्तहर |
| 5 | श्वेतपूनीवा (वृश्चीर) | Boerhaavia verticillata | मधुर, तिक्त | उष्ण | लघु, रुक्ष | वातशामक |
| 6 | कुलत्थ | Dolichos biflorus | कषाय | उष्ण | लघु, रुक्ष | कफवातशामक |
| 7 | माष | Phaseolus mungo | मधुर | उष्ण | गुरु, स्निग्ध | वातशामक |
| 8 | बदर | Ziziphus sativas | मधुर, अम्ल, कषाय | शीत | गुरु, स्निग्ध | वातपित्तघ्न |
| 9 | अर्क | Calotropis procera | कटु, तिक्त | उष्ण | लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण | कफवातशामक |
| 10 | पूनीवा | Boerhaavia diffusa | कषाय | उष्ण | लघु, रुक्ष | त्रिदोषघ्न |
| 11 | गोधुम | Tribulus terrestris | मधुर | शीत | गुरु, स्निग्ध | वातपित्तशामक |
| 12 | कंटकारी (छोटी) | Solanum surattense | कटु, तिक्त | उष्ण | लघु, रुक्ष | वातपित्तशामक |
| 13 | कंटकारी (मोठी) | Solanum anguiri | तिक्त, कटु | उष्ण | लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण | कफवातहर |
| 14 | शालपर्णी | Desmodium gangeticum | मधुर, तिक्त | उष्ण | गुरु, स्निग्ध | त्रिदोषघ्न |
| 15 | पृश्निपर्णी | Uraria picta | मधुर, तिक्त | उष्ण | लघु, स्निग्ध | त्रिदोषघ्न |
| 16 | बिल्व | Aegle marmelos | कषाय, तिक्त | उष्ण | लघु, रुक्ष | कफवातशामक |
| 17 | अग्निमंथ | Clerodendrum phlomidis | मधुर, तिक्त कटु, कषाय | उष्ण | रुक्ष, लघु | कफवातशामक |
| 18 | शयानाक | Oroxylum Indicum | मधुर, तिक्त, कषाय | उष्ण | लघु, रुक्ष | कफवातशामक |
| 19 | पाटला | Stereospermum Suaveolens | तिक्त, कषाय | उष्ण | लघु, रुक्ष | त्रिदोषघ्न |
| 20 | गंभारी | Gmelina Arborea | तिक्त, कषाय, मधुर | उष्ण | गुरु | त्रिदोषघ्न |

| अ.क्र | द्रव्यनाम | Botanical Name | रस | वीर्य | गुणधर्म | दोष |
|-------|------------|----------------------------|------------------------|-------|-----------------------|--------------|
| 21 | वरुण | Crataeva magno | तिक्त, कषाय | उष्ण | लघु, रुक्ष | कफवातशामक |
| 22 | गुडूचि | Tinospora cordifolia | तिक्त, कषाय | उष्ण | गुरु, स्निग्ध | त्रिदोषघ्न |
| 23 | मूलक | Raphanus sativus | कटु | उष्ण | तीक्ष्ण, लघु | त्रिदोषघ्न |
| 24 | सर्षप | Brassica Campestris/juncea | कटु, तिक्त | उष्ण | तीक्ष्ण, रुक्ष | कफवातशामक |
| 25 | वासा | Adhatoda vasica | तिक्त, कषाय | शीत | रुक्ष, लघु | कफपित्तशामक |
| 26 | वंश | Bambusa arundinacea | मधुर, कषाय | शीत | रुक्ष, लघु, तीक्ष्ण | कफपित्तशामक |
| 27 | करंज | Pongamia Pinnata | तिक्त, कटु, कषाय | उष्ण | लघु, तीक्ष्ण | वातघ्न |
| 28 | अशमंतक | Ficus rumphii | कषाय | शीत | लघु, रुक्ष | कफपित्तशामक |
| 29 | शोभांजन | Moringa oleifera | कटु, तिक्त | उष्ण | लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण | कफवातशामक |
| 30 | माषपर्णी | Teramnus labialis | मधुर, तिक्त | शीत | लघु, स्निग्ध | वातपित्तशामक |
| 33 | मृद्गपर्णी | Phaseolus trilobus | मधुर | शीत | लघु, रुक्ष | त्रिदोषशामक |
| 34 | जीवन्ती | Lectadenia reticulata | मधुर | शीत | लघु, स्निग्ध | त्रिदोषघ्न |
| 37 | एला | Elettaria cardamomum | कटु, मधुर | शीत | लघु, रुक्ष | त्रिदोषघ्न |
| 38 | तगर | Valeriana wallichii | तिक्त, कटु, कषाय | उष्ण | लघु, स्निग्ध | कफवातशामक |
| 39 | कुष्ठ | Sassurea lappa | तिक्त, कटु, मधुर | उष्ण | लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध | कफवातशामक |
| 40 | जटामांसी | Nordostachys jatamansi | तिक्त, कटु, कषाय | उष्ण | लघु, स्निग्ध | त्रिदोषघ्न |
| 41 | दालचीनी | Cinnamomum zeylanicum | कटु, तिक्त, मधुर | उष्ण | लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण | छेदन, कफघ्न |
| 42 | नागकेशर | Mesua ferrea | कषाय, तिक्त, ईषत् उष्ण | उष्ण | लघु, रुक्ष | पित्तकफशामक |
| 43 | प्रियंगू | Callicarpa macrophylla | तिक्त, कषाय, मधुर | शीत | गुरु, रुक्ष | त्रिदोषघ्न |
| 44 | अगरू | Aquilaria agallocha | तिक्त, कटु | उष्ण | लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण | कफवातशामक |

स्वेदन प्रकार

स्वेदनाचे गुणानुसार, कर्मानुसार, अग्निच्या वापरानुसार वेगवेगळे प्रकार आहेत. जिथे परस्पर दोन विरुद्ध स्वेद आहेत त्या प्रकारास द्वंद्वज भेद म्हटले आहे.

अग्निभेदाने:- स्वेदन कर्म करतांना प्रत्यक्ष अग्निचा वापर करणे व वापर न करणे यावरून दोन भेद आहेत. 1) साग्नि 2) अनाग्नि

1) **साग्नि:-** शरीरावर प्रत्यक्ष अग्निचा वापर करून स्वेद निर्माण करण्याची क्रिया साग्नि स्वेद होय. चरकाचार्यांनी तेरा प्रकारचे साग्नि स्वेद वर्णन केलेले आहेत. आचार्य सुश्रुत व वाग्भट यांनी चार प्रकारचे साग्नि स्वेद वर्णिले आहेत. प्रत्यक्षात चरकोक्त तेरा प्रकारच्या साग्नि स्वेदांचा सुश्रुतोक्त चार स्वेद प्रकारात अंतर्भाव केला जाऊ शकतो.

चरकोक्त तेरा प्रकारचे स्वेद

संकरः प्रस्तरो नाडी परिषेकोऽवगाहनम्। जेन्ताकोऽश्मघनः कर्षूःकुटी भूः कुम्भिकैवच ॥

कूपो होलाक इत्येते स्वेदयन्ति त्रयोदशा।।

च.सू. 14/40

1) **संकर स्वेद :** संकर स्वेद म्हणजे वस्त्राची पोटली बनवून स्वेदन करणे होय. यालाच पिण्डस्वेद म्हणतात. 'संकर' हा शब्द का दिला याला कारण नाही या स्वेदन प्रकारामध्ये स्वेदन द्रव्य वाटून, उकडून वस्त्रामध्ये पोटली बांधली जाते व त्यांना तैलामध्ये सुखोष्ण करून किंवा उकळत्या दूध, क्वाथामध्ये गरम करून व्याधीयुक्त शरीरावर/अवयवांवर स्वेदन केले जाते. हया प्रकारचा स्वेद सर्व शरीराचे स्वेदन करण्यासाठी किंवा शरीराच्या एखाद्या अंगावर स्वेदन करण्यासाठी उपयुक्त आहे. याचे गुणानुसार दोन प्रकार पडतात.

i. **स्निग्ध संकर स्वेद** - तिल, माष, तांदूळ यांना दूध, मांसरस, अम्ल वर्गाचे द्रव्य यांचेसोबत विधिवत पोटली बनवून स्वेद केले जाते.

व्याधी - वातप्रधान

उदा:-षष्टिशाली पिण्ड स्वेद, पत्रपिण्ड स्वेद

ii. **रूक्ष संकर स्वेद** - वालुका, गाय, उंट, घोडा इ. प्राण्यांचे शुष्क पुरीष, लोहपिण्ड, इष्टिकाचूर्ण यांची पोटली करून स्वेद केले जाते.

व्याधी - आमवात, कफप्रधान व्याधी, मेदजन्य व्याधी.

उदा:-वालुका स्वेद

2) **प्रस्तर स्वेद:** रुग्णास शयन योग्य पाषाणावर (6 x 2 ½ फुट) स्वेदन द्रव्यांचा कल्क पसरवून स्वेदन करणे प्रस्तर स्वेद होय.

उपयोगी द्रव्य - शूकधान्य (षष्टिकशाली), शमीधान्य (मूंग, उडद) पुलाक (क्षुद्रधान्य) वेशंवार, पायस. एरण्ड किंवा अर्क पत्र.

स्वेदन योग्य - कटिगतवात, पृष्ठगतवात, गृध्रसी

विधी - रुग्ण उत्तानस्थितीत झोपू शकेल असे पाषाण 2 फूट उंचीवर ठेवतात. यावर शुक्र-शमी धान्य (व्याधीनुसार व गुणकर्मानुसार) यांना शिजवून उष्ण कल्क पाषाणावर पसरविले जाते. त्यावर एरण्डपत्र किंवा अर्क पत्राने अथवा रेशमी कापडाने झाकून रुग्णास लेटवून ब्लॅकेट पांघरवून घ्यावे स्वेद येईपर्यन्त रुग्णास पडून राहण्यास सांगावे.

काल - 10 - 15 मिनिटे

अष्टांग संग्रहामध्ये अशा प्रकारचा संस्तरस्वेद वर्णिला आहे.

- 3) **नाडी स्वेद:** हा एक प्रकारचा बाष्प स्वेद आहे. यामध्ये क्वाथ, दूध इ. द्रव्यांच्या सहाय्याने विशिष्ट पध्दतीने बनविलेल्या यंत्राने स्वेदन केले जाते. यंत्रामध्ये नलीकेची वापर केला जातो म्हणून यास नाडी स्वेद म्हणतात. एकांग स्वेद व सर्वांग स्वेदासाठी उत्तम. दोषांनुसार द्रव्यांची निवड करून नाडी स्वेद केले जाते.
- 4) **परिषेक स्वेद:** हा द्रव स्वेदाचा एक प्रकार आहे. वात, वातकफघ्न द्रव्यांचे क्वाथ, तैल, क्षीर, यांची शरीरावर धारा धरून स्वेदन केले जाते. या प्रकारच्या स्वेदनासाठी धारायंत्र किंवा वस्त्राच्या सहाय्याने वा स्वयंचलीत यंत्राने धारा केली जाते. यास धारा स्वेद सुद्धा म्हणतात.
उदा. - सर्वांगधारा (पिंजिचिल)
- 5) **अवगाह स्वेद:** द्रव स्वेद, स्वेदोपयोगी द्रव्यांचे क्वाथ, तैल, घृत, क्षीर सुखोष्ण करून टबमध्ये भरले जाते व रुग्णास टब मध्ये बसवून किंवा लेटवून स्वेदन केले जाते. स्वेदन द्रव्याची मात्रा रुग्णाच्या नाभीपर्यंत शरीराचा भाग बुडेल एवढी असावी. कटिगतवात, गृध्रसी. पृष्ठगत व्याधीमध्ये अवगाह स्वेद उपयोगी आहे.
- 6) **जेन्ताक स्वेद:** या प्रकारच्या स्वेदासाठी एक विशिष्ट प्रकारची कुटागार (Room) तयार केली जाते. कुटागार गोलाकार असावी व आतील भिंतीला लागून रुग्ण बसू व झोपू शकेल असा ओटा बनवलेला असावा. मध्यभागात अंगारकोष्टक (तंदूरभट्टी सारखा) असावा. यामध्ये शुष्क खदिर, पलाश, बदर यांची साल, कांड जळण्यासाठी टाकावेत. अग्नि निर्धूम झाल्यानंतर व आतील कुटागार पूर्णतः गरम झाल्यानंतर रुग्णास स्वेदनासाठी कुटागार प्रवेश करण्यास सांगावे. सध्याच्या आधुनिक युगात सर्व संसाधनयुक्त कुटागार तयार करता येतात. रुमला काच लावून बाहेरून लक्ष ठेवता येते. BP, Pulse monitor द्वारे रुग्णाच्या स्थितीवर लक्ष ठेवता येऊ शकते.
- 7) **अश्मघन स्वेद:** 6 फूट × 2½ फूट शिला (Marble slab) घेवून त्यावर वातहर द्रव्यांची काष्ठ जाळली जातात व नंतर पाण्याने विझविली जातात. जळलेली काष्ठ बाजूला करून उष्ण झालेल्या शिलेवर रेशमी कपडा अंथरतात. त्यावर अभ्यंग केलेल्या रुग्णास झोपवून वरून मोठी जाड चादर/ब्लॅकेट ओढून ठेवल्याने व उष्ण शिलेमुळे जे स्वेदन होते त्यास अश्मघन स्वेद म्हणतात.

प्रस्तर स्वेद व अश्मघन स्वेदामध्ये फार फरक नाही. प्रस्तर स्वेदामध्ये द्रव्य शिलेवर ठेवून त्यावर रुग्णास स्वेद देतात तर अश्मघन स्वेदामध्ये द्रव्य जाळून टाकल्यानंतर विझवून द्रव्यांस बाजूला काढले जाते व उष्ण शिलेवर स्वेदन केले जाते. प्रस्तरच्या तुलनेत अश्मघन स्वेदामध्ये रूक्षता अधिक असते.

- 8) **कर्षू स्वेदः** कर्षू म्हणजे खड्डा; हा आतून विस्तीर्ण (wide) व मुखे भागात संकुचित म्हणजे Triangular Flask सारखा असावा. सर्वप्रथम या खड्ड्यामध्ये औषधी द्रव्य जाळून घेतात व त्यावर चारपाई (Cot) ठेवतात. चारपाई ही सुतळीने विणलेली असावी. त्यानंतर रुग्णास चारपाईवर झोपण्यास सांगतात वरून ब्लँकेट/चादर ओढून स्वेदन केले जाते. चारपाईवर ब्लँकेट किंवा एरण्डादिपत्र पसरून ठेवले जाऊ शकतात. अश्मघन स्वेदामध्ये बाष्प असते. अश्मघन स्वेदाच्या अपेक्षेने अधिक रूक्ष स्वेद आहे.
- 9) **कुटी स्वेदः** एक विशिष्ट प्रकारचा खोली (Room) तयार केली जाते जी केवळ स्वेदनासाठीच उपयोगी आणली जाऊ शकते. यात कोणत्याही प्रकारची वातायन व्यवस्था (ventilation) नसते. खोलीच्या भिंती औषधीद्रव्यांच्या कल्कांनी लिप्त केल्या जातात. एक चारपाई खोलीच्या मध्यभागी ठेवली जावून त्यावर रुग्णास झोपविले जाते वरून ब्लँकेट ओढण्यास सांगितले जाते. याचवेळी चारपाई शेजारी तप्त कोळशाच्या (औषधी लाकडांचे) शोगड्या ठेवल्या जातात. यामुळे खोली (Room) तप्त होवून रुग्णाचे स्वेदन होते.
- 10) **भू-स्वेदः** निवात स्थानावर (Breeze free area) अश्मघन स्वेदासारखे स्वेदन जमीनीवर करणे म्हणजे भूस्वेद होय. जमीनीवर औषधी द्रव्य जाळले जातात. जमीन गरम झाल्यानंतर अग्नीवर पाण्याचा शिडकाव करून विझविले जाते. जमीन स्वच्छ करून रुग्णास झोपण्यास सांगितले जाते व ब्लँकेटने रुग्णास पांघरले जाते यामुळे स्वेदोत्पत्ती होते.
- 11) **कुम्भी स्वेदः** कुम्भी म्हणजे हंडी (Pot), मोठी हंडी घेवून अर्धा अधिक जमीनीमध्ये पूरली जाते. यावर चारपाई ठेवली जाते. चारपाई सूतळीने जाळीयुक्त विणलेली असावी. यानंतर औषधीद्रव्यांचा कोष्ण क्वाथ हंडीमध्ये ठेवावा व रुग्णास चारपाईवर जाड चादर ओढून झोपण्यास सांगावे. लोह किंवा दगडाचे गोळे तप्त करून क्वाथामध्ये टाकावे ज्यामुळे बाष्पनिर्मिती होऊन रुग्णाचे स्वेदन होईल.
- 12) **कूप स्वेदः** कूप म्हणजे विहिर. विहिरीसारखा मोठा खड्डा निर्वातस्थानी खणून त्यामध्ये औषधीद्रव्य, गाय, घोडा यांचे पुरीष जाळून घ्यावे. ज्यावेळी अग्नि निर्धूम होईल त्यावेळी यावर चारपाई टाकून रुग्णास ब्लँकेट पांघरून झोपण्यास सांगावे. कुपामधून येणाऱ्या उष्णतेने स्वेदन केले जाते. यास कूप स्वेद म्हणतात. हा 'कर्षू' स्वेदापेक्षा रूक्ष आहे.

व्याधी - आमवात, कफानुबंधी वातव्याधी, स्थौल्य.

- 13) **होलाक स्वेदः** एक मोठी शोगडी तयार करून त्यात हत्ती - घोडे यांचे शुष्क पुरीष किंवा

औषधी द्रव्य भरले जाते व त्यांना जाळल्यानंतर त्यावर चारपाई ठेवली जाते. चारपाईवर रुग्णास झोपवून ब्लँकेट पांघरण्यास सांगावे. ज्यामुळे रुग्णाचे स्वेदन होईल. हा कुप स्वेदाचा लघुरूप आहे.

व्याधी -आमवात, कफानुबंधी, वातव्याधी.

आचार्य सुश्रुत व वाग्भट यांचेनुसार स्वेदनाचे प्रकार खालील प्रमाणे:-

- i) **तापस्वेद (Use of Solids):** शरीरास उष्ण करणे-तापविणे तापस्वेद होय. यात प्रत्यक्ष अग्निसंपर्क अपेक्षित आहे. अग्निद्वारे कांस्यपात्र, वालूका, खर्पर, हस्त, वस्त्र यांना गरम करून शरीरावर यांच्या सहाय्याने स्वेदन करणे तापस्वेद होय. यातील सर्वात मृदु स्वेद हस्त स्वेद होय. आचार्य काश्यपांनीही चार महिन्यांच्या बालकासाठी हस्तस्वेद करण्यास सांगितले आहे.
- ii) **उष्मस्वेद (Use of air, vapour):** उष्म म्हणजे बाष्प. बाष्पाद्वारे स्वेदन करण्याची क्रिया उष्मस्वेद होय. चरकोक्त स्वेदाच्या प्रकारापैकी नाडी, स्वेद, अश्मघन, कर्षू, भूस्वेद उष्मस्वेदामध्ये अंतर्भूत केले जाऊ शकतात. सुश्रुतांनी दूध, दही, कांजी, वातघ्न क्वाथ यांना खूप प्रमाणात उकळून यांच्या बाष्पाचा स्वेदनार्थ प्रयोग करण्यास सांगितला आहे. आचार्य वाग्भटांनी उत्कारिका, खर्पर, वालूका, तूप इ. तप्त करून वेगवेगळ्या प्रकारचे स्वेद करण्याच्या क्रियेस 'उष्मस्वेद' म्हटले आहे.
- iii) **उपनाहस्वेद (Use of Semisolids):-** उपनाहन म्हणजे बंधन. ज्या स्वेद क्रियेमध्ये औषधी द्रव्यांचा कल्क कोष्ण करून शरीर अवयवांवर बांधून स्वेदोत्पत्ती केली जाते ती स्वेद क्रिया 'उपनाह' होय. प्रदेह, पिण्डस्वेद, पिण्डबंधन हे उपनाह स्वेदाचे प्रकार आहेत. दोषांनुसार औषधांची योजना करून तिन्ही दोषांमध्ये उपयुक्त असा स्वेद प्रकार आहे.
- iv) **द्रव स्वेद (Use of liquids):** कोष्ण द्रव द्रव्यांद्वारे स्वेदन करण्याची क्रिया द्रव स्वेद होय. या स्वेद प्रकारामध्ये क्वाथ, दूध, तैल, धान्याम्ल यांचा वापर केला जातो. चरकोक्त परिषेक स्वेदाप्रमाणे द्रव द्रव्यांची धारा शरीरावर धरून स्वेदन केले जाते किंवा 'अवगाह' स्वेदा सारखे द्रोणी (टब) मध्ये बसवून औषधी द्रव्याच्या क्वाथाने, तैलाने स्वेदन केले जाते. वाग्भटांनी धातुनिर्मित पात्राने (ज्यामध्ये छिद्र असतात) द्रव औषधांची धारा अर्थात परिषेक करण्यास सांगितले आहे.

चरकोक्त तेरा स्वेदांमध्ये स्वेद प्रकारांचे पुनः पुनः वर्णन केल्यासारखे वाटते. उदा. भूस्वेद व अश्मघन स्वेद किंवा कर्षूस्वेद, कूप स्वेद व होलाक स्वेद. यामध्ये थोड्याफार फरकाने स्वेदन प्रकार एक सारखेच वाटतात. कदाचित त्या काळातील भौगोलिक स्थिती, उपकरणांची उपलब्धता स्थानानुसार वेगवेगळी असल्याने विविध स्वेदांचे वर्णन केलेले असावे. तसेच या स्वेद प्रकारांमध्ये उष्णतेची तीव्रता कमी-अधिक असल्याने गुणांमध्ये तरतमभाव असल्याने व्याधी व बलाचाही विचार केला आहे. म्हणून एक सारखे वाटणारी पण कमी अधिक

फरकांने काही स्वेद प्रकारांचे वर्णन केले गेले असावे.

आजच्या काळात विज्ञानाच्या प्रगतीमुळे वरील स्वेद प्रकार एकाच ठिकाणी करणे शक्य आहे. मुख्य सिध्दांतांना बाजूला न करता युगानुसार बदल करण्यास हरकत नसावी.

- 2) **निराग्नि किंवा अनाग्नि स्वेद:** ज्या स्वेदन क्रियेमध्ये अग्निचा प्रत्यक्ष संपर्क नसतो त्यास निराग्नि स्वेद म्हणतात. चरकाचार्यांनी निराग्नि स्वेद दहा प्रकारचे सांगितले आहेत.

व्यायामउष्णसदनं गुरुप्रावरणं क्षुधा। बहुपानं भयक्रोधवुपनाहाहवातपैः।

स्वेदयन्ति दशैतानि नरं अग्निगुणादृते।।

च.सू. 14/64-65

- (i) **व्यायाम** - ज्या क्रियेने शरीरात थकवा (आयास) उत्पन्न होतो त्यास व्यायाम म्हणतात (सु. चि. 24/36). ज्यामुळे शरीरास स्थिरता व बलवर्धन करण्याचे कार्य होते त्यास व्यायाम म्हणावे. (च.सू. 7/31) व्यायामामुळे शरीरात उष्मा निर्माण होऊन स्वेदन होते. व्यायाम हा अर्धशक्ती असावा म्हणजे कपाळावर स्वेदबिंदू आले की, व्यायाम बंद करावा. व्यायामाने स्थिरता व बलवर्धन होत असल्याने पक्षाघातादि व्याधीमध्ये व्यायाम केल्यास लाभ मिळतो. Physiotherapy ने या प्रकारास अधिक सैद्धांतिक व शास्त्रोक्त मांडलेलं आहे. याशिवाय व्यायामाने अग्निवृद्धी होते, लघुता उत्पन्न होते.
- (ii) **उष्णसदन** - उष्ण घरामध्ये स्वेदन केले जाते. जाडभिंतीची हवाबंद रूम तयार करून दरवाजा बंद केल्यास आतमध्ये रुग्णाला ठेवल्याने स्वेदन होते. रुग्ण गुदमरला जाऊ नये याची काळजी घेतली जावी. आजच्या काळात अधिक स्वेदनासाठी सोयी असल्याने अशाप्रकारचे स्वेद केले जात नाही.
- (iii) **गुरुप्रावरण** - रुग्णास गरम ब्लँकेट किंवा गरम कपडे पांघरूण स्वेदन केले जाते. ही स्वेदनाची सोयीस्कर पध्दत आहे. सध्याच्या काळात Electric Blanket उपलब्ध आहेत.
- (iv) **क्षुधा** - क्षुधेचा वेग धारण केल्यास, अतीव भूक लागल्यानंतर सुध्दा जेवण न केल्याने स्वेदन होते. लक्षात असावे की, Hypoglycemia मुळे perspiration होते त्यामुळे रुग्णाची अवस्था व बल बघूनच अशाप्रकारच्या स्वेदनाचा प्रयत्न करावा.
- (v) **बहुपान** - 'बहुपान' चा अर्थ अधिक मद्यप्राशन करणे होय. मद्य गुणाने उष्ण-तीक्ष्ण, व्यवायी, विकासी असल्याने 'स्वेद' वाढविण्याचे कार्य करतो.
- (vi) **भय** - रुग्णास घाबरवणे. यामुळे रुग्णामध्ये स्वेदोत्पत्ती होते.
- (vii) **क्रोध** - क्रोधाने पित्त प्रकोप होतो, पित्त प्रकोपाने शरीरातील उष्मा वाढून स्वेदोत्पत्ती होते व स्वेदन होते.
- (viii) **उपनाह** - उपनाह स्वेद साग्नि व निराग्नि दोन्ही प्रकारांमध्ये केला जातो. उष्ण वीर्य औषधीचे अग्निचे संस्कार न करता प्रदेह किंवा पिण्ड रूपात बंधन करून स्वेदन करण्याची क्रिया उपनाह होय.

(1) बदर, कुलत्थ, कुष्ठ, वचा, सौंफ, रास्ना, उडद, अतसी तैल, मदनफल, यवचूर्ण, देवदारू, कांजीसोबत मिळवून प्रदेह.

(2) चतुःस्नेह, दशमूल व अगरू लेप.

(ix) आहव - 'मुष्टियुध' वा कुशती द्वारा स्वेदन घडवून आणण्याची क्रिया 'आहव' आहे. स्थौल्यामध्ये या प्रकारचे स्वेदन केले जाऊ शकते. हा प्रकार व्यायामासारखाच आहे.

(x) आतप - सूर्याच्या किरणांद्वारे स्वेदन केले जाते. कुष्ठा सारख्या रोगांमध्ये अशा प्रकाराने स्वेदन केले जाते. आचार्य चरकांनी सिध्मकुष्ठात आतप स्वेद करण्यास सांगितले आहे.

Normal physical causes diaphoresis e.g. physical exertion, spicy foods, strong emotions (anger, fear etc.).

कुष्ठ रूग्णांमध्ये संशोधनासाठी पूर्वकर्म म्हणून अभ्यंग स्वेद करतांना आतप स्वेदाचा उपयोग केला जातो.

II) गुणानुसार भेद: स्वेदनाचे स्निग्ध व रूक्ष असे दोन प्रकार पडतात.

i. स्निग्ध स्वेद-स्निग्ध द्रव्यांचा वापर करून स्वेदन केले जाते. वातप्रधान व्याधीमध्ये प्रामुख्याने स्निग्ध स्वेद केला जातो.

ii. रूक्ष स्वेद-रूक्ष द्रव्यांचा वापर करून स्वेदन केले जाते. प्राधान्याने कफ प्रधान व्याधी, मेदोरोग, आमदोषज व्याधीमध्ये रूक्ष स्वेद केला जातो. वालुका, इष्टिका, लोह, तुष इ. द्वारा स्वेदन हे रूक्ष स्वेदाचे प्रकार आहेत.

रूक्ष स्वेद ते स्निग्ध स्वेद ही एक प्रकारची गुणांची Scale आहे. कफ व वात दोषांच्या तरतम अवस्थानुसार रूक्ष ते स्निग्ध गुणांचे तरतमत्व ठरवून स्वेदन केले जाते.

| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 |
|--------------|-------------|--------------------|--------------------|------------------|-----------------|------------|
| रूक्ष ** | रूक्ष * | रूक्ष ** स्निग्ध * | रूक्ष * स्निग्ध ** | रूक्ष* स्निग्ध** | स्निग्ध * | स्निग्ध** |
| वालुका स्वेद | चूर्ण स्वेद | जम्बीर पिण्डस्वेद | पत्र पोटली स्वेद | धान्यक स्वेद | उत्कारिका स्वेद | पायस स्वेद |

अवयवांमधील दोषांच्या दोष आश्रयस्थानानुसार स्निग्ध व रूक्ष स्वेद व्यत्यास क्रमाने केले जातात.

आमाशयगते वाते कफे पक्वाशयाश्रिते।

रूक्ष पूर्वे हितः स्वेदः स्नेहपूर्वस्तथैव च।।

च.सू. 14/9

रूक्षपूर्वः आमाशय कफाचे स्थान आहे, कफाचे शमन करण्यासाठी प्रथम रूक्ष स्वेद केले जाते. स्थानीक दोष शमनानंतर वात शमनासाठी स्निग्ध स्वेदन केले जाते.

स्निग्धपूर्वः अशाच प्रकारे पक्वाशय वाताचे स्थान आहे. प्रथम पक्वाशयस्थ दुषीत वाताचे शमन करण्यासाठी स्निग्ध स्वेद केले जाते व नंतर दुषीत कफाच्या शमनासाठी रूक्ष स्वेद केले जाते.

III) स्थानानुसार भेदः स्थानानुसार स्वेदनाचे एकांगस्वेद व सर्वांगस्वेद असे दोन प्रकार आहेत.

- (1) एकांग स्वेद - एका विशिष्ट अंगप्रदेशावर स्वेदन केले जाणारे स्वेद प्रकार एकांग स्वेद होय. नाडी स्वेद, संकर (पिण्ड स्वेद), वालुका, उपनाह स्वेद. एकांग स्वेद सामान्यतः प्रधान चिकित्सेच्या रूपाने केले जाते.
- (2) सर्वांग स्वेद -सर्वांगास स्वेदन केले जाणारे स्वेद प्रकार सामान्यतः पूर्वकर्माच्या रूपाने केले जाते. प्रधान चिकित्सेसाठी पण सर्वांग स्वेदन केले जाते. उदा. प्रस्तर, कुटी, जेंताक इ. स्वेद सर्वांग स्वेद करणारे स्वेदन प्रकार आहेत.

IV) बलानुसार स्वेद प्रकारः हे तीन प्रकारचे आहेतः

व्याधौशीते शरीरे च महान् स्वेदो महाबले।

दुर्बले दुर्बलः स्वेदोः मध्यमे मध्यमो हितः।।

च.सू. 14/7

- (i) महान् स्वेद - व्याधी व रुग्णाचे बल उत्तम असल्यास किंवा शीत ऋतू असल्यास महान् स्वेद केले जाते. हस्तपाद, पृष्ठ, स्फिक् प्रदेशी महान् स्वेद केले जाते.
- (ii) मध्यम स्वेद - व्याधी व रुग्णाचे बल मध्यम असल्यास अथवा वंक्षण प्रदेशी मध्यम स्वेद केले जाते. मध्यमं वंक्षणौ शोषमङ्गावयवमिष्टतः।। च.सू. 14/10
- (iii) मृदु स्वेद - व्याधी व रुग्णाचे बल अल्प असल्यास किंवा नेत्र, हृदय, वृषण प्रदेशी मृदु स्वेद केले जाते. वृषणौ हृदयं दृष्टी स्वेदयेन्मृदु नैव वा।। च.सू.14/10

अवयवानुसार स्वेदनाची काळजी (Methods to protect vital organs during swedana)

स्वेदन करतांना काही महत्त्वाच्या अवयवांना स्वेदन देऊ नये किंवा मृदू स्वेद करावा. यासाठी आचार्यांनी काही उपाययोजना करण्यास सांगितल्या आहेत.

- (1) हृदय, नेत्र, वृषण प्रदेशी शक्यतो स्वेदन करू नये. आवश्यकता असल्यास मृदू स्वेदन करावे. (च.सू. 14/10-12)
- (2) वंक्षण प्रदेशी मध्यम स्वेद करावे. (च.सू. 14/10)
- (3) अति स्वेदनाने मस्तिष्कावर परिणाम होतो.

महत्त्वाच्या अवयवांचे संरक्षणासाठीः

- (1) वरील अवयवांवर शक्यतो स्वेदन करू नये अथवा आवश्यक असल्यास आर्द्र कमलपत्र, गव्हाचे पीठाचा पिण्ड बनवून किंवा कार्पास/Cotton bandage यांना आर्द्र करून या अवयवांवर झाकून स्वेदन करावे ज्यामुळे सरळ उष्णता या अवयवांवर लागणार नाही.
- (2) स्वेदनापूर्वी रुग्णास 'आमलकी कल्काचे' तल धारण करून घ्यावे ज्यामुळे मस्तिष्कावर उष्माचे कोणतेही परिणाम होणार नाही.

यासाठी आमलकी चूर्ण 100 gm व 200 gm तक्र यांना शिजवून घ्यावे. पूर्णतः शिजल्यानंतर यास खरलमध्ये अधिक श्लक्ष्ण करून दुसऱ्या दिवशी रुग्णाच्या मूर्धभागी पिण्डस्वरूपात ठेवून बंधन (Bandage) बांधावे.

(3) स्वेदानंतर लगेच रुग्णास शीत जल स्पर्श टाळण्यास सांगावे अन्यथा नेत्रदुष्टी होण्याची शक्यता असते.

(1) The heart beat is a function of chemical processes. The heart beats in response to an electrical impulse in all myocardial muscles that initiates a chain reaction starting with calcium interacting with some complex protein molecules in each of the cells. A chemical reaction doubles its rate increase of the temperature of 10°C and increases the heart rate. (www.biology-online.org)

(2) Heating may cause eye irritation and discomfort related to dry surface of the eyes. Eyes may feel as foreign body is in the eye, creating gritty and sandy feeling.

Naomi Sharon *et al* (2008) reported that exposure to heat can cause damage to the eye lense and that the damage is dependent on the length of exposure.

(3) Researchers have found the reason why a man's testicles rest outside the body in the scrotum rather than in abdomen like the ovaries because the ideal temperature for sperm production is $3 - 4^{\circ} \text{C}$ below normal body temperature. Any warmer will affect sperm count, reducing it by 40 percent per one degree. Hence any type of Swedan on testes may affect the sperm count. (http:www.parentigway.com/preconception).

(V) शोधनांग व शमन स्वेदः (डल्हण- सु.चि. 32/21 वर टिका)

आचार्य डल्हणांनी टिका करतांना कर्मानुसार स्वेदन दोन प्रकारचे सांगितले आहे. चिकित्सा करतांना स्वेदनाचा उद्देश काय, यानुसार हे दोन प्रकार आहेत.

1) शोधनांग स्वेदः यास शोधनांगभूत स्वेद सुध्दा म्हटले आहे. रुग्णामध्ये वमन, विरेचन कर्म करण्यापूर्वी पूर्वकर्माच्या रूपाने स्नेहपान विधीने 3 ते 7 दिवसाचे स्नेहन केल्यानंतर स्वेदन केले जाते यास शोधनांग स्वेद म्हणतात.

कार्य - (1) स्थानीय दोष, स्रोतसात चिकटलेले दोष यांना त्यांच्या स्थानातून बाहेर काढणे.

(2) स्नेहानंतर उत्कलित दोष शाखेतून कोष्ठाकडे आणणे.

(3) वायूचे निग्रहण करणे.

2) शमन स्वेदः प्रत्यक्ष चिकित्सा कर्म करण्यासाठी प्रधानकर्म म्हणून स्वेदन क्रिया करणे म्हणजे शमन स्वेद होय.

कार्य - (1) साम दोषांमध्ये दोष पाचनार्थ रूक्ष स्वेद

(2) शमन स्वेद धात्वाग्नि प्रदीप्त करण्याचे कार्य करते

(3) त्वचा मृदू करणे

(4) स्रोतोशुध्दी

(5) कफ-वात शमन, व्याधी शमन

स्वेदनयोग्य (Indications):- (च.सू. 14/20-24, अ.ह.सू. 17/25-27)

स्वेदन पूर्वकर्म, प्रधानकर्म व पश्चातकर्म म्हणूनही केले जाते. स्वेदन शोधन चिकित्साही आहे आणि शमन चिकित्साही. स्वेदन व्याधी अवस्थेत केले जाते व स्वस्थ अवस्थेमध्येही. स्वेदन प्राधान्याने खालील व्याधीमध्ये उपयुक्त चिकित्सा आहे.

- | | | |
|-------------------|---|--|
| (1) प्रतिश्याय | - | Rhinitis |
| (2) कास | - | Cough, Bronchitis |
| (3) श्वास | - | Asthma, Dyspnea |
| (4) हिक्का | - | Hiccough |
| (5) अंगगौरव | - | Heaviness of the body |
| (6) कर्णशूल | - | Earache |
| (7) मन्याशूल | - | Pain in neck, Cervical spondilitis |
| (8) शिरःशूल | - | Headache |
| (9) स्वरभेद | - | Hoarseness of voice |
| (10) गलग्रह | - | Stiffness of the throat |
| (11) अर्दित | - | Bell's palsy |
| (12) एकांगवात | - | Monoplegia |
| (13) सर्वांगवात | - | Quadriplegia |
| (14) पक्षाघात | - | Hemiparesis/Hemiplegia |
| (15) आनाह | - | Flatulence |
| (16) विनामक | - | Bending of the body |
| (17) विबंध | - | Constipation |
| (18) जंभा | - | Yawning |
| (19) पार्श्वग्रह | - | Stiffness of flanks |
| (20) पृष्ठग्रह | - | Stiffness of the back (Spondylosis, Spondylitis) |
| (21) कटिग्रह | - | Stiffness of the sacral region. |
| (22) कुक्षिग्रह | - | Stiffness of the side of abdomen |
| (23) हनुग्रह | - | Stiffness of the mandible, jaw locking |
| (24) गृध्रसी | - | Sciatica, Disc bulging, PIVD |
| (25) मूत्रकृच्छ्र | - | Dysurea |

| | | |
|--|---|---|
| (26) मुष्कवृद्धी | - | Scrotal enlargement |
| (27) अंगमर्द | - | Bodyache |
| (28) पादार्ति | - | Painful feet |
| (29) जंघार्ति | - | Painful legs |
| (30) उरूअर्ति | - | Painful thighs |
| (31) पाद-जानु-जंघा उरूग्रह | - | Stiffness of legs |
| (32) शोथ | - | Oedema |
| (33) खल्ली | - | Pain in extremities, Painful musculoskeletal condition (Carpal-Tunnel Syndrome) |
| (34) आमदोष | - | |
| (35) शैत्य | - | Cold sensation |
| (36) वेपथू | - | Parkinson's disease/Tremors |
| (37) वातकण्टक | - | Calcaneal spur, plantar fasciitis |
| (38) संकोच | - | Contractures (Rheumatoid arthritis etc) |
| (39) आयस | - | Fatigue |
| (40) सूप्ती | - | Numbness, Peripheral Neuropathy |
| (41) पंचकर्माचे पूर्वकर्म (वमन, विरेचन, बस्ति, नस्य कर्मापूर्वी) | | |
| (42) प्रसूता | - | Puerperal woman |
| (43) मुढगर्भ | - | complicated labour |
| (44) भगंदर | - | Fistula-in-Ano |
| (45) अर्श | - | Hemorrhoids (in the form of sitz bath is common) |
| (46) अश्मरी | - | Renal, ureteric calculus |
| (47) अर्बुद | - | Tumours |
| (48) ग्रंथी | - | Cyst, nodular lump |
| (49) आद्यवात | - | Peripheral ischaemic limb |
| (50) शुक्राघात | - | Seminal obstruction |

या सर्व व्याधी लक्षणांचा व व्याधी अवस्थांचा विचार करता 'स्वेदन योग्य' खालील प्रमाणे विभागले जाऊ शकतात.

- | | |
|--------------------------------|--------------------------------|
| (1) वातव्याधी | - एकांगवात, अर्दित, सर्वांगवात |
| (2) वातकफज व्याधी | - कटिग्रह, पार्श्वग्रह |
| (3) कफज व्याधी | - प्रतिश्याय, कास, श्वास इ. |
| (4) शल्य चिकित्सा साध्य व्याधी | - मुढगर्भ, अर्श, भगंदर |
| (5) शोधन पूर्वकर्म म्हणून | |
| (6) अग्निमांद्य जनीत | - आमदोष, विबंध, आनाह |

स्वेदन अयोग्य (Contraindications):- च.सू. 14/16-19, अ.ह.सू. 27/21-24

- | | |
|---------------------------------|---|
| (1) अतिस्थूल | - Obese |
| (2) रूक्ष | - Dehydrated |
| (3) दूर्बल | - Weak |
| (4) मूर्च्छित | - Unconscious |
| (5) क्षतक्षीण | - Weak after injury |
| (6) क्षाम | - Poisoning |
| (7) मद्यविकारी | - Alcohol intoxication |
| (8) तिमिर | - Diminished vision |
| (9) उदर | - Ascitis |
| (10) वीसर्प | - Cellulitis, pemphigus |
| (11) कुष्ठ | - Skin diseases |
| (12) शोफ | - Edema |
| (13) आढ्यरोगी | - DVT type condition |
| (14) पीत-दुग्ध, दही, स्नेह, मधु | |
| (15) विरेचन झालेले (कृतविरेचन) | |
| (16) भ्रष्ट, दग्ध गुद | - Prolapsed rectum किंवा गुदभागी अग्निकर्म झालेले |
| (17) ग्लानि | - Depression |
| (18) क्रोध, शोक, भय युक्त | |
| (19) क्षुधा, तृष्णायुक्त | - Very much hungry, thirsty |
| (20) कामला | - Jaundice |
| (21) पाण्डू | - Anaemia |

- | | | |
|---------------------------------|---|------------------------|
| (22) प्रमेही | - | Diabetic |
| (23) पित्त प्रकोप/पित्त प्रकृती | | |
| (24) गर्भिणी | - | Pregnant woman |
| (25) पुष्पिता/रजस्वला | - | During menstrual cycle |
| (26) प्रसुता | - | Puerperium |
| (27) रक्तपित्त | - | Bleeding disorders |
| (28) अतिसार | - | Diarrhoea |
| (29) ब्रध्न | - | Having inguinal hernia |
| (30) ओजक्षय - | | |

वरील व्याधीमध्ये शक्यतो स्वेदन करू नये परंतु व्याधी चिकित्सेसाठी स्वेदन आवश्यकच असल्यास मृदू स्वेद करावे. (मृदू चात्ययिके गदे। अ.ह.सू. 17/24)

स्वेदन मुल्यांकन (Assessment of Sudation)

रुग्णाचे स्वेदन करत असतांना उष्णता रुग्णाच्या सहनशक्तीनुसार कमी अधिक असू शकते. अधिक उष्णता झाल्यास दग्धव्रण होऊ शकतो तर कमी स्वेदन झाल्यास अपेक्षित चिकित्सा होत नाही. त्यामुळे चिकित्सकांनी/सहाय्यकांनी सम्यक स्वेदन, अतियोग किंवा अयोगाच्या लक्षणांवरून स्वेदन कर्म करतांना काळजी घेणे आवश्यक असते.

सम्यक योग लक्षणं (Proper sudation):-

शीतशूल व्युपरमे स्तम्भ गौरव निग्रहे।

सञ्जाते मार्दवे स्वेदे स्वेदनात् विरतिर्मता।।

च.सू. 14/13

स्वेदास्रावो व्याधिहानिर्लघुत्वं शीतार्थित्वं मार्दवं चातुरस्य।

सम्यक स्विन्ने लक्षणं

सू.चि. 32/23

- | | | |
|----------------------|---|-----------------------------------|
| (1) शीतोपरम | - | शीतता अनुभूती कमी होणे |
| (2) शूलोपरम | - | Subside of pain symptom |
| (3) स्तम्भनिग्रह | - | Reduction of stiffness |
| (4) गौरव निग्रह | - | Alleviation of sense of heaviness |
| (5) मार्दव (कोमलता) | - | Softness of body |
| (6) स्वेदप्रादुर्भाव | - | Appearance of sweating |
| (7) रोगप्रशमन | - | Remission of the disease |
| (8) शीतसेवनेच्छा | - | Desire of cold |

अतियोग (Excessive sudation):-

पित्तास्रकोपतृणमूर्च्छास्वराङ्गसदनभ्रमाः। सन्धिपीडा ज्वरःश्यावरक्तमण्डलदर्शनम्।।

अ.ह.सू. 17/16

स्विन्नेऽत्यर्थं सन्धिपीडा विदाहः स्फोटोत्पत्तिः पित्तरक्तप्रकोपः।

मूर्च्छाभ्रान्तिर्दाह तृष्णाकलमश्च कुर्यात्तूर्णं तत्र शीतं विधानम्।।

सु.चि. 32/24

जेव्हा तापमान अधिक असेल किंवा स्वेदनाचा काळ अधिक असेल तर अतियोगाचे लक्षणे उद्भवू शकतात. वय, प्रकृती, लिंग, निद्रा, मानसिक अवस्था ऋतू इ. नुसार तापमान सहन करण्याची शक्ती कमी अधिक होऊ शकते त्यामुळे स्वेदन क्रिया करतांना सम्यक लक्षणे समजण्यात चूक झाल्यास अतिस्वेदाचे लक्षणे दिसू शकतात. अतिस्वेदनाने खालीलप्रमाणे लक्षणे दिसून येतात.

- | | | |
|-------------------------|---|-----------------------|
| (1) पित्तप्रकोप | - | पित्त प्रकोप लक्षणे |
| (2) अस्रकोप | - | रक्त प्रकोपाची लक्षणे |
| (3) तृष्णाधिक्य | - | Excessive thirst |
| (4) अंगसदन | - | Sense of exhaustion |
| (5) स्वरसदन | - | Reduction of voice |
| (6) भ्रम | - | Giddiness |
| (7) संधीपीडा | - | Joints pain |
| (8) ज्वर | - | Fever |
| (9) श्यावरक्त मंडलदर्शन | - | Rashes on skin |
| (10) विदाह | - | Burning sensation |
| (11) स्फोटोत्पत्ती | - | Blisters |
| (12) च्छर्दि | - | Vomiting |

हीनयोग (Inadequate Sudation):-

स्वेदनाची काळजी न घेतल्यास व वय, लिंग, बल, ऋतू इ. चा विचार न करता स्वेदन कमी काळ किंवा कमी तापमानाने केल्यास अपेक्षित सम्यक लक्षणे उत्पन्न न होता हीन योगाची लक्षणे उत्पन्न होतात

- (1) सम्यक लक्षणे अभाव
- (2) स्वेद अभाव
- (3) शीतता
- (4) शूलशांती न होणे
- (5) स्तम्भ गौरव

स्वेदन व्यापद व चिकित्सा (Complication and management):-

- (1) अयोग - स्वेदन कर्म करतांना चिकित्सकांच्या/सहाय्यकांच्या चूकीमुळे अयोगाची लक्षणे उत्पन्न होऊ शकतात.

चिकित्सा: स्वेदन बंद करून रुग्णास समजावून पुनः विधीवत स्वेदन करावे.

- (2) अतियोग - यापूर्वी वर्णिल्याप्रमाणे चिकित्सकांच्या निष्काळजीमुळे अतियोगाचे लक्षणे उत्पन्न होऊ शकतात. उत्पन्न लक्षणानुसार चिकित्सा करावी.

चिकित्सा: (1) रुग्णास अतिस्वेदन झाल्यास मधूर, स्निग्ध, शीत व द्रव आहार द्यावा
(अतिस्विन्नस्य कर्तव्यो मधुरः स्निग्ध शीतलः।। च.सू. 14/15)

(2) शीत जल पिण्यास द्यावे.

(3) शीत गृहामध्ये रुग्णास विश्राम करण्यास सांगावे.

(4) चंदन लेप करावे.

(5) स्तम्भन चिकित्सा करावी. यासाठी तिक्त, कषाय, मधूर रसात्मक, शीत, मंद व मृदू गुणयुक्त द्रव्यांची उपाय योजना करावी.

(6) नारिकेल जल पिण्यास द्यावे.

- (3) स्फोट किंवा व्रण झाल्यास -घृतकुमारी गर तात्काळ लावावा, त्यानंतर जात्यादितैल, मधुयष्ट्यादि तैल यांचा स्थानिक उपयोग करावा.

- (4) दाह अधिक असल्यास - प्रवाळपिष्टी, चंद्रकला रस, लघुसूतशेखर यांचे आभ्यन्तर सेवन करण्यास द्यावे.

- (5) **Fainting (मूर्च्छा)** -If the person has been dehydrated, due to heat induced vasodilation, the blood pressure decreases and can cause dizziness or fainting. A more serious problem associated with dehydration is hypovolemic shock. This type of complications may occur in steam box.

(1) Head low position

(2) IV fluids

(3) Check blood sugar for Hypoglycemia

(4) If needed, emergency hospitalization.

आहार व पथ्य विचार (Diet and Regimens)

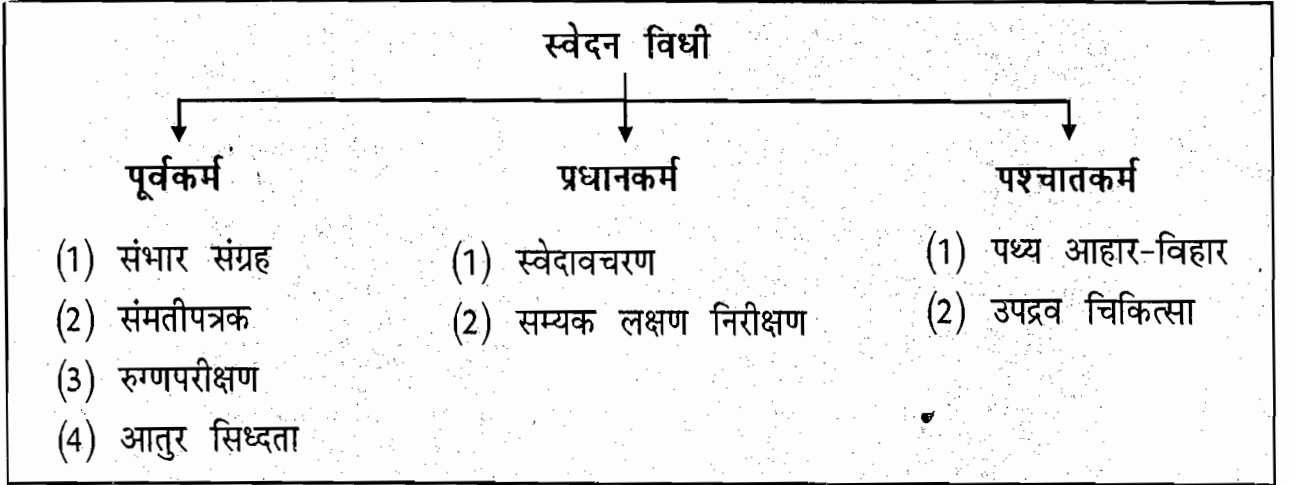
- (1) रुग्णास द्रव आहार द्यावा, लघू व अनभिष्यंद आहार असावा. उदा. पेज

- (2) स्वेदनापूर्वी स्नेहपान, गुरू भोजन करू नये.

- (3) स्वेदनानंतर लगेच शीत स्थानात जाऊ नये. उदा. AC किंवा पंखा चालू असलेल्या रूममध्ये किंवा लगेच AC गाडीमध्ये किंवा ऑटो, स्कूटरवर बसून जाऊ नये.

- (4) स्वेदनानंतर अर्ध्या तासानंतर सुखोष्ण जलाने स्नान करावे.

सामान्य स्वेद विधी



स्वेद प्रकारानुसार प्रत्येक स्वेदाची विधी वेगवेगळी आहे. सामान्यतः स्वेद विधी तीन प्रमुख कर्मांमध्ये विभागली जाऊ शकते.

विशेष परीक्षणामध्ये दोषांची प्राधान्यता, व्याधी, प्रकृती यांचे परीक्षण करून प्रत्यक्ष स्वेदन कोणत्या प्रकारचा द्यावयाचा आहे ते ठरवावे. रुग्णास एकांग की सर्वांग स्वेद, रूक्ष किंवा स्निग्ध स्वेद द्यावयाचा आहे याचा निर्णय घ्यावा.

पूर्वकर्म

- (1) **संभार संग्रह:** स्वेदनासाठी आवश्यक असणारी सामग्री जमा करून ठेवावी, तसेच व्यापद अपेक्षित धरून त्यानुसार चिकित्सेच्या दृष्टीने औषधांची तयारी करून ठेवावी.
 - (i) नाडी स्वेद, पिण्डस्वेद, अवगाहन या स्वेदन प्रकारानुसार यंत्र
 - (ii) स्वेदल द्रव्य - दोषानुसार, व्याधीनुसार
 - (iii) टॉवेल
 - (iv) सूतशेखर, प्रवाळपिष्टी, मुक्तापिष्टी इ.
 - (v) IV fluids
- (2) **संमतीपत्रक (Written consent):** रुग्णास समजेल अशा भाषेत पंचकर्मातील विधीमुळे होणारे फायदे व संभावीत व्यापद समजावून लिखित पत्रकावर रुग्णाची व/अथवा नातेवाईकांची स्वाक्षरी/अंगठा घ्यावा.
- (3) **रुग्णपरीक्षण:** सामान्य परीक्षण रुग्णाचे वय, बलाचे परीक्षण करून खालील परीक्षण करून द्यावे.

शारीरिक - BP, Pulse (नाडी), Weight

प्रयोगशालेय -

| | |
|---------------------------------|-----------------|
| i) CBC, lipid profile | ii) Blood sugar |
| iii) Urine routine, microscopic | iv) ECG |

- (4) **आतुर सिध्दता:** रुग्णास आवश्यकतेनुसार वस्त्र काढण्यास सांगावे. एकांग स्वेद असल्यास अवयवा पूरते वस्त्र काढून रुग्णास स्वेदनासाठी तयार करावे.
रुग्णास आवश्यकतेनुसार स्वेदनापूर्वी अभ्यंग करावे. रूक्ष स्वेदासाठी अभ्यंगाची गरज नसते.

प्रधानकर्म

- (1) **स्वेदावचरण:** रुग्णाच्या व्याधी-बल इ. विचार करून आवश्यक स्वेद क्रिया करावी. आधी वर्णिल्याप्रमाणे सम्यक स्वेदाची लक्षणे दिसेपर्यंत स्वेदन करावे.
(2) **सम्यक लक्षण निरीक्षण:** या आधी वर्णिल्याप्रमाणे सम्यक स्वेदन, हीनयोग वा अतियोगाच्या लक्षणाचे निरीक्षण करावे. हीन योग व अतियोग झाल्यास चिकित्सा करावी.

पश्चातकर्म

- (1) **पथ्य आहार-विहार:** या आधी वर्णिल्याप्रमाणे रुग्णास पथ्यापथ्य व आहार-विहार करण्यास सांगावा.
(2) **उपद्रव:** उपद्रवांचे निरीक्षण करावे व लक्षणानुसार त्यांची चिकित्सा करावी.

स्वेदन कार्मुकता (Mode of Action of Swedan Chikitsa)

स्वेदन हे षडुपक्रमातील एक उपक्रम तर पंचकर्मातील प्रमुख पूर्वकर्म आहे. स्वेदन हे शोधनपूर्व केले जाते म्हणून पूर्वकर्म, तर काही व्याधीमध्ये प्रधान कर्म म्हणून उपयुक्त आहे. स्वेदनाचे प्रमुख कार्य स्तंभनघ्न गौरवघ्न, शीतघ्न व स्वेदकारक आहे आणि स्वेदनामुळे अग्निदीप्ती, मार्दवता स्त्रोतसांमध्ये निर्मलत्व इ. कार्य होतात.

दोषाः स्वैदैः द्रवीकृत्य कोष्ठ - जे दोष कोष्ठगत आहेत, धातूंमध्ये लीन झालेले आहेत. स्त्रोतसांमध्ये मार्गाविरुद्ध दोष, शाखा, अस्थि, संधीमध्ये संचित दोष ज्यामुळे व्याधी उत्पन्न झालेली असेल अशा दोषांना स्नेहन करून स्वेदन केल्यास दोष द्रवीभूत होऊन कोष्ठामध्ये आणले जातात व जवळच्या मार्गांनी शोधन करता येते.

स्वेदनाचे गुण उष्ण, तीक्ष्ण व सुक्ष्म असल्याने स्वेदन धातूगत कार्य करून दोष द्रवीभूत केले जातात व सर, द्रव या गुणांनी अभिष्यंदित दोषांना कोष्ठापर्यंत आणण्याचे कार्य केले जाते (अ. ह. सू. 17/30)

स्वेदनामुळे स्त्रोतसांत चिकटलेला ग्रथित कफ विकसीत होऊन स्त्रोतसांमध्ये सामान्य संचार करू शकतो. (च.चि 17/71) त्यामुळे श्वास, कास इ. व्याधीमध्ये स्वेदन उपयुक्त ठरते.

वायूनिग्रहण - चिकित्सेचा महत्त्वाचा सिद्धांत म्हणजे वायूचे नियमन. वायू यंत्र तंत्र धर आहे. कफ व पित्त दोष हे वाताच्या अधीन आहेत म्हणून चिकित्सा करतांना वायूचे नियमन आवश्यक आहे आणि वायूचे नियमन करण्याचे कार्य स्वेदन करते.

अग्निदीप्ती - व्याधी उत्पत्तीच्या प्रमुख कारणांमध्ये मंदाग्नि हे एक आहे. मंदाग्निमुळे आमोत्पत्ती होते त्यामुळे स्त्रोतोरोध होऊन व्याधी सम्प्राप्ती घडते स्वेदनाने अग्नि दीप्ती होऊन आमोत्पत्ती थांबविली जाते व स्त्रोतोरोधही दूर केला जातो.

भक्तश्रद्धा - स्वेदनामुळे भक्तश्रद्धा उत्पन्न होते, निद्रा, तंद्रा इ. कफप्रधान लक्षणांचा नाश होतो.

त्वक्प्रसादन - स्वेदनामुळे त्वक्प्रसादन व मृदूता उत्पन्न होत असल्याने त्वचा उत्तम राखली जाते.

स्तंभघ्न - स्तंभ हे शीत गुणाने लक्षण आहे वातप्रकोपामुळे शरीरामध्ये स्तंभ लक्षण उत्पन्न होते संधीस्थानी संकोच असतो व क्रियाशीलता कमी होते. धात्वाग्निच्या स्तरावर कार्य करणारा समानवायू रुक्ष गुणामुळे स्तंभ उत्पन्न करतो स्वेद हा उष्ण गुणात्मक असल्याने स्तंभ दूर करण्याचे कार्य करतो.

गौरवघ्न - जल व पृथ्वी महाभूताच्या प्राधान्यामुळे शरीरामध्ये गौरवता उत्पन्न होते स्वेदनाने उदक धातू कमी झाल्याने लघुता उत्पन्न होते.

शीतघ्न - स्वेदनाच्या उष्ण गुणामुळे शीतघ्न कार्य घडते. स्वेदन मंद गुणासह शीत-स्निग्ध, शीत-रुक्ष-प्रधान व्याधीमध्ये उपयुक्त आहे तर तीक्ष्ण गुणासह उष्ण-स्निग्ध व उष्ण-रुक्ष प्राधान्यांमध्ये अयोग्य आहे.

स्वेदनाचे प्रकार उदा. तापस्वेद, द्रवस्वेद, उष्मास्वेद विविध प्रकारचे पिंड स्वेद हे केवळ अपघातिक शोध नाहीत तर प्रत्येक क्रियेचे स्थानानुसार, दोषानुसार, कर्मानुसार सुक्ष्मतम विचार करून मांडलेले शोध आहेत.

स्वेदन क्रियेद्वारे स्वेदद्रव्य किंवा स्वेदनामध्ये वापरण्यात येणारी इतर द्रव्य व त्वचेद्वारे शोषली जावीत असा उद्देश नाही. उदा. षष्ठीशाली पिण्ड स्वेदनामध्ये 'शाली' त्वचेतून आतमध्ये शोषली जाऊन बल्य कार्य करेल अशी अपेक्षा नव्हतीच. त्या द्रव्याची व माध्यमांची त्याहीपेक्षा कर्माची कार्मुकता अधिक आहे. (जी. शामकृष्णन्, 2009).

The physiological effect of different sweat bath are not the same due to variation in temperature, humidity, time, etc. Body sweats more in 80-100°C and drier (15-25%) atmosphere(cyberbohemia.com)

Modern View:

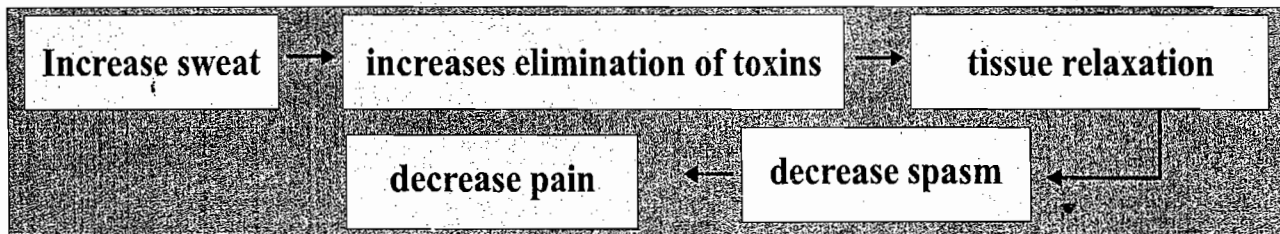
When temperature of the skin surface rise as 10°C inner temperature increases up to 3°C This can be created by steam/sweat bath. The action of this can be taken place in different way.

Action on Pituitary Gland : The inner temperature rise affect the function of important endocrine glands i.e. pituitary gland. It is a master gland which regulates the metabolism and activity of other glands such as thyroid, adrenal, ovarian, testes. By heat, the pituitary accelerates the body metabolism and affect several internal hormones.

Vasodilatation : Hot fomentation causes dilatation of the vessels and induce hyperemia. Experimentally it has been shown that short time fomentation (moist heat at 106°C) is efficacious in inflammation.

Due to fomentation capillary pressure increases, and decreases the congestion of internal organs, sweating, eliminate the toxins and tissue relaxes. This results in decrease of spasm and pain.

Increased peripheral circulation provides transport to help to reduce oedema which can help in inflammation, decreases pain and speedy healing



Action on nerve : Hot fomentation acts as stimulant for <5min while sedative >5min. During fomentation WBC activity increases. Long fomentation causes secretion of acetylcholine.

The efficacy of heat therapy is reported in patients with chronic psychosomatic pain. Warming of the body has been shown to exhibit sedative effect via sensory nerve endings. It also promotes vasodilatation and relieves muscular spasm related to tonic muscle contraction and pain.

Antibacterial activity : Many bacterial and viral agents do not survive at temperature higher than normal. As in sudation therapy internal temperature increased, it acts as antibacterial. It is also possible that damaged cells repair themselves quickly due to increased metabolic acid. Hence Swedan acts as Rasayana.

Sweat contains small amount of antibiotics that can kill some of the bacteria that are found on the skin.

Action on Heart : Sweating can also helpful in improving cardiovascular health. As the body heats and produce sweat the heart works hard to improve circulation. Sweating burns 300 calories and helps to maintain weight, in other way it prevents atherosclerosis.

Akinori *et al* (2005) reported in their research study that repeated thermal therapy might be promising method for the treatment of chronic fatigue syndrome (CFS)

A recent study indicated, the involvement of oxidative stress in the pathogenesis fibromyalgia syndrome (FMS). It has been also reported hot for mentation is responsible to reduce the level of oxidative stress and helpful in treating FMS. [Kakush M, Int Med 47, 2008]

पिण्डस्वेद

पत्रपिण्डस्वेद (पत्रपोटली स्वेद) PPS:

व्याधी व दोषांनुसार औषधी वनस्पतीच्या पत्रांची पोट्टली बनवून स्वेदन केले जाते. यासाठी एक किंवा अधिक प्रकारच्या औषधी वनस्पतीच्या पत्रांचा उपयोग केला जातो. हा संकर स्वेद आहे.

स्वेदन योग्य:

- (1) वातव्याधी - स्निग्ध स्वेदाची आवश्यकता असणारे
- (2) स्तम्भयुक्त शूल
- (3) कफवातज शूल

संभार संग्रह:

- (1) पत्र - बारीक तुकडे केलेले - 1 किग्रॅ.
(निर्गुंडी, एरण्ड, शिग्रु, वासा इ. आवश्यकतेनुसार)
- (2) ओला नारीकेल किसलेला (Coconut scrapings) - 100 ग्रॅम
त्रिफला, मेथी, सर्षप, रसोन (आवश्यकता वाटल्यास)
- (3) जम्बीर तुकडे केलेले - 2 नग
- (4) लवण - 30 ग्रॅम
- (5) तैल -i) पत्र तळण्यासाठी - 100 मिली
ii) पोट्टली गरम करण्यासाठी - 250 मिली
iii) अभ्यंगार्थ - 100 मिली
iv) तलम करण्यासाठी - 10 मिली

उपयुक्त तैल: शु. तिल तैल, धन्वन्तरम्, नारायण तैल, चंदनबला लाक्षादि, लघुविषगर्भ तैल, एरण्ड तैल

- (6) रास्नादि चूर्ण - 5 ग्रॅम
- (7) वस्त्र खण्ड 18" x 18" - 4 नग
- (8) दोरा - पोटली बांधण्यासाठी
- (9) टॉवेल
- (10) गॅस स्टोव्ह
- (11) कढई, उलथणे
- (12) परिचारक 2

पूर्वकर्म

पोट्टली निर्माण - ताजे पत्र घेवून त्यांना स्वच्छ करावे, त्यांस लहान तुकड्यांमध्ये कात्रीने कापून घ्यावे. कढई गॅसवर ठेवून त्यामध्ये तेल घालावे, तेल कढल्यास (तापल्यास) जम्बीरचे तुकडे घालावे. नंतर पत्र व ओल्यानारळाचा किस घालावा व त्यास परतून घ्यावे नंतर लवण घालावे. नारळाचा रंग तांबूस झाल्यानंतर कढई खाली उतरवून तयार द्रव्याच्या 4 पोट्टली तयार कराव्यात. एकापेक्षा अधिक वनस्पतीचे पत्र घेतल्यास कढईमध्ये पत्र टाकतांना आधी जाड व नंतर पातळ पत्र टाकावीत ज्यामुळे पत्र जळणार नाहीत.

पोट्टली तयार करण्यासाठी चौरस वस्त्रखण्ड (Cotton cloth) घ्यावा. त्यास टेबलवर पसरून कोष्ण केलेल्या द्रव्यांचा पिण्ड मध्यभागी ठेवावा. त्यानंतर वस्त्राचे चारही टोक एकमेकांच्या जवळ आणून मधल्या भागात घडी पाडावी, त्यानंतर दोन्याने अशा पध्दतीने घट्ट बांधावे जेणेकरून मूठ (Handle) सहीत पोट्टली तयार होईल.

रुग्णास द्रोणीमध्ये बसवून रास्नादि चूर्णाने तलम करावे. रुग्णाचा B.P., Temp., Pulse इ. चे परीक्षण करून घ्यावे.

सामान्य तापमान - 40-45°C

प्रधानकर्म

कढईमध्ये तैल घेवून त्यास गरम करावे. त्यामध्ये 4 पोट्टली गरम करण्यास ठेवाव्यात. रुग्णास आवश्यकतेनुसार तैलाने अभ्यंग करून घ्यावे. नंतर दोन पोट्टली द्वारे दोन पंचकर्म सहाय्यकांनी रुग्णाच्या दोन्ही बाजूस उभे राहून शरीरावर दाब देऊन मर्दन करावे. तत्पूर्वी पोट्टलीचा प्रथम स्वतःच्या हातावर व नंतर रुग्णास हल्का स्पर्श करून तापमान सहन होण्याइतका आहे का? याची खात्री करून घ्यावी. स्वेदन करत असतांना पोट्टलीचे तापमान कमी झाले असे वाटल्यास कढईमध्ये गरम होत असलेल्या पोट्टली स्वेदनासाठी घ्याव्या व थंड झालेल्या पोट्टल्या कढईमध्ये गरम करण्यास ठेवाव्यात असे आळीपाळीने करत सम्यक स्वेदन करावे.

स्वेदनाचा कालावधी - एकांग - 10-15 मिनिट

सर्वांग - 30-40 मिनिट

स्वेदनाचा कालावधी हा 7, 14, 21 दिवस असा आहे. दिवसागणिक तापमान सहन करण्याचा बिंदू (Threshold level) बदलत असतो त्यामुळे स्वेदनाचा कालावधी 7-14-21 असा ठेवला असावा. पोट्टली दर तीन दिवसांनी बदलवावी. वनस्पतीचे पत्र शक्यतो ताजे घ्यावे. Freez मध्ये ठेवलेल्या पत्रांचा वापर करू नये.

पश्चातकर्म

स्वेदन क्रियेनंतर तलम काढून रुग्णास चादर ओढून विश्रांती करण्यास सांगावे. अर्ध्या तासानंतर रुग्णास कोष्णजलाने स्नान करू द्यावे.

ध्यावयाची काळजी (Precautions) -

- (1) पोट्टलीचे तापमान सुखोष्ण असावे.
- (2) वारंवार रुग्णास पोट्टलीच्या तापमाना बाबत विचारत राहावे.

उपद्रव - दग्ध व्रण

चिकित्सा - जात्यादिघृत, घृतकुमारी, स्थानिक प्रयोगार्थ

षष्टिकशाली पिण्ड स्वेद (SSP)/पायस पिण्ड स्वेद

दूधामध्ये साठी तांदूळ शिजवून 'पोट्टली स्वेद' पध्दतीने स्वेदन केले जाते. हा संकर स्वेदाचा प्रसिध्द प्रकार आहे. हा स्वेद स्निग्ध प्रकारचा असून गुरू, स्थिर, शीत व त्रिदोषघ्न गुणांचा आहे. केरलीय परंपरेत यास नवरकिझी (नवर-नवीन तांदूळ, किझी-पोट्टली) म्हणतात.

स्वेदनयोग्य (Indications):

- (1) वातपित्त तथा वातरक्तज व्याधी
- (2) शोष (Chronic degenerative disease, muscle wasting)
- (3) स्तम्भयुक्त शूल (Pain with stiffness)
- (4) Muscle dystrophy
- (5) पक्षाघात (Hemiparesis)
- (6) Scoliosis, kyphosis, myelopathy

अयोग्य: (1) स्थौल्य (2) आमज शोथ

संभार संग्रह:

- | | | |
|---------------------------------|---|-----------|
| (1) साठी तांदूळ | - | 500 ग्रॅम |
| (2) बलामूल | - | 750 ग्रॅम |
| (3) गोदुग्ध | - | 3 लीटर |
| (4) पाणी आवश्यकतेनुसार | | |
| (5) वस्त्रखण्ड (18" x 18") | - | 8 नग |
| (6) दोरा - पोट्टली बांधण्यासाठी | | |
| (7) स्टीलचे पातेले | | |

- (8) स्टोव्ह/गॅस
 (9) रास्नादि चूर्ण - 5 ग्रॅम
 (10) तैल - तलमसाठी - 10 मिली
 अभ्यंगार्थ - 100- 150 मिली
 (11) पंचकर्म सहाय्यक - 2-4
 (12) नारिकेल पत्र किंवा Tongue cleaner

पूर्वकर्म

औषधी निर्माण - 750 ग्रॅम बलामूल स्वच्छ करून 16 पट (अंदाजे 12 लीटर) पाण्यामध्ये चतुर्थांश शेष राहिल एवढे विधीवत क्वाथ तयार करावा. 1.5 लीटर क्वाथ व 1.5 लीटर गोदुग्ध घेवून 500 ग्रॅम साठी तांदूळ शिजवावे. ज्यावेळी तांदूळ पूर्णतः शिजतील त्यावेळी गॅसवरून उतरवून घ्यावे. शेष 1.5 लीटर बलामूल क्वाथ व 1.5 लीटर गोदुग्ध एका पात्रात घेवून गॅसवर मंद आचेवर गरम करण्यास ठेवावे.

पोट्टली निर्माण - शिजलेला तांदूळ श्लक्ष्ण करून 8 भाग करावेत. 200 ग्रॅमची एक पोट्टली होईल अशा पध्दतीने पोट्टली निर्माण विधीने पोट्टली तयार करावी. एकांग-सर्वांग व उपलब्ध सुविधेनुसार पोट्टली संख्या कमी अधिक करावी. तयार झालेल्या पोट्टली त्यानंतर गरम होत असलेल्या क्वाथ + दूधाच्या पात्रात कोष्ण करण्यास ठेवाव्यात.

सामान्य तापमान - 45 ते 50°C

रुग्णसिध्दता - प्रातःकाळी मल-मूत्रं विसर्जनानंतर उपाशीपोटी रुग्णास कमीत कमी वस्त्रामध्ये शिरोभ्यंग, तलम करून पोट्टली स्वेदासाठी अभ्यंग द्रोणीमध्ये (अभ्यंग टेबलवर) झोपण्यास सांगावे. आवश्यकतेनुसार 10 मिनिट पर्यंत अभ्यंग करावे व नंतर स्वेदन करावे.

प्रधानकर्म

पिण्डस्वेदासाठी रुग्णास उत्तान (Supine) अवस्थेत झोपवून 2 पंचकर्म सहाय्यक डाव्या बाजूस व 2 सहाय्यक उजव्या बाजूस उभे राहून सुखोष्ण पोट्टलीने रुग्णाच्या अंगावर एक सारख्या गतीने (Synchronised manner) मर्दन करित स्वेदन करावे. पोट्टलीचे तापमान पूर्ण क्रियेमध्ये एक सारखे असेल अशी काळजी घ्यावी. पोट्टलीचे तापमान कमी झाल्यास मंद आचेवर असलेल्या क्वाथ व दूधामध्ये ह्या पोट्टली गरम करण्यास ठेवाव्यात व क्वाथ+दूधातील पोट्टली स्वेदनासाठी घ्याव्यात हा क्रम पूर्ण क्रियेमध्ये चालू ठेवावा. क्रिया स्नेहनाच्या 7 अवस्थांमध्ये किंवा आवश्यकतेनुसार चिकित्सकाच्या कुशलतेने करावी.

स्वेदनाच्या वेळी पोट्टलीमधून भात स्रवत असतो त्यास स्वेदनासोबतच रुग्णाच्या अंगावर पसरवत राहावे. यासाठी मधोमध तर्जनी व अंगुष्ठाच्या साहय्याने पोट्टलीस हलक्यादाबाने पिळावे.

पिण्डस्वेदाची दिशा

- (1) हस्त - उत्तान व पालथ्या स्थितीमध्ये स्वेदन केले जाते. अंससंधी ते कुर्परसंधी व कुर्परसंधी ते मणिबंधसंधी एका रेषेत मर्दन करावे. कुर्परसंधी, मणिबंधसंधी, हस्तांगुली यावर वर्तुळाकार मर्दन करावे.
- (2) पाद - उताणा व पालथा दोन्ही अवस्थेमध्ये स्वेदन केले जाते. उर ते पादांगुष्ठापर्यन्त सरळ रेषेत मर्दन करावे. अधोमुख स्थितीमध्ये वंक्षण ते पादांगुष्ठापर्यन्त सरळ रेषेत मर्दन करावे. वंक्षण, जानुसंधी, गुल्फसंधी वर वर्तुळाकार मर्दन करावे. पाष्णि ते अंगुष्ठा वर्तुळाकार स्वेदन करावे.
- (3) उर: व उदर - पोट्टलीने उदर, उर: पासून अंससंधीपर्यन्त वरच्या दिशेने मर्दन करावे. उदरावर नंतर नाभीभोवती वर्तुळाकार मर्दन करावे.
- (4) पृष्ठ - वंक्षणसंधीपासून अंससंधीपर्यन्त वरच्या दिशेने मर्दन करावे.

कालावधी - एकांग - 10 - 15 मिनिटे

सर्वांग - 35 - 45 मिनिटे

योग्यकाळ - सकाळी - 7 ते 11 सायंकाळी 4 ते 6

क्रियेचा एकूण कालावधी - 7, 14, 21, 28 दिवस

पश्चातकर्म

स्वेदनाच्या क्रियेनंतर शरीरावर पसरलेला भात (Rice paste) नारळाच्या पानाने किंवा Tongue cleaner ने हलक्या हाताने खरडून काढावे व नंतर टॉवेलच्या सहाय्याने शरीर पुसून घ्यावे व योग्य तैल शरीरास लावावे. तलम काढून घ्यावे व रास्नादि चूर्ण शिरोभागी लावावे.

- रुग्णास गंधर्वहस्तादि 30 मिली कोष्ण जलासह द्यावे.

- अर्धा तास रुग्णास विश्राम करण्याचा सल्ला द्यावा त्यानंतर कोष्णजलाने स्नान करण्यास सांगावे.

स्नानासाठी चण्याच्या डाळीचे पीठ वापरावे.

घ्यावयाची काळजी

- (1) साठी तांदूळ शिजवतांना अती किंवा अल्प शिजणार नाही याची काळजी घ्यावी.
- (2) रुग्णाने स्वेदनाच्यावेळी कोणताही त्रास होत असल्याचे सांगितल्यास तात्काळ स्वेदन थांबवावे.
- (3) पोट्टलीतून भात अधिक गळणार नाही याची काळजी घ्यावी.
- (4) लगेच शीत-मोकळ्या हवेत रुग्णास प्रवेश न करण्याचा सल्ला द्यावा.

उपद्रव व चिकित्सा:

- (1) शीतता वाटणे (Shivering) - स्वेदन करतांना मध्येच किंवा पोट्टली बदलतांना थोडा वेळ थांबल्यास किंवा शीत हवेशी संपर्क आल्यास रुग्ण कुडकुडण्याची शक्यता असते.

चिकित्सा - ब्लॅकेट ओढून विश्रांती करण्यास सांगावे. पोट्टली बदलतांना वेळ लागू नये याची काळजी घ्यावी.

(2) मूर्च्छा:- तापमान अधिक झाल्यास, स्वेदनाचा अतियोग झाल्यास मूर्च्छा लक्षण उत्पन्न होण्याची शक्यता असते.

चिकित्सा -(1) शीत जलाचा चेहऱ्यावर परिषेक व Head low करावे.

(2) द्राक्षदि कषाय, आम्रपानक, नारिकेल जल यापैकी एक तात्काळ द्यावे.

(3) दग्ध - अधिक तापमानाने दग्ध व्रण होण्याची शक्यता असते.

चिकित्सा - घृतकुमारी, जात्यादिघृत स्थानिक लावावे.

अन्नलेपन

भाताच्या श्लक्ष्ण पिष्टीचे शरीरावर लेपन करून स्वेदन करण्याची प्रक्रिया अन्नलेपन होय. हा पिण्डस्वेदाचाच एक प्रकार असून स्निग्ध स्वेद आहे.

स्वेदन योग्य

- | | |
|---|----------------------------------|
| (1) पक्षाघात (Hemiparesis) | (2) Motor Neuron Disease (MND) |
| (3) धातुक्षय जन्य वातव्याधी | (4) Chronic rheumatoid arthritis |
| (5) Peripheral vascular disease | (6) अकाली वार्धक्य |
| (7) Bulbar palsy | (8) Muscle atrophy |
| (9) स्वस्थ व्यक्ती, बालकांमध्ये उपयुक्त | |

संभार संग्रह -

- | | |
|---------------------------------------|-------------|
| (1) साठी तांदूळ (कूट केलेले) | - 200 ग्रॅम |
| (2) बलामूल भरड चूर्ण | - 150 ग्रॅम |
| (3) गोदूग्ध | - 600 मिली |
| (4) पातेले: यथावश्यक | |
| (5) नारिकेल पत्र किंवा Tongue cleaner | |
| (6) अभ्यंगासाठी तैल | - 150 मिली |
| (7) पंचकर्म सहाय्यक | - 4 |

पूर्वकर्म

औषधी निर्माण - 150 ग्रॅम बलामूल भरड चूर्ण घेवून 2400 मिली पाण्यामध्ये चतुर्थांश शेष राहिल असा विधीवत क्वाथ तयार करावा. अंदाजे 600 मिली क्वाथामध्ये तितकेच गोदूग्ध मिसळवून यामध्ये 200 ग्रॅम साठी तांदूळ (कूट केलेले) लेप करण्या योग्य शिजवावे.

सामान्य तापमान - 45 ते 50°C

रुग्णसिध्दता - रुग्णास प्रातःकाळी मल-मूत्र विसर्जनांतर आवश्यक त्या तैलाने सर्वांग अभ्यंग व शिरोअभ्यंग करावे.

प्रधानकर्म

अन्नलेपनासाठी शक्यतो 4 पंचकर्म सहाय्यक असल्यास चांगले. दोन रुग्णाच्या डाव्या बाजूस तर दोन उजव्या बाजूस उभे राहून अन्नलेपनविधी केली जाते. हातामध्ये सुखोष्ण भाताचा पिण्डी (Paste) घेवून रुग्णास उत्तान (Supine), पालथा (Prone), वामपार्श्व (left lateral) व दक्षिण पार्श्व (Right lateral) या स्थितीमध्ये झोपवून क्रमाने अन्नलेपन करावे. अन्नलेपनासोबत अभ्यंगासारखे मर्दन करावे. ही सर्व क्रिया एक सारख्या गतीने (Synchronise) असावी. षष्टिशाली पिण्ड स्वेदामध्ये वर्णिल्याप्रमाणे संधी ठिकाणी वर्तुळाकार (Circular) व इतर भागी रेषेत (linear) दिशेने लेपन-मर्दन करावे. ही क्रिया जवळपास 60 मिनिटे पर्यंत चालू ठेवावी. त्यानंतर थोडा वेळ लेप रुग्णाच्या अंगावर तसाच राहू द्यावा.

कालावधी - 1 तास ते 1.30 तास

योग्यकाळ - प्रातः 7 ते 11

एकुण कालावधी - 7, 9, 11, 14, 21, 28 दिवस (रोज किंवा एकांतर दिवसांनी)

पश्चातकर्म

शरीरावर लेपन केलेला भात नारळाच्या पत्राने काढून घ्यावा. ते शक्य नसल्यास Tongue cleaner ने काढावा किंवा टॉवेलने पुसून घ्यावा. त्यानंतर आवश्यक ते तैल अंगास लावावे.

- रुग्णास 15 मिनिट विश्रांती केल्यानंतर चण्याच्या डाळीच्या पीठाचा उपयोग करून कोष्ण जलाने स्नान करावे.

सावधानी- (1) अन्न लेपनाची भात अति उष्ण नसावा.

(2) रुग्णास कोणताही त्रास होत असल्यास अन्नलेपन थांबवून घ्यावे.

(3) लगेच शीत-उघडया हवेत न जाण्याचा सल्ला द्यावा.

उपद्रव व चिकित्सा-

(1) शीतता वाटणे (Shivering) - स्वेदन करतांना मधेच थोडा वेळ थांबल्यास किंवा शीत हवेशी संपर्क आल्यास रुग्ण कुडकुडण्याची शक्यता असते.

चिकित्सा - ब्लँकेट ओढून विश्रांती करण्यास सांगावे.

(2) मूर्च्छा:- तापमान अधिक झाल्यास, स्वेदनाचा अतियोग झाल्यास मूर्च्छा लक्षण उत्पन्न होण्याची शक्यता असते.

चिकित्सा - (1) शीत जलाचा चेहऱ्यावर परिषेक व Head low करावे.

(2) द्राक्षादि कषाय, आम्रपानक, नारिकेल जल तात्काळ द्यावा.

(3) दग्ध - अधिक तापमानाने दग्ध व्रण होण्याची शक्यता असते.

चिकित्सा - घृतकुमारी, जात्यादिघृत स्थानिक लावावे.

चूर्ण पिण्ड स्वेद (CPS)

व्याधी व रुग्णाच्या प्रकृतीनुसार वनस्पती द्रव्यांचा चूर्णाद्वारे पोट्टली बनवून स्वेदन करण्याच्या प्रकाराला चूर्ण पिण्ड स्वेद म्हणतात. हा उष्म प्रकाराचा स्वेद असून प्राधान्याने रूक्ष गुणयुक्त स्वेद असून कफवात प्राधान्य व्याधीमध्ये उपयोगी ठरतो. चूर्ण पिण्ड स्वेद दोन प्रकारांनी केला जाऊ शकतो.

(1) स्निग्ध शरीरावर अभ्यंग केल्यानंतर (जीर्ण आमवात)

(2) रूक्ष -

- स्वेदयोग्य -
- (1) आमवात (arthritis)
 - (2) गृध्रसी (sciatica)
 - (3) कटि/पृष्ठगतवात (spondylitis)
 - (4) Joint with effusion
 - (5) आमज शोथ
 - (6) स्तम्भ (spasm)

- स्वेद अयोग्य -
- (1) अतिरूक्ष
 - (2) अतिस्थौल्य
 - (3) बल
 - (4) कुष्ठरोगी
 - (5) ग्रीष्मऋतु
 - (6) स्तम्भनाह

- संभारसंग्रह -
- (1) वातशामक/आवश्यकतेनुसार वनस्पतीचे वस्त्रगाळ चूर्ण - 1 किग्रॅ.
 - (2) वस्त्रखण्ड 18" x 18" - 4 नग
 - (3) दोरी
 - (4) पातेले, कढई इ.
 - (5) रास्नादि चूर्ण - 5 ग्रॅम
 - (6) तैल (स्निग्ध स्वेदासाठी) उदा: लघुविषगर्भ, सहचरतैल - 100 मिली
 - (7) गॅस स्टोव्ह
 - (8) पंचकर्म सहाय्यक - 2

पूर्वकर्म

पोट्टली निर्माण -

स्वेदासाठी आवश्यक चूर्ण कढईमध्ये घेवून त्यास गरम करावे. चूर्णाचा रंग काळसर तांबूस झाल्यानंतर कढई गॅस वरून उतरून घ्यावी. नंतर 4 वस्त्रखण्डामध्ये समान चूर्ण विभागून पूर्वोक्त विधीने पोट्टली बांधून तयार करावी. मंद आचेवर कढई ठेवून त्यामध्ये पोट्टली ठेवावी, ज्यामुळे पोट्टली गरम राहिल.

रुग्ण सिध्दता - रुग्णास मल-मूत्र विसर्जनानंतर कमीतकमी वस्त्रामध्ये द्रोणीवर झोपण्यास सांगावे. तलम करून घ्यावे, गरजेनुसार अभ्यंग करावे.

प्रधानकर्म

गरम केलेल्या दोन पोट्टली दोन सहाय्यकांनी घेवून रुग्णाच्या दोन्ही बाजूस उभ राहून पिण्ड स्वेद विधीने स्वेदन करावे. सर्वांग स्वेद अभ्यंगाच्या 7 स्थितीमध्ये करावा. स्वेदन करतांना पोट्टलीचे तापमान कमी झाल्यास कढईतील उर्वरीत दोन पोट्टली स्वेदनासाठी घ्याव्यात व थंड झालेल्या पोट्टली कढईमध्ये गरम करण्यासाठी ठेवाव्यात या क्रमाने स्वेदन करावे. पोट्टलीचे तापमान पूर्ण क्रियेमध्ये समान राहिल याची काळजी घ्यावी.

कालावधी - एकांग-10 - 15 मिनिट
सर्वांग-30 - 45 मिनिट
काळ - प्रात 7 ते 11 सायं 3 ते 6

पश्चातकर्म

स्वेदन पश्चात तलम काढून रास्ना चूर्ण शिरोभागी लावावे. शरीर व्यवस्थीत पुसून काढावे व विश्राम करण्यास सांगावे.

ध्यावयाची काळजी -

- (1) चूर्ण जळणार नाही याची काळजी घ्यावी
- (2) पोट्टली अधिक उष्ण नसावी.
- (3) अत्याधिक स्वेदन झाल्यास स्वेद बंद करावा.
- (4) पूर्ण क्रियेमध्ये पोट्टलीचे तापमान समान असावे.

उपद्रव व चिकित्सा -

- (1) दग्ध झाल्यास घृतकुमारी, जात्यादिघृत, शतधौतघृत स्थानिक लावावे
- (2) मूर्च्छा - अधिक स्वेदन झाल्यास. शीत जलाने परिषेक व Head low
- (3) त्वककोठ उत्पत्ती (Skin Rashes) - पंचतिकतघृत स्थानिक, खदिरारिष्ट, सारीवाद्यासव आभ्यंतर.

जम्बीर पिण्ड स्वेद (JPS)

जम्बीर (बिजौरा लिंबु) चे तुकडे करून त्याच्या पोट्टलीने स्वेदन करणे म्हणजे जम्बीर पिण्ड स्वेद होय. कफानुबंधी वातव्याधीमध्ये जम्बीर पिण्ड स्वेदाचा उपयोग केला जातो. हा रूक्ष⁺-स्निग्ध⁺ प्रकारचा स्वेद आहे.

स्वेदयोग्य (Indications):

- (1) आमवात
- (2) अंसगतवात (Frozen shoulder)
- (3) गृध्रसी (कफानुबंधी)
- (4) Plantar fasciitis
- (5) आघातज शूल (अस्थिभग्न सोडून)
- (6) Periarthritis stiffness & pain

अयोग्य (Contraindication):-

- (1) पित्तानुबंधी व्याधी
- (2) वातरक्त
- (3) अस्थिभग्न

संभारसंग्रह:

- | | | |
|---|---|-----------|
| (1) जम्बीर (कापलेले छोटे तुकडे) | - | 750 ग्रॅम |
| (2) हरिद्रा चूर्ण | - | 60 ग्रॅम |
| (3) सैधव लवण | - | 30 ग्रॅम |
| (4) वस्त्र 18" x 18" | - | 4 |
| (5) दोरी | | |
| (6) कढई, पातेले इ. | | |
| (7) तैल- तलम करण्यासाठी | - | 10 मिली |
| अभ्यंगार्थ (लघुविषगर्भ, सहचर, धन्वन्तरम्) | - | 150 मिली |
| (8) रास्नादि चूर्ण | - | 5 ग्रॅम |
| (9) गॅसस्टोव्ह | | |
| (10) पंचकर्म सहाय्यक | | 2 |

पूर्वकर्म

पोट्टली निर्माण -कढईमध्ये तेल घेवून गरम करावे. त्यात हरिद्रा, जम्बीर तुकडे व सैधव लवण क्रमाने घालावे व परतून घ्यावे. यात गरजेनुसार नारळाचा किस (Coconut scrap) घालावा. जम्बीर तुकडयांचा

वर्ण धुसर झाल्यानंतर कढई गॅसवरून उतरवून जम्बीरचे समान 4 भागात विभाजन करून पूर्वोक्त विधीने 4 पोट्टली तयार कराव्यात व कढईमध्ये गरम करण्यासाठी ठेवाव्यात.

सामान्य तापमान - 40° C ते 45° C

रुग्ण परिचर्या - रुग्णास मल-मूत्र विसर्जनानंतर कमीत कमी वस्त्रामध्ये द्रोणीमध्ये झोपण्यास सांगावे. आवश्यकतेनुसार योग्य तैलाने रुग्णास तलम करावे. रुग्णास योग्य तैलाने अभ्यंग करावे.

प्रधानकर्म

अभ्यंग झालेल्या रुग्णाचे सुखोष्ण पोट्टलीने पूर्वोक्त विधीनुसार स्वेदन करावे. या साठी सुरवातीला दोन पोट्टलीने स्वेदन करावे. या पोट्टलीचे तापमान कमी झाल्यानंतर कढईमधील सुखोष्ण पोट्टलीने स्वेदन करावे व वापरलेल्या दोन्ही पोट्टलींना कढईमध्ये गरम करण्यास ठेवावे या क्रमाने स्वेदन करावे. पोट्टलीचे तापमान पूर्ण क्रियेमध्ये एकसमान राहिल याची काळजी घ्यावी.

कालावधी:- 30 - 45 मिनिट (स्थानानुसार कमी अधिक)

काळ - प्रातः 7 ते 11 सायं. 3 ते 6

एकूण चिकित्सा काळ - 7, 14, 21 दिवस

पश्चातकर्म

स्वेदनानंतर शरीर टॉवेलने पुसून घ्यावे. तलम काढून रास्नादिचूर्ण शिरोभागी लावावे व रुग्णास विश्राम करण्यास सांगावे. अर्ध्या तासानंतर कोष्ण जलाने स्नान करण्यास सांगावे.

घ्यावयाची काळजी (Precautions):

- (1) पोट्टलीचे तापमान एक समान असावे.
- (2) पोट्टली अधिक उष्ण किंवा शीत नसावी.

उपद्रव व चिकित्सा:

- (1) दग्ध - घृतकुमारी, शतधौतघृत, जात्यादिघृत
- (2) मूर्च्छा- अधिक स्वेदन झाल्यास-शीत जलाने परिषेक व Head low

Jambir has lytic action over adhesions and calcifications in tissues, hence helpful in relieving pain and inflammation. [Shyamkrishnan G, 2008]

धान्याम्ल पिण्ड स्वेद

या स्वेदन प्रकारामध्ये विविध धान्यांपासून तयार केलेल्या कांजीमध्ये पौष्टीक तांदूळ शिजवून पिण्ड स्वेद विधीने स्वेदन केले जाते.

स्वेदन योग्य (Indications) - (1)वातव्याधी, (2)स्रोतरोध अवस्थेत

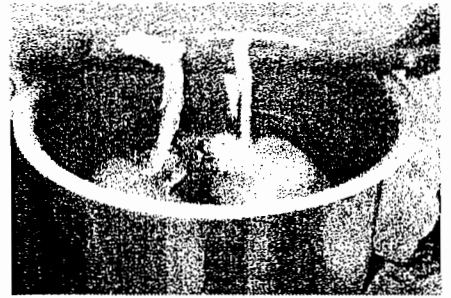
स्वेदन अयोग्य (Contraindications) - (1)अधिक रूक्ष रुग्ण, (2)अकालप्रसूता

संभारसंग्रह -

- | | |
|---|----------------|
| (1) धान्य (तांदूळ, ज्वारी, बाजरी, मुंग, मका, जवस) | - 150 ग्रॅम |
| (2) षष्ठी तांदूळ | - 300 ग्रॅम |
| (3) मोहरी | - 100 ग्रॅम |
| (4) मूळा | - 500 ग्रॅम |
| (5) लिंबू (तुकडे करून) | - 500 ग्रॅम |
| (6) वस्त्रखंड 18" x 18" | - 4 नग |
| (7) मडके, पातेले इ. | |
| (8) दोरी | |
| (9) रास्नादि चूर्ण | - 5 ग्रॅम |
| (10) तैल - अभ्यंगासाठी | - 100-150 मिली |
| तलम करण्यासाठी | - 10 मिली |
| (11) गॅस स्टोव्ह | |
| (12) पंचकर्म सहाय्यक | 2 |

पूर्वकर्म

धान्याम्ल निर्माण:- वरील सर्व धान्य लिंबू, मोहरी, मूळा यांना बारीक करून एका पोट्टलीमध्ये बांधून घ्यावे. त्यानंतर 50 lit. पातेल्यात पाणी उकळण्यास ठेवून बांधलेली धान्याची पोट्टली उकळत्या पाण्यात सोडावी. पाणी अर्धाश झाल्यावर क्वाथास एका



मातीच्या माठात (Clay pot) घेवून पोट्टली दोलायंत्र पध्दतीने अडकवून ठेवावी व माठाच्या तोंडावर कापड बांधून घ्यावे. मातीच्या पात्रास रोज गरम करावे. 8 ते 10 दिवसानंतर अम्लाची निर्मिती होते. त्यानंतर पोट्टली काढून घ्यावी तयार झालेल्या धान्याम्लाचा वापर पिण्ड स्वेदासाठी करावा.

पोट्टली निर्माण:- स्वच्छ केलेले तांदूळ आवश्यक मात्रेत धान्याम्लमध्ये शिजवावे व थोडे धान्याम्ल एका पात्रात गरम करण्यास ठेवावे. षष्टिकशाली पिण्ड स्वेदाच्या विधीप्रमाणे पोट्टली निर्माण कराव्यात.

प्रधानकर्म व पश्चातकर्म

षष्टिकशाली पिण्ड स्वेदाप्रमाणे

घ्यावयाची काळजी:

- (1) धान्याम्ल तयार करतांना रोज धान्याम्ल खराब होणार नाही याची काळजी घ्यावी.
- (2) पोट्टली मधून भात अधिक गळणार नाही याची काळजी घ्यावी.
- (3) रुग्णास लगेच थंड मोकळ्या जागेत प्रवेश करण्यास मनाई करावी.

कुक्कुटांड पिंड स्वेद/अंडपिण्ड स्वेद

हा उष्ण स्वेद प्रकार आहे. कोंबडीच्या अंड्यातील गर भागापासून पिंड स्वेद केले जाते.

स्वेदन योग्य (Indications):

- 1) अर्दित (facial palsy)
- 2) ग्रीवाग्रह (cervical spondylitis)
- 3) अवबाहुक (cervical spondylitis/radiculopathy)
- 4) आघातज शूल (traumatic pain)

संभारसंग्रह :

| | | | |
|-----------------------|----------|----------------------|------------|
| 1) मेथीचूर्ण | 50 ग्रॅम | 2) शतपुष्पा | 50 ग्रॅम |
| 3) हरिद्रा | 50 ग्रॅम | 4) कुक्कुटांड गर | 6 अंड्याचे |
| 5) लिंबू | 2 | 6) वस्त्रखंड (18×18) | 2 |
| 7) दोरी-आवश्यकतेनुसार | | 8) पातेले/कढई | |
| 9) गॅस स्टोव्ह | | 10) पंचकर्म सहाय्यक | 1 |

पूर्वकर्म

पोट्टली निर्माण - लिंबू चे तुकडे करून कढईमध्ये आवश्यक एवढ्या तैलात गरम करावे. लिंबू चा वर्ण धुसर झाल्यानंतर वरील तिन्ही पुर्ण घालावे व पुन्हा त्यास गरम करावे. कढई गॅसवरून उतरवून घ्यावी. आधीच्या विधीनुसार 2 पोट्टली तयार कराव्यात.

रुग्ण सिद्धता - रुग्णास मल-मूत्र विसर्जनानंतर व्याधीयुक्त भाग निर्वस्त्र करून द्रोणीमध्ये बसण्यास सांगावे आवश्यकतेनुसार तैलाने अभ्यंग करावे.

प्रधानकर्म

अभ्यंग झालेल्या रुग्णाचे पिंड स्वेद विधीप्रमाणे पोट्टली द्वारे हलका दाब देऊन मर्दन करावे व स्वेदन करावे.

कालावधी - 30-45 मिनिटे

योग्यकाळ प्रातः 7-10 व सायं 3 ते 6

पश्चातकर्म

स्वेदनानंतर शरीर गरम पाण्यात ओले करून पुसून घ्यावे. रालादि चूर्ण शिरोभागी लावून विश्रांतीचा सल्ला द्यावा.

घ्यावयाची काळजी : पोट्टलीचे तापमान एक समान असावे.

उपद्रव व चिकित्सा : दग्ध - घृतकुमारीचे गर दग्ध भागी लावावे.

वालुका स्वेद

वाळू गरम करून त्यास पिण्ड स्वेद पध्दतीने पोट्टली तयार करून स्वेदन करण्याची पध्दत म्हणजे वालुका स्वेद होय. हा स्वेद प्रकार स्नेहन न करता केला जातो व गुणाने रूक्ष स्वेद प्रकार आहे. हा तापस्वेद प्रकारातील स्वेद आहे. चरकाचार्या प्रमाणे हा संकर स्वेदाचा प्रकार आहे. हा स्वेदप्रकार रुग्णास घरच्या घरी करण्यास सांगितला जाऊ शकतो.

ज्या व्याधीमध्ये कफ दोषाचे किंवा आमाचे प्राधान्य आहे अशा व्याधीमध्ये वालुका स्वेदासारखे रूक्ष स्वेद उपयुक्त असतात. तसेच ज्या व्याधीमध्ये स्नेहनाने व्याधीची वृद्धी होते त्या सर्व अवस्थांमध्ये वालुका स्वेदन केले जाते.

स्वेदन योग्य (Indications):

- (1) कफज व्याधी
- (2) शोथ व शूल अवस्था (सामावस्था)
- (3) आमवात (rheumatoid arthritis)
- (4) कटिगत, मन्यागत वात (कफानुबंधी), (spondylitis)
- (5) उरूस्तम्भ
- (6) मेदोरोग (obesity)
- (7) गृध्रसी (कफानुबंधी)

संभार संग्रहः

- (1) वाळू (रेती) स्वच्छ केलेली - 2 किग्रॅ
- (2) वस्त्रखण्ड 18" x 18" - 2-4 नग
- (3) दोरी
- (4) कढई
- (5) गॅस स्टोव्ह
- (6) पंचकर्म सहाय्यक - 1-2

पूर्वकर्म

पोट्टली निर्माण - स्वच्छ केलेली वाळू कढईमध्ये घेवून गरम करून घ्यावी. सुखोष्ण झाल्यानंतर त्यातून 500 gm वाळू वस्त्रखण्डाच्या मध्यभागी ठेवून विधिप्रमाणे पोट्टली तयार करावी. अशापध्दतीने आवश्यकतेनुसार 2 पोट्टली तयार करून घ्याव्यात. त्यानंतर कढईमध्ये गरम असलेल्या वाळूवर दोन्ही पोट्टली ठेवाव्यात त्यामुळे पोट्टलीचे तापमान राखण्यास मदत होईल. आवश्यकतेनुसार गॅसस्टोव्ह कमी तापमानावर चालू ठेवावा.

रुग्ण परिचर्या - यासाठी रुग्णास फार तयार करावे लागत नाही. स्नेहन करण्याची गरज नसल्यामुळे रुग्णास सरळ स्वेदनासाठी द्रोणीमध्ये बसण्यास सांगावे. रुग्णाचे BP, Temp., Pulse इ. चे नियमित परिक्षण करून घ्यावे.

सामान्य तापमान - 45°C

प्रधानकर्म

वालूका स्वेद सहसा सर्वांग केले जात नाही त्यामुळे शोथ व शूल असलेल्या स्थानी रुग्णास सुखासनात बसवून किंवा झोपवून केले जाते. सुरुवातीस गरम केलेल्या पोट्टलीने सहाय्यकांनी स्वतःच्या हातावर स्पर्श करून तापमान सहन होण्यासारखे आहे किंवा नाही याची खात्री करून घ्यावी. सुरुवातीला वाळूचे तापमान अधिक असल्यामुळे व्याधीस्थानी (संधीस्थानी) पोट्टलीने केवळ स्पर्श करून स्वेदन करावे. यासाठी इतर पिण्ड स्वेदाप्रमाणे मर्दन करू नये. पोट्टलीचे तापमान थोडे कमी झाल्यानंतर पिण्डस्वेदाच्या विधीप्रमाणे मर्दन करून स्वेदन करावे. पोट्टलीचे तापमान कमी झाल्यानंतर कढईतील दुसरी गरम पोट्टली घ्यावी व थंड झालेली पोट्टली कढईमध्ये गरम करण्यास ठेवावी. अशा पध्दतीने क्रमाने स्वेदन करावे.

स्वेदन कालावधी - 30 - 60 मिनिटे

पश्चातकर्म

रुग्णास काही मिनिटांसाठी विश्राम करण्याचा सल्ला द्यावा. त्यानंतर वालूका स्वेदन केलेले स्थान कोष्ण जलाने धुण्यास सांगावे.

घ्यावयाची काळजी:

- (1) पोट्टलीचे आधी पंचकर्म सहाय्यकांनी स्वतःच्या हातावर स्पर्श करून तापमान बघावे. पोट्टली अधिक गरम नाही याची खात्री करून घ्यावी.
- (2) लगेच शीत हवेत, मोकळ्या ठिकाणी रुग्णास प्रवेश न करण्याचा सल्ला द्यावा.

उपद्रव व चिकित्सा:

दग्ध - त्याच वेळी घृतकुमारीचा गर लावावा. त्यानंतर जात्यादिघृत, मधु व घृत याने दग्ध व्रणाची चिकित्सा करावी.

इष्टिका स्वेद

इष्टिका (बांधकामाची वीट) गरम करून स्वेद देण्याची क्रिया इष्टिका स्वेद होय. हा रूक्ष प्रकारचा ताप स्वेद आहे. वालुका स्वेदाप्रमाणे इष्टिका स्वेदाचे गुणधर्म आहेत.

स्वेदन योग्य (Indications):

- (1) कफज व्याधी
- (2) शोथ व शूल अवस्था (सामावस्था)
- (3) आमवात
- (4) कटिगत, मन्यागत वात (कफानुबंधी)
- (5) उरूस्तम्भ
- (6) मेदोरोग
- (7) गृध्रसी (कफानुबंधी)

संभार संग्रह:

- (1) स्वच्छ नवीन इष्टिका (वीट)-2 3
- (2) कापड 18" x 18"-2 3
- (3) गॅस स्टोव्ह/शेगडी-
- (4) पंचकर्म सहाय्यक-2

पूर्वकर्म

रुग्ण चर्चा - यासाठी रुग्णास फार तयार करावे लागत नाही. स्नेहन करण्याची गरज नसल्यामुळे रुग्णास सरळ स्वेदनासाठी द्रोणीमध्ये बसण्यास सांगावे. रुग्णाचे BP, Temp., Pulse इ. चे नियमित परिक्षण करून घ्यावे.

प्रधानकर्म

इष्टिका गॅसवर/कोळशाच्या शोगडीवर गरम करून घ्यावी त्यानंतर त्यास वस्त्राने गुंडाळून घ्यावे. पंचकर्म सहाय्यकाने आधी स्वतःच्या हातावर स्पर्श करून तापमान सुखोष्ण असल्याची खात्री करून व्याधी स्थानी वालुका स्वेदाच्या विधीप्रमाणे पहिल्या विटेचे तापमान कमी झाल्यानंतर पूर्वीच्या विधीप्रमाणे दुसरी सुखोष्ण विट स्वेदनासाठी घ्यावी. अशा पध्दतीने तापमान एक सारखे राहिल याची काळजी घेवून स्वेदन करावे.

स्वेदन कालावधी - 30 - 60 मिनिटे

पश्चातकर्म

रुग्णास काही मिनिटांसाठी विश्राम करण्याचा सल्ला द्यावा. त्यानंतर इष्टिका स्वेदन केलेले स्थान कोष्ण जलाने धुण्यास सांगावे.

घ्यावयाची काळजी:

- (1) इष्टिकाचे आधी पंचकर्म सहाय्यकांनी स्वतःच्या हातावर स्पर्श करून तापमान बघावे. ती अधिक गरम नाही याची खात्री करून घ्यावी.
- (2) लगेच शीत हवेत, मोकळ्या ठिकाणी रुग्णास प्रवेश न करण्याचा सल्ला द्यावा.

उपद्रव व चिकित्सा -

दग्ध:- त्याच वेळी घृतकुमारीचा गर लावावा. त्यानंतर जात्यादिघृत, मधु व घृत याने दग्ध व्रणाची चिकित्सा करावी.

नाडी स्वेद

स्वेदनाची सर्वात प्रसिध्द पध्दती नाडी स्वेद आहे. यामध्ये स्वेदनासाठी नलिकेचा (नाडी) वापर करून विशिष्ट यंत्र तयार करून स्वेदन केले जाते म्हणून यास नाडी स्वेद म्हणतात. प्रामुख्याने एकांग भागी स्वेदन करण्यासाठी नाडी स्वेदाचा उपयोग केला जातो. हा उष्ण स्वेदनाचा प्रकार असून दोषानुसार व्याधीची अवस्था ठरवून स्वेदनाच्या द्रव्यांचा वापर केला जातो. विशेष म्हणजे आयुर्वेद चिकित्सकांद्वारे OPD (बाह्यरुग्ण विभागाच्या) च्या रुग्णांना सहजतेने हा स्वेदन प्रकार केला जाऊ शकतो.

स्वेदन योग्य:

- | | |
|---|--|
| (1) श्वास, कास (Bronchial Asthma bronchitis, COPD) | (2) संधिगतवात (Arthritis) |
| (3) पक्षाघात (Paralysis) | (4) शोथ (Inflammation) |
| (5) शूल (Pain) | (6) अंगमर्द (Bodyache) |
| (7) वमन - विरेचना पूर्वी - पूर्वकर्म म्हणून | (8) मन्याशूल, कटिशूल, पृष्ठशूल (Spondylitis) |

(9) स्तम्भ (Muscle spasm)

संभार संग्रहः

- (1) नाडी स्वेद यंत्र (प्रेसर कुकरद्वारे तयार केलेले किंवा विद्युतद्वारे कार्य करणारे)
- (2) स्वेद द्रव्य (दशमुल, विदारीगंधादि इ. - रुग्ण व व्याधीनुसार)
- (3) पाणी
- (4) अभ्यंगार्थ तैल - महानारायण, विषगर्भ, तैल, धन्वंतरम् आवश्यकतेनुसार
- (5) गॅस स्टोव्ह
- (6) पंचकर्म सहाय्यक

नाडी स्वेद यंत्रः नाडी स्वेदन यंत्र 5 lit. ते 30 lit. पर्यंतच्या प्रेशर कुकर पासून तयार केले जाते. यास झाकणावरील शिट्टीच्या जागी रबरी नलीका लावून नाडी स्वेदन यंत्र तयार केले जाते. प्रेशर कुकरमध्येच अधिक शोधन करून Electric heater लावले जाते. झाकणावर रबरी नलीका लावून safety valve ची ही व्यवस्था केली जाते त्याचप्रमाणे यावर दाब मोजण्यासाठी घडयाळ (Pressure monitor) बसवली जाते ज्यामुळे आतील वाफेचा दाब समजतो. या यंत्रामध्ये छिद्रयुक्त डबा ठेवून त्यामध्ये स्वेद द्रव्य ठेवले जातात. यामुळे Heating coil चा औषधी द्रव्यांचा सरळ संपर्क होत नाही व coil खराब होत नाही.

पूर्वकर्म

बाष्प तयार करणे - रुग्ण व व्याधीच्या परीक्षणानंतर आवश्यक ते द्रव्य नाडी स्वेद यंत्रामध्ये घालून त्यास गॅस स्टोव्ह वर किंवा विद्युत प्रवाह सुरू करून गरम करण्यास ठेवावे व नलीकेतून बाष्प येऊ द्यावे.

रुग्ण सिध्दता - प्रातःकाली मल-मूत्र विसर्जनानंतर रुग्णास नाडी स्वेदनासाठी तयार करावे. ज्या स्थानी नाडी स्वेद द्यावयाचा आहे ते स्थान निर्वस्त्र करावे व अभ्यंग विधीने सोयीस्कर अशा आसनात आवश्यक त्या तैलाने अभ्यंग करावे.

रुग्णास आस्यप्रदेशी स्वेदन करावयाचे असल्यास नेत्रावर कमलपत्र/काकडी किंवा पिचूद्वारे झाकून स्वेदन करावे.

प्रधानकर्म

नाडी स्वेद यंत्रातून बाष्प निघणे सुरू झाल्यानंतर अभ्यंग झालेल्या रुग्णाचे व्याधी स्थानी फार जवळ न धरता किंवा फार दूर न धरता स्वेदन करावे. स्वेदनाच्या वेळी एकाच जागी नलीका अधिक काळ रोखली जाऊ नये तसेच बाष्पाचे तुषार रुग्णाच्या अंगावर उडणार नाही याची काळजी घेतली जावी. स्तम्भ, गौरव, शूल लक्षण नाहीसे झाल्यानंतर स्वेदन थांबवून घ्यावे.

कालावधी - 15 - 30 मिनिट

पश्चातकर्म

स्वेदन क्रियेनंतर रुग्णास टॉवेलने पुसून घ्यावे. विश्रांतीचा सल्ला द्यावा. अर्ध्या तासानंतर स्नानासाठी परवानगी द्यावी. तैल धुण्यासाठी चण्याच्या डाळीचा लेप करून कोष्ण जलाने स्वच्छ करण्यास सांगावे.

घ्यावयाची काळजी (Precautions) -

- (1) स्वेदन करतांना नलीका हलती ठेवावी.
- (2) गरम तुषार रुग्णाच्या अंगावर उडणार नाही याची काळजी घ्यावी.

उपद्रव व चिकित्सा-

- (1) बाष्पामुळे दग्ध - घृतकुमारी, जात्यादिघृत, स्थानिक

बाष्प स्वेद

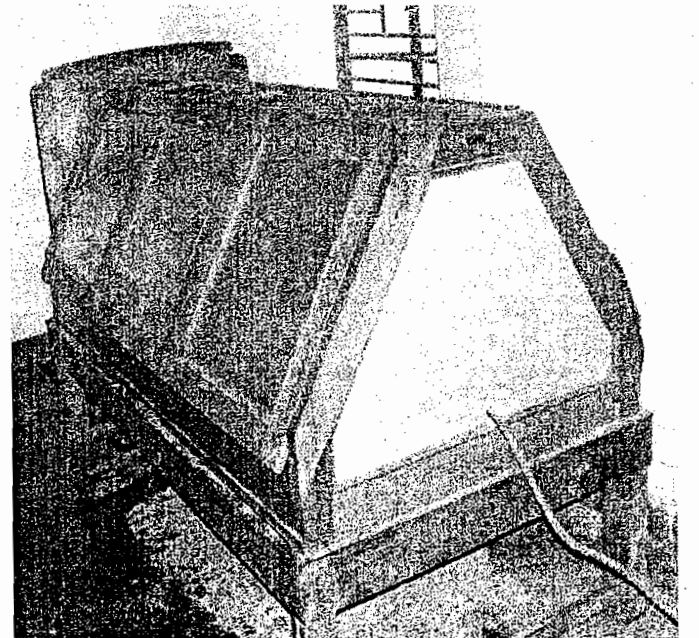
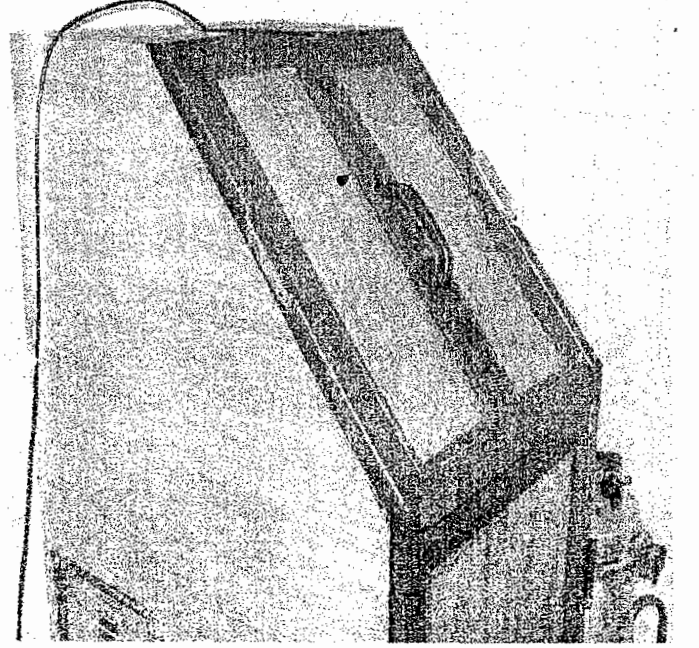
औषधी द्रव्यांच्या क्वाथापासून तयार झालेल्या वाफेने/बाष्पाने स्वेदन करण्याची क्रिया बाष्प स्वेद. हा नाडी स्वेदासारखाच प्रकार आहे परंतू सर्वांगास केला जातो. शोधनकर्मासाठी पूर्वकर्म म्हणून बाष्प स्वेदन केले जाते. सध्याच्या काळात लोकांमध्ये प्रसिद्ध प्रकार असून हॉटेलपासून तट धरापर्यंत स्वस्थ व्यक्ती ह्या प्रकारचा स्वेद करतात. आजच्या काळात 'स्पा' च्या नावावर बाष्पस्वेद फार लोकप्रिय आहे.

बाष्पस्वेदाचे वैशिष्ट्ये

- 1) करण्यास सोपी क्रिया. सहाय्यकास फार लक्ष द्यावे लागत नाही.
- 2) सर्वांगास समान स्वेदन, शरीरातील सर्व अंगापर्यंत सारख्या तापमानाने स्वेदन होते. इतर स्वेदामध्ये ह्या अडचणी येण्याची शक्यता असते.
- 3) स्वेदनाची उपयोगिता बाष्प स्वेदनाने साध्य केली जाते.

बाष्पस्वेद योग्य (Indications):

- 1) वमन व विरेचनाच्या पूर्वी पूर्वकर्म म्हणून



- 2) पक्षाघात (paralysis)
- 3) स्थौल्य (obesity)
- 4) motor neurons diseases

अयोग्य (Contra indications):

- 1) बाल,
- 2) ज्वररोगी
- 3) Hypertensive, Hypotensive
- 4) रजःस्वला

संभारसंग्रह :

- 1) स्वेदन यंत्र (steam box)
- 2) द्रोणी
- 3) अभ्यंगार्थ तैल
- 4) स्वेदनार्थ द्रव्य (शोधन, शूलघ्न) 500 ग्रॅम
- 5) टॉवेल
- 6) गॅस स्टोव्ह/ Electric Supply

स्वेदन यंत्र :

सर्वांग बाष्प स्वेदनासाठी दोन प्रकारचे स्वेदन यंत्र उपलब्ध आहेत 1) आडवा स्वेदन यंत्र (Horizontal Steam Box), 2) उभा स्वेदन यंत्र (vertical Steam Box)

आडवा स्वेदन यंत्र (Horizontal Steam Box):

जे रुग्ण बसू शकत नाही उदा. पक्षाघाताचे रुग्ण, motor neuron diseases, Hypertensive रुग्णांसाठी आडवा स्वेदन यंत्र सोयीस्कर असतो. या स्वेदन यंत्राने कटि पृष्ठ भागी स्वेदन चांगल्याप्रकारे होते. आडवा स्वेदन यंत्र साधारणतः 6.5 फूट लांब 2.5 फूट रुंद व 2.5 फूट उंच असावा. लाकडापासून तयार केलेल्या पेटी सारख्या स्वेदन यंत्राचे लांब दोन्ही भागास काच लावल्यास रुग्णाच्या स्वेदन कर्माच्या वेळी परीक्षण करण्यास मदत होते. ह्या स्वेदन यंत्राचा एक भाग खुला असून हा डोक्याकडील भाग असतो हा भाग बंद करण्यासाठी वर सरकणारी पाटी तयार केली जाते या पाटीस अर्ध गोलाकार काप असतो ज्यामुळे डोके बाहेर ठेवून रुग्णास पेटीत झोपल्यानंतर पेटीपूर्णतः बंद करता येऊ शकते. रुग्णास झोपण्यासाठी जाळीयुक्त पीठ तयार केले जाते यास बाहेर आत सरकण्यासाठी पायाच्या ठिकाणी चाक बसविलेले असतात पायाच्या बाजूस नलीका लावलेली असते ज्याचे एक टोक बाहेर प्रेशर कुकरशी जोडलेली असते तर दुसरे टोक बाष्प येण्यासाठी बाष्पयंत्रामध्ये असते ज्यातून बाष्प सर्व पेटीमध्ये जाडीच्या

खालून रुग्णाच्या सर्वांगास पोहचते.

उभास्वेदन यंत्र (Vertical Steam Box):

ह्या प्रकारचा स्वेदन यंत्र लाकूड किंवा फायबरपासून बनविलेला असतो. साधारणतः 4.5 फूट उंच, 4 फूट लांब व 3 फूट रुंदीचा असावा. स्वेदन पेटीच्या तळाशी बाष्प येण्यासाठी नळी जोडलेली असते. आजकाल steam generator आतमध्येच बसवलेले असतात किंवा बाहेर प्रेशर कुकरद्वारे बाष्प तयार करून त्यास आतील नळीशी जोडले जाते. रुग्णास बसण्यासाठी उंचीनुसार कमी अधिक करण्यासाठी आसन तयार केलेले असते. वरच्या बाजूस डोके बाहेर येईल एवढे गोलाकार छिद्र असून पेटीच्या समोरून पेटी बंद करण्यासाठी दार असतो.

पूर्वकर्म

रुग्ण परीक्षण - B.P. Pulse, Blood Sugar

रुग्णसिद्धता - प्रातः काली मल मूत्र विसर्जनानंतर रुग्णास बाष्पस्वेदनासाठी तयार करावे. रुग्णास कमीतकमी वस्त्रात अभ्यंग विधीने सर्वांगास अभ्यंग करून मूर्धस्थानी आमलकी कल्काचे लेप करावे. ज्यामुळे अति उष्णतेपासून मस्तिष्काचे संरक्षण होईल.

प्रधानकर्म

बाष्प स्वेदन यंत्रामध्ये बाष्प तयार केलेली असावी. त्यानंतर अभ्यंग केलेल्या रुग्णास उभ्या स्वेदन यंत्रात किंवा आडव्या स्वेदन यंत्रात रुग्णास बसवावे/झोपवावे. बाष्प बाहेर जाऊ नये यासाठी मानेभोवती टॉवेलने गुंडाळून घ्यावे. रुग्णास त्रास होत नाही याची काळजी घ्यावी व सम्यक स्वेदनाचे लक्षण दिसेपर्यंत स्वेदन करावे.

प्रामुख्याने रुग्णाच्या कपालप्रदेशी स्वेदबिंदू आल्यास किंवा रुग्णास सहन न झाल्याने थांबवण्याची इच्छा व्यक्त केल्यास स्वेदन करणे थांबवावे. बाष्प बंद केल्यानंतर लगेच स्वेदनयंत्राचे दार उघडून रुग्णास बाहेर काढू नये.

पश्चातकर्म

स्वेदनकर्मानंतर टॉवेलने रुग्णास पूसून घ्यावे व विश्रांतीचा सल्ला द्यावा. अर्ध्यातासानंतर रुग्णास स्नानासाठी परवानगी द्यावी. तैल काढण्यासाठी चण्याच्या डाळीचा लेप करून कोष्ण जलाने स्वच्छ करण्यास सांगावे.

ध्यावयाची काळजी :

- 1) रुग्णास मूर्च्छा, तमःप्रवेश लक्षण दिसल्यास ताबडतोब स्वेद बंद करावा.
- 2) रुग्णाने बाष्प सहन होत नसल्याची तक्रार करता बरोबर स्वेदन बंद करावे.
- 3) रुग्णास स्वेदन केल्यानंतर लगेच दार उघडून बाहेर काढू नये किंवा थंड हवेचा स्पर्श टाळावा.

उपद्रव व चिकित्सा :

1) मूर्च्छा - BP कमी किंवा अधिक झाल्याने किंवा अत्याधिक स्वेदनाने मूर्च्छा लक्षण उत्पन्न होण्याची शक्यता असते.

चिकित्सा - Head low position, थंड पाणी चेहऱ्यावर शिंपडणे
नारिकेल जल, शरबत पिण्यास द्यावे.

2) दग्ध - अधिक बाष्प एकाच जागी लागल्यास

चिकित्सा - घृतकुमारी, जात्यादिघृत स्थानिक

क्षीरबाष्प स्वेद (क्षीरधूम)

क्षीर बाष्प स्वेद नाडी स्वेदाचाच एक प्रकार असून यामध्ये गोदूग्धाच्या वाफेने स्वेदन केले जाते म्हणून यास क्षीरबाष्प स्वेद म्हणतात. याचा वापर प्रामुख्याने उर्ध्वांगातील वातव्याधीसाठी केला जातो.

स्वेदनयोग्य (Indications):

- 1) अर्दित (Facial palsy)
- 2) हनुग्रह (Jaw locking)
- 3) मन्यागतवात (cervical spondylosis)
- 4) Trigeminal neuralgia

संभारसंग्रह :

- 1) बलामूल (स्वच्छ केलेले) - 125 ग्रॅम
- 2) गोदुग्ध - अर्धा लीटर
- 3) नाडी स्वेदन यंत्र
- 4) अभ्यंगार्थ तैल आवश्यकतेनुसार
- 5) रास्नादि चूर्ण 5 ग्रॅम
- 6) पातेले
- 7) गॅस स्टोव्ह
- 8) गुलाब पाकळ्या
- 9) Cotton bandage
- 10) पंचकर्म सहाय्यक

पूर्वकर्म

औषधी निर्माण - 125 ग्रॅम बलामूल 2 लीटर पाण्यामध्ये शिजवून विधीवत क्वाथ तयार करावे

अर्धालीटर एवढे पाणी शिल्लक असतांना त्यास गाळून घ्यावे. त्यानंतर अर्धालीटर गोदूग्ध व अर्धालीटर बलामूल क्वाथ यास एकत्र करुन स्वेदन यंत्रामध्ये घालून बाष्प तयार करण्यासाठी गॅसवर गरम करण्यास ठेवावे.

रुग्णसिद्धता - रुग्णास व्याधीस्थानी योग्य तैलाने अभ्यंग करावे आस्यप्रदेशी स्वेदन करावयाचे असल्यास दोन्ही नेत्रांवर गुलाबपाकळी त्यावर थंड पाण्याने भिजवलेले पिचू ठेवून bandage करावा BP, Pulse परीक्षण करुन घ्यावे.

प्रधानकर्म

स्वेदनयंत्रातून नलीकेद्वारे बाष्प आल्यानंतर फार जवळ न धरता नाडी स्वेद विधिने स्वेद करावा. स्वेद करतांना नलीका हलती ठेवावी त्यामुळे एकाच ठिकाणी स्वेद लागणार नाही. सम्यक स्वेदनाची लक्षणे दिसेपर्यंत स्वेदन क्रिया करावी.

पश्चातकर्म

स्वेदन क्रियेनंतर रुग्णास टॉवेलने पुसून घ्यावे. नेत्रावरील बंधन सोडावे व विश्रांतीचा सल्ला द्यावा. रास्नादि चूर्ण डोक्यास लावावे.

घ्यावयाची काळजी :

- 1) वेदनाच्या वेळी बाष्पासोबत गरम पाण्याचे तुषार रुग्णाच्या अंगावर पडणार नाही याची काळजी घ्यावी.
- 2) रुग्णास बेचैनी वाटल्यास तात्काळ स्वेदन थांबवावे.

उपद्रव व चिकित्सा

बाष्पामुळे दग्ध - घृतकुमारी, जात्यादिघृत स्थानिक

अवगाह स्वेद (Spinal Bath, Hip Bath, Sitz Bath)

द्रवस्वेदस्तु द्विविधः परिषेकोऽवगाहच।

अ. सं. सू. 26/4

द्रवस्वेदाचे दोन प्रकार आहेत 1) अवगाह स्वेद 2) परिषेक

अवगाह म्हणजे बुडवून ठेवणे. या स्वेद प्रकारामध्ये कोष्ण औषधीक्वाथ, तैल टब मध्ये ठेवून रुग्णास बसवून ठेवले जाते. पर्यायाने व्याधीयुक्त अवयव औषधी द्रव्यात बुडवून ठेवले जाते.

तैरेव वा द्रवैः पूर्ण कुण्डं सर्वाङ्गऽनिले। अवगाह्यातुरस्तिष्ठे दर्शः कृच्छ्रादिरुक्षु च।।

अ.ह.सू. 17/11

स्वेदनयोग्य (Indications):

1. शरीरामध्ये वातवृद्धी झाल्यास
2. अर्श (Painful Piles)
3. मूत्रकृच्छ्र (Dysuria)
4. कटिगतवात (Spondylitis)

- | | |
|------------------------|---------------------|
| 5. गृध्रंसी (sciatica) | 6. AVN - Hip Joints |
| 7. योनिगत व्याधी | 8. पंगुत्व |

स्वेदन अयोग्य (Contra indications):

1. अजीर्ण
2. रुक्षशरीर
3. स्थौल्य

संभारसंग्रह :

1. अवगाह यंत्र (Bath tub/spinal bath tub)
2. स्वेदन द्रव्य (क्वाथ/तैल/सिद्ध दुग्ध)

| | | |
|---------|---|------------|
| सर्वांग | - | 50-60 लीटर |
| एकांग | - | 10-15 लीटर |
3. तैल अंभ्यार्थ

| | | |
|---------|---|--------------|
| तलमार्थ | - | 100-150 मिली |
| | - | 10 मिली |
4. पातेले
5. रास्नादि चूर्ण - 5 ग्रॅम
6. टॉवेल
7. पंचकर्म सहाय्यक

पूर्वकर्म

औषधी निर्माण - रुग्ण प्रकृतीनुसार, व्याधी, ऋतु यांचा सर्व विचार करुन स्वेदनासाठी आवध्यक क्वाथ, सिद्ध दुग्ध वा तैल विधिवत तयार करुन रुग्णास सहन होईल ते तापमान असतांना अवगाह यंत्रामध्ये ठेवावे.

सामान्य तापमान - 38°C ते 40°C

रुग्णपरीक्षण - BP, Pulse इ. नियमित परीक्षण करुन घ्यावे

रुग्णसिद्धता - रुग्णास कमीतकमी वस्त्रात द्रोणीमध्ये बसवून/झोपवून योग्य तैलाने विधीवत अभ्यंग करावे. रुग्णाच्या डोक्यावर तलम ठेवावे. अवगाह तैलाने करावयाचे असल्यास किंवा व्याधीनुसार अभ्यंगाची गरज नसल्यास सरळ अवगाह स्वेद क्रिया करावी.

प्रधानकर्म

अवगाह यंत्रामध्ये कोष्ण क्वाथ/तैल भरुन रुग्णास त्यात बसण्यास सांगावे. द्रव द्रव्य रुग्णाच्या नाभीपर्यंत भरावे. सर्वांग अवगाहासाठी द्रव द्रव्य मानेपर्यंत भरावे व सम्यक स्वेदनाचे परीक्षण करावे.

अवगाहाच्या वेळी द्रव द्रव्याचे तापमान कमी झाल्यास थोडी क्वाथाची मात्रा दुसऱ्या गरम क्वाथाने बदलून घ्यावी. पूर्ण क्रियेमध्ये द्रवद्रव्याचे तापमान एकसारखे राहिल याची काळजी घ्यावी. सम्यक स्वेदनाची लक्षणे आल्यानंतर रुग्णास स्वेदन यंत्रा (Tub) च्या बाहेर येण्यास सांगावे.

कालावधी - 48 मिनिटे ते 192 मिनिटे आवश्यकतेनुसार दररोज, एकांतर किंवा 3 दिवसानंतर

पश्चातकर्म

रुग्ण अवगाह स्वेदन यंत्राच्या बाहेर आल्यानंतर टॉवेल अंग पुसून घ्यावे तलम काढून घ्यावे तथा रास्नादि चूर्ण डोक्यावर लावावे. त्यानंतर रुग्णास अर्धा तास विश्रांतीचा सल्ला द्यावा. अर्ध्यातासानंतर कोष्ण जलाने स्नान करण्यास सांगावे.

घ्यावयाची काळजी -1. क्वाथ/तेल अधिक गरम नसावा

2. रुग्णास क्रियेच्या वेळी बेचैन वाटल्यास किंवा सम्यक स्वेदाचे लक्षणे दिसल्यास स्वेदन क्रिया लगेच थांबवावी.

उपद्रव - दग्ध व्रण

चिकित्सा - जात्यादिघृत, मधू व घृत स्थानिक

परिषेक स्वेद (धारा स्वेद)

औषध सिद्ध तैल, क्वाथाची शरीरावर धार धरून स्वेदन करण्याची पद्धत परिषेक स्वेद होय. परिषेक क्वाथ, तैल या व्यतिरिक्त धान्याम्ल, दुग्ध यांचीही कली जाते. परिषेकस्वेदास केरलीय पंचकर्म पद्धतीमध्ये संशोधीत करून लोकप्रिय केले आहे. पिझिचिल हा त्यातलाच एक लोकप्रिय प्रकार होय. परिषेक एकांग किंवा सर्वांग केला जातो. जूलै, ऑगस्ट, ऑक्टोबर, नोव्हेंबर, फेब्रुवारी मार्च हा काळ धारासाठी सर्वोत्तम मानला जातो. [चिकित्सा संग्रहम]

1) पिझिचिल (कायसेक)

स्निग्ध परिषेक स्वेद असून कोष्ण तैलाने शरीरावर धार धरली जाते. केरलीय पंचकर्मामध्ये 'पिझिचिल' या नावाने प्रसिद्ध आहे. या क्रियेमध्ये स्नेहन व स्वेदन एकाच वेळी होते.

स्वेदन योग्य (Indications):

- | | |
|---------------------------------------|--------------------------------|
| 1. पक्षाघात (Hemiplegia) | 2. पंगू (Paraplegia) |
| 3. Motor neuron diseases | 4. Degenerative joint diseases |
| 5. रुजार्दितम गात्र painful body part | 6. रसायन कर्मासाठी |
| 7. अंतरायाम | 8. बाह्ययाम (Tetany) |
| 9. आक्षेपक | 10. वातबलास |

- | | |
|---------------------------|--------------------------------|
| 11. अर्दित (Facial Palsy) | 12. अपतानक (Episthotonos) |
| 13. गृध्रसि (Sciatica) | 14. खल्ली |
| 15. पाददाह | 16. देह दृढ व बलवान होण्यासाठी |

स्वेदन अयोग्य (Contra indications):

- | | |
|-------------|------------|
| 1. अर्जीण | 2. स्थौल्य |
| 3. रजःस्वला | 4. ज्वर |
| 5. अतिसार | |

संभार संग्रह-

- | | |
|--------------------------------|-----------|
| 1. द्रोणी | |
| 2. तैल - पिङ्गिचिल साठी अंदाजे | - 2 लीटर |
| - तलम करण्यासाठी | - 10 मिली |
| 3. कापड/गलन्ती/गिन्डी | |
| 4. रास्नादि चूर्ण | - 5 ग्रॅम |
| 5. पातेले | |
| 6. गॅसस्टोव्ह | |
| 7. पंचकर्म सहाय्यक | - 2-4 |

पिङ्गिचिल साठी वापरण्यात येणारे तैल

वातप्रधान -

- | | |
|------------------|-----------------|
| 1. ध्वन्तरम् | 2. महामाष तैल |
| 3. महानारायण तैल | 4. क्षीरबला तैल |

पित्तप्रधान व्याधी

- | | |
|-------------------------|-----------------|
| 1. चंदनबला लाक्षादि तैल | 2. क्षीरबला तैल |
|-------------------------|-----------------|

कफप्रधानव्याधी

- | | |
|----------------|-------------------|
| 1. सहचरादि तैल | 2. लघुविषगर्भ तैल |
|----------------|-------------------|

पूर्वकर्म

रुग्ण आतुरपरिचर्या - प्रातःकाळी मलमूत्र विसर्जनानंतर रुग्णास कमीत कमी कपडयामध्ये द्रोणीमध्ये पाय पसरून बसण्यास सांगावे स्वस्तिर्वाचन करून योग्य त्या तैलाने तलम करावे. रुग्णाच्या शिरोभागी

पट्टबंधन करावे ज्यामुळे तैल नेत्रावर येणार नाही.

आवश्यक ते तैल गॅसवर कोष्ण करावे. संपूर्ण विधीमध्ये तापमान एकसारखे राहिल याची काळजी घ्यावी.

सामान्य तापमान: 38°C - 45°C

प्रधानकर्म

पिङ्गिचिल 4 सहाय्यकांद्वारे करणे अधिक उत्तम असते परंतू सहाय्यकांच्या कमतरतेमुळे दोन सहाय्यकांद्वारे सुद्धा पिङ्गिचिल क्रिया केली जाते. सर्व प्रथम रुग्णास बसून पाय पसरलेल्या अवस्थेत केली जाते. रुग्णाच्या सर्वांगास हलके अभ्यंग केले जाते. आवश्यक ते तैल कोष्ण करून त्यामध्ये वस्त्र भिजविले जातात त्यानंतर एका हाताने स्नेहामध्ये भिजविलेले वस्त्रखण्ड हलक्या दाबाने पिळून अंगठ्याच्या साहय्याने रुग्णाच्या किमान 6 ते 9 इंच उंचीवरून शरीरावर धार धरली जाते. सहाय्यकाने दुसऱ्या हाताने रुग्णशरीरावर मर्दन करावे.



पिङ्गिचिल खालील अवस्थांमध्ये करावी.

1. रुग्णास बसवून पाय पसरलेल्या अवस्थेत (sifting with extended legs)
2. उताणे झोपलेल्या अवस्थेत (Supine position)
3. वाम पार्श्व (left lateral)
4. दक्षिण पार्श्व (Right lateral)
5. उताणे झोपलेल्या अवस्थेत (Supine repeat)
6. बसलेल्या अवस्थेत (Sitting repeat)

[Sirassekadi vidhi, 2009]

पालथ्या स्थितीमध्ये गरज असल्यास किंवा चिकित्सकाच्या विवेकानुसार कायसेक करावे.

कायसेक अधोजत्रूगत करावे. ज्यावेळी कायसेक सोबत तक्रूधारा करणे क्रमप्राप्त असेल उदा. प्रमेह, Psoritic condition त्यावेळी रुग्णास उताणे (supine) अवस्थेत क्रिया करावी. मन्या व असंस्थानी पिङ्गिचिल क्रिया (कायसेक) शिरोधारा सुरु करण्याच्या 15 मिनिट पूर्व व पश्चात करावी. कायसेक स्वेदनाचे लक्षण दिसेपर्यंत करावे.

स्नेहधारा करण्यासाठी वस्त्रखण्डाच्या जागी गलन्ती/गिण्डी/kernel (एका विशिष्ट प्रकारचे भांडे ज्यास एका बाजूने द्रव द्रव्य बाहेर निघण्यासाठी नलीका असते) चा वापर केला जातो.

आजकाल सर्वांगधारा करण्यासाठी बाजारात Automated machine उपलब्ध आहे.

कालावधी - दिड तास प्रतिदिन एकवेळ

आक्षेपक, अपतानक, अंतरायाम व्याधीमध्ये प्रतिदिन दोन वेळा (प्रातः सायं) 3 तास

एकूण कालावधी - 7, 14, 21 दिवस

यामार्द्धं सेचयेदे व मथ वातङ्कशक्तितः।

प्रातःसायं सेचयांति याममाक्षेपकादिषु।। (सिरसेकविधी/कायसेक विधी-13)

कालः प्रातः 7 ते 11 किंवा सायंकाळी 4 ते 6

पश्चातकर्म

पिझिचिल झाल्यानंतर नारीकेल पत्र/tongue cleaner द्वारे शरीरावरील स्नेह पुसून काढावा. शरीरास स्वच्छ टॉवेल पुसून काढावे. त्यानंतर तलम काढून रास्ना चूर्ण शिरोभागी लावावे. रुग्णास अर्धा तास विश्राम करण्याचा सल्ला द्यावा व त्यानंतर सुखोष्ण जलाने स्नान करण्यास सांगावे. शिरोभागी आमलकी कल्क, कुलथी, मूंग पीठ यापैकी एकाचा लेप करून स्नान करावा.

आक्षेपक, अपतंत्रक, बाह्यायाम, अंतरायाम, अर्दित, पक्षाघात, रक्तवात या रुग्णांमध्ये पिझिचिलनंतर स्नान करू नये. केवळ स्वच्छ टॉवेलने रुग्ण शरीर पुसून घ्यावे. रात्री झोपतांना अनुलोमनासाठी गंधर्वहरीतकी 3 ग्रॅम कोष्णजलासह द्यावी.

ध्यावयाची काळजी -

1. तैल गरम नाही याची सहाय्यकाने खात्री करून घ्यावी (विशेषतः गलंती (kernel) द्वारे कायसेक करताना)
2. पूर्ण विधीमध्ये स्नेहाचे तापमान एकसारखे असावे.
3. 4 सहाय्यकांच्या मदतीने विधी होत असतांना एकसारखी गती असावी.
4. मर्दन मंदगतीने करावे, फार अधिक दाब नसावा.
5. स्नेह द्रोणीमध्ये जमा झाल्यास दुसऱ्या कापडाने बुडवून व पिळून बाहेर काढावा

उपद्रव व चिकित्सा -

1. मूर्च्छा - Head law, शीत जलाचा मुखावर परिषेक
2. दग्ध - अधिक उष्ण स्नेह असल्यास दग्ध होऊ शकतो - घृतकुमारी, शतधौतघृत स्थानिक
3. Rash in body - खदिशरीर सारिवाधासव गंधक रसायन

स्नेह पुनःप्रयोग -

पिझिचिल करण्यासाठी प्रति दिवस शक्यतो नवीन स्नेह घ्यावा. परंतू स्नेहाची खर्च प्रत्येकांस

परवडेलच असे नाही त्यामुळे रुग्णासाठी वापरण्यात येणारा स्नेह एकत्र करून दुसऱ्या दिवशी कमी पडलेली मात्रा नवीन स्नेहाची घालावी असे पूढील दोन दिवस करावे चवथ्या दिवशी पूर्णतः नवीन स्नेह घ्यावा आणि यात आधीच्या विधीप्रमाणे पूढील दोन दिवस उपयोगात आणवा सातव्या दिवशी तिसऱ्या व सहाव्या दिवशीचा स्नेह एकत्र करून उपयोगात आणावा. जूना स्नेह वापरतांना त्यास गरम करून त्यातील जलांश जाळून घ्यावे व गाळून घ्यावे.

परिहार्य विषय - जेवढे दिवस परिषेक केले तेवढेच दिवस पूढे परिहारकाळ पालन करण्यास सांगावे.

- | | |
|--|----------------------------|
| 1. स्त्री दर्शन स्पर्शन | 2. व्यायाम |
| 3. आतप | 4. वेगावरोध |
| 5. शीत (exposed to cold e.g. AC, cooler) | 5. धूमपान |
| 7. शाके क्रोध | 8. अत्याधिक चंक्रमण |
| 9. चिरकाल आसीन्नता (continuous sitting) | 10. स्वप्न - (अधिक निद्रा) |
| 11. रज (धुळीमध्ये फिरणे) | |

2) धान्याम्ल धारा :

परिषेक, द्रवस्वेदाचा प्रकार व धान्याम्ल (कांजी) द्वारे एकांग किंवा सर्वांग शरीराचे धारा धरून स्वेदन करण्याची क्रिया धान्याम्ल धारा म्हणतात. धान्याम्ल धारा करण्याची सर्व पद्धत पिझ्जिचिल प्रमाणेच आहे केवळ स्नेहाच्या ऐवजी धान्याम्ल द्वारे कायसेक केले जाते.

स्वेदन योग्य (Indications):

1. वात व्याधी - कफानुबंधी
2. आमवात
3. स्तम्भ (muscle spasm)
4. रसायनार्थ (rejuvenation)

संभार संग्रह

- | | | |
|-------------------|---|-------------------------------|
| 1. द्रोणी | - | 1 |
| 2. गलन्ती | - | 4 |
| 3. धान्याम्ल | - | 3 लीटर |
| 4. तैल अभ्यंगार्थ | - | 150 मिली (सहचरादि, धन्वंतरम्) |
| तलम | - | 10 मिली |
| 5. पातेले | | |
| 6. गॅसस्टोव्ह | | |

- | | | |
|--------------------|---|---------|
| 7. रास्नादिचूर्ण | - | 5 ग्रॅम |
| 8. टॉवेल | | |
| 9. पंचकर्म सहाय्यक | - | 2 |

पूर्वकर्म

प्रातःकाळी मलमूत्र विसर्जनानंतर रुग्णास कमीत कमी कपड्यांमध्ये द्रोणीमध्ये बसण्यास सांगावे. स्वस्तिर्वाचनानंतर रुग्णास योग्य त्या तेलाने तलम करून व कान कार्पास पिचूद्वारे बंद करावे व शिरोभागी पट्टबंधन करावे. यामुळे धारा करतांना धान्याम्ल नेत्र व कानामध्ये जाणार नाही. रुग्णाच्या प्रकृतीनुसार व व्याधीनुसार तैलाने अभ्यंग करावे. ज्या अवस्थांमध्ये अभ्यंग निषेध असेल त्या अवस्थांमध्ये अभ्यंग करू नये. धान्याम्ल गॅसवर कोष्ण करून घ्यावे.

सामान्यतापमान - 38°C ते 42°C

धारा करण्यापूर्वी रुग्णाचे BP, Pulse इ. चे मापन करावे.

प्रधानकर्म

कोष्ण धान्याम्ल गलन्तीमध्ये घेऊन पंचकर्म सहाय्यकांनी दोन्ही बाजूस उभे राहून 6 ते 9 इंच उंचीवरून रुग्ण शरीरावर धार धरावी. पिझ्जिचिलमधे वर्णिल्याप्रमाणे सात अवस्थांमध्ये धान्याम्लाद्वारे कायसेक करावे. धान्याम्ल प्रतिदिवस नवीन घ्यावा (धाराकल्प - 27)

कालावधी - 45 मिनिट - 7 दिवस

योग्य काळ - प्रातःकाल

पश्चातकर्म

धान्याम्ल धारा झाल्यानंतर रुग्णास स्वच्छ टॉवेलने पुसून काढावे. शिरोभागातील पट्टबंधन कानातील पिचू व तलम काढल्यानंतर रास्नादि चूर्ण शिरोभागी लावावे. अर्धा तास रुग्णास विश्राम करण्याचा सल्ला द्यावा व त्यानंतर सुखोष्ण जलाने स्नान करण्यास सांगावे.

घ्यावयाची काळजी -

1. पूर्ण क्रियेमध्ये धान्याम्लाचे तापमान एकसारखे असावे.
 2. धारा करतांना गलन्तीची उंची फार अधिक किंवा कमी नसावी व गती एकसारखी असावी.
- धारा झाल्यानंतर तात्काळ रुग्णाने शरीर पुसून घ्यावे अन्यथा रुग्णास शीतता अनुभूती होते.

उपद्रव व चिकित्सा

शीतता व रोमहर्ष (chills) - क्रिया करतांना रुग्णास शीत अनुभूती होत असल्यास धारा थांबवून घ्यावी व उष्णोपचार करावे.

3) कषायधारा -

या स्वेद प्रकारामधे एकांग वा सर्वांगावर परिषेक स्वेद केले जाते. हा द्रव स्वेदाचा प्रकार आहे. क्वाथासाठी रुग्णाच्या प्रकृतीनुसार व व्याधीच्या दोषानुसार द्रव्यांची निवड केली जाते.

स्वेदन योग्य (Indications):

1. वातव्याधी कफानुबंधी
2. वातव्याधी पित्तानुबंधी
3. गृध्रसी
4. Spondylitis

संभार संग्रह

1. द्रोणी - 1
2. गलन्ती - 4
3. क्वाथ - 5 लीटर
4. तैल अभ्यंगार्थ - 150 मिली (सहचरादि, धन्वंतरम्)
- तलम - 10 मिली
5. पातेले
6. गॅसस्टोव्ह
7. रास्नादिचूर्ण - 5 ग्रॅम
8. टॉवेल
9. पंचकर्म सहाय्यक - 2

पूर्वकर्म

औषधीनिर्माण - 650 ग्रॅम यवकूट चूर्ण घेऊन 20 लीटर पाण्यामध्ये रात्रभर भिजवून ठेवावे त्यानंतर प्रातःकाळी त्यास कषाय कल्पनेने कषाय तयार करावा 5 लीटर पर्यंत जलांश असल्यानंतर कषाय उतरवून घ्यावे व गाळून घ्यावे. धारा करण्यासाठी क्वाथ कोष्ण असावा याची काळजी घ्यावी.

रुग्णसिद्धता - रुग्णास कमीत कमी वस्त्रामध्ये द्रोणीमध्ये बसण्यास सांगावे त्यानंतर योग्य त्या तैलाने तलम करून कर्णामध्ये कर्पास पिचू ठेवावे व शिरोभागी पट्टबंधन करावे पूर्वाक्त विधीने अभ्यंग करावे.

प्रधानकर्म

धान्याम्ल धारामध्ये वर्णिल्याप्रमाणे.

पश्चातकर्म धान्याम्ल धारामध्ये वर्णिल्याप्रमाणे.

कालावधी - 45 मिनीटे 7, 21, 28 दिवस

उपद्रव व चिकित्सा

शीतता व रोमहर्ष (chills) - क्रिया करतांना रुग्णास शीत अनुभूती होत असल्यास धारा थांबवून घ्यावी व उष्णोपचार करावे.

4) क्षीरधारा

सामान्यता: पित्तप्रधान वात व्याधीमध्ये क्षीरधारा केली जाते. या स्वेदप्रकारामध्ये सिद्ध दुग्धाने किंवा धारोष्ण दूधाने धारा केली जाते. द्रव्यांची निवड व्याधी व रुग्णप्रकृतीनुसार केली जाते. आवश्यकतेनुसार एकांग किंवा सर्वांग धारा केली जाते.

स्वेदन योग्य (Indications):

1. सर्वांग दाह
2. वातरक्त
3. उन्माद
4. स्वास्थ्यरक्षणार्थ - रसायन म्हणून
5. त्वक्कांति पुष्ट्यर्थ

संभार संग्रह

1. द्रोणी - 1
2. गलन्ती - 4
3. धारोष्ण वा सिद्ध दुग्ध - 4 लीटर
4. तैल अभ्यंगार्थ - 150 मिली (सहचरादि, धन्वंतरम्)
- तलम - 10 मिली
5. पातेले
6. गॅसस्टोव्ह
7. रास्नादिचूर्ण - 5 ग्रॅम
8. टॉवेल
9. पंचकर्म सहाय्यक - 2

विधी - पूर्वकर्म, प्रधानकर्म, पश्चातकर्म, धान्याम्ल धारेप्रमाणे

औषधी निर्माण - मुस्ता, चंदन, उशीर, न्हीबेर, मधुयष्टी यांचे एकत्र चूर्ण 275 ग्रॅम गोदुग्ध 4 लीटर व

दूधाच्या 4 पट पाणी मिश्रित करून क्वाथ विधीने पाक करावा. पाणी पूर्णतः आटवल्यानंतर सिद्ध दूधास गाळून धारासाठी वापरावा.

चिकित्सकांनी अवस्थानुसार कोष्ण वा थंड क्षीर धारा करावी.

घ्यावयाची काळजी -

1. पूर्ण क्रियेमध्ये क्षीराचे तापमान एकसारखे असावे.
 2. धारा करतांना गलन्तीची उंची फार अधिक किंवा कमी नसावी व गती एकसारखी असावी.
- धारा झाल्यानंतर तात्काळ रुग्णाने शरीर पुसून घ्यावे अन्यथा रुग्णास शीतता अनुभूती होते.

उपद्रव व चिकित्सा

शीतता व रोमहर्ष (chills) - क्रिया करतांना रुग्णास शीत अनुभूती होत असल्यास धारा थांबवून घ्यावी व उष्णोपचार करावे.

उपनाह स्वेद

उपनाह म्हणजे बांधने; ज्या क्रियेद्वारे औषध कल्क, पिण्ड यांना व्याधीयुक्त अंगावर बांधून स्वेद केले जाते त्यास उपनाह स्वेद म्हणतात. उपनाह स्वेद हा एकांग स्वेद असून संकर-पिण्ड स्वेदाचा मिश्रीत प्रकार आहे. आचार्य सुश्रूत व वाग्भटांनी 4 स्वेद प्रकारांमध्ये उपनाह स्वेदास स्वतंत्र मानले आहे.

उपनाशे वचाकिण्व दिवाकृतम्। अ.ह.सू. 17/1-5

स्वेदन योग्य (Indications):

- | | |
|---------------------------|--------------------------|
| 1. संधिगतवात | 2. वातरक्त |
| 3. वातव्याधी कफानुबंध | 4. वातव्याधी पिस्तानुबंध |
| 5. Tennis Elbow | 6. writer's hand |
| 7. Carpel tunnel syndrome | 8. क्रौष्टुक शिर्ष |
| 9. Frozen shoulder | 10. calcaneal spur |

सामान्यता: वापरात येणारी द्रव्य -

1. वातव्याधी- वचा शताव्हा, दारुहरिद्रा धान्यक रास्ना एरण्ड, जटामानसी यांचा कल्क किंवा वेशवार
2. कफानुबंधी वात - सुरसादि गण (सुश्रूत), कोट्टमचुकादि चूर्ण (सहस्त्रयोग)
3. पित्तानुबंधी - पद्मकादि गण, काकोल्यादि गण, एलादि (सुश्रूत)

संभारसंग्रह

1. दोष/व्याधीनुसार आवश्यक चूर्ण - 50-100 ग्रॅम
2. एरण्ड/अर्कपत्र - 7-10

- | | |
|--|---------------|
| 3. अम्लद्रव्य (धान्याम्ल/तक्र/vinegar) - | 50-100 मिली |
| 4. तैल (दोषानुसार) उपनाहार्थ - | 50 मिली |
| अभ्यंगार्थ - | 30-50 मिली |
| 5. महास्नेह (आवश्यकता असल्यास) - | 30 मिली |
| 6. सैधव (आवश्यकतेनुसार) - | 20-30 ग्रॅम |
| 7. Bandage/कापड - | आवश्यकतेनुसार |
| 8. कढई, पातेले | |
| 9. गॅसस्टोव्ह | |
| 9. पंचकर्म सहाय्यक - | 1 |

पूर्वकर्म

औषधीनिर्माण - औषधीचूर्ण, सैधव, तैल, अम्ल द्रव्य एकत्र करुन पिष्टी (Paste) तयार करावी व त्यास कोष्ण करावे. ज्या रुग्णांसाठी निराग्नि स्वेदाची आवश्यकता असेल त्या ठिकाणी कोष्ण करण्याची गरज नाही.

सामान्यतापमान - 38°C ते 40°C

रुग्णसिद्धता - रुग्णाचा जो अवयव व्याधीयुक्त आहे त्या अवयवास निर्वस्त्र करुन स्वच्छ करावे व आवश्यकतेनुसार योग्य तैलाने रुग्णाच्या व्याधीयुक्त अंगावर अभ्यंग करावे.

प्रधानकर्म

रुग्णास योग्य स्थितीत बसवून किंवा झोपवून व्याधीयुक्त अंगावर कोष्ण/शीत पिष्टीचा लेप करावा. लेप अधिक पातळ किंवा जाड नसावा (अंदाजे 1-2 सेमी जाड). त्यानंतर लेपावर एरण्ड/अर्क पत्र तव्यावर सुखोष्ण करुन आच्छादीत करावे व Bandage/कपडा यांच्या साहय्याने व्रणबंधन वर्णीत पद्धतीने पट्टबंधन करावे.

कालावधी - 12 तास (प्रातःकाली उपनाह केल्यानंतर रात्री बंधन सोडावे अथवा रात्रीचा उपनाह प्रातःकाली सोडावा) अ. ह. सू. 17/5

पश्चातकर्म

उपनाह स्वेद द्रव्याचे लेप काढल्यानंतर कोष्ण जलाने अंग धुवून घ्यावे व स्वच्छ टॉवेलने पूसून घ्यावे.

घ्यावयाची काळजी -

1. रुग्णास कोणत्या द्रव्याची allergy तर नाही (उदा. अर्कपत्र इ.) याची खात्री करुन घ्यावी.

2. उपनाह अधिक उष्ण नसावा.
3. बंधन फार ढिले किंवा घट्ट नसावे.

उपद्रव व चिकित्सा

1. कंडू + कोठ (Itching & Rashes) - लगेच उपनाह काढून त्यावर पंचतिक्तघृत, जात्यादि तैल स्थानिक लावावे.
2. दग्ध - मधू व घृत, जात्यादि तैल स्थानिक

साल्वण उपनाह

काकोल्यादिः सवातघ्नः सर्वांम्ल द्रव्य संयुतः।

सानूपौदक मांसस्तु सर्वस्नेह समान्वितः।।

सुखोष्णः स्पष्टलवणः साल्वण परिकीर्तितः।

तेनोपनाहं कुर्वीत सदा वातरोगिणाम्।।

सु.चि 4/14-15

प्रचूर मात्रेत लवण उपयोगात आणून उपनाह करण्यास साल्वण स्नेह म्हणतात.

उपयुक्त द्रव्य - सुरसादि गण, काकोल्यादि गण, एलादिगण, अम्लद्रव्य, मांस (वेशवार), महास्नेह, अधिक मात्रेत लवण, उपनाह विधीने पिष्टी तयार करून उपनाह बांधावे.

उपनाह योग्य (Indications):

1. अधिक रुजा (Acute pain)
2. गात्र संकोच (Contractures)
3. गात्र स्तब्ध (stiffness)

बाह्य बस्ति - कटि बस्ति

कटिभागी (Lumbo-sacral region) तैलाच्या सहाय्याने स्वेद देण्याची क्रिया कटिबस्ति होय. पंचकर्मातील अतिशय लोकप्रिय स्वेदनाची क्रिया. या क्रिया प्रकारास 'बस्ति' का म्हणतात? याला फार अर्थ नाही कारण आयुर्वेदानुसार बस्ति म्हणजे गुदमार्गातून औषध देण्याची क्रिया होय. कदाचित वसती - वासन म्हणजे काही काळ 'वास' (Retain) करणे या अर्थाने 'बस्ति' हा शब्द प्रयोग केला गेला असावा. हा स्निग्ध प्रकाराचा स्वेद आहे.

कटिबस्ति योग्य:

- (1) कटिगतवात (Painful condition in lumber region)
 - i) Lumber spondylitis
 - ii) Ankylosing spondylosis
 - iii) Sacroileitis

- iv) Spondylolysthesis
- v) Disc bulging or prolapsed
- vi) Lumbo sacral muscle spasm
- vii) Lumber canal stenosis

(2) गृध्रसी (Sciatica)

कटिबस्तिसाठी उपयुक्त तैलः

- (1) विषगर्भ तैल - (कफानुबंध)
- (2) सहचरादि तैल - (कफानुबंध)
- (3) धान्वन्तरम् तैल
- (4) बला तैल (वातज)
- (5) प्रसारणी तैल
- (6) क्षीरबला तैल - Degenerative disease

संभार संग्रहः

- (1) द्रोणी - 1
- (2) उडीद पीठ - 500 gm
- (3) आवश्यक तैल - 200 300 ml
- (4) पातेले
- (5) चम्मच

विधीः

पूर्वकर्म

- (1) **पाळी तयार करणे** - सर्व प्रथम उडीदाचे पीठ चाळणीने गाळून आवश्यकतेनुसार त्यात पाणी घालावे व मळून घ्यावे. त्यानंतर थोडं उडीदाच्या पीठाची पिष्टी बाजूला ठेवून उरलेल्या सर्व पीठाची गोलाकार रिंगण/पाळी (Rim) तयार करावी. याचा आकार रुग्णाच्या कटिवर सुखकर बसेल असा असावा.
- (2) **रुग्ण सिध्दता** - रुग्णास मल-मूत्र विसर्जनानंतर नितंबभागापर्यंत निर्वस्त्र करून द्रोणीमध्ये पालथे झोपण्यास सांगावे. वरील तयार केलेली पाळी रुग्णाच्या कटिभागावर ठेवून त्यास उरलेल्या उडीदाच्या पिष्टीने त्वचा व पाळी यातील पोकळी बंद करून घ्यावी ज्यामुळे पाळीतील तैल बाहेर पडणार नाही.
- (3) **तैल कोष्ण करणे** - एका मोठ्या पातेल्यामध्ये गरम पाणी घ्यावे, त्यामध्ये एका लहान पात्रात तैल घेवून कोष्ण करण्यास ठेवावे. तैलाचे सामान्यता तापमान - 45 ते 50° C एवढे असावे.

प्रधानकर्म

सहाय्यकाने पाळीमध्ये आपले बोट घालून त्यावर चमच्याने कोष्ण तैल हळूहळू सोडावे. रुग्णास सहन होईल असे तैलाचे तापमान असावे याची काळजी घ्यावी.

दरम्यानच्या काळात सहाय्यकाने तैलामध्ये अंगठा हळूहळू फिरवावा व रुग्णाच्या कटिभागी अल्पदाबाने मर्दन करावे. यामुळे तैलाचे तापमान एक सारखे राहिल व स्थानिक मर्दनाने रूजा शांत होईल.

ही क्रिया होत असतांना तैलाचे तापमान कमी झाल्यास चमच्याच्या सहाय्याने तैल बाहेर काढावे व पुन्हा नवीन कोष्ण तैल पाळीमध्ये घालावे. हा क्रम चालू ठेवावा. तैल बदलण्याच्या काळात वेळ जाऊ देऊ नये. सुमारे अर्ध्या तासानंतर तैल बाहेर काढून पाळी देखील काढून घ्यावी.

दर 3 दिवसानंतर नवीन तैल घ्यावे पिझिचिल प्रमाणे 7 व्या दिवशी तिसऱ्या दिवसाचा व सहाव्या दिवसाचे उरलेले तैल घ्यावे.

सामान्य तापमान - 45 ते 50°C

कालावधी - 30 - 45 मिनिटे, 7 ते 14 दिवस

पश्चातकर्म

- (1) अभ्यंग - पाळी काढून घेतल्यानंतर कटिभागी लागलेल्या तैलाच्या सहाय्याने हलक्या दाबाने अभ्यंग करावे.
- (2) स्वेदन - अभ्यंगानंतर टॉवेल गरम पाण्यातून पिळून त्याद्वारे कटिप्रदेशी स्वेद करावे.
- (3) स्नान - स्वेदनानंतर 15 मिनिटे रुग्णास उताणा (supine) अवस्थेत झोपण्यास सांगावे व नंतर हरभरा डाळीचे पीठ कटिप्रदेशी लावून कोष्ण जलाने स्नान करण्यास सांगावे.

घ्यावयाची काळजी -

- (1) क्रिया करतांना रुग्णास पालथ्या स्थितीमुळे शूल वाढल्यास तात्काळ क्रिया थांबवावी.
- (2) तैल बदलण्याचा काळ अधिक नसावा.
- (3) तैलाचे तापमान रुग्णास सुखकर असावे.

उपद्रव व चिकित्सा -

दग्ध - घृतकुमारी, शतधौत घृत - स्थानिक

सध्या काही ठिकाणी फायबरचे तयार केलेले बस्ति यंत्र उपलब्ध आहेत. लहान, मध्यम व मोठे तसेच स्थानानुसार कटि, जानु, पृष्ठ, हृद्, ग्रीवा यासाठी वेगवेगळ्या आकाराचे यंत्र वापरल्यास उडीदाच्या पीठाचा वापर केवळ सीलबंद करण्यासाठीच होतो त्यामुळे पीठाचा खर्च कमी होऊन क्रियेसाठी लागणारा खर्च बराच कमी होतो.

जानुबस्ति

जानुसंधीच्या ठिकाणी तैल धारण करून स्वेद करण्याची क्रिया जानुबस्ति होय. हा स्निग्ध प्रकारचा स्वेद असून कटिबस्ति प्रमाणेच या क्रियेची उपयोगिता आहे.

जानुबस्ति योग्य (Indications):

- (1) संधिगतवात (Osteoarthritis)
- (2) आमवात (जीर्ण) (Rheumatoid arthritis)
- (3) संधिरूजा (Painful joints)

पूर्वकर्म

- (1) पाळी तयार करणे - सर्व प्रथम उडीदाचे पीठ चाळणीने गाळून आवश्यकतेनुसार त्यात पाणी घालावे व मळून घ्यावे. त्यानंतर थोडं उडीदाच्या पीठाची पिष्टी बाजूला ठेवून उरलेल्या सर्व पीठाची गोलाकार रिंगण/पाळी (Rim) तयार करावी. याचा आकार रुग्णाच्या जानुवर व्यवस्थित बसेल असा असावा.
- (2) रुग्ण सिध्दता - रुग्णास जानुबस्ति करतांना बसवून पाय पसरून जानुसंधीच्या ठिकाणी वरीलप्रमाणे तयार केलेले पाळी लावावी किंवा रुग्णास उताणे झोपवून जानुसंधीच्या ठिकाणी पाळी लावावी.
- (3) तैल कोष्ण करणे - एका मोठ्या पातेल्यामध्ये गरम पाणी घ्यावे, त्यामध्ये एका लहान पात्रात तैल घेवून कोष्ण करण्यास ठेवावे. तैलाचे सामान्यता तापमान - 45 ते 50° C एवढे असावे.

प्रधानकर्म

सहाय्यकाने पाळीमध्ये आपले बोट घालून त्यावर चमच्याने कोष्ण तैल हळूहळू सोडावे. रुग्णास सहन होईल असा तैलाचे तापमान असावे याची काळजी घ्यावी.

दरम्यानच्या काळात सहाय्यकाने तैलामध्ये अंगठा हळुहळू फिरवावा व रुग्णाच्या जानुभागी अल्पदाबाने मर्दन करावे. यामुळे तैलाचे तापमान एक सारखे राहिल व स्थानिक मर्दनाने रूजा शांत होईल.

ही क्रिया होत असतांना तैलाचे तापमान कमी झाल्यास चमच्याच्या साहय्याने तैल बाहेर काढावे व पुन्हा नवीन कोष्ण तैल पाळीमध्ये घालावे. हा क्रम चालू ठेवावा. तैल बदलण्याच्या काळात वेळ जाऊ देऊ नये. सुमारे अर्ध्या तासानंतर तैल बाहेर काढून पाळी देखील काढून घ्यावी.

दर 3 दिवसानंतर नवीन तैल घ्यावे. पिझ्जिचिल प्रमाणे 7 व्या दिवशी तिसऱ्या दिवसाचे व सहाव्या दिवसाचे उरलेले तैल घ्यावे.

सामान्य तापमान - 45 ते 50° C

कालावधी - 30 ते 45 मिनिटे, 7 ते 14 दिवस

पश्चातकर्म

- (1) अभ्यंग - पाळी काढून घेतल्यानंतर जानुभागी लागलेल्या तैलाच्या सहाय्याने हलक्या दाबाने अभ्यंग करावे.
- (2) स्वेदन - अभ्यंगानंतर टॉवेल गरम पाण्यातून पिळून त्याद्वारे जानुप्रदेशी स्वेद करावे.

घ्यावयाची काळजी -

- (1) क्रिया करतांना रुग्णास शूल वाढल्यास तात्काळ क्रिया थांबवावी.
- (2) तैल बदलण्याचा काळ अधिक नसावा.
- (3) तैलाचे तापमान रुग्णास सुखकर असावे.

उपद्रव व चिकित्सा -

दग्ध - घृतकुमारी, शतधौत घृत - स्थानिक

ग्रीवा बस्ति

'ग्रीवा' भागी तैल धारण करून स्वेदन करण्याची क्रियेस ग्रीवा बस्ति किंवा मन्याबस्ति म्हणतात. हा स्निग्ध प्रकारचा स्वेद असून कटिबस्ति प्रमाणेच याची विधी व उपयोगिता आहे केवळ स्थान बदलले आहे.

ग्रीवा बस्ति योग्य (Indications):

- (1) मन्यागत वात
- (2) अवबाहुक
- (3) विश्वाचि

वरील व्याधी अवस्था Cervical spondylitis, Cervical Spondylosis, Ankylosing spondylitis, Trapezius muscle spasm, Disc prolapsed, bulging मधे दिसून येतात

विधी: ग्रीवा बस्ति करतांना रुग्णास पालथे झोपवून ग्रीवाबस्ति करावी किंवा खुर्चीवर बसूवन रुग्णास डोकं समोर टेबलवर ठेवण्यास सांगावे ज्यामुळे ग्रीवा प्रदेशी पाळी सुखकर लावता येईल.

घ्यावयाची काळजी, उपद्रव व चिकित्सा कटिबस्ति प्रमाणे.

हृद्बस्ति/उरोबस्ति

हृद्स्थानावर (2nd intercostal space to 6th intercostal space at left side) तैल धारण करून अल्प स्वेद देण्याची क्रिया हृद्बस्ति होय. यास हृद् वा उरो तर्पणही म्हटले जाते. हा स्निग्ध स्वेद प्रकारचा स्वेद आहे.

हृदबस्ति योग्य (Indications):

- (1) हृदशूल (Non-MI)
- (2) Muscular spasm
- (3) तमक श्वास (Br.Asthma)
- (4) Strengthening for heart muscles
- (5) Cardiomyopathy

पूर्वकर्म

- (1) पाळी तयार करणे - सर्व प्रथम उडीदाचे पीठ चाळणीने गाळून आवश्यकतेनुसार त्यात पाणी घालावे व मळून घ्यावे. त्यानंतर थोडं उडीदाच्या पीठाची पिष्टी बाजूला ठेवून उरलेल्या सर्व पीठाची गोलाकार रिंगण/पाळी (Rim) तयार करावी. याचा आकार रुग्णाच्या उरोभागी व्यवस्थित बसेल असा असावा.
- (2) रुग्ण सिध्दता - रुग्णास मल-मूत्र विसर्जनानंतर उर:भागी निर्वस्त्र करून द्रोणीमध्ये उत्तान (Supine) स्थितीत झोपण्यास सांगावे. वरील तयार केलेली पाळी रुग्णाच्या उर:भागी ठेवून त्यास उरलेल्या उडदाच्या पिष्टीने त्वचा व पाळी यातील पोकळी बंद करून घ्यावी ज्यामुळे पाळीतील तैल बाहेर पडणार नाही.
- (3) तैल कोष्ण करणे - एका मोठ्या पातेल्यामध्ये गरम पाणी घ्यावे, त्यामध्ये एका लहान पात्रात तैल घेवून कोष्ण करण्यास ठेवावे. तैलाचे सामान्यता तापमान - 45 ते 50°C एवढे असावे.

प्रधानकर्म

सहाय्यकाने पाळीमध्ये आपले बोट घालून त्यावर चमच्याने कोष्ण तैल हळूहळू सोडावे. रुग्णास सहन होईल असा तैलाचे तापमान असावे याची काळजी घ्यावी.

दरम्यानच्या काळात सहाय्यकाने तैलामध्ये अंगठा हळूहळू फिरवावा व रुग्णाच्या हृदभागी अल्पदाबाने मर्दन करावे. यामुळे तैलाचे तापमान एक सारखे राहिल.

ही क्रिया होत असतांना तैलाचे तापमान कमी झाल्यास चमच्याच्या साह्याने तैल बाहेर काढावे व पुन्हा नवीन कोष्ण तैल पाळीमध्ये घालावे. हा क्रम चालू ठेवावा. तैल बदलण्याच्या काळात वेळ जाऊ देऊ नये. सुमारे अर्ध्या तासानंतर तैल बाहेर काढून पाळी देखील काढून घ्यावी.

दर 3 दिवसानंतर नवीन तैल घ्यावे. पिझिचिल प्रमाणे 7 व्या दिवशी तिसऱ्या दिवसाचा व सहाव्या दिवसाचे उरलेले तैल घ्यावे.

सामान्य तापमान - 45 ते 50°C

कालावधी - 30 ते 45 मिनिटे, 7 ते 14 दिवस

पश्चातकर्म

- (1) अभ्यंग - पाळी काढून घेतल्यानंतर हृदभागी लागलेल्या तैलाने अभ्यंग करावे.
- (2) स्वेदन - अभ्यंगानंतर टॉवेल गरम पाण्यातून पिळून त्याद्वारे हृदप्रदेशी स्वेद करावे.

घ्यावयाची काळजी -

- (1) तैल बदलण्याचा काळ अधिक नसावा.
- (2) तैलाचे तापमान रुग्णास सुखकर असावे.

उपद्रव व चिकित्सा -

दग्ध - घृतकुमारी, शतधौत घृत - स्थानिक

Sauna Bath :

The word Sauna referred to the traditional Finnish bath and bathhouse. The Sauna was first invented in Ancient Finland. The participant has to sit between 70°C (158°F) to 100°C (212°F) this induces relaxation and promotes sweating.

Sauna can be divided into two

- i) Convention saunas that warm the air
- ii) Infrared saunas that warm objects like charcoal, active carbon fibers as stones.

Sauna is made up of wooden room ranges from 3'x4' for one person to 10'x14' for 6-8 persons in size. Standard Sauna sizes ranges from 3'x4' with ceiling of 6'6" to 10'x12' large with 7 feet ceiling. Most practising sizes are 5'x7' and 6'x7' with 7 feet height.

The Sauna floor be covered with removable section (duck boards) of wooden slats. It should have proper drainage facility. It is fitted with Sauna heater with rocks.

Generally inside there are two benches, one is low and other is high to sit or sleep. There should be easy door that can be opened easily by the patient. Inside the Sauna there must be call bell switch, one light. The heater is connected with electric switch externally. There should be glass window to observe the patient from outside. Temperature regulator usually there.

Indication :

1. Rheumatic pain
2. Loss of appetite
3. Chronic fatigue syndrome
4. Fibromyalgia
5. Obesity
6. Chronic pain

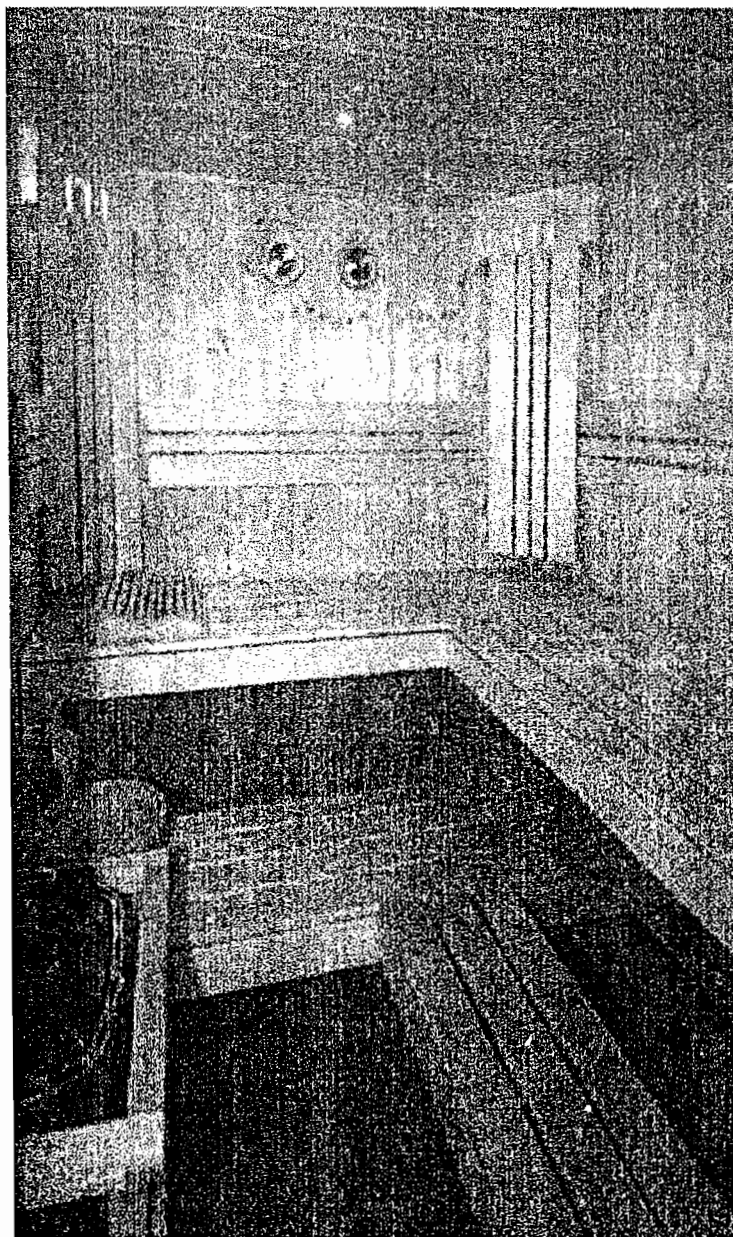
Contra Indication :

1. Angina
2. Severe aortic stenosis
3. Seizure disorder

Complication:

1. Hyperthermia
2. Dehydration, loss of electrolytes

Sauna has found to cause increase ACTH cortisol, adrenaline and noradrenaline due to hyperthermic stress on the body. It reduces prostaglandine F2- α . It is helpful to lower blood pressure and improve cardiovascular condition.



4

वमन (Emesis Therapy)

निरूक्तिः वम- उद्गारे, यक् सेट्। वमति

वमन-वमने ल्यूट् (पु)

मर्दने च्छर्दने निःसारणे सर्गाभिष्यंद वमनम्।

वम् म्हणजे उद्गार, वमति म्हणजे उद्गीरण करणे. 'वम' शब्दास ल्यूट् प्रत्यय लागल्याने 'वमन' शब्द तयार होतो. याचा अर्थ मर्दन, उलटी होणे, बाहेर निघणे किंवा अभिष्यंदन करणे असा आहे.

व्याख्याः अपक्व पित्तश्लेष्माणं बलादूर्ध्वं नयेत्तु यत्।

वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा। शा.प्र.खं. 1/84

अपक्व पित्त व कफ यांना बलपूर्वक उर्ध्व भागास घेऊन जावून बाहेर काढण्याची क्रिया म्हणजे वमन होय जसे 'मदनफल' कार्य करतो त्याप्रमाणे.

परिचयः

दोषांना स्वस्थानातून बाहेर काढून उर्ध्व वा अधःभागी नेवून त्यांना बाहेर काढण्याची प्रक्रिया म्हणजे संशोधन. (शा.प्र.खं. 1/85) 'तत्र दोषहरणं उर्ध्वभागं वमनं सज्ञंकम्-अधोभागं विरेचनं संज्ञकम् ॥ च.क 1/4

दोष उर्ध्वभागाने निर्हरण केल्यास 'वमन' म्हणावे तर दोष अधोभागाने निर्हरण केल्यास विरेचन म्हणावे.

शास्त्रात विरेचन शब्दाचे अर्थ व्यापक आहे. याचा वापर उर्ध्व व अधो भागाने दोषांना निर्हरण करण्यासाठी वापरला गेला आहे. त्यामुळे 'वमन' या संशोधन प्रकारासाठी शास्त्रात विरेचन ही संज्ञा कुठे-कुठे वापरली आहे. मात्र शाब्दीक गैरसमज टाळण्यासाठी या ग्रंथापुरते वमन व विरेचन या शब्दांचे अर्थ क्रमाने उर्ध्वभागहर क्रिया व अधःभागहर क्रिया हेच अर्थ समजावे.

दोषांची वृद्धि झाली की दोष बाहेर काढण्यासाठी वात प्राधान्य असल्यास बस्ति चिकित्सा, पित्तासाठी विरेचन व कफासाठी वमन चिकित्सा परम चिकित्सा आहे.

शरीरजानांदोषाणां क्रमेण परमौषधम्।

बस्तिर्विरेकावमनं तथा तैलघृतंमधु॥

अ.ह.सू. 1/25

वमन कर्म कफ स्थानासाठी प्रधान मानले आहे. त्यामुळे आमाशयोत्थ व्याधीसाठी वमनाची महती अधिक आहे. पित्ताचेही स्थान आमाशयाशी असल्यामुळे पित्त व्याधीमध्येही वमन कर्म उपयोगी आहे. वमनाचे वैशिष्ट्य म्हणजे केवळ कफ व पित्ताचे संशोधन करत नाही तर वाताचेही शोधन केले जाते म्हणून वमनाचे संशोधन चिकित्सेत वेगळे महत्त्व आहे.

वमन कर्म प्रत्यक्षात निश्चितच एखाद्या शस्त्रकर्मा सारखे आहे त्यामुळे बरेचशे चिकित्सक वमन कर्म करण्यास घाबरतात किंबहुना वमनकर्म बऱ्याचशा आयुर्वेद हॉस्पिटल/पंचकर्म विभागात केलेच जात

नाही. परंतु योग्य काळजी घेतल्यास घाबरण्याची गरज नाही. रुग्णामध्ये या कर्माने आश्चर्यकारक यश मिळाल्याशिवाय राहात नाही.

महत्त्व व उपयोगिता (Importance & Utility)

आयुर्वेदामध्ये संशोधन व संशमन या दोन चिकित्सा क्रिया आहेत. संशोधनामध्ये कफ व्याधिसाठी वमन कर्म ही प्रमुख चिकित्सा आहे.

आयुर्वेदाच्या सिध्दांतानुसार क्षीण दोष असल्यास त्यांची वृद्धी करावी, कुपित दोष असल्यास त्यांचे शमन करावे, वाढलेल्या दोषांचे निर्हरण करावे व समदोषांना साम्यावस्थेत ठेवावेत. वृद्ध दोषांचे निर्हरण करण्यासाठी वमन व विरेचन कर्म करावे. यावरून वमन कर्माचे महत्त्व लक्षात येते. •

दोषाः क्षीणा बृंहयितव्याः। कुपिता प्रशमयितव्याः।

वृद्धा निर्हरतव्याः। समा परिपाल्याः। इति सिध्दान्तः।

प्राधान्येन वमन-विरेचन वर्तते निर्हरणे दोषाणाम्।। सु.चि. 33/2

वमन हे केवळ कफ दोषांच्याच चिकित्सेसाठी नाही तर पित्त व वाताचे निर्हरण करण्यासाठी उपयुक्त आहे. उदा. अम्लपित्तामध्ये वमन (योगरत्नाकर).

बहुदोष व्याधीच्या चिकित्सेसाठी संशोधन करणे आवश्यक आहे. दोष प्राधान्यानुसार वमन करणे आवश्यक ठरते. उदा. कुष्ठचिकित्सा

महारोगाध्यायोक्त व्याधीमध्ये कफज प्राधान्य बघून वमन उपयुक्त ठरते. ज्याप्रकारे धानाच्या शेतीतील बांध तुटल्याने पाणी वाहून धान सुखून जातो त्याप्रमाणे वमनक्रियेने दोष बाहेर निघाल्याने रोग शांत होतो. (च.सि. 2/10)

आयुर्वेदाचे प्रयोजन स्वस्थ व्यक्तीच्या स्वास्थाचे रक्षण करणे आहे. ऋतुनुसार शरीरामध्ये होणाऱ्या दोषांचा संचय-प्रकोप व अवस्था सांभाळण्याचे कार्य ऋतुनुसार संशोधनाने होवू शकेल. त्यामुळे वसंत ऋतुमध्ये होणारा कफाचा प्रकोप वमन कर्माद्वारे नियंत्रित ठेवला जाऊ शकतो. त्यामुळे या ऋतुमध्ये होणारी कफजन्य व्याधीपासून संरक्षण केले जाऊ शकते व पर्यायाने WHO चे घोषवाक्य Health for all साठीही - पंचकर्माच्या सहाय्याने हातभार लावला जावू शकतो.

सध्याच्या काळात 'रसायन' कर्माचे महत्त्व नाकारले जाऊ शकत नाही. स्वस्थ राहण्यासाठी ते रोग निवारणापर्यंत रसायन चिकित्सेचे महत्त्व अवादातीत आहे. रसायन चिकित्सा करण्यापूर्वी पंचकर्माने शोधन आवश्यक आहे. पर्यायाने रसायन कर्मासाठी वमनकर्म करणे गरजेचे आहे.

सुप्रजा व अपत्य हे वाजीकरणाचे अंग आहे. सद्यस्थितीत ज्या प्रमाणात नपुंसकत्व वाढत आहे तसेच शुक्रक्षीणतेचे लक्षण वाढत आहे. तेवढेच वाजीकरण चिकित्सेचे महत्त्व वाढत जाणार आहे. केवळ अपत्य जन्माला येणे महत्त्वाचे नाही तर सुप्रजनन (सुदृढ प्रजा) होणे आवश्यक, या साठी वाजीकरण चिकित्सा आवश्यक आहे. वाजीकरण चिकित्सेपूर्वी शरीराचे संशोधन आवश्यक आहे. त्यामुळे वाजीकरण पूर्व वमन कर्म आवश्यक आहे.

वम्य (Indications for vaman)

संहितांमध्ये वमन चिकित्सा जेथे उपयुक्त सांगितली आहे त्या व्याधीची एक यादी आहे. सामान्यतः या व्याधीना खालीलप्रमाणे विभाजन करता येऊ शकेल. त्यामुळे आजच्या काळातील व्याधीचा प्रत्यक्ष उल्लेख नसला तरी दोषांच्या प्राधान्याने सम्प्राप्ति व चिकित्सकाच्या तर्कानुसार वाम्य व्याधी सहजपणे ओळखता येतील.

- (1) कफदोष प्राधान्याने होणाऱ्या व्याधी उदा. श्लीपद, कास वा उत्क्लीष्ट कफ किंवा कफस्थानगत व्याधी उदा. उर्ध्वजत्रुगत.
- (2) बहुदोष असणाऱ्या व्याधी उदा. कुष्ठ, श्वास.
- (3) आमाशयोद्भव व्याधी उदा. श्वास.
- (4) कफसंसृष्ट पित्त उदा. विदग्धाजीर्ण
- (5) कफस्थानगत पित्त. उदा. अम्लपित्त.
- (6) पृथ्वीजल प्राधान्य धातुगत व्याधी. उदा. रस, मांस, मेदगत.
- (7) मार्गाविरोध चिकित्सा योग्य व्याधी. उदा. अधोगरक्त पित्त.
- (8) विषसंबंधी
- (9) गंभीर प्रकाराच्या व्याधी. उदा. उन्माद, अपस्मार.
- (10) तीव्र स्वरूपात उत्पन्न होणाऱ्या व्याधी ज्यामुळे प्राणाविरोध होऊ शकतो. उदा. श्वास, विषपीत.

- (11) रसायन कर्मासाठी —————
- रसायनाचे पूर्वकर्म
 - वमन कर्माचे रसायन कार्य
 - वमन द्रव्याचे रसायन कार्य

- | | |
|---------------------------------------|---|
| (1) पीनस - Chronic rhinitis | (2) कुष्ठ - Skin diseases |
| (3) राजयक्ष्मा - Tuberculosis | (4) नवज्वर - Fever with recent origin |
| (5) कास - Cough | (6) श्वास - Dyspnea wrt. Br. Asthma |
| (7) श्लीपद - Filariasis | (8) गलगंड - Thyroid enlargement/Goitre |
| (9) प्रमेह - Diabetes/Polyurea | (10) मंदाग्नि - Decreased appetite |
| (11) विदग्धाजीर्ण - Indigestion | (12) विसुचिका - Gastroenteritis |
| (13) अलसक - Distension of abdomen | (14) विषपीत - Consumption of poison |
| (15) विषदग्ध - Chemical burn | (16) विषदंष्ट्र - Poisonous bite |
| (17) विध्व - Trauma | (18) अधोग रक्तपित्त- Bleeding per rectal/ |
| (19) मुखप्रसेक - Excessive salivation | (20) दुर्नाम (अर्श) - Hemorrhoids |

- | | |
|---|---|
| (21) हल्लास - Nausea | (22) अरूचि - Anorexia |
| (23) अपचि - Cervical lymphadenitis | (24) ग्रंथी - Lymphadenitis, thyroid |
| (25) अपस्मार - Epilepsy | (26) उन्माद - Insanity |
| (27) पाण्डू - Anemia | (28) अतिसार - Diarrhoea |
| (29) शोफ - Edema | (30) स्तन्यदुष्टी- Abnormality of breast milk |
| (31) अर्बुद - Tumors | (32) मेदोरोग - Obesity |
| (33) विदारिका - Cracked foot, planter psoriasis | (34) हृद्रोग - Heart diseases exclude MI |
| (35) चित्तविभ्रम - Irrelevant behaviour | (36) विसर्प- Skin diseases having characteristic of sudden spread e.g. pemphigus, herpes. |
| (37) विद्रधि - Abscess | (38) पुतिनासा - Atrophic rhinitis |
| (39) कंठपाक - Sore throat urethral | (40) कर्णस्राव - Otitis media |
| (41) अधिजिह्विका - Epiglottitis | (42) अधिशुण्डिका - Uvilitis |

अवाम्य (Contraindication of vaman karma)

च.सि. 2/10, सु.चि. 33/14, अ.ह.सू. 18/3-6

- | | |
|-------------------------------------|--|
| (1) गर्भिणी (Pregnant women) | (2) रूक्ष (Dehydrate) |
| (3) क्षुधित (Hungry) | (4) नित्यदुःखी (Melancholic) |
| (5) बाल (Children) | (6) वृद्ध (Old aged) |
| (7) कृश (Emaciated) | (8) स्थूल (Obese) |
| (9) हृद्रोग (Heart diseases) | (10) क्षत (Injured) |
| (11) दुर्बल (Weak) | (12) प्रसक्तवमथु (Continuous vomiting) |
| (13) प्लीहारोग (Splenomegaly) | (14) तिमिर (Defective vision) |
| (15) कृमिकोष्ठी (Worms infestation) | (16) उर्ध्वप्रवृत्तवायू (Belching air) |
| (17) अर्श (Bleeding disorder) | (18) बस्तिदान (अनुवासीत व आस्थापीत) |
| (19) हतस्वर (Hoarseness of voice) | (20) मूत्राघात (Obstructive uropathy) |
| (21) उदररोग (Ascites) | (22) गुल्म (Abdominal lump/fullness) |
| (23) दुर्बल/दुच्छर्द | (24) अत्याग्नि |
| (25) अर्श - Piles (Hemorrhoids) | (26) उदावर्त (Retrograde intestinal movements) |

- | | |
|---|---|
| (27) भ्रम (Giddiness) | (28) अष्ठीला (Enlargement of prostate) |
| (29) पार्श्वरूक् (Pain in flanks) | (30) वातरोगी |
| (31) कर्महत (Excessive physical exercise) | (32) भारहत (Excessive heavy work) |
| (33) उपवासित (Fasting) | (34) मैथून प्रसक्त (Excessive sex) |
| (35) अध्ययन प्रसक्त (Students, writer) | (36) व्यायाम प्रसक्त (Excessive exercise) |
| (37) चिंता प्रसक्त (Mental stress) | (38) शिरःशूल (Headache) |
| (39) शंखशूल | (40) कर्णशूल (Earache) |

वमन योग्यामध्ये पाण्डुचे वर्णन केलेले आहे तर अवाम्यमध्ये 'प्लीहा' रोग्यांचे वर्णन आहे. प्लीहा रोगी पाण्डू रोगी असणार आहे. परंतु ज्या पाण्डू (Anemia) च्या अवस्थेमध्ये Splenomegaly असेल उदा. Leukemia, sickle cell anemia, malaria अशा रुग्णांमध्ये वमन करू नये.

प्रसक्तःपूर्वे प्रायेणामज्वरोऽपिच।

धुमान्तेः कर्मभिर्वर्ज्याः सर्वैरेव त्वजीर्णिनः (अ.ह.सू. 18/7)

प्रसक्तवमथुपूर्वीचे म्हणजे अवाम्यच्या यादीतील गर्भिणी पासून तर प्रसक्त वमथू पर्यन्त (रूक्ष, क्षुधित इ.) आमज्वर व अजीर्ण रोग्यांमध्ये शक्यतो धुमपानापर्यंतच्या सर्व क्रिया (वमन, विरेचन, बस्ति, नस्य) करू नयेत. अर्थात अशा रुग्णांमध्ये संशोधन क्रिया टाळाव्यात.

वरील व्याधीची यादी बघता खालीलप्रमाणे अवाम्य व्याधीचे वर्गीकरण करता येऊ शकते.

- 1) ज्या व्याधीमध्ये Emergency treatment आवश्यक आहे. उदा. हृद्रोग.
- 2) रुग्णाचे बल कमी असणे. उदा. कृश, बाल, वृद्ध, गर्भिणी.
- 3) वायू वृद्धि होणाऱ्या व रूक्षता उत्पन्न व्याधी. उदा. मैथून प्रसक्त, अध्ययन प्रसक्त, नित्यदुःखी.
- 4) दोषाची उर्ध्वगती असलेले व्याधी. उदा. रक्तपित्त, उर्ध्ववात.
- 5) दुश्छर्दः ज्यांना वमनाची प्रवृत्तीच होत नाही.

अवाम्यामध्ये वमनः-

चरक, सुश्रुत व वाग्भटांनी 'वमन' करू नये अशा व्याधीची यादी दिली परंतु सगळ्याच अवस्थेत वमन करूच नये असा त्यांचा अर्थ नाही. किंवा 'वाम्य' व्याधीमध्ये प्रत्येकच अवस्थेत 'वमन' करावे असाही अर्थ नाही. चिकित्सकाने स्वतःच्या तर्काच्या व बुद्धिमत्तेच्या आधारावर रुग्ण अवस्था, व्याधी अवस्था, दोषस्थिती याचा सारासार विचार करून निर्णय घ्यावा. हा केवळ वमनापूरताच मर्यादित नाही तर सर्वच क्रियांसाठी सामान्य नियम आहे. (च.सि. 2/25-26)

'अवाम्य' व्याधीमध्ये वमन केल्यास व्याधीवृद्धि किंवा व्याधी असाध्य अवस्थेत जाऊ शकतो (सु. चि. 33/16) परंतु 'अवाम्य' व्याधीमध्ये अजीर्ण, विषाक्त अवस्था (Poisonous condition) किंवा कफ

प्रकुपित असेल तर वमन करण्यात हरकत नसावी.

एतेऽप्य जीर्ण व्यथिता वाम्य ये च विषातुराः।

अतीव चोल्बणकफास्ते च स्युर्मधुकांबुना।। (सु.चि. 33/17)

च्छर्दि, हृद्रोग, गुल्म हे अवम्य व्याधी आहेत परंतु अवस्थानुसार वमन करण्याचे चरकाचार्यांनी निर्देश दिलेले आहे. (च.सि. 2/27-28)

वातज गुल्मामध्ये कफ वृद्धी अग्निमांद्य, अरुचि, हल्लास, गौरव, तंद्रा इ. कफ वृद्धीची लक्षणे दिसल्यास वमन करावे. (च.चि. 5/29)

वातगुल्मे कफोवृद्धो हत्वाऽग्निमरुचिं यदि।

हल्लासं गौरव तंद्रां जनयेदुल्लिखेत्तु तम्।। (च.चि. 5/29)

वातव्याधीमध्ये वमनः

- (1) गृध्रसी (भा.प्र.चि. 24/133, 13)
- (2) पक्षाघात, त्रिकाघात, स्कंधाघात, मन्यागतवात (वंगसेन)
- (3) प्रत्याध्मान (सु.चि. 5/26)
- (4) अर्दित-शोक लक्षण असल्यास (वंगसेन)
- (5) पक्षाघात - वान्तस्य पक्षाद्विरेचनं (डल्हण टिका सू.चि. 5/19)

चले दोषे मृदौ कोष्ठे नेक्षेतात्र बलं तृणाम् ।

अव्याधि दुर्बलस्यापि शोधनं हि तदा भवेत् ।। (सु.सू. 39/12)

व्याधीबल, पुरुषबल व अग्निबल यांचा विचार करतांना दुर्बल व्यक्तीमध्ये वमनाचा निर्णय करणे कठीण जाते. अशा वेळी दोष स्वस्थानातून चलायमान झालेले असल्यास व कोष्ठ मृदू असल्यास रुग्णाच्या शारीरीक बलाचा विचार न करता रुग्ण दुर्बल असला तरी शोधन करावे.

वामक द्रव्य व गुणधर्म (Vamakdravya & general properties)

वमन करणारे द्रव्य शरीरामध्ये त्यांच्या विशिष्ट गुणांनुसार कार्य करतात. त्यांच्या याच गुणांमुळे स्रोतसांमध्ये पोहचून दुषित दोष एकत्र आणून बाहेर काढण्याची क्रिया केली जाते आणि याच गुणांमुळे ते 'वामक द्रव्य' म्हणून ओळखले जातात. ह्यांची गुणे खालीलप्रमाणे आहेत:

- तत्रोष्ण-तीक्ष्ण-सुक्ष्म व्यवायि विकासीन्यौषधानि स्ववीर्येण हृदयमुपेत्य

धमनीरनुसृत्य स्थुलाणुस्रोतोभ्य

च.क. 1/5

- वमन द्रव्याणि अग्निवायु गुणभूयिष्ठानि, अग्निवायु हि लघु, लघुत्वाच्च

तान्यूर्ध्वमुतिष्ठन्ति, तस्माद् वमनमप्यूर्ध्वगुणभूयिष्ठम्।

सु.सू. 41/6

- (1) **उष्ण** - अग्नि प्रधान गुण स्रोतसात सहजतेने पोहचून दोषांचे विघ्नदन करण्याचे कार्य ज्यामुळे दोष कोष्ठाकडे जाण्यास प्रवृत्त होतात.
- (2) **तीक्ष्ण** - अग्नि प्रधान गुण; यामुळे दोषांचे छेदन केले जाते. दोष शोधन करण्यासाठी व स्वस्थानातून विचलीत करण्यासाठी कार्य.
- (3) **सुक्ष्म** - स्रोतसांमध्ये पसरण्यासाठी द्रव्यांमध्ये सुक्ष्म गुण आवश्यक. अग्नि, वायू व आकाश महाभूत प्राधान्य असलेला गुण. यामुळे स्थूल स्रोतसांमध्ये अणुत्व (अणू स्रोतसामधे प्रवेश) व प्रवणत्व (कोष्ठाकडे दोषांना आणण्याची प्रवृत्ती) कार्य सुक्ष्म गुणामुळे शक्य आहे.
- (4) **व्यवायि** - द्रव्य जाठराग्निद्वारा पचन होण्याआधीच स्रोतसांमध्ये पसरले जाते व द्रव्यांच्या इतर गुणांमुळे लवकर क्रियान्वित होते.
- (5) **विकाशी** - सर्व शरीरात लगेच विकसीत होवून संधि शिथिल करणारा गुण धातु पासून ओज पृथक करणारा गुण. यामुळे द्रव्याचे कार्य तत्काळ सुरू होवून धातु श्लिष्ट दोष पृथक करण्यासाठी मदत करते.
- (6) **प्रभाव** - सर्वात महत्त्वाचा गुण म्हणजे द्रव्याचा स्वतःचा वामक प्रभाव ज्यासाठी दुसरे स्पष्टीकरण नाही. सर्व वामक द्रव्य उष्ण-तीक्ष्ण असल्याबरोबर अग्नि, वायू व आकाश महाभूत प्राधान्याचे असल्याने लघुत्व हा गुण या द्रव्यांसोबत असतो परिणामी हे द्रव्य उर्ध्वगुण भुयिष्ठ आहेत. त्यामुळे वामक द्रव्य दोषांना उर्ध्व दिशेने घेवून जाण्याचे सामर्थ्य ठेवतात. याचा अर्थ असा नाही की, प्रत्येक अग्नि-वायू गुणाचे द्रव्य 'वामक' असतील. त्यामुळेच प्रभावाचे महत्त्व विशेष आहे.

वामक द्रव्य:

चरकोक्त:

- (1) शणपुष्पी च बिंबी च च्छर्दने हैमवत्यपि। च.सू. 1/78
- (2) धामार्गवमथे इक्ष्वाकु जीमूतं कृतवेधनम्।
मदनं कुटजं चैव त्रपुषं हस्तिपर्णिनी। च.सू. 1/83-84
- (3) सौवर्चलं सैधवं च विडमौद्भिद्मेव च
सामुद्रेण सहैतानि पंच स्युर्लवणानि च।।
स्निग्धान्युष्णानि तीक्ष्णाणि दीपनीयतमानि च। च.सू. 1/88-90
- (4) मदनं मधुकं निम्बं जीमूतं कृतवेधनं
पिप्पली कुटजइक्ष्वाकूण्येलां धामार्गवाणि च। वमनार्थं प्रयुंजीत च.सू. 2/108

- | | | |
|------------------------|-------------------|---------------|
| (1) शणपुष्पी मूळ | (2) बिंबीमूळ | (3) वचामूळ |
| (4) धानार्गव | (5) इक्ष्वाकु | (6) जीमुत |
| (7) कृतवेधन (कडू तुरई) | (8) मदनफळ | (9) करंज फळ |
| (10) त्रपुष (कडू खीरा) | (11) हस्तिपर्णिनी | (12) सर्व लवण |
| (13) अशमंतक | (14) पिंपळी | (15) एला |

सुश्रुतोक्त (सु.सू. 39/3):

- | | | |
|-------------------|----------------------|------------------------------|
| (1) मदन फल | (2) कुटज फल | (3) जीमूत फल |
| (4) इक्ष्वाकु फल | (5) सर्षप फल | (6) विडंग फळ |
| (7) पिंपळी फल | (8) करंज बीज | (9) प्रपुन्नाड फल (चक्रमर्द) |
| (10) कोविदार मूल | (11) कर्बुदार मूल | (12) अरिष्ठ(निम्ब)मूल |
| (13) अश्वगंधा मूल | (14) विदुलमूल (वेतस) | (15) वचा मूल |
| (16) शणपुष्पी मूल | (17) बिंबी मूल | (18) मुगैवारु (इंद्रवारुणी) |
| (19) चित्रा मूल | | |

वाग्भटोक्त (अ.ह.सू. 15/1):

- | | | |
|--------------|--------------------|---------------------------|
| (1) मदन फल | (2) मधुक | (3) लंबा (कडूतूंबी) |
| (4) निंब | (5) बिंबी | (6) विशाला (कडू इंद्रायण) |
| (7) त्रपूष | (8) कुटज | (9) मुर्वा |
| (10) देवदाली | (11) विडंग | (12) विदुल (वेत) |
| (13) चित्रक | (14) चित्रा | (15) कोषवती (कडू तुरई) |
| (16) करंज | (17) कणा (पिप्पली) | (18) लवण |
| (19) वचा | (20) एला | (21) सर्षप |

वमनोपग - जे द्रव्य 'वमन' क्रियेच्या वेळी वमन वेग सुलभ होण्यासाठी मदत करतात ते वमनोपग द्रव्य आहेत.

मधू मधुक कोविदार कुर्बुदार नीप विदुलबिंबी-शणपुष्पी सदापुष्पा प्रत्येक पुष्पा इति दशोमानि वमनोपगानि भवन्ति। च.सू. 4/24.

- | | | |
|--------------------------------|---------------------|---------------------------|
| (1) मधु | (2) मधूक (यष्टीमधू) | (3) कोविदार (लाल कांचनार) |
| (4) कर्बुदार (श्वेतकांचनार) | (5) नीप (कदंब) | (6) विदुल |
| (7) बिंबी | (8) शणपुष्पी | (9) सदापुष्पी (अर्क) |
| (10) प्रत्येकपुष्पी (अपामार्ग) | | |

या व्यतिरिक्त निम्ब, पिप्पली हे द्रव्य सुद्धा वमनोपग म्हणून वापरले जातात. वमनोपगद्रव्यांच्या गुण-कर्मानुसार व्याधी, प्रकृती व अवस्था यांचा विचार करून वमन क्रियेसाठी उपयोग करावा ज्यामुळे अपेक्षित यश मिळू शकेल.

उदा. कफ दोषासाठी - कटू रसयुक्त द्रव्य मिश्रण, उष्ण - उदा. पिपली व मदनफळ, सैधव

पित्त दोषासाठी - शीत वीर्य - पटोल, वासा, निम्बपत्रकवाथ,

वात दोषासाठी - मधूर अम्ल लवण

वमन क्रियेसाठी उपयोगात येणाऱ्या सामान्य द्रव्यांचे गुणधर्म सोबतच्या तालिकेनुसार आहे.

आमप्राधान्य कफानुबंध (उरःप्रदेशात किंवा आमाशयात) - मदनफळ + गोदुग्धासोबत

अजीर्ण - सैधव लवण + उष्णोदक

औषधद्रव्य संग्रह (Collection of Drugs):

भारतामध्ये विविध प्रदेश व वातावरणाची विविधता एक विशेष देणगी आहे. जे द्रव्य ज्या प्रदेशामध्ये उत्पन्न होतात ते द्रव्य त्या त्या प्रदेशातूनच संग्रहीत करावे. सर्वगुण (रस, गुण, वीर्य) परिपूर्ण असलेले तसेच अग्नि, वायू, कृमी यांच्या प्रभावाने त्यांचे गुणप्रभाव नष्ट न झालेल्या द्रव्यांचा संग्रह चिकित्सेसाठी करावा.

उत्तरेकडे उत्पन्न होणारी द्रव्य, त्यांच्या शाखा, पत्र यांचा वर्षा किंवा वसंत ऋतूमध्ये संकलन करावे. मूळ (Roots) यांचा ग्रीष्म ऋतूमध्ये संकलन करावे. उदा. वसंत तसेच शिशिर ऋतूमध्ये पाने गळल्यानंतर व नवीन पाने येण्याचे वेळी मूळांचे संकलन करावे. शरद ऋतूमध्ये साल, कंद, दूध यांचे संकलन करावे. हेमंत ऋतूमध्ये - सार उदा. खदिरसार संकलीत करावे. फूल व फल यांचे त्यांच्या ऋतूनुसार संकलन करावे. सुश्रुतानुसार औषधद्रव्य शीतद्रव्य दक्षिणायणामध्ये तर आग्नेयद्रव्य उत्तरायणामध्ये संकलीत करावी. (सु.सू. 36/5-6)

आजच्या काळात चिकित्सक स्वतः द्रव्य संकलनासाठी जात नाही त्यामुळे त्यांना वितरकांवर अवलंबून राहावे लागते. गुणवत्तेचीही खात्री नसते. त्यासाठी दुसरा पर्याय नाही. मात्र याची शासनाने दखल घेवून Total quality management (TQM) लागू करावी. यासोबतच ISO-9000 certification, Eco-audit procedures (ISO-14000) आवश्यक करावे. ज्यामुळे वातावरणावर कोणताही दुष्परिणाम होणार नाही याची काळजी घेवून औषधी द्रव्यांचे संकलन व वितरण केले जाऊ शकेल तसेच योग्य औषधी द्रव्य चिकित्सकाच्या हाती मिळतील. (Report of the task force on conservation & sustainable use of medicinal plants, planning commission, Govt. of India. March 2010)

वमनद्रव्य

| अ.क्र. | द्रव्यनाव | Scientific Name | गुणधर्म | कर्म | रोगाधिकार | विशेषता |
|--------|-----------------|------------------------------|--------------------------------------|--|-------------------------------------|--|
| 1. | मदनफळ | Randia spinosa | लघु, रुक्ष वीर्य - उष्ण | वामक, विद्रधीहर प्रतिशयाय व्रणनाशक, कुष्ठ, आनाह, शोथ, गुल्महर (भाप्र.) | सर्वगदाविरोधिच। | वमन द्रव्याणां मदनफलानि श्रेष्ठतमानि आचक्षते अनपायित्वात्। च.क. 1/13 |
| 2. | जीमुतक | Luffa echinala Roxb. | लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, वीर्य - उष्ण | त्रिदोषघ्न, ज्वर, श्वास, हिक्का मध्ये उपयोगी अल्प मात्रा मध्ये यकृतोत्तेजक व पित्तसारक जास्त/ उत्तम मात्रेत वामक, रेचक | कुष्ठरोग | कुष्ठरोगामधील श्रेष्ठौषध |
| 3. | ईस्वाकु | Lagenaria siceraria | लघु, रुक्ष, वीर्य - शीत | तीव्र वामक व भेदन | प्रमेह | प्रमेहातील सर्वश्रेष्ठ वामक द्रव्य, क्षीण व ग्लानी ग्रस्त रोग्याला वमनास उत्तम |
| 4. | धामार्गव | Luffa cylindrica | लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, वीर्य - उष्ण | वामक व भेदन (कोशातकी आमपक्ववाशयशोधनी) कृत्रिम विषविकार, गुल्म, उदर, कास, आमाशय वातविकार, कुष्ठ तसेच मुखाचे कफसंचय जन्य विकार | पांडु कोठफलं पांडुषु | स्थिर व कठिण रोगांत उपयोगी |
| 5. | वत्सक (कुटज) | Holorrhena antidysentrica | लघु, रुक्ष, वीर्य - शीत | सुकुमार, रक्तपित्त व कफज विकारामध्ये उपयुक्त, हृदयरोग ज्वर, वातरक्त, विसर्प रोगां मध्ये उपयुक्त | हृद्रोग (कुटजस्य फलं हृदामये) | सुकुमार व्यक्तीमध्ये उपयुक्त हृद्रोगनाशक (सुकुमारेषु अनत्ययः) |
| 6. | कृतवेधन | Luffa aculargula Roxb. | लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, वीर्य - उष्ण | उदर, कुष्ठ, पांडुरोग, स्नीहा शोथ, गुल्म कृत्रिमविष यामध्ये | उदर (उदरे कृतवेधनं हितं) | उदररोग नाशक गाढेषुविषंगदेषुच। (च.क. 6/4) |

| | | | | | | |
|-----|-------------------|-------------------------|-----------------------------------|---|---|---|
| 7. | अरिष्टक (रिठा) | Sapindus trifoliatus | लघु, तीक्ष्ण वीर्य - उष्ण | त्रिदोषघ्न, ग्रहजित गर्भपातन (भा.प्र.) कफघ्न कंडू, विष कुष्ठ विस्फोट नाशक (रा. नि.) | अहिर्फेन विषकृता | विशेषतः कफ व वात व्याधीमधे उपयोगी |
| 8. | निम्ब | Azadiracta Indica | लघु, वीर्य - शीत | कुष्ठ, कास, अरुचि, छर्दि, कृमी रक्तपित्त, नेत्ररोग, ज्वर (कै. नि.) कुष्ठ, कफ, कृमि, शिरोरोगनाशक | विषमज्वर, जीर्णज्वर, कंडू, प्राधान्य | |
| 9. | मधुयष्टि | Glycirrizza glabra | गुरु, स्निग्ध वीर्य - शीत | चक्षुष्य, बलवर्णकर, केश्य स्वर्ण व्रणशोध, विष, छर्दि, तृष्णा, ग्लानि, क्षयनाशक (भा. प्र.) | छेदन (श्लेष्महर) | |
| 10. | अश्वगंधा | Withania somniafera | लघु, स्निग्ध | उर्ध्वभागहराणि वातकफघ्न | शिवत्र, शोथ | अनिलश्लेष्मरिवम शोधक्षयापहा। |
| 11. | श्वेता | Clitoria teraatea | लघु, रुक्ष, शीत | उर्ध्वभागहराणि मेध्य, कण्ठघ्न | दृष्टीदोष, व्रण | कटुमध्ये शीते कण्ठये सुदृष्टिदे। कुष्ठमूत्रत्रिदोषामशोथ व्रणविषपपहे।। |
| 12. | शणपुष्पी | Chotalaria ocruucosa | लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, | उर्ध्वभागहराणि (सु.) | कंठरोग | शणपुष्पीच बिंबीच छर्दिने (च.सू. 1) वामनी कफपित्तजित् कण्ठहृद्भोग मुखरागविनाशिती। |
| 13. | बिंबी | Coccinia indica | लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, वातकफनाशक | उर्ध्वभागहर शवास, कास, मेध्य | शोफ, पांडू | शवासकासापहं स्तन्यं फलं वातकफापहं। शोफास्भंपण्डुन् जयति न मेध्यं छर्दिकृत परम्।। शणपुष्पी च बिम्बीच छर्दिने। च.सू. 1 |

औषधी द्रव्य संरक्षण विधी (Preservation of Drugs)

(च.क. 1/11)

संकलीत केलेले द्रव्य त्यांच्या गुणानुसार असणाऱ्या पात्रामध्ये ठेवावीत. द्रव्यांना सरळ ऊन किंवा हवा लागणार नाही याची काळजी घ्यावी. उंदीर, कीडे, वाळवी यापासून संरक्षण करणारी यंत्रणा असावी.

औषधीद्रव्य आर्द्र व शुष्क यानुसार वर्गीकरण करून आर्द्र द्रव्य रूममध्ये पसरत ठेवावीत तर शुष्क द्रव्य Air tight jar मध्ये ठेवावीत. द्रव औषधी शक्यतोवर प्लास्टीक बॉटलमध्ये ठेवणे टाळावे कारण प्लास्टीक सोबत रासायनिक क्रिया होवून गुणामध्ये फरक पडण्याची शक्यता असते.

द्रव द्रव्य काचेच्या बाटलीत संग्रहीत करून ठेवावी. कपाटामध्ये काचेची बॉटल खालच्या रकाण्यात ठेवावी ज्यामुळे फुटण्याची भीती कमी राहिल.

प्रत्येक डब्यावर (container) औषधाचे नाव, द्रव्य, उगम स्थान, संकलन तिथी याचे लेबल चिकटवावे. विषारी द्रव्यांचे स्वतंत्र कपाट व डबे असावेत. त्यावर लाल रंगाने लिहिलेले लेबल चिकटवलेले असावेत.

शुष्क व घन द्रव्य कपाटाच्या वरच्या खणात ठेवावेत तर द्रव द्रव्य खालच्या खणात ठेवावेत.

वमन प्रकारः

वमनाचे प्रत्यक्ष प्रयोगानुसार दोन प्रकारात विभागू शकतो.

- (1) मृदू वमन (2) तीक्ष्ण वमन

| मृदू | तीक्ष्ण |
|---|------------------------------|
| (1) राजयक्ष्मा (च.चि. 8/87) | (1) प्रमेह पिडका (अ.स.चि. 4) |
| (2) वातरक्त | (2) उन्माद (सु.उ. 62/14) |
| (3) कफ-पित्ताने वायू मार्गावरोध (च.चि. 9/9) | (3) पाण्डू (च.चि. 16/40) |
| (4) पक्षाघात (डल्हण) | |
| (5) गुल्म (च.चि. 5/3) | |
| (6) पाण्डू (डल्हण टिका सू.उ. 44/14) | |

वमन विधी

वमन कर्म विधी खालील तीन प्रकारात विभागली जाते.

- (1) पूर्वकर्म
(2) प्रधानकर्म
(3) पश्चातकर्म

| वमन कर्म | | |
|---------------------------------|---------------------|------------------------|
| पूर्वकर्म | प्रधानकर्म | पश्चातकर्म |
| (1) रुग्ण निवड | (1) वामक योग सेवन | (1) धुमपान |
| (2) संमतीपत्रक | (2) रुग्ण निरीक्षण | (2) संसर्जन क्रम |
| (3) कोष्ठनिर्णय व अग्नी परीक्षा | (3) वेग निरीक्षण | (3) संतर्पण क्रम |
| (4) संभार संग्रह | (4) व्यापद निरीक्षण | (4) परिहार्य विषय |
| (5) रुग्णसिध्दता | व चिकित्सा | व परिहार काळ |
| (6) आहार | | (5) शोधनोत्तर चिकित्सा |
| (7) मात्रा निर्णय | | |

1. रुग्ण निवड:-

व्याधी, प्रकृती, दोष वय, देश, काल या सर्वांचा विचार करून रुग्ण वमनासाठी निश्चित करावा. अवम्य यासाठी या आधीच विचार केलेला आहे. आवश्यकता असल्यास बालकामध्ये पण वमन करता येते. त्यामुळे सरसकट 'वम्य-अवम्य' याचा नियम लावणे योग्य नाही. यासाठी यापूर्वीच शास्त्रोक्त विचार केला आहे.

वमन करतांना देश-काल यांचा विचारही तेवढाच महत्त्वाचा आहे. कारण देशानुसार दोषांची उत्कल्लष्टता पण महत्त्वाची आहे. उदा. दक्षिण भारत (केरळ) मध्ये कफ दोषांचा उत्कलेश कमी असतो म्हणून केरळमध्ये 'वमन' विधी कमी प्रमाणात केली जाते. तसेच कालाचाही विचार करतांना केवळ इंग्रजी महिन्यांच्या आधारे ऋतुंचे मापन करणे योग्य नाही. उदा. उत्तर भारतात फेब्रुवारी-मार्च मध्ये थंडीच असते त्यामुळे महाराष्ट्रामध्ये या महिन्यात कफाचा उत्कलेश दिसत असला तरी त्यावेळी मात्र उत्तर भारतात तो उल्लेश असणार नाही. या सर्व गोष्टींचा 'वमन' करण्यापूर्वी विचार करणे आवश्यक आहे.

मात्र रोगाची अवस्था उत्कलेशाची असल्यास किंवा व्याधी बहुदोषाचा असल्यास वमन कोणत्याही काळात केले जाऊ शकते. त्यावेळी दोष निर्हरण महत्त्वाचे असते.

2. **संमतीपत्रक (Written consent):** रुग्णास समजेल अशा भाषेत पंचकर्मातील विधीमुळे होणारे फायदे व संभावीत व्यापद समजावून लिखित पत्रकावर रुग्णाची व/अथवा नातेवाईकांची स्वाक्षरी/अंगठा घ्यावा.

3. कोष्ठ निर्णय व अग्निपरिक्षा:

'वमन' करण्यापूर्वी स्नेहन स्वेदन या क्रिया महत्त्वाच्या आहेत. त्यामुळे स्नेहपान करण्यापूर्वी रुग्णाची अग्निपरिक्षा व कोष्ठ परीक्षा करणे आवश्यक आहे. यामुळे एकतर स्नेहाची मात्रा ठरवली जाते व दुसरे

वमनासाठी द्रव्याची मात्रा. यामध्ये चिकित्सकाची चूक होवू नये अन्यथा स्नेहाच्या व वमनाच्या व्यापदांना सामोरे जावे लागेल. असेही कोष्ठ निर्णय केवळ वमनासाठीच नव्हे तर प्रत्येक संशोधनासाठी आवश्यक आहे.

बहुपित्तो मृदुःकोष्ठःक्षीरेणापि विरिच्यते।

प्रभूत मारूतः क्रूरः कृच्छ्राच्छ्यामादिकैरपि।।

अ.ह.सू. 18/32 च.सू. 13/66-6

मृदू कोष्ठ -पित्त प्रधान व्यक्ती केवळ दुग्ध, इक्षु रस प्याल्यानंतर विरेचन होते.

क्रूर कोष्ठ -वात प्रधान व्यक्तीमध्ये निशोथासारखे तीक्ष्ण विरेचन दिल्यानंतरही कठीण पुरीष प्रवृत्ती.

अग्नीपरिक्षणः (सु.सू. 35/29)

स्नेहपान करतेवेळी व वमन मात्रा ठरवतांना अग्नि परिक्षण महत्त्वाचे असते. अन्यथा अजीर्णादि लक्षण उत्पन्न होवू शकतात. आयुर्वेदानुसार अग्निचे 4 प्रकार आहेत.

| अग्नी प्रकार | प्राधान्यता | लक्षणे |
|------------------|--|---|
| (1) सम अग्नी | समदोष असणाऱ्या रूग्णामध्ये सम अग्नी असते. | आहार वेळेत पचविण्याचे कार्य करते. पचनक्रियेत नियमितता असते. |
| (2) विषमाग्नी | वात दोष प्राधान्य असणाऱ्या पुरुषांमध्ये 'वात' प्रकोपामुळे अग्नीचे सम्यक कार्य होत नाही व पचनामध्ये अनियमितता असते. | - कधी पचन सम्यक तर कधी असम्यक पचन - आध्मान - उदरशूल - विबंध/अतिसार - आंत्रकुजन - उदर गौरव - प्रवाहण |
| (3) तीक्ष्णाग्नी | पित्त प्रधान पुरुषांमध्ये पित्त प्रकोपामुळे सम्यक अग्नीचे कार्य बिघडून अधिक तीव्र होते | - गुरूअन्न लवकर पाचन होणे - पाक होणाऱ्या शेवटी गल, ओष्ठ शोष व दाह ही लक्षणे. |
| (4) मंदाग्नी | कफ प्रधान पुरुषांमध्ये कफ प्रकोपामुळे अग्नीचे नियमित कार्य बिघडून अल्प होणे. | - अल्प अन्न पण पचन होत नाही - उदर व शिर गौरव - कास, प्रसेक - श्वास - हृल्लास - गात्र गौरव |

वरील लक्षणांवरून रूग्णाच्या अग्नीचे परिक्षण करावे व त्यानुसार सम्यक मात्रा ठरवावी.

इतर परिक्षण:-

वजन

नाडी

B.P.

Lipid profile

Blood sugar

4. संभार संग्रह (Collection of requirements):-

| वामक द्रव्य | वमनोपग द्रव्य | व्यापदासाठी | Modern drug |
|-------------------------------|---------------------|--------------|--|
| मदनफल-पिप्पली चूर्ण - 4 भाग | इक्षुरस 1500 ml | सूतशेखर | Inj. Perinorm |
| वचा - 2 भाग (आवश्यकतेनुसार) | दुग्ध 1500 ml | शंखवटी | Inj. Dexamethasone |
| सैधव - 1 भाग | मधुयष्टीफांट 2 lit. | प्रवाळपिष्टी | Inj. Efcorlin |
| पिप्पली-1 भाग (आवश्यकतेनुसार) | लवणोदक 500 ml | चंद्रकला रस | Inj. Adrenalin |
| मधुयष्टी - 1 भाग | | नारिकैल जल | I.V. DNS, NS, D5% |
| मधू - 25 ml | | | O ₂ Cylinder, Ryle's tube Hot fomentation bag. |

4. रुग्णसिध्दता (Preparation of the patient):

वमन कर्मासाठी रुग्णाची निवड झाल्यानंतर त्याची तयारी/सिध्दता करणे तेवढेच महत्त्वाचे असते. यावर चिकित्सेचे यश अवलंबून असते. रुग्णाची सिध्दता खालील प्रमाणे करावी लागते.

स्नेहन:

- (i) आभ्यंतर - कोष्ठ व अग्निनुसार स्नेहन प्रकरणात वर्णिल्याप्रमाणे 3 ते 7 दिवसांपर्यन्त आभ्यन्तर स्नेहपान करणे आवश्यक आहे. यासाठी स्नेह (घृतादि) व्याधिनुसार निवडून स्नेहपान करावा. सम्यक स्नेहाची लक्षणे आल्यानंतर स्नेहपान बंद करावा. चिकित्सकाने सम्यक स्नेहाची लक्षणे आल्याशिवाय वमन करूच नये असे सांगितले. अन्यथा अयोगाचे व्यापद उत्पन्न होतात. स्नेहपान पूर्ण झाल्यानंतर एक दिवस विश्राम देवून त्यानंतरच्या दिवशी वमन करावे.
- (ii) अभ्यंग - वमनापूर्वी अभ्यंग 3 दिवस करावे. स्नेहपानाच्या शेवटच्या दिवशी वमनपूर्व एक दिवसाचा विश्राम असतो त्यादिवशी व प्रत्यक्ष वमन क्रिया होणार आहे त्यादिवशी अभ्यंग करावे (च.क. 1/14, अ.ह.सू. 18/12). यासाठी तैल व्याधिनुसार व रुग्णाच्या प्रकृतीनुसार निवडावे. उदा. त्वक्विकारामध्ये नालपामरादि तैल, चंदनबला लाक्षादि तैल.

स्वेदन :

प्रत्येक अभ्यंग झाल्यानंतर स्वेदन केले जाते. त्वकविकारामध्ये स्वेदन करू नये किंवा आवश्यकताच असल्यास मृदु स्वेद करावे.

6. आहार व्यवस्था:

(i) आहार वमनपूर्व स्नेहपान काळात: लघु, सुपाच्य असावा न अति स्निग्ध, नाति लघु, उष्ण, शीत आहार असावा. असेही 3 च्या दिवसानंतर रुग्णास भूक लागत नाही शक्यतो मूगाची खिचडी/पेज देणे सोयीस्कर असते. तीव्र भूख लागल्यानंतरच रुग्णास हलका आहार खाण्यास द्यावे केवळ जेवणाची वेळ झाली म्हणून रुग्णास काही खाऊ देऊ नये.

(ii) वमनाच्या एक दिवस पूर्व (विश्राम काळ): वमनासाठी कफोत्कलेश होणे आवश्यक असते. त्यामुळे विश्रामाच्या दिवशी रात्री चा आहार हा कफ वर्धक असावा. यासाठी दूध, दही, उडद, तिल इ. आहार द्यावा. (च.क. 1/14, च.सि. 6/18) अ.ह.सू. 18/12

ग्राम्यौदकानूपरसैः समांसैरूत्कलेशनीयः पयासा च वम्यः!! च.सि. 1/8

प्रत्यक्षात रुग्णास रात्री दही + भाताचे भोजन देण्याची पध्दत आहे.

(iii) वमनाच्या दिवशी: पेया, यवागु द्यावे किंवा केवळ दूध द्यावे. काही चिकित्सक वचा सिद्ध दूध देणे पसंत करतात.

मानसोपचार :

रुग्णास धैर्य द्यावे व मानसिक बल वाढेल यासाठी प्रयत्न करावे. तसेच वमन संदर्भातील भय किंवा लज्जा इ. दूर करावे. यासाठी रुग्णास त्यांच्या धर्माप्रमाणे/विश्वासाप्रमाणे प्रातः वमन विधी पूर्व स्वस्तीर्वाचन करण्यास सांगावे.

7. मात्रा निर्णय :- चरक, सुश्रूत आचार्यानी वमनासाठी मात्रा विचार करतांना वेगवेगळी मते दिली आहेत. आचार्य चरकानुसार -

(a) मदनफल कषाय मात्रा प्रत्येक रुग्णानुसार वेगवेगळी असते. ज्या मात्रेने दोषहरण होईल व अयोग किंवा अतियोग होणार नाही ती मात्रा योग्य. (च.सू. 15/10)

(b) तासां फलपिप्पलीनामन्तर्नखमुष्टिं यावद् वा।। (च.क. 1/14)

मदनफल पिप्पली रुग्णाच्या अंतर्नख मुष्टीत येईल ऐवढे द्यावे.

आचार्य सुश्रूतानुसार -

(1) व्याधीबल, अग्निबल, पुरुषबल याचा विचार करून वमन मात्रा द्यावी.

(2) व्याधी, पुरुष व अग्निबल मध्यम असल्यास वमन योगाची मात्रा - (सु.सू. 31/2)

- कषाय, हिम - 1 अंजली = 160 मिली
- चूर्ण - 1 विडालपदक = 5 ग्रॅम
- कल्क - 1 अक्ष (1 तोळा) = 10 ग्रॅम

व्याध्यादिषु तु मध्येषु क्वाथस्यांजलिरिष्यते।विडालपदकं चूर्णं देयःकल्कोऽक्षसंमितः।।सु.सू. 39/12

आचार्य वाग्भटानुसार:-

मात्राया नात्यवस्थानं व्याधी कोष्ठबलं वयः।

आलोच्य दोषकालौच योज्या तद्वच्च कल्पना।। अ.सं.

वाग्भटांनी व्याधीबल, पुरुष बल यांच्या विचारासोबत देश व कालाचाही विचार करण्यास सांगितले आहे. जे प्रत्यक्षात अनुभवयास मिळते.

आचार्य शाड्गधरानुसार (शा.उ.खं. 3/16-17):

| | उत्तम मात्रा | मध्यम मात्रा | हीन मात्रा |
|-----------------------|-----------------------------------|-----------------------------------|---------------------------------|
| कवाथ | 9 प्रस्थ (567 तोळे = 5.6 लीटर) | 6 प्रस्थ (384 तोळे = 3.8 लीटर) | 3 प्रस्थ (192 तोळे = 2 लीटर) |
| चूर्ण, कल्क, अवलेह | 3 पल (12 तोळे = 120 ग्रॅम) | 2 पल (8 तोळे = 80 ग्रॅम) | 1 पल (4 तोळे = 40 ग्रॅम) |

प्रत्यक्षात वरील निर्देशीत मात्रा खूपच अधिक प्रमाणात वाटते. रुग्णामधे याचा वापरही शक्य नाही.

प्रत्यक्षात वापरण्यात येणारी मात्रा:

चूर्ण - 5 ते 10 ग्रॅम

फाण्ट - 150 ते 200 मिली

प्रधानकर्म:-

वमन योग सेवन केल्यापासून ते वमन वेग पूर्ण होई पर्यंत करण्यात येणारे कर्म प्रधानकर्म आहेत.

(1) वामक योग सेवन:

(a) रुग्ण आसन - वमन खोलीमध्ये रुग्ण मऊ गादीयुक्त खुर्चीवर बसवावे, रुग्णाचे मूख पूर्व किंवा उत्तरेला असावे, खुर्चीची उंची गुडघ्या एवढी असावी, रुग्णास Apron किंवा टॉवेल बांधावी ज्यामुळे वमनामुळे कपडे खराब होणार नाही. रुग्णाच्या जवळ एक टॉवेल ठेवावा. जवळच स्टूल वर हाथ तोंड धुण्यासाठी भांडे व कोष्णजल याची व्यवस्था ठेवावी. रुग्णासमोर वमनासाठी Sink किंवा टब गुडघ्या एवढ्या उंचीवर ठेवावे. अशापध्दतीचे यंत्र बनविल्यास अधिक सोयीस्कर ठरते. ज्यामुळे प्रत्येक वेगाचे मोजमाप करता येऊ शकते. रुग्णास धैर्य देवून समजवावे.

(b) आकण्ठपान - वमन विधीच्या सुरुवातीस रुग्णास दूध किंवा इक्षुरस आकण्ठपान करण्यास सांगावे. याची मात्रा 1200 मिली पासून 1500 मिली पर्यंत होते. रुग्णास पोटभरल्याची संवेदना झाल्यास दुग्ध/इक्षुरस पान थांबवावे रुग्णाचे पानासाठी देत असलेल्या प्रत्येक द्रव्याची मात्रा पत्रकावर नमूद करावी.

(c) वामकयोग सेवन - मदनफल पिप्पलीचूर्ण 2 भाग, सैधव 1/2 भाग याचे मिश्रण करून या चूर्णाची 3 ग्रॅम - 5 ग्रॅम पर्यन्त मात्रा मधुसह मिश्रण करावे व अभिमंत्रित करून रुग्णास चाटण द्यावे.

वमनासाठी वचाचूर्ण देण्याचीही पद्धत आहे, परंतु वचा चूर्णाने रुग्णास अधिक काळ पर्यंत वमन होत असते त्यामुळे वामक योगात वचाचूर्ण देतांना रुग्णबल व अवस्था याचा विचार करावा.

मंत्र:-

ॐ ब्रह्मदक्षाशिवरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कनिलानलाः। ऋषयः सौषधिग्रामा भूतसंघाश्चूपान्तु ते॥

रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा। सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते॥

च.क. 1/14

2) रुग्ण निरीक्षणः

वमनौषधी सेवनानंतर चिकित्सक व परिचारक यांनी रुग्णाच्या पृष्ठ, पार्श्व भागी सुखोष्ण स्पर्श करावे, व एक मुहुर्त (48 मिनिट) पर्यंत प्रतिक्षा करावी तसेच रुग्णाचे खालील लक्षणांसाठी निरीक्षण करावे.

- (1) रुग्णाच्या ललाट प्रदेशी स्वेद बिंदू - दोष स्रोतसांत शिथील होऊन द्रवीभूत व चलायमान झालेले समजावे.
- (2) रोमहर्ष - दोष स्थानच्युत होऊन कोष्ठाकडे येत आहेत असे समजावे.
- (3) आध्मान - दोष कोष्ठामध्ये आहेत समजावे.
- (4) हल्लास, लालास्राव - दोष आमाशयातून मुखाकडे येत आहेत.

यानंतर रुग्णाने वमन पात्रावर वाकून सुखपूर्वक वमन करावे. जर नीट येत नाही असे वाटल्यास रुग्णास तर्जनी व मध्यमा अंगुलीने गलभागास (पड जीभेस) स्पर्श करण्यास सांगावे त्यामुळे वमन वेग प्रवृत्त होतात.

औषधपानानंतर वमन वेगाचे वेळी वेग सुखकर व्हावे यासाठी परिचारकांने रुग्णाच्या उदरप्रदेशी व पृष्ठ प्रदेशी प्रतिलोम गतीने हलक्या दाबाने हात फिरवावे. प्रत्येक वेगानंतर रुग्णास मधुयष्टी फांट, लवणोदक द्यावा. याने वमनाचे वेग अधिक सुखकर होतात व कोष्ठ शुध्दी होते.

3) वेग निरीक्षणः

वमनाच्या वेगाचे सुरवात झाल्यानंतर उत्सर्जीत द्रव्याचे रंग, स्वरूप, वेग संख्या इ. चे निरीक्षण चिकित्सकाने करणे आवश्यक असते. उत्सर्जीत द्रव्यात रक्त वगैरे तर नाही याकडे लक्ष ठेवावे. वमनाचे वेग मोजतांना एकावेळी 2-3 वेळा रुग्णास उत्सर्जन होते. ते सर्व मिळून एक वेग समजावे. त्यानंतर रुग्णास हल्लास असतांना वमनोपग द्रव्य (मधुयष्टी फाण्ट) पिण्यास द्यावे; असे वारंवार करावे. सम्यक

योग होईपर्यन्त रुग्णाचे वमन होवू द्यावे. वेगसंख्या व उत्सर्जीत द्रव्यप्रमाण व लक्षणे याद्वारे शुद्धीचा निर्णय केला जातो.

| शुद्धी | वेग संख्या (वैगिकी) | उत्सर्जीत द्रव्य प्रमाण (मानिकी) | आंतिकी |
|--------|---------------------|----------------------------------|-------------|
| प्रवर | 8 वेग | 2 प्रस्थ = 1 लीटर (Approx) | कफपित्तान्त |
| मध्यम | 6 वेग | 1½ प्रस्थ = 800 मिली (Approx.) | कफपित्तान्त |
| अवर | 4 वेग | 1 प्रस्थ = 600 मिली (Approx) | कफपित्तान्त |

पूर्णतः आमाशय रिकामे झाले म्हणजे वमन संपले अर्थात दोषांचे शोधन झाले. वमन प्रक्रियेमध्ये सर्वप्रथम कफ बाहेर पडतो, त्यानंतर पित्त बाहेर पडतो. उत्सर्जीत द्रव्यामध्ये पीतवर्णाचे दिसणे व रुग्णास कडू चव वाटणे हे पित्त निर्हरणाचे लक्षण होय. यानंतर वात दोषाचे निर्हरण होते. केवळ सशब्द उद्गार निघणे व त्यासोबत द्रव्य नसणे हे 'वात' निर्हरणाचे लक्षण समजावे. पित्त दर्शन हे शुद्धीचे उत्तम लक्षण आहे. वमन हे पित्त दर्शनापर्यंत सम्यक मानावे किंवा कफाचे पूर्णतः निर्हरण होईपर्यंत वमन केल्यानंतर सम्यक मानावे.

पित्तस्य दर्शन यावच्छेदो वा श्लेष्मणो भवेत्। अ.ह.सू. 18/20

वेग निरीक्षण करतांना वरील शुद्धी (वैगिक, मानिकी, आंतिकी) प्रकार रुग्णानुसार बदलत असतात त्यामुळे सम्यक निर्णयासाठी त्यावर फार अवलंबून राहू शकत नाही. अर्थात यांचे महत्त्व नाही असे नाही. तरीही सम्यक शुद्धीचा निर्णय सम्यक लक्षणावरून करणे उत्तम असते. यास लैंगिकी शुद्धी (लक्षणानुसार) म्हणतात.

सम्यक लक्षणः

क्रमात् कफः पित्तमथानिलश्च यस्यैति सम्यग वमितः स इष्टः।

हृत्पार्श्वमुर्धेन्द्रियमार्गशुद्धौ तथा लघुत्वेऽपि च लक्ष्यमाणे ॥ च.सि. 1/15

पित्तं कफास्यानुसुखं प्रवृत्तं शुद्धेषु हृत्कण्ठशिरसु चापि।

लघवौ च देहे कफसंस्रवे च स्थिते सुवान्तं पुरुषं व्यवस्थेत्॥ सु.चि. 33/17

- (1) क्रमाने कफ, पित्त वायू निघणे
- (2) हृदयप्रदेशी लघुता
- (3) पार्श्व, मुर्ध लघुता
- (4) मार्ग (स्रोतस) लघुता
- (5) कंठ शुद्धी
- (6) कफसंस्रवे च स्थिते (Arrest of excessive salivation)
- (7) लघुता अनुभूती

(8) कार्श्य

(9) दौर्बल्य

(10) न चाति महती व्यथा - No discomfort (अ.ह.सू. 18/22)

अयोग लक्षणः

i) केवलस्य वाम्यौषधस्य विभंशः विबंधः वेगानां अयोग लक्षणानि भवन्ति। च.सू. 15/13

ii) तत्र वेगानामप्रवर्तनम्। प्रवृत्तिः सविबन्धा वा केवलस्यौषधस्य वा।

अयोगस्तेन निष्ठीवकण्डूकोठ ज्वरादयः।। अ.ह.सू. 18/21-22

iii) दुश्छर्दिते स्फोटकोठकण्डू हृत्खाविशुद्धिगुरुगात्रता च। च.सि. 1/16

iv) कफप्रसेकं हृदयविशुद्धि कण्डूश्च दुश्छर्दितलिंगमाहुः। सु.चि. 33/7

(1) वेग अप्रवृत्ति

(2) केवल औषधी बाहेर निघणे

(3) वेग-विबंध - वेग थांबून येणे

(4) हृदय अशुद्धी - (हृदयप्रदेशी गौरव वाटणे)

(5) निष्ठीव/कफप्रसेक

(6) कंडू

(7) कोठ

(8) ज्वर

(9) गुरु गात्रता - शरीर भारी वाटणे

अयोग व्यापदः

(1) असम्यक मात्रा - तीव्र अग्नि असतांना, रुग्णास भूक लागलेल्या अवस्थेत मृदू कोष्ठ असल्यास, रुग्ण दुर्बल असल्यास रुग्णास विरेचन होईल यास वमनाचा अयोग समजावा.

चिकित्सा:-औषध जीर्ण झाल्यानंतर पुनः स्नेहन स्वेदन करून कोष्ठ परिक्षणानंतर मृदू किंवा तीक्ष्ण वमन द्यावे.

औषध जीर्ण न झाल्यास कोणताही उपचार करू नये अन्यथा अतियोग होण्याची भीती असते.

| औषध जीर्ण लक्षण | औषध अजीर्ण लक्षण |
|-------------------------|-------------------------|
| (1) वातानुलोमन | (1) दाह |
| (2) स्वास्थ्यानुभव | (2) अंगसाद |
| (3) सम्यक क्षुधा व तृषा | (3) भ्रम |
| (4) उत्साह | (4) मूर्च्छा |
| (5) मन प्रसन्न | (5) शिरःशूल |
| (6) उद्गार शुद्धी | (6) अरति (Restlessness) |

(2) विग्रंथीत दोषांत अल्प औषधी - दोष विग्रंथीत (consolidated state) असतांना अल्प मात्रा दिल्यास खालील लक्षणे उत्पन्न होतात.

- (1) तृष्णा
- (2) मूर्च्छा
- (3) हल्लास
- (4) अरूचि
- (5) अरति
- (6) अविशुद्ध उद्गार
- (7) पार्श्वशूल (chest pain)
- (8) पर्वभेद (pain interphalangeal joints)

चिकित्सा: कोष्ण जलाने पुनः वमन करावे.

(3) सम्यक दोष शुद्धी न होणे - रुग्णाचे सम्यक स्नेहन स्वेदन न झाल्यामुळे, रुग्ण रूक्ष शरीर रूक्ष राहिल्यास; अल्प गुणयुक्त औषधी व अल्प मात्रेत औषधी दिल्यास खालील प्रमाणे लक्षणे उत्पन्न होतात.

- (1) गौरव
- (2) उत्क्लेश - (Nausea)
- (3) व्याधी वृद्धी
- (4) विभ्रंश (Altered state consciousness)
- (5) शोथ
- (6) हिक्का
- (7) तमोदर्शन
- (8) पिण्डिकोद्वेष्टन
- (9) कंडू

(10) अंगदाह - सोरियासिच्या इ. कुष्ठ रुग्णात वमनाचा अयोग झाल्यास कंडू व दाह या लक्षणांमध्ये वृद्धी होते.

चिकित्सा: स्नेहन स्वेदन करून रुग्णास तीक्ष्ण वमन द्यावे.

(4) औषधी पचन - स्नेहन स्वेदनानंतर दीप्ताग्नि असणाऱ्या रुग्णास औषधाचे पचन होते किंवा आमवृद्धी मध्ये शीत औषधी दिल्यास दोषांचा उत्क्लेश करून शोधन करत नाही. यामुळे खालील लक्षणे उत्पन्न होतात.

- (1) गौरव
- (2) हृदयाशुद्धी

चिकित्सा:

- (1) अधिक मात्रेत तीक्ष्ण वमन किंवा
 - (2) सैधव सिध्द तैलाने अभ्यंग व संकर स्वेद करून पूर्वी औषधी जीर्ण झाल्यानंतर पुन्हा/पुनः वमन किंवा
 - (3) गोमूत्रयुक्त निरूह देवून मांसरस युक्त भोजन द्यावे व मदनफलसिध्द, दारूहरिद्रासिध्द तैलाचा अनुवासन द्यावा व नंतर तीक्ष्ण शोधन करावे ज्यामुळे तीक्ष्णौषधीचे अतियोग्य होणार नाही.
- (5) अजीर्ण व वमन - अजीर्णामध्ये वमन औषध द्रव्य दिल्याने खालील लक्षणे उत्पन्न होतात.
- (1) विबंध - Constipation
 - (2) ग्लानि - Sense of uneasiness
 - (3) विरेचन - Loose motion

चिकित्सा:

- (1) आमदोषहर व पाचन औषध प्रयोग. उदा. शिवक्षार पाचन, संजीवनी वटी
- (2) कालांतराने वमन

अयोग कारण: (च.सि. 6/40-44)

वमनाचे अयोग होण्याचे कारण सामान्यतः खालीलप्रमाणे आहेत.

- (1) रुग्णाचे स्नेहन स्वेदन सम्यक न होणे
- (2) बलवान रुग्णामध्ये वमन योगाची मात्रा कमी झाल्याने
- (3) वामक योगाची द्रव्य पूरण, हीन वीर्य किंवा भेसळयुक्त (Adulterated) असल्याने
- (4) क्रूर कोष्ठी रुग्णामध्ये अल्प मात्रा
- (5) रुग्णामध्ये आम प्राधान्य असल्यास
- (6) रुग्णाची अग्नि तीक्ष्ण असल्यास औषध जीर्ण झाल्याने

अयोग चिकित्सा:

- (1) सामान्यतः जर वमनकर्म वेग आले नाहीत तर मधुयष्टी फाण्ट वारंवार पाजून वमन करावे.
- (2) यानेही वमन वेग येत नसतील तर मदनफलचूर्ण व वचा (2 ग्रॅम) चे पुन्हा चाटण देवून वमन करावे.
- (3) लवणोदक पिण्यास द्यावे यामुळे वमन वेग येण्यास मदत होते.
- (4) पूर्णतः वमन वेग येण्यासाठी अंगुली द्वारे गलभागी उत्तेजना देवून वमन करण्यास सांगावे.

- (5) रुग्णास मोह, अंगग्रह, तमोदर्शन, आध्मान लक्षणे उत्पन्न होत असल्यास वमनक्रिया बंद करावी व दीपन पाचन द्रव्य औषधी द्यावी. उदा.: हिंवाष्टक चूर्ण, शंखवटी
- (6) हीन वेग असल्यास पिप्पली, धात्री (*Embluca officinalis*), सिध्दार्थ (*Brassica juncea*) लवण यांनी सिध्द केलेल्या जलाने पुनःपुनः वेग प्रवर्तन करावे. (अ.ह.सू. 18/21)

अतियोग लक्षणे:

(1) अतियोगे तु फेनचन्द्रकरक्तवत्॥

वमितं क्षामता दाह कण्ठशोषस्तमो भ्रमः। घोरा वाय्वामया मृत्युर्जीव शोणितनिर्गमात्॥

अ.ह.सू. 18/23-24

(2) योगाधिक्येन तु फेनिलरक्त चंद्रिकोपगम नं इत्यतियोग लक्षणानि भवंति।

च.सू. 15/13

(3) पित्तायोगश्च विसंज्ञताच हृत्कंठपीडामपि चाति वांते॥

सू.चि. 33/7

- | | |
|----------------------------------|--------------------|
| (1) फेनिल (Frothy) वमन | (2) सरक्त वमन |
| (3) बल हानी | (4) दाह |
| (5) कण्ठशोष, तृष्णाधिक्य | (6) तम (black-out) |
| (7) भ्रम (giddiness) | (8) वातप्रकोप |
| (9) मृत्यु (अधिक रक्तस्रावामुळे) | (10) मूर्च्छा |
| (11) निद्राहानी | (12) हृद्पीडा |
| (13) कंठपीडा | |

अतियोग व्यापदः

(1) अति मात्रा व्यापद - सम्यक स्निग्ध स्विन्न रुग्णाचे, मृदू कोष्ठ असतांना अधिक मात्रेत तीक्ष्ण औषधी दिल्यास अतियोग होवून खालील लक्षणे दिसतात.

- (1) पित्त अतिप्रवृत्ती
- (2) बलक्षय
- (3) वातप्रकोप

चिकित्साः (1) घृताने अभ्यंग
(2) शीत अवगाह
(3) शर्करा + मधु अवलेह

(2) द्रवधातुक्षय - क्षुधीत रुग्णास, मृदू कोष्ठ असतांना तीक्ष्णौषध दिल्यास कफ-पित्त दोषांचे क्षय होऊन द्रवधातु अधिक प्रमाणात निर्हरण झाल्याने खालील लक्षणे उत्पन्न होतात.

- (1) बलनाश
- (2) कंठशोष
- (3) दाह
- (4) भ्रम
- (5) तृष्णा

- चिकित्सा:**
- (1) शीत व मधूर चिकित्सा
 - (2) शेष औषधी निर्हरणार्थ मृदू विरेचन
 - (3) शीतजल परिषेक, अवगाह
 - (4) चंदन, उशीर, नागरमोथा, शर्करा सिद्ध जल
 - (5) जिह्वा बाहेर आल्यास तिळ व द्राक्षा याचा जिभेवर लेप करून अंतःप्रविष्ट करावी.
 - (6) मयुरपिच्छामशी - 250 मिग्रॅम मधूसह वारंवार, सुतशेखरवटी शंखवटी 250 मिग्रॅम, संजीवनी वटी, यथा आवश्यक द्यावेत.

Modern: - IV fluids D 5%, DNS, NS
- Inj. Perinorm (Metaclopramide) 2 ml stat.

अतियोगाने इतरही लक्षणे होतात त्यांच्या लक्षणांप्रमाणे चिकित्सा करावी.

पश्चातकर्म

सम्यक योगाचे लक्षण दिसल्यानंतर ते प्राकृत भोजनापर्यंत करण्यात येणारे कर्म पश्चात कर्म आहेत.

- (1) **धूमपान:** 'वमन' कर्माचे वेळी कफ निःसारण होताना घशामध्ये कफ स्राव झालेला असतो. त्यामुळे गलभागी उपलेपता, कफस्राव कमी करण्यासाठी धूमपान करावे. यामुळे कंठ, मूख, नासा शुध्दी होते. रुग्णाच्या आवश्यकतेनुसार तिन्ही प्रकारांपैकी धूमपान करावे व स्नेहपानाची परिचर्या पाळावी.

प्रत्यक्षात कपड्याच्या पट्टीला हरिद्रा-घृताचे लेप करून त्याची वर्ती तयार करून धूमपान यंत्राद्वारे धूमपान करण्याचा प्रघात आहे.

धूमपानामुळे शेष दोष निघण्यात मदत होते. वमनामुळे आमाशयस्थ व कफस्थानातून दोषांचे निर्हरण होते. परंतु स्नेह-स्वेदामुळे स्रवित झालेले दोष (शेष दोष) नजीकच्या स्रोतसातून बाहेर काढण्यासाठी धूमपानाने मदत होते.

- (2) **संसर्जनक्रम:** सम्यक सर्जन संसर्जन होय. वमन करतांना अग्नि दुर्बल झालेली असते. त्यामुळे काही दिवस रुग्णास सामान्य आहार देणे अनुचित असते. वमनाच्या लगेचच दुर्बल अग्नी असतांना तरल आहार देणे योग्य असते. ज्यामुळे जठराग्निवर अधिक ओझं होत नाही.

हळुहळू अग्नि प्रदीप्त होत जाते त्यावेळी तरल आहार करून घन आहार रुग्णास द्यावे. त्यामुळे पचनशक्ती आपल्या उत्तम स्थितीवर येत असते.

पेयां विलेपीमकृतं कृतं च । युषं रसं त्रीनुभयं तथैकम्।

क्रमेण सेवेत नरोऽन्नकालान् प्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः।। अ.ह.सू. 18/27

अवर शुद्धी संसर्जन क्रम -

| दिवस | प्रथम अन्नकाल | द्वितीय अन्नकाल |
|------|---------------|-----------------|
| 1 | पेया | विलेपी |
| 2 | अकृत युष | कृत युष |
| 3 | मांसरस | प्राकृत भोजन |

मध्यमशुद्धी संसर्जन क्रम:-

| दिवस | प्रथम अन्नकाल | द्वितीय अन्नकाल |
|------|---------------|-----------------|
| 1 | पेया | पेया |
| 2 | विलेपी | विलेपी |
| 3 | अकृत युष | अकृत युष |
| 4 | कृत युष | कृत युष |
| 5 | मांसरस | मांसरस |
| 6 | प्राकृत भोजन | प्राकृत भोजन |

प्रवर शुद्धी संसर्जन क्रम:-

| दिवस | प्रथम अन्नकाल | द्वितीय अन्नकाल |
|------|---------------|-----------------|
| 1 | पेया | पेया |
| 2 | पेया | विलेपी |
| 3 | विलेपी | विलेपी |
| 4 | अकृत युष | अकृत युष |
| 5 | अकृत युष | कृत युष |
| 6 | कृत युष | कृत युष |
| 7 | मांसरस | मांसरस |
| 8 | मांसरस | प्राकृत भोजन |

आचार्य सुश्रुतानुसार पेयादिच्या स्थानी कुलत्थ, मुद्ग, आढकी, जांगल मांसरस युक्त युष द्यावे. यावर डल्हणांनी टिका लिहितांना स्पष्ट केले आहे की, कफ वृद्धी असल्यास पेया द्यावी, वातप्राधान्य तीक्ष्णाग्नियुक्त रुग्ण असल्यास मांसरस द्यावे. दोष व ऋतुनुसार किंचित कफवृद्धी असल्यास कुलत्थादि युष द्यावे. (सु.चि. 33/11 व यावरील डल्हण टिका)

- (3) **संतर्पणः** संसर्जन क्रम सामान्यतः वमन कर्मानंतर पालन करणे आवश्यक आहे. परंतु शोधन अल्प झाल्यामुळे कफ दोषांचे प्राधान्य असल्यास संसर्जन क्रमाएवजी संतर्पण क्रम पाळण्यास सांगितले आहे कारण पेया अभिष्यंदन करून कफवृद्धी करणे संतर्पण शक्यतो खालील परिस्थितीमध्ये करावे.

कफपित्ते विशुद्धेऽल्पं मद्यपै वात पैत्तिके।

तर्पणादिक्रम कुर्यात् पेयाभिष्यंदयेध्दितान्।। च.सि. 6/25

- (1) कफपित्त अवशुद्धी - वमन कर्म अल्प झाल्यामुळे कफ पित्ताचे शोधन न झाल्यास
- (2) मद्यपी
- (3) श्लेष्मानम् - कफ आधिक्य असल्यास (जरी व्याधी कफाचा असला तरी)
- (4) वातपित्तज प्रकृती - वातपित्तज प्रकृती असलेल्या रुग्णांमध्ये तर्पणचा अर्थ युष व मांसरस समजावा.

प्रथम अन्नकालात लाजा, सक्तु द्यावे, द्वितीय अन्नकालामध्ये जूने तांदळाचा भात तर तिसऱ्या अन्नकालामध्ये मांसरस द्यावे (अरूण दत्त).

पेयाच्या स्थानी स्वच्छ (अधिक पातळ) तर्पण द्यावे व विलेपीच्या ऐवजी घन तर्पण द्यावे.

शर्करा, पिप्पलीमूल, घृत, मधु समान भाग व दोन भाग सत्तू घेवून मंथ तयार करावा व रुग्णास तर्पणार्थ द्यावा.

- (4) **परिहार्य विषय परिहार कालः** पंचकर्मातील क्रिया करतांना खालील परिहार्य विषय आहेत रुग्णांस त्याचे पालन करण्यास सांगावे. आजच्या काळानुरूप रुग्णांस तथा परिहार्य विषयाच्या सूचना द्यावा तरच 'वमन' कर्माचे अपेक्षित यश मिळतील.

- (1) अधिक जोराने बोलणे. (शिक्षक, वक्ते यांना विशेष सूचना द्याव्यात)
- (2) अधिक भोजन करणे.
- (3) एकास्थानी अधिककाळ बसणे. (Continuous sitting e.g. Clerical or Official work, IT Professions)
- (4) अधिक बाहेर फिरणे. (Tour/Travelling)
- (5) राग येणे, दुःखी राहणे
- (6) शीत वायू सेवन (Avoid AC)

- (7) वाहन (Travelling by Scooter, Bike, Bus)
- (8) मैथून
- (9) रात्री जागरण (Avoid night shift work, late night TV watching etc.)
- (10) दिवास्वाप
- (11) विरूद्ध भोजन (Avoid Milk shake etc.)
- (12) वेगावरोध
- (13) वेगांचा बलपूर्वक उदीरण

(5) शोधनोत्तर सिध्दता:

- (1) वमनानंतर रुग्णास अन्य उपक्रम करायचे नसल्यास व्याधीनुसार शमन चिकित्सा करावी.
- (2) वमन कर्मानंतर विरेचन करायचे असल्यास 9 व्या दिवसापासून स्नेहपानास सुरूवात करावी. वमनानंतर 15 व्या दिवशी विरेचन करण्याचे विधान आहे. उत्तम शुध्दीसाठी वमनानंतर विरेचन करण्यासाठी पूर्ण 7 दिवसाचे स्नेहपान करण्याची गरज नाही.

वमन व्यापद व चिकित्सा

वमनाचे व्यापद होण्याचे प्रमुख कारण खालील प्रमाणे आहेत.

- (1) **चिकित्सक** - चिकित्सकांनी रुग्ण व व्याधी याचे परिक्षण योग्य न केल्यास व्यापद उत्पन्न होवू शकतात. चिकित्सक हा पूर्णतः प्रशिक्षित नसल्यास व्यापद उत्पन्न होवू शकतात.
- (2) **औषध** - औषधांची गुणवत्ता सम्यक वमनासाठी महत्त्वाची आहे. भेसळ, हीनवीर्य असलेल्या औषधांनी व्यापद उत्पन्न होतात.
- (3) **रुग्ण** - व्यापद उत्पन्न होण्यासाठी रुग्ण स्वतः जबाबदार असतात. चिकित्सकांनी केलेला उपदेश तंतोतंत न पाळल्याने व्यापद होवू शकतात.
- (4) **परिचारक** - व्यापदामध्ये यांचा वाटा तसा कमी असला तरीपण परिचारकाच्या निष्काळजीपणामुळे रुग्णास व्यापद उद्भवू शकतात.

वमनाचे व्यापद हे अयोग व अतियोगानेच उद्भवतात या संदर्भात आधीच वर्णन केलेले आहे. चरकाचार्यांनी व सुश्रुताचार्यांनी खालीलप्रमाणे वमन व्यापद सांगितले आहेत.

- (1) आध्मान
- (2) परिकर्त (कंठक्षणन)
- (3) स्त्राव (Excessive salivation)
- (4) हृदग्रह (Pericardial discomfort) - या लक्षणांसोबत इतर cardiac signs बघणे अधिक हितकारक असते.

- (5) गात्रग्रह
- (6) जीवादान - (Appearance of blood during vomiting)
- (7) विभ्रंश - (Altered state of consciousness)
- (8) स्तम्भ - (Rigidity)
- (9) उपद्रव - (Specific complication)
- (10) क्लम - (Tiredness)

सुश्रुताचार्यानी वमन व विरेचनाचे एकत्र व्यापद सांगितले आहेत. वमनाचे व्यापद पूढीलप्रमाणे:-

- (1) विरेचन
- (2) सावशेषत्व (Residue of the medicine) (औषध आमाशयात शेष राहणे)
- (3) जीर्णोषधत्व (औषधीचे पचन होणे)
- (4) हीन दोषापहरण
- (5) वातशूल
- (6) अयोग
- (7) अतियोग
- (8) जीवादान
- (9) आध्मान
- (10) परिकर्तिका (कंठक्षणन)
- (11) परिस्त्राव - Excessive salivation
- (12) प्रवाहिका (शुष्कोद्गार) - वारंवार उद्गार येणे
- (13) हृदयापसरण (Discomfort in chest region)
- (14) विबंध

वरील व्यापदांमध्ये काही व्यापदांचे हेतू आहेत तर काही लक्षणे. हे सर्व व्यापद अयोगामुळे किंवा अतियोगामुळे होतात.

अयोगामुळे होणारे व्यापद: (1) आध्मान (2) परिस्त्राव (3) हृदग्रह (4) अंगग्रह (5) सावशेषत्व (6) जीर्णोषधत्व (7) हीन दोषापहरण

अतियोगामुळे होणारे व्यापद: (1) परिकर्त (2) जीवादान (3) विभ्रंश (4) प्रवाहिका (शुष्कोद्गार) (5) हृदयापसरण

यांची चिकित्सा अयोग व अतियोग व्यापद मध्ये वर्णिल्याप्रमाणे करावी.

काही व्यापद व चिकित्सा:

- (1) **जीवादान (Bleeding during vomiting):-** प्रत्यक्ष वमन करतांना सर्वात भीतीदायक व्यापद म्हणजे जीवादान. चिकित्सकांनी वमन वर्गासाठी रुग्ण ठरवतांना पूर्णतः परिक्षण करणे गरजेचे असते. त्यासाठी रुग्णाचा इतिहास महत्त्वाचा असतो.

During vomiting hematemesis due to acute rupture of gastric mucosa.

Causes:

- (1) Esophageal varices following portal hypertension and cirrhosis of liver.
- (2) M.W. Syndrome (Mallory weiss syndrome) tears in mucosa of lower 3rd esophagus due to retching in alcoholics and bulimics.
- (3) Peptic ulcer disease
- (4) Chronic viral hepatitis.
- (5) Tumours of the stomach, esophagus
- (6) Viral hemorrhagic fevers
- (7) Chronic viral hepatitis
- (8) History of smoking

Treatment: Treated as medical emergency. If minimal blood loss Omeprazole 20 mg stat

- Blood transfusion if needed
- IV fluids
- NPO (Nil per Os nothing by mouth)

आयुर्वेद चिकित्सा: (1) प्रवाळपिष्टि, (2) सुतशेखर, (3) चंद्रकलारस, (4) दाडिमावलेह, (5) मुक्तापिष्टी,

- (2) **हृदशूल/हृदयापसरण/हृदग्रह - (Discomfort in chest):-** हृदशूल, हृदग्रह इ. लक्षणे सामान्यपणे उरोभागातील पेशींच्या थकव्यामुळे निर्माण होवू शकतात. परंतु रुग्ण यापेक्षा वेगळी लक्षणे सांगत असेल तर रुग्णाचा ECG काढणे सुरक्षात्मक असते.

If changes of Acute Myocardial infarction should treated as emergency in cardiac unit.

Symptoms:

- (1) Chest pain radiating to the left arm (Clinical history of ischaemic type chest pain lasting more than 20 minutes.)
- (2) Shortness of breath,
- (3) Nausea, vomiting
- (4) Palpitation, sweating
- (5) Fatigue
- (6) In ECG ST elevation, T wave inversion.

Treatment:

- (1) O₂

- (2) Aspirin
- (3) Tab Nitroglycerin sublingual
- (4) Refer to higher cardiac centre.

(3) **उच्चरक्तचाप (High Blood Pressure):** वमनाच्या वेगामध्ये रुग्णाचा BP वाढत असतो. सामान्यतः 20 ते 30 mm of Hg चा हा फरक असतो. त्यामुळे वमना वेगांच्या दरम्यान Systolic BP 180 ते 200 mm Hg च्या वर जात नाही ना याची खबरदारी घ्यावी: प्रत्येक वेगानंतर BP वाढलेला असल्यास रुग्णास दोन वेळांच्या मध्ये अल्प विश्रांती देवून व नंतर वमनोपग द्रव्य द्यावे व वमन करावे.

(4) **Dehydration & Electrolyte imbalance:** Prolonged & excessive vomiting will decrease the body water (dehydration) and may alter the electrolyte status. Continuous vomiting may lead to the loss of acid (protons) and chlorine directly. It may cause hypochoremic metabolic alkalosis (low chloride level with high HCO₃ & CO₂ and increased PH) and hypokalemia (decreased potassium).

Treatment: IV fluid to correct electrolyte imbalance

वमन कार्मुकता (Mode of Action)

तत्रोष्ण तीक्ष्ण, सुक्ष्म..... उर्ध्वमुत्क्षिष्यते। च.क. 1/5

उष्ण, तीक्ष्ण, सुक्ष्म, व्यवायी, विकाशी गुणधर्माच्या औषधी त्यांच्या उष्ण वीर्यामुळे धमन्यांमधून हृदयापर्यन्त जातात. त्यांच्या सुक्ष्म व स्थूल गुणांमुळे त्या सर्व स्रोतसांमध्ये पोहचतात आणि उष्णगुणांमुळे दोषांचे विलयन करत, तीक्ष्ण गुणाद्वारे छेदन करून दोषांना शाखांमधून आमाशयाकडे नेले जाते. त्यानंतर द्रव्याच्या उर्ध्वभाग प्रभावामुळे दोषांना (Metabolic waste) आमाशयातून मुखमार्गांनी बाहेर काढले जाते. वमन प्रक्रियेमध्ये वामक द्रव्यामुळे शरीरास होणारी कार्मुकता अशी आहे.

- (1) उष्णवीर्य - हृदयास उत्तेजीत करणे.
- (2) सुक्ष्मगुण - सुक्ष्म व अणूप्रवणभावाने सर्व शरीरांतील स्रोतसामध्ये पसरणे.
- (3) उष्ण गुण - उष्ण गुणामुळे दोषांचे विघ्नदन होते.
- (4) तीक्ष्ण गुण - तीक्ष्ण गुणामुळे दोषांचे छेदन होवून शाखेतून दोष कोष्ठात ओढले जातात.
- (5) अग्नि वायू - भूयिष्ठतेमुळे दोषांचे उर्ध्वगमन होते.
- (6) उर्ध्वभागहर प्रभावाने दोष उदानवायू च्या साहाय्याने मुखाद्वारे बाहेर फेकले जातात.

या सर्व क्रिया सोप्या होण्यासाठी पूर्वकर्मांमध्ये स्नेहन स्वेदन महत्त्वाचे कार्य करते. स्नेहन स्वेदनाने दोष क्लिन्न होऊन दोषांचे द्रवीकरण झालेले असते. दोषाचे शाखेतून कोष्ठाकडे मार्गक्रमणासाठी स्नेहन-स्वेदन महत्त्वाचे कार्य बजावतात.

वमनाचे मुख्य कार्य 'कफ' शोधन करणे आहे. त्यासाठीचे मुख्य अवयव आमाशय आहे. त्यामुळे आमाशयोत्भव व्याधीमध्ये व कफ प्रधान व्याधीमध्ये 'वमन' उपयुक्त आहे.

वमन कर्मनंतर केवळ कफाचेच नाहीतर पित्ताचेही शोधन होते. वमनानंतर जाठराग्नि प्रदीप्त होते त्यामुळे उत्तम 'आहाररस' व त्यायोगाने उत्तम रस धातुची निर्मिती होते. उत्तम रसधातुची निर्मिती झाल्याने उत्तरोत्तर धातुचीही निर्मिती उत्तम होते. त्यामुळे वमन 'रसायन' म्हणून कार्य करते. तसेच रसधातुचा उपधातु 'त्वचा' याचीही निर्मिती उत्तम होते. म्हणूनच वमन हे त्वक विकार, रक्त विकारात उत्तम कार्य करते.

Modern View: -

Emesis and nausea are protective reflexes which help to get rid of toxic substance and prevent their further absorption. The concept of emesis in a Ayurved is totally different from its use in western medicine. In Ayurveda its aim is removal of metabolic wastes (मलरूप दोष निःसारण) after their being brought to koshtha with the help of poorvakarma.

Vomiting is complex process involving 3 phases (1) Pre-ejection (2) retching (3) ejection. All these being accompanied by autonomous phenomenon such as salivation, shivering and vasomotor changes.

Vamana karma occurs at three different levels in this mechanism

- A Activation of emesis.
- B Stimulation of vomiting centre.
- C Actual motor response through motor nerves.

Activation of Emesis:

- Vomiting starts in the stomach or upper GIT when it is full of contents (Akanthapana during Vamana. It becomes over distended and over excitable)
- Reflex from gastric mucosa. This excited stage stimulates both Sympathetics & Vagal afferents.

Stimulating of Vomiting center:

- Administration of certain drugs (which have vamaka prabhava) may stimulate chemoreceptor trigger zone Bilateral vomiting centre in the medulla.
- Emesis is provoked by several psychic stimuli or by noxious thoughts.

Actual motor response through motor nerves:

- Automatic motor reactions motor impulses to be transmitted from vomiting centre to 5th, 7th, 9th, 10th, 12th cranial nerves & then towards upper GIT.
- Spinal nerves which further progress to diaphragm & abdominal muscles.

Pharmacological effect of vaman:

- Gastric Lavage
- Respiratory Decongestive Effect

- Stress Mechanism
- Increased Intracranial Blood Flow
- Medical Inflammation

Action of Vaman:

- Physical and mental stress is produced in the whole body during the act of vomiting.
- Vomiting produces inflammation and mucosal damage secondary to insult to gastric mucosa.

Stress & Cortisol:

- Any type of stress, whether physical or neurogenic, will cause an immediate and marked increase in ACTH secretion by the anterior pituitary gland, followed within minutes by greatly increased adrenocortical secretions of cortisol.
- Cortisol secreting helps to achieve immediate effect of blocking most of the factors that are promoting the inflammation.

Intracranial Blood Flow:

- During Vamana intracranial blood flow is increased.
- It may be returning with some waste materials to excrete.

Medical inflammation:

- A mild inflammation of the stomach mucosa.
- Increase the permeability of the capillaries of the stomach.
- Facilitated the absorption of the active principles of the drug.
- Active Secretion & excretion of the toxins and metabolites into the stomach.
- Toxins thrown out of the body by the process of vomiting.

Agnimandya after Vamana:

- After Vamana, the environments in the stomach got totally alkaline.
- Mucous secretions, bicarbonate flows and bile extraction.
- This ultimately hampers the pepsin activity.
- Pepsin activity is significantly diminished at pH4 and irreversibly inactivated and denatured at a pH of >7.
- Hence require Sansarjan kram.

वामकद्रव्य

मदनफल *Randia dumetorum*.

| | |
|---------------|---|
| गण | - वामक, फलिनी (च) उर्ध्वभागहर, आरग्वधादि, मुष्ककादि (सु) |
| कुल | - मंजिष्ठा कुल |
| Family | - Rubiaceae (Rubus Red) |
| Latin Name | - <i>Randia</i> - In memory of Issac Rand (Botanist), <i>Dumetorum</i> - of thorny bushes |
| Synonyms | - <i>Catelunaregum Spinosa</i> (thumb) |
| English Name | - Emetic Nut |
| संस्कृत | - मदन (च्छर्दन करणारा), पिण्ड, विषपुष्पक, पिंडितक, बस्तिशोधन, ग्रंथीफल |
| मराठी | - गेळफळ |
| परिचय | - हे वृक्ष 6 ते 20 फूट, तीक्ष्ण काटेदार, शाखा आडवी (Horizontal) पत्र - गर्द हिरवे, लंबगोलाकार 1 ½ ते 2 ¼ इंच लांब, 1 ते 1 ¼ इंच रूंद छोटे वृत्तयुक्त. पूष्प - पीत किंवा श्वेत 1 इंच व्यासाचे सुवासीत 5 दल युक्त. फल - नाशपाती सारखे, गोल, पीत 1.8 to 4.5 cm लांब, फलकाल - शीत ऋतु, फलफज्जा मधूर, तिक्त. फल फोडल्यास 4 भागात विभागले जाते. काळया रंगाच्या बीजास 'मदनफल पिप्पली' म्हणतात. |
| उत्पत्तीस्थान | - भारतात सर्वत्र, प्रामुख्याने जम्मू ते सिक्कीम, द.भारत, महाराष्ट्र (महाबळेश्वर जवळ) |

Chemical composition: -

* An iridoid glycoside from leaves [Sali *et al*, 1986].

Aucubin compound and naphthaquinone are obtained [Kirmani *et al*, 1984].

Saponin named as Dudumentoronin A, B, C, D, E, F from fruit pulp [Varshney *et al*, 1978]. A hemolytic triterpenoid saponin [Subramanyaniam *et al*, 1989]

Mannitol & lecoanthocynidin, glycoside Randioside A, Beta-D-galactopyranosyl (1-3)-oleanolic acid [Rastogi & Mehrotra, 1980].

गुणधर्म - गुण - लघु, रूक्ष, रस - मधूर, तिक्त, कषाय

विपाक - कटूवीर्य - उष्ण

प्रभाव - वामक

कर्म - कफवात शोधक व शामक, पित्तनिस्सारक (उष्ण गुणामुळे) वमनाद्वारे

कफाचे शोधन व विरेचनाने पित्ताचे शोधन होते. वातशमनाचे कार्य असल्यामुळे आस्थापन बस्तिमध्ये उपयोग केला जातो.

- पचन संस्थान** - मदनफल उत्तम वामक व व्यापदरहीत असल्याने शोधन चिकित्सेत सर्वश्रेष्ठ द्रव्य आहे. याचे कृमिघ्न असेही कार्य आहे.
- रक्तवह स्रोतस** - रक्तशोधक, शोथनाशक, कफ, पित्तानुबंधी शोथ व शोफ यात उपयोगी, दुष्टव्रणामध्ये उपयोगी.
- श्वासवहस्रोतस** - कफनिस्सारक, श्वास, कास, प्रतिश्याय यात उपयोगी
- आर्तवहस्रोतस** - कष्टार्तव, सकष्ट प्रसूती
- त्वक** - स्वेदजनन कार्य असल्याने त्वकरोगात उपयुक्त
- सात्मीकरण** - मदनफल कर्षण करणारे आहे त्यामुळे स्थौल्यामध्ये याचा उपयोग केला जातो.
- प्रयोज्य अंग** - फल, बीज (वमनार्थ)
- मात्रा** - चूर्ण 1 ते 3 ग्रॅम, क्वाथ 150 ते 300 मिली
- स्रोतोगामीत्व:**

दोष - कफ, पित्त शोधन, वातशमन **धातु** - रक्त, रसगामी
मल - कफ, मल निस्सारक **अवयव** - आमाशय

Some Researches -

- Anti Allergic** : It is used in Brochial Asthma, rhinitis, bronchitis, cold, cough, pain etc. The extract and its factions significantly inhibited leukocytosis and eosinophillia in blood in mice. [Kumar *et al*, 2011].
- Anti-Inflammatory** : The extract effectively and significantly reduced the carrageenin induced oedema in hind paw of the rats, significant reduction in granular tissue formation was recorded. Thus, extract shows anti-inflammatory activity at various acute phase of inflammation & on formation of granular tissue. [Ghose *et al*, 1983].
- Analgesic Activity** : Analgesic activity was tested in mice in each group by Acetic Acid induced writhing response and Hot plate response in mice 500 mg/kg methonolic extract of fruit R.dumetorum give analgesic activity in both models [Ghose *et al*, 1980].
- Immunomodulatory Activity** : The effect of R.dumetorum on cell mediated and humeral components of the immune system in mice were observed. Administration of chloroform fraction at dose 100 mg/kg produced statistically significant results as evidenced by increase in humoral antibody (HA) titre, delayed type

hypersensitivity (DTH) response. This fraction also enhanced the total WBC level in cyclophosphamide induced myelosuppression model. The result indicates that these fractions can stimulate the bone marrow activity. [Satpute *et al*, 2009]

कुटज *Holarrhena antidysentrica*

| | |
|----------------------|---|
| गण | - अर्शोघ्न, कंडूघ्न, स्तन्यशोधन, आस्थापनोपग, वमन (च) आरगवधादि, पिप्पल्यादि, हरीद्रादि, बृहत्यादि, लाक्षादि, उर्ध्वभागहर (सु.) |
| कुल | - कुटजकुल |
| Family | - Apocynaceae (Away from dog), poisonous to dog. |
| Latin name | - <i>Holarrhena</i> (Holos = whole, Arrhen = male) <i>Antidysentrica</i> = against dysentery |
| English Name | - Kurchi |
| संस्कृत नाव | - कुटज, शक्र, वत्सक, गिरीमल्लिका, यवफल, प्रविष्य |
| मराठी | - कुडा |
| परिचय | |
| श्वेतकुटज | - यास पु.कुटज (Male) म्हटले जाते. वृक्ष - 7-9 मीटर उंच, त्वक पाण्डूर किंवा भूरकट (Brownish) वर्णाचे. पत्र - 10-30 से.मी. लांब 3-5 से. मी. रुंद कदंब पानासारखे, नेहमी हरीत व चमकदार वर्णाचे, 10-16 जोड्यांमधे, सिरा उठावदार. पुष्प - श्वेत, सुगंधीत 2.5-3.75 से.मी. लांब, पुष्पकाल - वसंत पासून ग्रीष्म पर्यंत. फल - लांब, कठोर, 20-40 से.मी. लांब, तनु 2-2 एकत्र, फलकाल - वर्षारंभ. बीज - तिक्त रसात्मक |
| कृष्णकुटज | - (<i>Wrightia Tinctoria</i>) यास स्त्रीकुटज म्हटले जाते. मधूर रसात्मक, अनेक शाखायुक्त. वृक्ष - 10 ते 15 फूट उंच. पत्र - गर्द हिरवे 10 से. मी. लांब, 3.5 से.मी. रुंद, शुष्क झाल्यास कृष्णवर्णीय. पुष्प - श्वेत, श्वेतकुटजापेक्षा कमी सुगंधीत, गुच्छबद्ध 2.5-3.75 cm लांब, पुष्पकाल - वसंत ऋतु. फल - शेंग 2-2 एकत्र, फलकाल - शीत ऋतु |
| उत्पत्ती स्थान | - भारतात सर्वत्र, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य भारतात प्रामुख्याने आढळते. |
| संकलनकाल | - 8-12 वर्ष जूने वृक्षाचे, वर्षा ऋतूच्या मध्यात (जूलै ते सप्टेंबर), हिवाळयाच्या शेवटी. |
| Chemical composition | The bark and seeds contain steroidal alkaloid designated as - holadysterine, together with three known steroidal alkaloids conessine, isoconessinine and Kurchessine [Neeray kumar <i>et al</i> , 2007] |

| | | |
|----------------|--|---------------------------------|
| गुणधर्म | - गुण - रूक्ष विपाक - कटू | रस - तिक्त, कषाय वीर्य - शीत |
| कर्म | - रूक्ष, तिक्त, कषाय व शीत असल्यामुळे कफ पित्तशामक. | |
| पचन संस्थान | - वातशामक, दीपन, शोधन, पित्तसारक, अतिसार व प्रवाहिकात उपयोगी. | |
| रक्तवह संस्थान | - रक्तस्रावजन्य व्याधी, उच्च रक्तदाबाच्या (Hypertension) रुग्णांमध्ये वमन करतांना उपयोगी | |
| प्रजनन संस्थान | - योनीगत पेशीचे बल वर्धन करण्यासाठी | |
| ज्वर | - ज्वरघ्न (ज्वरानंतर वमन करण्यासाठी उपयुक्त) | |
| त्वक | - कुष्ठघ्न, रक्तदोषनाशक, दाहनाशक | |
| सात्मीकरण | - दौर्बल्यात उपयोगी | |
| प्रयोज्यांग | - बीज, त्वक | |
| स्रोतोगामीत्वः | | |

दोष - कफ व पित्त

धातु - रक्त

मल - पुरीष संग्राही

अवयव - ग्रहणी, आमाशय, पक्वाशय

Some Researches:-

- *H. antidysenterica* used in dysentery, dropsy, fever, diarrhea and intestinal worm infestation. It has antioxidant property. [The in vitro antioxidant activity and total phenolic content of four Indian Medicinal plants, Maryam Zahin *et al*, IIPPS, Vol. 1, I, 2009].
- The study was undertaken to evaluate the hypoglycemic effect of *Holarrhena antidysenterica* (MEHD) in normal (Normoglycemic) and in streptozotocin (STZ) induced diabetic wistar rats. Oral administration of MEHD (250 mg/kg) for 18 days resulted in decrease in blood glucose level. In addition, oral administration of MEHD significantly decreased serum total cholesterol, triglyceride level and at the same time markedly increased liver glycogen, providing the potent antidiabetic property. [Hypoglycemic effect of *Holarrhena antidysenterica* seeds on streptozotocin induced diabetic rats, Supriya Mana *et al*, IJPRIF, Vol.2, PP.1325-1329, April-June 2010].
- Chloroform extract of *H. antidysenterica* significantly reduced parasitemia in *P.berghei* infected mice. In vitro it showed antiplasmodial activity. [Antimalarial activity of *H. dysenterica* and *V. conescens* plants traditionally used against malaria in the Garhwal region of north-west Himalaya, Gaurav Verma *et al*, Malaria Journal, 2011, 10:20].
- The crude methanolic extract of *H. antidysenterica* bark was tested for its effect on BP in normotensive anaesthetized rats and was found hypotensive at 30 mg/kg dose. It was subjected to a bioactivity directed separation as described in the experimental ultimately leading to isolation of two new steroidal alkaloids namely pubescinine and

kurcheinine possessing hypotensive activity. [Studies on the chemical constituents of *Halarrhena antidysentrica*, Sahid Bade USmani, Ph.D. Thesis, 1995, PP-143].

मधुयष्टी : *Glycyrrhiza glabra* linn.

| | |
|----------------------|--|
| गण | - कण्ठय, जीवनीय, संधानीय, वर्ण्य, कंडूघ्न, मूत्रविरजनीय, शोणितस्थापन, च्छर्दिघ्न, स्नेहापग, वमनोपग, आस्थापनोपग (च) काकोल्यादि, सारिवादी, अंजनादि (सू.) |
| कुल | - शिम्बी |
| Family | - Leguminoceae (legumen pulse pod) |
| Latin Name | - <i>Glycyrrhiza</i> (glykas = sweet, Rhiza = root) <i>Glabra</i> - smooth and hairless |
| English Name | - Liquorice |
| संस्कृत | - यष्टीमधू, मधूका, यष्टी, अतीरसा, जलजा, मधूपर्णी, सौम्या |
| मराठी | - जेष्ठमध |
| परीचय | - बहूवर्षायू क्षुप, 1 ते 1.5 मीटर उंच, मुल लांब तांबूसपीत, पत्र - संयुक्त, अंडाकार, पृष्प - गुलाबी वर्णाचे, मंजरीयुक्त, ग्रीष्म ऋतुत, शेंग - एक इंच लांब, चपटी, 2-5 चौकोनाकार बीजयुक्त, वर्षा ऋतुत |
| जाती | - 2 प्रकार - (1) स्थलज (Terrestrial) (2) जलज (Aquatic) - यास मधूपर्णी, मधूलिका म्हणतात. |
| स्थलज 3 प्रकारची- | (1) इजिप्तची, (2) अरेबीक, (3) तुर्केची क्रमाने यांची मधुरत्व कमी होत जाते. |
| उत्पत्तीस्थान | - इजिप्त, अरब, तुर्के, इराण, अफगाणिस्थान, मध्य आशिया, द.युरोप, चीन, आजकाल पंजाब, सिंधप्रात येथेही लागवड केली जाते. |
| भेसळ | - लालगुंजा मधुयष्टी म्हणून विकली जाते. |
| Chemical composition | The main constituents are glycyrrhizin, potassium, calcium salts, glycyrrhithinic acid flavonoid rich fractions include liquirtin, isoliquertin, liquiritigenin and rhamnoliquirilin. |
| गुणधर्म | - गुण - गुरू, स्निग्ध रस - मधूर, विपाक - मधूर वीर्य - शीत |
| कर्म | - गुरू व स्निग्ध असल्याने वातशामक आणि मधूर असल्याने पित्तशामक. |
| नाडीसंस्थान | - वातव्याधीमध्ये उपयोगी शिरोरोग व बुद्धीवर्धनासाठी उपयोगी. |
| पाचनसंस्थान | - कमी मात्रेत च्छर्दिमध्ये उपयोगी, अधिक मात्रेत वामक म्हणून उपयोगी, अनुलोमक अम्ल पित्तशामक, उदरशूल. |
| रक्तवह संस्थान | - रक्ताल्पता, रक्तशोधक, रक्तदोषांमध्ये उपयुक्त, शोणितस्थापन. |

श्वसनवह संस्थान - श्वास, कास, स्वरभेद, राजयक्ष्मा यात उपयोगी, कफ सुखकर बाहेर काढण्यासाठी, कासवेग कमी करून रोगीबल वाढवण्यासाठी उपयोगी, संधानीय असल्याने उरोगत व्रण, क्षत इत्यादीसाठी उपयोगी.

मूत्रवह संस्थान - मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह व पैतिक प्रमेहात उपयुक्त, शीत असल्याने मूत्रल.

प्रजनन संस्थान - वाजीकरणार्थ उपयोगी, शुक्राणूंची संख्या वाढविणारा

त्वचा - जीर्ण ज्वरामध्ये वर्ण्य, कंडूघ्न

सात्मीकरण - जीवनीय (रक्तगामी), संधानीय (मांस), रसायन (सर्वधातुगामी) सामान्य दौर्बल्यासाठी उपयोगी.

प्रयोज्यांग - मूल

स्रोतोगामीत्व:

दोष - पित्तघ्न, वातघ्न

धातु - शुक्र, रक्त, मज्जा, रसायनी

मल - मूत्रगामी, केशवर्धक

अवयव - नेत्र

Some Researches:-

- The study was carried out to elucidate the effect of oral administration of *G. glabra* root extract. Result showed the extract significant increase in body weight gain, the extract caused significant decreases in total cholesterol and triglycerides associated with non significant reduction in HDLc, LDLc and VLDLc concentration in serum. The extract produced significant decreases in the levels of serum liver enzymes (AST, ALT) and urea nitrogen. Result also showed that the extract induced marked anti-inflammatory and antiulcer effects [Shalaby M.A. *et al*, Some effects of *G. glabra* roots extract on male rats, E JNT, Vol 1:83-94, 2004].
- Licochalcone, A, a flavonoid found in licorice root, is known for its antimicrobial activity and its reported ability to inhibit cancer cell proliferation. The data indicate that 5 micro M. licochalcone-A- inhibited platelet derived growth factor (PDGF) induced rat vascular smooth muscle cell proliferation, possibly through its ability to block the progression of the cell cycle from G1 to S phase. [Antiproliferative effect of licochalcone A on vascular smooth muscles cells. Park JH *et al*]
- Glabridin was isolated from the roots of *G. glabra* and its effect on cognitive functions and cholinesterase activated activity were investigated. The higher dose of glabridin and piracetam significantly antagonized the amnesia. Further more, glabridin and metrifonate used as a standard drug, both remarkably reduced the brain cholinesterase activity. Therefore, glabridin appears to be promising candidate for memory improvement and will helpful for the management of Alzheimer patients. [Cui YM *et al*, effect of glabridin from *G. glabra* on learning and memory in mice, PMID-18484526]
- Randomized controlled trials confirmed that the *G. glabra* derived compound

glucyrrhizin and its derivatives reduced hepatocellular damage in chronic hepatitis B and C. In hepatitis C virus induced cirrhosis the risk of hepatocellular carcinoma was reduced. Animal studies demonstrated a reduction of mortality and viral activity in herpes simplex virus, encephalitis and influenza. In vitro studies revealed antiviral activity against HIV-1, SARS related coronavirus, respiratory syncytial virus, arbovirus, vaccinia virus and vesicular stomatitis virus. [Fiore C *et al*, Antiviral effect of Glycyrrhize species, PMID-17886224]

- The hypocholesterolaemic and antioxidant effect of *G.glabra* root powder were examined in hypercholesterolaemic rats resulted in significant reduction in plasma hepatic total lipids, cholesterol, triglycerides and plasma low density lipoprotein and VLDL cholesterol accompanied by significant increase in HDL Cholesterol levels. Furthermore, significant increases in fecal cholesterol, neutral sterols and bile acid secretion along with an increase in hepatic HMG-CoA reductase activity and bile acid production were observed. Thus the hypocholesterolaemic and anti-oxidant effect appeared to be mediated via (1) Accelerated cholesterol, neutral sterol and bile acid production, (2) Improving the activities of hepatic super oxide dismutase (SOD), catalase and increasing ascorbic acid content. [Visavadiya NP, Narsimhacharya AV, Hypocholesterolaemic and antioxidant effect of *G.glabra* (Linn) in rats, PMID-17054099]

वचा *Acorus calamus* linn

| | |
|---------------|--|
| गण | - विरेचन, लेखनीय, अर्शोघ्न, तृप्तीघ्न, आस्थापनोपग, शीतप्रशामन, संज्ञास्थापन, शिरोविरेचन (च) पिपल्यादि, वचादि, मुस्तादि, वमन (सु.) |
| कुल | - सुरण कुल |
| Family | - Araceae |
| Latin Name | - Acorus, A = Private, marked by loss, Kore = Pupil of the eye (eye trouble), Calamos = Kalamos (Gk) a reed (water plant) |
| English | - Sweet flag |
| संस्कृत | - वचा (शब्द संग्रह शक्ती वाढवणारी), उग्रगंधा, षड्ग्रंथा, गोलोमी (गायीच्या केसांसारखी) |
| मराठी | - वेखंड |
| परीचय | - सदाहरीत क्षुप प्राधान्यतः जलप्राय भूमीत उगवणारे. उंच वाढणारे कंद वर्गातील वनस्पती, उंची 150 सेमी, रूंदी मध्यमा अंगुली एवढी 5-6 पर्व असलेला कंद. पत्र- 3-6 इंच लांब, हरितवर्णाचे, रूंदी 2/3 - 1 ^{1/4} इंच. पुष्प - 3-4 इंच लांब, किंचित वक्र |
| उत्पत्तीस्थान | - भारतात सर्वत्र, ब्रम्हदेश, श्रीलंका, काश्मीर, मणिपूर व नागालँड येथे प्रामुख्याने आढळते. |

**Chemical
composition**

Rhizome bark has 1.5 to 3.5% volatile oil which contains asaryaldehyde, acorine, acoetine (Choline), calamine (useful in dysentery), starch, tannin. It also contains free formal heptylic and palmitic acid, eugenol, esters of acetic and palmitic acid, comphene, sesqui-terpene, calamine and a small quantity of phenol, eugenol, methyl eugenol, cilamenenol, calameone.

The chief constituents are heavily dependent upon the chemical strain (di, tri, tetraploid), beta-asorane (cis-isoasorone), α & δ - asarone, β - gurjuns, acoron (bitter), Z-Deca-4, 7-dienal.

गुणधर्म

- गुण - लघू, तीक्ष्ण रस - कटु, तिक्त
- विपाक - कटु वीर्य - उष्ण
- प्रभाव - मेध्य

कर्म

- कटु व उष्ण असल्यामुळे कफवातशामक व पित्तवर्धक

नाडीसंस्थान

- वेदनास्थापक, मेध्य, आक्षेपशमन, तीक्ष्ण असल्यामुळे आवरण काढणारे व संज्ञानाश दूर करणारे, त्यामुळे उन्माद, अपस्मार इ. मानसरोगात उपयुक्त.

पाचन संस्थान

- दीपन, तृप्तिघ्न, कृमीघ्न शूलप्रशमन, वामक व अनुलोमक त्यामुळे विबंध, अग्निमांद्र, आमाजीर्णामध्ये वमन करण्यासाठी उपयोगी.

रक्तवह संस्थान

- हृदयगती कमी करणारा, रक्तदाब कमी करण्यासाठी उपयुक्त.

श्वसन संस्थान

- कफवातशामक असल्याने कास व श्वासहर, कण्ठय

मूत्रवह संस्थान

- मूत्रजनन कार्य

प्रजनन संस्थान

- गर्भाशयावर संकोचक क्रिया, कष्टार्तव यात उपयोगी कफाचे आवरण नष्ट करणारी वनस्पती. त्वचा उष्ण असल्याने स्वेदजनक

सात्मीकरण

- लेखन करणारा आहे व धातुंना क्षीण करणारा, त्यामुळे स्थौल्यामध्ये उपयोगी, रसायन कार्य करणारे.

प्रयोज्यांग

- मुल

स्रोतोगामीत्वः

दोष - वातघ्न, कफघ्न

धातु - मज्जा (Brain)

मल - पुरीष (Antihelmintic), मूत्र मनोवहस्रोतस - उन्माद, अपस्मार

अवयव - आमाशय, हृदय

Some researches: -

- Calamus is aromatic, bitter stomachic which stimulates appetite and digestion. It has sponolytic, carminative and sedative effects. The roots are stimulant, emetic, expectorant and nervine sedative. This drug is useful for rheumatism, gastritis.
- Acorus calamus has been observed to attenuate CCI induced behavioural, biochemical as well as histopathological changes. Calamus is reported to exert battery of beneficial effects in various ailments viz. epilepsy, memory deficits, rheumatic pain, neuralgia. Ethanolic extract of AC has been reported to exert anticellular immunosuppression along with inhibition of nitric oxide, interleukin-2 and tumour necrosis factor - α - production and blocking of voltage activated Ca-channel. AC has antioxidative, anti-inflammatory and neuroprotective action [A. Muthuraman, Nirmal Singh, Attenuating effect of AC extract in chronic constructive injury induced neuropathic pain in rats; an evidence of antioxidative, anti inflammatory neuoprotection & Ca-inhibiting effects]
- The aqueous & ethanol extracts of *Acorus calamus* was valuated for antibacterial activity against clinically important bacteria viz. *B.subtilis*, *S.aureus*, *E.coli*, *proteus neirabilis*, *pseudomonas aeruginosa*. In vitro, ethonolic extracts was total inactive against gram negative bacterial strains (*E.coli*, *mirabilis* and *P.aeruginosa*) and showed moderate antibacterial activity against gram positive bacteria *B.subtilis* and *stap aureus*. [Shrikumar *et al*, In-vitro antibacterial activity of aqueous and ethanolic extracts of *Acorus calamus*, JABPT, Vol-1-3, 2010].
- The bioactive F-3 Fraction demonstrated its cholesterol reducing effect by increasing fecal cholesterol excretion and decreasing cholesterol biosynthesis in the liver. Additionally, the effects on fibrinogen level and free radicals indicated that the bioactive-F-3 fraction could have potential beneficial effect in atherosclerosis associated with hyperlipidemia. [D'souza TB *et al*, Efficacy study of the bioactive fraction (F3) of *A.calamus* in hyperlipidemia, 1 JP, Vol. 39-4, 2007, PP 196-2000]

निम्ब *Azadirachta Indica* Linn

| | |
|--------------|---|
| गण | - कंडूघ्न, वमन, तिक्ततस्कंध (च) आरग्वधादि, गुडूच्यादि, लाक्षादि (सु) |
| कुल | - निम्ब; |
| Family | - Meliaceae (Meli-Honey) |
| Latin Name | - <i>Azadiracta</i> (best great tree), <i>indica</i> (from India) |
| English Name | - Margosa tree |
| संस्कृत | - निम्ब, पिचूमर्द (पिचू-कुष्ठ), हिंगुनिर्यास, सर्वतोभद्र, सुभद्रा |
| मराठी | - कडूनिम्ब |
| परिचय | - वृक्ष 8-10 मीटर उंच, त्वक् जाड, खरखरीत, निर्यास निघत असतो. पत्र - विषमपक्षवत, नेत्राकार, 6-14 जोडयांमध्ये, दंतूरीत, हिवाळयात गळती, वसंतात |

| | |
|-----------------------------|---|
| | पालवी. पुष्प - लहान, श्वेतवर्णाचे, मंजरीरूपाने वसंतामध्ये पालवी. फल - हरीत, पिकल्यानंतर पीत वर्णाचे वर्षा ऋतुमध्ये |
| उत्पत्तीस्थान | - भारतात सर्वत्र |
| Chemical composition | Bark contains a bitter resin called margosin. It also contains volatile oil, gum, white 40% stable and traces of sulphur. It contains quercetin and β -sitosterol glucocides. |
| गुणधर्म | - गुण - लघू रस - तिक्त, कषाय विपाक - कटू वीर्य - शीत |
| कर्म | - तिक्त रसात्मक असल्याने कफशामक व पित्तशामक. |
| पचनसंस्थान | - तिक्त कषाय असल्याने रोचक, ग्राही, कृमिघ्न व यकृत उत्तेजक, कामला, अरूचि अम्लपित्त यामध्ये उपयोगी. |
| श्वासवहसंस्थान | - तिक्त असल्याने कासघ्न, पत्र कफोत्क्लेश अधिक होत असल्यास त्वक क्वाथ जीर्ण कासासाठी. |
| रक्तवहसंस्थान | - रक्तविकारजन्य शोथ, त्वक विकारामध्ये, दाहप्रशामन |
| मूत्रवहस्रोतस | - प्रमेहामध्ये |
| प्रजननसंस्थान | - बीज गर्भाशय उत्तेजक, कष्टार्तव |
| सात्मीकरण | - नवपत्र बल्यकर, स्थौल्यरोगात उत्तम रसायन, |
| ज्वर | - ज्वरघ्न, आमपाचक, कफज्वर, Malarial fever. |
| प्रयोज्यांग | - त्वक, पत्र, पुष्प, तैल |
| स्त्रोतोगामीत्वः | दोष - कफघ्न, पित्तघ्न, वातवर्धक धातु - रक्त, मेद, पत्र - शुक्र मल - मूत्र (कमी करणे), पूरीष (बद्धता करणे) अवयव - आमाशय, नेत्र |

Some Researches:-

- * Aqueous extract of leaves decreased blood sugar level and prevented adrenaline as well as glucose hyperglycemia. Fractions of acetone extract showed CNS depressant, positive inotropic and blood lowering activities. It is found effective against intestinal worms. It also works as antineoplastic and antiviral.



5

विरेचन (Purgation Therapy)

निरूक्तिः वि+रिच+णिच्-ल्यूट्

मलादे निस्सरणमे। विशेषे रेच यती इति।। (वाचस्पत्यम्).

मुळ रिच धातुला णिच् किंवा ल्यूट् प्रत्यय लागल्याने विरेचन शब्द (न. लिंग) तयार होतो. याचा अर्थ मल निर्हरण असा आहे.

व्याख्या:

तत्र दोष हरणं अधोभागं विरेचन संज्ञकम्।

उभयं वा शरीर मल विरेचनात् विरेचन संज्ञां लभते।। च.क. 1/4

अधो गुदेन दोष निर्हरणं भजत् इत्यधोभागम् (चक्रपाणि च.क. 1/4)

दोषांना अधोमार्गाद्वारे अर्थात गुदमार्गाने काढण्याची क्रिया म्हणजे विरेचन होय. गंगाधर यांचे मते दोषांना बाहेर काढण्याच्या प्रक्रियेला विरेचन असेच म्हटले आहे. परंतु व्यवहारामध्ये विरेचन म्हणजे गुदमार्गाद्वारे दोषांचे शोधन हेच मानले जाते. विरेचनाला 'प्रस्कंदन' असेही म्हटले जाते. (च.सू. 13/81)

सामान्य परिचय:

आंत्र हे शरीराची 'Sewer system' आहे ही व्यवस्थित ठेवली नाही किंवा वेळचेवेळी योग्य चिकित्सा केली नाही तर आंत्रात हळुहळू विषतत्व (Toxins) वाढत जातील व ते पुन्हा शरीरात शोषले जावून रक्ताच्या मुख्यप्रवाहात येऊ शकतील. या कारणाने कितीतरी व्याधी निर्माण होण्याची शक्यता असते. त्यामुळे त्यांना वेळेतच बाहेर काढण्याची आवश्यकता आहे. 'वमन' कर्मानंतर संशोधनाची दुसरी क्रिया विरेचन आहे. ज्या प्रमाणे 'वमन' कफ प्राधान्यामध्ये उपयुक्त आहे त्याचप्रमाणे 'विरेचन' हे कर्म पित्त प्राधान्य व्याधीची प्रमुख शोधन चिकित्सा आहे. विरेचन कर्म केवळ पित्तासाठीच नाही तर कफ संसृष्ट, पित्तस्थानगत कफ व रक्तदुष्टीसाठी महत्त्वाची चिकित्सा आहे. पित्ताचे स्थान व कफाचे स्थान आमाशयच असल्याने शोधनकर्मासाठी गोंधळून जाण्याची गरज नाही. अवस्थानुरूप दोषांचे प्राबल्य बघून वमन किंवा विरेचनाची निवड करावी.

विरेचन हे कफ व पित्तासोबत वात चिकित्सेसाठीही प्रशस्त कर्म आहे. विरेचन कर्म रुग्णांसाठी व चिकित्सकांसाठीही वमनापेक्षा कमी तणावाचे असल्याने अधिक लोकप्रिय आहे. उपद्रवही कमी आहेत, झाले तरी सहजतेने हाताळता येणारे आहेत. त्यामुळे वैद्यक वर्ग वमनापेक्षा विरेचनाला अधिक पसंती देतो.

पित्त हे अग्निशी संबंधीत आहे ज्यामुळे शरीरात होणारे पचन व धातुगत होणारे पचन (Digestive and Metabolic process) एकमेकांवर अवलंबून आहे. या न्यायाने विरेचन हे यासाठीच महत्त्वाचे उपक्रम आहे.

विरेचनाचे महत्त्व व उपयोगिता (Importance and Utility)

- (1) विरेचन कर्म हे पित्त प्रधान व्याधीची प्रमुख संशोधन चिकित्सा आहे.
- (2) पित्त प्रधान दोषांसोबतच कफ संसृष्ट व पित्त स्थानगत कफाचे शोधन करण्यासाठी (अ.सं.सू. 27)
- (3) विरेचन कर्मणि अग्निदीप्ती होते त्यामुळे अग्निमाद्यांने होणाऱ्या व्याधिंमध्ये विरेचन कर्म उपयोगी आहे. सोबतच विरेचनामुळे बुध्दिवर्धक, इन्द्रियशक्तिवर्धक तथा धातुस्थिरत्व कार्य घडते. (सु.चि. 33/27) विरेचनाच्या या कार्यामुळे वृध्दजन्म विकारातही विरेचन कर्म उपयुक्त ठरेल.
- (4) वातस्योपक्रमः स्नेहः स्वेद संशोधनं मृदु।। अ.ह.सू. 13/1
व्याधीच्या संख्येचा विचार करता 80 प्रकारच्या वातव्याधींचे वर्णन आहे. वातव्याधीच्या चिकित्सेमध्ये स्नेहन, स्वेदना सोबतच मृदू विरेचनाचा उपदेश आहे. यावरून विरेचनाची महत्ता स्पष्ट होते.
- (5) पित्त हे रक्ताच्या आश्रयाने असते. रक्तदुष्टीची चिकित्सा पित्तदुष्टी चिकित्से सारखी असल्याने रक्तदुष्टीमध्येही विरेचन कर्म महत्त्वाचे मानले जाते.
- (6) त्वक् विकारांमध्ये पित्त व रक्त दुष्टीची चिकित्सा करतांना प्रथम विरेचन आवश्यक आहे. चिकित्सा विरेचन कर्मणि वर्णप्रसादनाचे कार्य होते. (च.सू. 15/22)
- (7) शीत ऋतू पित्ताचा प्रकोप काल आहे त्यामुळे ऋतुनुसार संशोधन करतांना शरद ऋतुमध्ये विरेचनाचे विशेष महत्त्व आहे. प्रत्यक्षात याकाळात त्वक् विकारांचाही सुमार असतो उदा. सोरियासिस रुग्णाच्या व्याधीची वृध्दी, शीतपित्त इत्यादी.
- (8) उदर रोगामधे नित्य विरेचनाचे महत्त्व आहे. (च.चि. 13/61)
- (9) प्रतिमार्ग च हरणं रक्तपित्ते विधीयते। (च.नि. 2/19) या न्यायाने उर्ध्वग दोषांना गति विरूध्द चिकित्सांमध्ये विरेचन उपयुक्त ठरते.
- (10) रसायन कर्म करण्यापूर्वी शरीराची शुद्धी होणे आवश्यक असते. त्यामुळे रसायन चिकित्सेपूर्वी वमन केल्यानंतर 'विरेचन' केले जाते ज्यामुळे स्रोतोगत संशोधन होवून धात्वाग्नि प्रदीप्त होतात व उत्तम धातुंची निर्मिती केली जाते. संशोधनाने धातुंना स्थिरत्व येवून इंद्रियांना बल मिळते. (अ.ह.सू. 18/58)

भेद : (Classification)

- I) विरेचन द्रव्यांच्या कार्यशक्तीचा तरतम विचार करता विरेचनाचे खालील प्रकार पाडता येतील.
 - 1) मृदूविरेचन - अल्प शोधन केले जाते त्यास मृदूविरेचन म्हणतात. उदा. अमलतास. मृदूविरेचनाचा उपयोग वातानुलोमन करण्यासाठी केले जाते.
"चतुरङ्गुलो मृदूविरेचनानां।" (च.स. 25/40)
 - 2) मध्यम विरेचन - मध्यम शोधनासाठी उपयुक्त. हे सुख विरेचन आहे. उदा. निशोथ.

ज्वर, रक्तपित्त इ. व्याधींसाठी मध्यम प्रकारची शुद्धी केली जाते त्यावेळी या द्रव्यांचा उपयोग केला जातो. त्रिवृत्तसुखविरेचनानां। च.सू. 25/40

3) तीक्ष्ण विरेचन -- उत्तम शोधनासाठी, तीव्र द्रव्यांद्वारे शोधन करणे. उदा. स्नुहीक्षीर, उदररोग, कुष्ठ इ. व्याधींमध्ये तीक्ष्ण विरेचन अपेक्षित असते त्यावेळी या द्रव्यांचा उपयोग केला जातो.

II) या व्यतिरिक्त विरेचनाचे आणखी द्रव्यांच्या गुणधर्मानुसार व रुग्ण सिध्दानुसार खालील प्रकार आहेत.

1) स्निग्ध विरेचन - रुग्णास स्नेहपान करून स्निग्ध केल्यानंतर विरेचन करण्यास स्निग्ध विरेचन म्हणतात. या क्रियेत आभ्यंतर स्नेहनाने दोषांना उत्कलेषित करून कोष्ठात आणले जाते व ते अधोमागनि निर्हरण केले जाते.

स्निग्ध विरेचनाचा दुसरा अर्थ स्निग्ध गुण युक्त द्रव्याने विरेचन करणे असा होय. उदा. एरण्ड तैलाने विरेचन, तिल्वक, आरग्वध, पक्वाशयगतवातामध्ये प्रयुक्त.

2) रूक्ष विरेचन - 'रूक्ष विरेचन' याचा अर्थ रूक्ष गुण युक्त द्रव्याने विरेचन करणे असा आहे. तसेच कोणतेही पूर्वकर्म न करता अर्थात स्नेहपान न करता विरेचन करणे म्हणजे रूक्ष विरेचन होय. उदा. विसर्प, शोथ, कामला या व्याधींमध्ये स्नेहन निषेध आहे. त्यामुळे अशा अवस्थेत रूक्ष विरेचन केले जाते. उदा. हरितकी, दंती, कुटकी. स्नेहोक्लिष्ट रुग्णामध्ये रूक्ष विरेचन केले जाते.

विसर्प पिडका शोफ कामला पांडुरोगिणः।

अभिघात विषाताश्च नाति स्निग्धान विरेचयेत्॥

च.सि. 6/8

नातिस्निग्ध शरीराय द्यातस्नेह विरेचनम्।

स्नेहोक्लिष्ट शरीराय रूक्षं दद्यात् विरेचनम्॥

च.सि. 6/9

III) विरेचन द्रव्यांच्या कर्मानुसार खालील 4 प्रकारचे भेद आहेत.

1) अनुलोमन - ज्या औषधी मलांना पक्व करून, त्यांचे बंध तोडून मलांस अधोमागनि बाहेर काढते त्यास अनुलोमन म्हणतात. उदा. हरीतकी.

कृत्वापाकं मलानांच भित्वा बंधमधोनयेत्।

तच्चानुलोमनं ज्ञेयं प्रोक्ता हरीतकी॥

भा.प्र.

2) संसन - ज्या औषधी कोष्ठात श्लिष्ट (चिकटलेल्या) मलांस पाक न करताच अधोमागनि बाहेर काढते त्यास 'संसन' म्हणतात. उदा. अमलतास

पक्ततव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम्।

नयत्यधः संसनं तद यथा स्यात् कृतमालकम्॥

शा.पू.खं. 4/4

3) भेदन - ज्या औषधीद्वारे बद्धमल किंवा अबद्ध मलाचे भेदन करून त्यास अधोमागनि बाहेर काढले जाते त्यास 'भेदन' म्हणतात. उदा. कुटकी

मलादिकमबद्धं यद् बद्धं वा पिण्डितं मलैः।

भित्वाऽधः पातयति भेदनं कटुकी यथा।।

शा.पू.खं. 4/5

- 4) रेचन - ज्या औषधी पक्व किंवा अपक्व मलास द्रवरूप करून अधोमागनि बाहेर काढतात त्यास 'रेचन' म्हणतात. उदा. निशोथ.

विपक्वंयदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत्।

रेचयत्यपि तज्ज्ञेचं रेचनं त्रिवृत्तायथा।।

शा.पू.खं. 4/6

विरेचक द्रव्य व त्यांचे सामान्य गुणधर्म (General properties)

विरेचन करणारे द्रव्य त्यांच्या विशेष प्रभावाने कार्य करतात. वामक द्रव्यांचे गुण व विरेचक द्रव्यांचे गुण एकसारखेच आहे. उष्ण, तीक्ष्ण, सुक्ष्म, व्यवायी, विकासी या गुणांमुळे विरेचक द्रव्य शोधनाचे कार्य करतात. या गुणांचे वर्णन 'वमन' प्रकरणात केलेलाच आहे. यासोबत एक महत्त्वाचा गुण असतो तो प्रभाव.

प्रभाव हा विरेचक द्रव्याचा स्वभाव आहे. जल व पृथ्वी महाभूत प्राधान्य असलेले हे द्रव्य अधोगुण भूयिष्ट असल्याने दोषांना अधःभागी नेण्याचे सामर्थ्य ठेवतात. याचा अर्थ प्रत्येक पृथ्वी व जल महाभूत प्राधान्याचे द्रव्य 'विरेचक' असतीलच असे नाही. विरेचन करणे ह्या त्या द्रव्याचा प्रभाव आहे.

विरेचक द्रव्यः

आचार्य चरकोक्त द्रव्यः

- 1) मुलिनी द्रव्य - या द्रव्यांचे मूलांचा प्रयोग केला जातो. (च.सू. 1/78-80)

| | |
|---------------------|---------------|
| (1) हस्तिदन्ती | (7) इंद्रायण |
| (2) शामा त्रिवृत्त | (8) विषाणिका |
| (3) श्वेत त्रिवृत्त | (9) आवर्तकी |
| (4) त्रिधारा | (10) अजगंधा |
| (5) सप्तला | (11) द्रवन्ती |
| (6) दन्ती | |

- 2) फलिनी द्रव्य - या द्रव्यांचे फला चा उपयोग केला जातो. (च.सू. 1/82-87)

| | |
|----------------------------------|---------------------|
| (1) शंखिनी | (6) उदकीर्या (करंज) |
| (2) विडंग | (7) अभया |
| (3) आनुपकलीतक (जलज मधुयष्टी) | (8) अंतःकोटरपुष्पी |
| (4) स्थलज कलीतक (स्थलज मधुयष्टी) | (9) कंपिल्लक |
| (5) प्रकीर्या (करंज) | (10) आरग्वध |

- 3) लवण - (च.सू. 1/90-92)
 (1) सौवर्चल (2) सैधव (3) विडलवण इ.
- 4) क्षीरीद्रव्य - (च.सू. 1/115)
 (1) स्नुहीक्षीर (2) अर्कक्षीर
- 5) पक्वाशयगत दोषांमध्ये विरेचनार्थं द्रव्य - (च.सू. 2/9-10)
 (1) त्रिवृत् (9) क्षीरिणी (दुग्धिका)
 (2) कम्पिल्लक (10) उदकीर्या
 (3) त्रिफला (11) पीलू
 (4) दन्ती (12) आरग्वध
 (5) नीलिनी (13) द्राक्षा
 (6) सप्तला (14) निचुल
 (7) वचा (15) द्रवन्ती
 (8) गवाक्षी
- 6) भेदनीय महाकषाय - (च.सू. 4/4)
 (1) त्रिवृत् (6) चित्रक
 (2) अर्क (7) करंज
 (3) एरण्ड (8) स्वर्णक्षीरी
 (4) लांगली (9) शंखिनी (यवतिकता)
 (5) दन्ती (चित्रा) (10) कटुकी
- 7) विरेचनोपग महाकषाय - (च.सू. 4/24)
 (1) द्राक्षा (6) विभीतक
 (2) अभया (7) कुवल (बदर भेद)
 (3) गम्भारी (8) बदर (बोर)
 (4) फालसा (9) कर्कन्धू (बदर भेद)
 (5) आमलकी (10) पीलू
- 8) पुरीष विरजनीय - (च.सू. 4/32) पुरीषामध्ये राहणाऱ्या दोषांना काढण्याचे कार्य
 (1) जांभूळ (6) श्रीवेष्टक
 (2) शल्लकी (7) भृष्टामृत (भाजलेली माती)
 (3) त्वक् (8) पयस्या

- | | |
|--------------|--------------|
| (4) दुरालभा | (9) नीलोत्पल |
| (5) यष्टीमधू | (10) तिल |

आचार्य सुश्रुतोक्त विरेचन द्रव्य - (सु.सू. 39/4)

- | | | |
|-------------------------------|------------------|------------------|
| (1) त्रिवृत्त | (6) इंद्रायण | (11) काश |
| (2) शामा (कृष्णमूल त्रिवृत्त) | (7) वृध्ददारू | (12) चित्रक |
| (3) दन्ती | (8) मेषश्रृंगी | (13) एरण्ड |
| (4) द्रवन्ती | (9) स्वर्णक्षीरी | (14) त्रिफला |
| (5) सप्तला | (10) कुश | (15) ज्योतिष्मती |

आचार्य वाग्भटोक्त - (अ.ह.सू. 15/2)

- | | | |
|------------------------|------------------|----------------|
| (1) निकुम्भ (दन्ती) | (5) स्नूही | (9) अमलतास |
| (2) निशोथ | (6) स्वर्णक्षीरी | (10) कम्पिल्लक |
| (3) त्रिफला | (7) शंखिनी | (11) गोमूत्र |
| (4) गवाक्षी (इंद्रायण) | (8) तिल्वक | (12) गोदुग्ध |

विरेचन कल्पना (Knowledge of Virechan Kalpana & their properties)

विरेचन योग विचारणानुसार खालीलप्रमाणे वेगवेगळ्या कल्पनेने देता येते.

- | | | |
|-----------------|------------|------------------|
| (1) चूर्ण | (8) मांसरस | (15) मद्य - सुरा |
| (2) वर्ति | (9) पानक | (16) यवागु |
| (3) आसव | (10) यूष | (17) क्षीर |
| (4) अरिष्ट | (11) तर्पण | (18) उपधेया |
| (5) अवलेह | (12) षाडव | (19) मोदक |
| (6) स्नेह - तैल | (13) राग | (20) सीधु |
| (7) कषाय | (14) घृत | (21) दही |

- सुश्रुतोक्तः
- | | |
|---------------|-----------------|
| (1) घृतयोग | (5) मूत्रयोग |
| (2) तैलयोग | (6) मांसरस योग |
| (3) क्षीर योग | (7) भक्ष्यानयोग |
| (4) मद्ययोग | (8) अवलेह |

वरील सर्व कल्पनांचे वर्णन करण्यामागे कारणः

- (1) तीक्ष्ण द्रव्य असल्यास त्यांच्या गुणानुसार रुग्णास सेवनास सुलभ व्हावे.

- (2) गंध, चव याच्यानुसार रुग्णास सेवनाची सूलभ व्हावी.
- (3) काही औषधी द्रव्यांचे विरेचन योगच त्या-त्या स्वरूपात तयार होऊ शकतात. उदा. तैल, क्वाथ, फाण्ट
- (4) विरेचन द्रव्यांचे प्रभाव न्युनाधिक करण्यासाठी.

| अ.क्र | कल्पना | द्रव्य | गुणधर्म | मात्रा | अनुपान |
|-------|----------------|--|--|----------------------|--|
| 1 | चूर्ण | 1) सैधव + सुंठी + निशोथ 1 भाग 1 भाग 2 भाग 2) दंती, द्रवंतीमूले, यांस दंती + द्रवंती क्वाथाची भावना | वातकफ जन्य व्याधीसाठी मलबंध, वातीक गुल्म | 20 gm 40 gm | कोष्णजल निम्बूरस, कांजी |
| 2 | आसव | दंती, द्रवंती + उडद क्वाथ + सुराकिट्ट-संधान करून आसव निर्माण | कफज गुल्म अग्निमांद्य पार्श्वग्रह कटिग्रह | 40 ml | कोष्णजलासह |
| 3 | वर्ती | निशोथचूर्ण + चासनी (शर्करा) | पित्तजव्याधी | - | गुदमागनि |
| 4 | अरिष्ट | 1) दंतीक्वाथ + अमलतास मज्जा + गुड-संधान करून 2) निशोथ, दंतीमूल (क्वाथ) पीपल मदनफल, चित्रकमूल (कल्क) + गुड - संधान करून | पित्तप्रधान व्याधी वातकफज व्याधी प्लीहारोग, पाण्डू उदररोग | 40 ml 40 ml | कोष्णजल कोष्णजल |
| 5 | अवलेह | 1) शामा (निशोथ) मूल क्वाथ + निशोथकल्क + शर्करा 2) त्रिवृत्त अवलेह | तीव्र रेचक पित्तप्रधान व्याधी | 10 gm 20-30 gm | कोष्णजलासह, दूधासोबत |
| 6 | स्नेह (तैल) | 1) एरण्ड तैल 2) शंखिनीचूर्ण 2 भाग + तिलचूर्ण 1 भाग-तैल | कफवात व्याधी आमवात | 30-60 ml 30-60 ml | सुण्ठी फाण्ट किंवा दूध हरीतकी क्वाथ |
| 7 | कषाय | सप्तला+यवतिक्त+सुरामण्ड सैधव लवण | कफवातज व्याधी हृदरोग, गुल्म | 60-70 ml | -- |
| 8 | षाडव | षाडव + निशोथ चूर्ण | | | |
| 9 | राग | राग + निशोथ चूर्ण | | | |
| 10 | मांसरस | दंती, द्रवन्ती लावा पक्षीमांस, मांसरस | | | |

| अ.क्र | कल्पना | द्रव्य | गुणधर्म | मात्रा | अनुपान |
|-------|----------|---|---|-------------------|-------------------|
| 11 | पानक | निशोथ मुल-स्नुही क्षीराने भावना (7 दिवस) | | चूर्ण 10 ग्रॅम | गुड शरबत बरोबर |
| 12 | यूष | स्नुही क्षीर + यूष | वातकफ जन्य | | |
| 13 | तर्पण | 1) निशोथ चूर्ण + तर्पण 2) दालचीनी : एला : नीळमूळ : निशोथ : शर्करा: (1:1:2:4:8 भाग) | वातकफ जन्य व्याधी + मंदाग्नि | | दाडिम रस + मधू |
| 14 | घृत | शंखिनी/सप्तला क्वाथ+दूध → घृतसिद्ध + 1/2 भाग सप्तला+ 1/2 भाग निशोथ कल्क → घृतपाक | | 40 मिली | दूध |
| 15 | मद्य | दंतीमूळ + द्रवन्तीमूळ चूर्ण + दंतीमूळ + द्रवन्तीमूळक्वाथ + उडद क्वाथ → संधानकरून मद्य | कफ व्याधी, गुल्म, पार्श्व, कटिग्रह, अग्निमांद्य | 60 मिली | |
| 16 | सुरा | दंती, द्रवन्तीमूल क्वाथ संधानकरून | | | |
| 17 | क्षीर | दुग्ध + त्रिवृत्तचूर्ण | वातकफज व्याधी | | |
| 18 | यवागु | दंती द्रवन्ती क्वाथ + यवागु | कफज व्याधी | | |
| 19 | उत्कारिक | दंती द्रवन्ती क्वाथ (3भाग)+ शर्करा (1 भाग) + गव्हाचे पीठ (1 भाग) उत्कारीका तयार करणे | कफज व्याधी | | दूधासह |
| 20 | मोदक | श्वेतनिशोथचूर्ण+ त्रिफलाचूर्ण + विडंग + यवक्षार गुडाच्या चासणीमध्ये मोदक तयार करून | कफज व्याधी गुल्म, प्लीहा उदर, श्वास हलीमक | | कोष्णजलासह |
| 21 | सीधु | अमलतास मज्जा (2 पल) + कोल सीधू (4 पल) | | | |
| 22 | दधी | | | | |

कोष्ठ निर्णय व अग्नी निर्णयः

विरेचन कर्म करण्यापूर्वी रुग्णाचे कोष्ठ व अग्नी निर्धारण करणे आवश्यक आहे कारण कोष्ठ व अग्नीच्या परीक्षणानंतरच स्नेहपानाची मात्रा ठरवली जाऊ शकते व विरेचनाची द्रव्याची मात्राही कोष्ठ व अग्नीच्या परीक्षणानंतर ठरवली जाते त्यामुळे अयोगाचे किंवा अतियोगाचे व्यापद टाळण्यासाठी कोष्ठ व अग्नी निर्धारण करणे आवश्यक आहे.

कोष्ठ निर्णय व अग्नी परीक्षण याचे सविस्तर वर्णन 'वमन' प्रकरणात दिलेले आहे.

विरेचन योग्य (Indications)

संहितांनुसार विरेचन योग्य खालीलप्रमाणे आहेत ज्यामध्ये विरेचन करता येऊ शकते.

(च.सि. 2/13, सु.चि. 33/32, अ.ह.सू. 18/8-10)

- | | |
|----------------------------------|---|
| (1) ज्वर, जीर्णज्वर (वाग्भट) | (2) कुष्ठ (Skin diseases) |
| (3) प्रमेह (Polyurea/diabetes) | (4) उर्ध्वगरक्तपित्त (Bleeding disorders) |
| (5) भगन्दर (Fistula) | (6) उदर (Ascites) |
| (7) अर्श (Piles) | (8) ब्रध्न (Inguinal hernia) |
| (9) प्लीहा रोग (Splenomegaly) | (10) गुल्म (Abdominal lump) |
| (11) अर्बुद (Tumour) | (12) गलगण्ड (Goitre) |
| (13) ग्रंथी (Cyst) | (14) विसूचिका (Gastroenteritis) |
| (15) अलसक (Pyloric stenosis) | (16) मूत्राघात (Retention of Urine) |
| (17) कृमीकोष्ठ (Infestation) | (18) विसर्प (Herpes) |
| (19) पाण्डू (Anemia) | (20) शिरःशूल (Headache) |
| (21) पाश्र्वशूल (Pain in flanks) | (22) उदावर्त (Retrograde intestinal movement) |
| (23) नेत्रदाह (Burning in eye) | (24) आस्यदाह (Burning in face) |
| (25) हृद्रोग (Heart disease) | (26) व्यंग (Black Head) |
| (27) नीलिका | (28) नेत्रस्राव (Excess Lacrimation) |
| (29) नासास्राव (Nasal discharge) | (30) हलीमक (Cirrhosis of liver) |
| (31) श्वास (Breathlessness) | (32) कास (Cough) |
| (33) कामला (Jaundice) | (34) अपची (Lymphadenitis) |
| (35) अपस्मार (Epilepsy) | (36) उन्माद (Insanity) |
| (37) च्छर्दि (Vomiting) | (38) वातरक्त (Gouty arthritis) |
| (39) योनीरोग (Genital disorders) | (40) तिमिर (Defective vision) |

- | | |
|---|---------------------------------------|
| (41) काच (Cataract) | (42) अरोचक (Anorexia) |
| (43) अविपाक (Indigestion) | (44) वातास्र (Rheumatoid disorder) |
| (45) श्वयथू (Sneezing) | (46) विस्फोटक (Exfoliative condition) |
| (47) शस्त्रक्षत, क्षार-अग्निदग्ध | (48) दुष्टव्रण (Infective wound) |
| (49) गरविष (Poison) | (50) अक्षिपाक (Panopthalmitis) |
| (51) गुददाह (Burning in anus) | (52) मेढ्रदाह (Burning in Penis) |
| (53) शुक्रव्याधी (Related to semen & male genital organs) | |

वरील विरेचन योग्य व्याधीचा विचार करता, या व्याधीचे खालील प्रकारे वर्गीकरण करता येईल. त्याप्रमाणे दोष-दुष्याचा विचार करून इतरही व्याधी योग्य किंवा अयोग्य चिकित्सक स्वतःच्या बुद्धीनुसार ठरवू शकतील.

- (1) पित्त दोष प्राधान्याने होणाऱ्या व्याधी - कामला, पाण्डू, दाह, पाक
- (2) रक्त दोष प्रधान व्याधी - कुष्ठ, विसर्प, व्यंग, नीलिका, इ.
- (3) पित्तस्थानगत व्याधी - श्वास
- (4) कफस्थानगत पित्त
- (5) कफस्थानगत व्याधी - हृद्रोग, उर्ध्वजत्रूगत व्याधी
- (6) तीक्ष्ण शोथन आवश्यक असणाऱ्या व्याधी - गरविष, कृमीकोष्ठ
- (7) गंभीर प्रकारच्या व्याधी उदा. उन्माद, अपस्मार
- (8) बहुदोषजव्याधी उदा. कुष्ठ, प्रमेह
- (9) मार्गाविरोधज चिकित्सा - अधोगरक्तपित्त, च्छर्दि

विरेचन अयोग्य (Contra indication)

(च.सि. 2/11, सु.चि. 33/30, अ.ह.सू. 18/7)

विरेचन अयोग्य अवस्था:

- | | |
|--------------------|-----------------|
| (1) सुभग | (2) क्षतगुद |
| (3) भुक्तवान | (4) लंघित |
| (5) दुर्बलेन्द्रिय | (6) निरूढ |
| (7) कामात व्यग्र | (8) अजीर्ण |
| (9) आध्मान | (10) शल्यपीडित |
| (11) अभिहत | (12) अतिस्निग्ध |

| | |
|----------------------|-----------------------|
| (13) अतिरूक्ष | (14) अल्पाग्नि |
| (15) बाल, वृद्ध | (16) श्रान्त |
| (17) पिपासित | (18) कर्मभारध्वहत |
| (19) अतिस्थूल | (20) अतिकृश |
| (21) उपवासित | (22) मैथूनप्रसक्त |
| (23) व्यायाम प्रसक्त | (24) चिन्ता प्रसक्त |
| (25) क्षाम | (26) गर्भिणी |
| (27) नवप्रसूता | (28) नित्यदुःखी |
| (29) भयभीत | (30) दारुण कोष्ठयुक्त |

विरेचन अयोग्य व्याधीः

| | |
|--------------------|--------------------------------------|
| (1) नवज्वर | (2) मुक्तनाल (Loss of bowel control) |
| (3) क्षतगुद | (4) आध्मान |
| (5) तालूशोष | (6) मदात्यय |
| (7) उरूस्तम्भ | (8) अर्दित |
| (9) हनुरोग | (10) केवलवातरोग |
| (11) राजयक्ष्मा | (12) शोष |
| (13) अधोगरक्तपित्त | (14) अतिसार |
| (15) हृद्रोग | |

वरील विरेचनाचे अयोग्याचा विचार करता त्यांचे वर्गीकरण खालीलप्रमाणे करता येईल:-

- (1) ज्या व्याधीमध्ये Emergency treatment ची आवश्यकता आहे असे व्याधी. - उदा. हृद्रोग
- (2) रुग्णाचे बल कमी असल्यास. उदा. सुभग, कृश, बाल, वृद्ध, गर्भिणी इ.
- (3) वायू वृद्धी होणाऱ्या अवस्था किंवा रुग्ण. उदा. मैथुनप्रसक्त, अध्ययनप्रसक्त, शांत, मदात्यय
- (4) दोषांची अधोगती असल्याने किंवा विरेचनाने अधिक व्याधीची तीव्रता वाढू शकते अशा व्याधी. उदा. मुक्तनाल, अतिसार, क्षतगुद, अधोगरक्तपित्त इ.
- (5) पुरीष ज्यांचे बल आहे अशी व्याधी - राजयक्ष्मा.

विरेचनापूर्वी वमनाची महत्ता (Significance of vaman before virechan)

अवान्तस्य हि सम्यग्विरिक्तस्यापि सतोऽधः सस्तः श्लेष्मा ग्रहणीं

छर्दयति, गौरवमाषादयति, प्रवाहिकां वा जनयति।।

सु.चि. 33/19

आमाशय हे पित्त व कफाचे स्थान आहे. विरेचन ही पित्ताची प्रमुख चिकित्सा असली तरी वमन चिकित्सेनेही पित्ताचे शोधन होते. त्यामुळे दोष बाहुल्यामध्ये वमनाद्वारे पित्ताचे शोधन झाल्याने नंतर विरेचनाने पित्ताचे उत्तम शोधन होईल.

विरेचन हे स्नेहन स्वेदन युक्त वमनानंतर द्यावे कारण वमन न करता विरेचन केल्यास सम्यक विरेचनाचे लक्षण दिसल्यानंतरही कफ अधिक खाली ढकलला जातो. त्यामुळे ग्रहणीवर कफाचे आच्छादन होवून अग्निमांद्य होते व गौरवोत्पत्ती होवून प्रवाहिकाचे लक्षण उत्पन्न होते. त्यामुळे विरेचनापूर्वी वमन करणे आवश्यक असते.

ज्या व्याधीमध्ये बहुदोष असतील अशा व्याधीमध्ये वारंवार शोधन करणे क्रमप्राप्त असते. उदा. कुष्ठ. अशा अवस्थेत वारंवार वमन - विरेचन करण्याचा विधान आहे त्यामुळे अधिक दोष बाहेर काढले जातील.

बहुदोषः संशोध्यः कुष्ठी बहुशोऽनुरूक्षता प्राणान्।

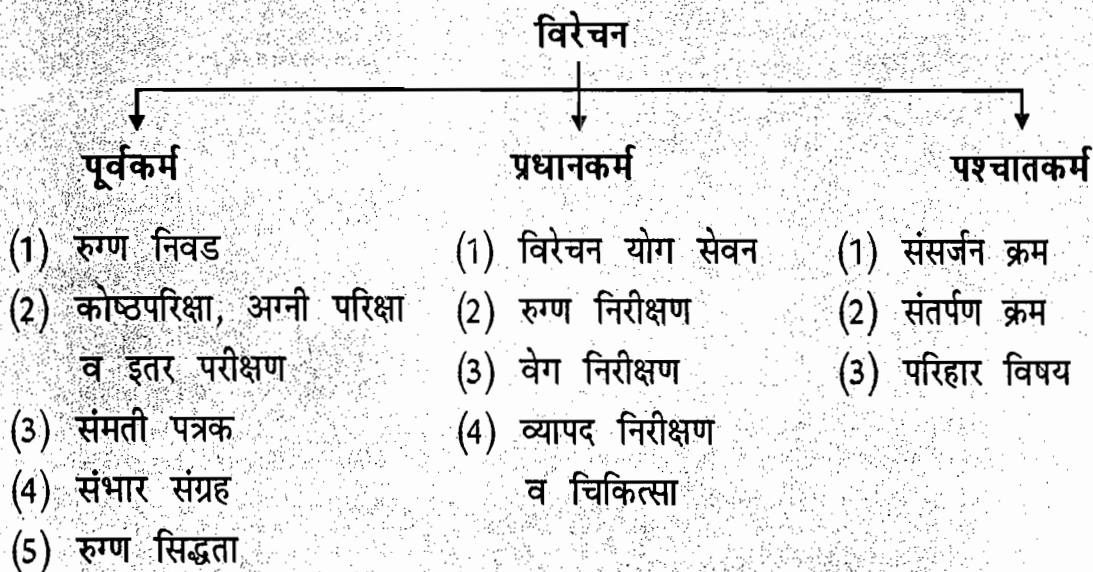
च.चि. 7/41

उन्मादा सारख्या मानस व्याधीमध्ये वमन, विरेचन क्रमाने करणे आवश्यक आहे. वमन क्रियेने हृदय, इंद्रिय, कोष्ठ शुद्धी झाल्यानंतर मन प्रसन्न होते त्यानंतर क्रमाने विरेचनादि शुद्धी केल्याने दोषांचे शोधन होवून इच्छित फल प्राप्ति होते. त्यामुळे विरेचनापूर्वी वमन आवश्यक मानले जाते. (च.चि. 9/25-28)

विरेचन विधी

विरेचनकर्म खालील तीन प्रकारात विभागली जाते.

- (1) पूर्वकर्म
- (2) प्रधान कर्म
- (3) पश्चातकर्म



(1) **रुग्ण निवड** - व्याधी, दोष, प्रकृती, देश, वय, बल, काल याचा विचार करून रुग्णाची विरेचनासाठी निवड करावी. व्याधी विरेचन योग्य किंवा अयोग्य (contra-indication) हे बघून रुग्णाची विरेचनासाठी निवड करावी.

(2) **कोष्ठ परीक्षा, अग्नी परीक्षण व इतर परीक्षण** - वमन प्रकरणात वर्णिल्याप्रमाणे रुग्णाचा कोष्ठ परीक्षण व अग्नीपरीक्षण करून घ्यावे. कोष्ठ व अग्नीच्या परीक्षणानंतर स्नेहपानाचीही मात्रा ठरविता येते व प्रत्यक्ष विरेचनाचीही मात्रा ठरवता येते. त्यामुळे अयोग वा अतियोग व्यापद टाळण्यासाठी विरेचनापूर्वी रुग्णाचे कोष्ठ जाणून घेणे अत्यंत महत्त्वाचे आहे. या सोबतच रुग्णाचे दशविध, अष्टविध परीक्षण करून घ्यावे.

इतर परीक्षणामध्ये नियमित व्याधीनुसार Biochemical investigation करून घ्यावे.

वजन -

नाडी -

BP -

Lipid profile -

Blood sugar -

LFT - (आवश्यकता असल्यास)

(3) **संमती पत्रक** - Consumer Act च्या दृष्टीने बचावात्मक व एक न्यायालयीन प्रक्रिया म्हणून रुग्ण व/किंवा जवळच्या नातेवाईकांस विरेचनकर्म, त्यापासून होणारे संभावीत फायदे, व्यापद या विषयीची माहिती द्यावी व रुग्णास/नातेवाईकांस समजेल त्या भाषेत संमती पत्रक (Consent form) तयार करून त्यावर स्वाक्षरी किंवा अंगठ्याचे ठसे घ्यावे.

(4) **संभार संग्रह (Collection of Requirements)** - विरेचनासाठी आवश्यक लागणारे साहित्य, द्रव्य व सोबतच विरेचन क्रियेमध्ये होणारे संभावीत व्यापद यांचा विचार करून त्यासाठी लागणारी चिकित्सेसाठी औषधी आधीच जमा करून ठेवावी.

(1) अभ्यंगतैल (धन्वन्तर तैल, चंदनबलालाक्षादि तैल, नालपामरादि तैल)

(2) मोजपात्र

(3) पात्र (S.S.)

(4) ग्लास

(5) बाष्प स्वेद यंत्र

(6) विरेचनार्थ द्रव्य - (कोणतेही एक किंवा दोन)

(i) एरण्ड तैल

(ii) आरग्वधमज्जा

(iii) त्रिवृत्त अवलेह

(iv) अभयादि मोदक

(v) अश्वकंचूकी

(vi) इच्छाभेदी रस

व्यापद चिकित्सेसाठी:

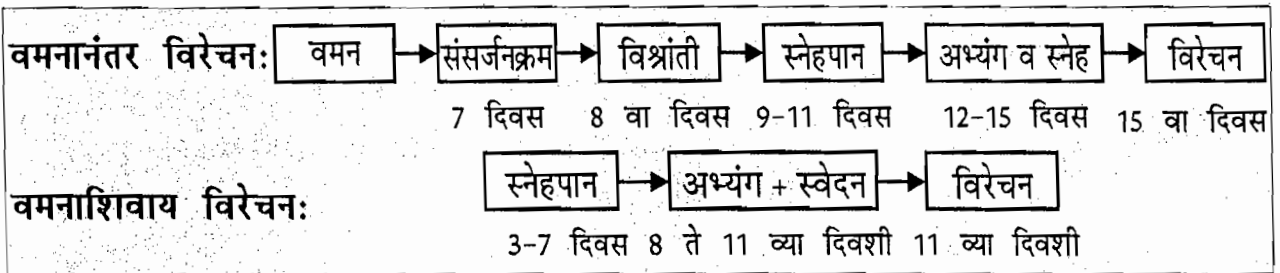
- | | |
|----------------|------------------|
| (i) बिल्वमज्जा | (ii) सूतशेखर वटी |
| (iii) कर्पूररस | (iv) शंखवटी |
| (v) कुटजघनवटी | |

Modern Drugs:

- IV Fluids DNS, NS, RL
- Inj. Ranitidin
- Tab. Loperamide
- Inj. Dexamethasone

(5) रुग्ण सिध्दता -

- (1) पाचन : स्नेहपानापूर्वी रुग्णास 3-7 दिवसांपर्यंत अवस्थानुरूप चित्रकादि वटीने पाचन व रुक्षण चिकित्सा करावी.
- (2) स्नेहपान: विरेचनासाठी व्याधी, रुग्ण प्रकृती, दोषांचा विचार करून रुग्णास स्नेहपान विधीने 3-7 दिवस पर्यंत सम्यक स्नेहन करावे. जर रुग्णाचे वमन कर्म केलेले असेल तर 7 दिवस स्नेहपानाची आवश्यकता नसते. त्यासाठी वमनानंतरच्या संसर्गत क्रमानंतर एक दिवस विश्रांती व नंतर 9 व्या दिवशी स्नेहपान सुरू करावे. 9 वा, 10 वा, 11 व्या दिवशी स्नेहपान करावे. 12 ते 14 व्या दिवशी पर्यंत 3 दिवसांची विश्रांती द्यावी. 3 दिवस विश्रांती दिल्याने श्लेष्मा कमी होतो व विरेचन सुलभ होते. (स्नेहात प्रस्कंदनं जन्तुस्त्रिरात्रोपरतः पिबेत। च.सू. 13/80) यावेळी 11 व्या दिवसापासून तर विरेचनाच्या दिवशीपर्यंत सर्वांग अभ्यंग व स्वेदन करावे. 15 व्या दिवशी रुग्णाचे विरेचन कर्म करावे.



वमन कर्म न करता विरेचन कर्म करायचे असल्यास 3-7 दिवस पर्यंत स्नेहपान करावे त्यानंतर 3 दिवसांची विश्रांती द्यावी. त्यानंतरच्या दिवशी विरेचन कर्म करावे.

- (3) अभ्यंग स्वेदन: स्नेहपानाच्या शेवटच्या दिवसापासून विरेचनाच्या दिवसापर्यंत रोज सर्वांग अभ्यंग व स्वेदन करावे.

आहार परिचर्या:-

स्नेहपान काळात - लघु, सुपाच्य आहार घ्यावा. उदा. मुग, खिचडी

विश्रांती काळात - विरेचनोपग भोजन - स्निग्ध, द्रव, उष्ण, मांसरस, भात, अम्ल फळांचा रस या काळात आहार कफ वृद्धी करणारा नसावा. अन्यथा कफवृद्धीमुळे विरेचनौषधीने वमन होण्याची शक्यता असते. (च.सि. 1/10)

विरेचनाच्या दिवशी:

- (1) अभ्यंग स्वेदन - प्रातःकाली रुग्णाचे सर्वांग स्नेहन स्वेदन करावे.
- (2) आहार - विरेचनाच्या दिवशी रुग्णास विरेचनपूर्व काहीही खाण्यास देवू नये आमाशयाच्या रिक्त अवस्थेत विरेचन औषधी द्यावी.

प्रधानकर्म

- (1) **विरेचन योग सेवन:** विरेचनाच्या दिवशी रुग्णाचे आदल्या रात्रीचा भोजन पचल्याची खात्री करून व प्रातः मल मूत्र विसर्जन झाल्यानंतर अभ्यंग व स्वेदन करावे व कफकाल जाता (अंदाजे 9 वाजताच्या दरम्यान) रुग्णास उपाशी पोटी खुर्चीवर बसवून स्वस्तीर्वचनानंतर पूर्वी वर्णिल्याप्रमाणे योग्य मात्रेत विरेचन औषधी द्यावी. विरेचन औषधी सेवनानंतर रुग्णास विरेचन औषधीच्या गंधामुळे हल्लास होत असल्यास मूखप्रक्षालन करण्यास सांगावे. कोष्ण जलाने गंडूष करावे.
- (2) **रुग्ण निरीक्षण:** औषधी सेवनानंतर 1 ते दीड तासाने रुग्णास द्रवमल प्रवृत्ती होणे सुरू होते. विरेचन कर्माचे वेळी सुरूवातीस पुरीष नंतर क्रमाने पित्त व त्यानंतर कफ निस्सारण होते. यास कफान्त विरेचन म्हणतात. कफाच्या निस्सारणानंतर केवळ वायू चे निस्सारण होते परंतु योग्य विरेचनासाठी 'कफांत' विरेचन अपेक्षित असते. यानंतर दौर्बल्य व लघुता हे लक्षण उत्पन्न होतात. मल प्रवृत्तीच्या दरम्यान रुग्णाचे प्रत्येक वेगानंतर BP, जिह्वा, नाडी याचे निरीक्षण करावे.

औषध पाचन:-

| औषध जीर्ण लक्षण | औषध अजीर्ण लक्षण |
|---|--|
| ● वातानुलोमन | ● शरीर थकल्यासारखे वाटणे |
| ● स्वस्थतेची जाणीव होण | ● दाह (Burning) |
| ● सम्यकक्षुधा | ● अंगसाद (Bodyache) |
| ● सम्यकतृषा | ● भ्रम (Giddiness) |
| ● मन प्रसन्न वाटणे (Enthusiasm & good feeling) | ● मूर्च्छा (Transient loss of consciousness) |
| ● इंद्रिय लघुता | ● शिरःशूल (Headache) |
| ● शुध्द उद्गार | ● अरति (Restlessness) |
| | ● दौर्बल्य (Weakness) |

3. वेग निरीक्षण (Assessment of Vega):

वेग गणना (Counting of Bouts) - विरेचन कर्माच्या वेगांचे निरीक्षण करतांना निर्हरीत द्रव (Amount of fluid), वेगाची संख्या व लक्षण यांचे निरीक्षण आवश्यक असते. वेगाची गणना करतांना सुरुवातीचा पुरीष युक्त वेगास सोडून गणना करावी. केवळ द्रव मल प्रवृत्तीच्या (अल्प पुरीष युक्त किंवा पुरीष विरहीत) यांची गणना करावी. वेगाची गणना प्रवृत्तीच्या वेळी जेवढे वेग मलाचे बाहेर निघतील त्या प्रत्येकाची गणना करावी त्यामुळेच वमनापेक्षा विरेचनाचे वेग अधिक आहेत. सम्यक विरेचनाचे वेगानुसार, उत्सर्जीत मात्रेनुसार, उत्तम, मध्यम व हीन शुद्धीचे निरीक्षण केले जाते.

| शुद्धी | वैगिकी | मानिकी | आंतिकी | लैगिकी |
|--------|--------|-----------|--------|---|
| उत्तम | 30 | 2.16 lit. | कफान्त | सम्यक शुद्धीचे लक्षण खालील वर्णील्याप्रमाणे |
| मध्यम | 20 | 1.62 lit. | कफान्त | |
| हीन | 10 | 1.08 lit. | कफान्त | |

विरेचन निर्धारण :

| मृदू विरेचन | मध्यम | तीक्ष्ण |
|--|---|------------------------------|
| अल्प मल प्रवृत्ती 1-2 वेग उदा. हरीतकी मल पाक | मृदू विरेचनापेक्षा अधिक 10 - 15 वेग उदा. त्रिवृत्त | 30 वेगा पर्यंत उदा. दन्ती |

सम्यक योग लक्षण (लैगिकी):

स्रोतोऽविशुद्धीन्द्रिय सम्प्रसादौ लघुत्वमूर्जोऽग्निरनामयत्वम्।

प्राप्तिश्च विट्पित्तकफानिलानांसम्यग्विरिक्तस्य भवेत्क्रमेत।।

(च. सि.1/17, सु.चि. 33/25)

दौर्बल्य व लघुता ही सम्यक विरेचनाची लक्षणे आहेत परंतु ह्या लक्षणाच्या आधारे सम्यक योग मानता येणार नाही त्यासाठी वरील उल्लेखित इतरही मानकांचा संयुक्त विचार करून सम्यक विरेचन करावे. सम्यक योगाची लक्षणे खालील प्रमाणे आहेत:

- (1) स्रोताशुद्धी
- (2) इंद्रियप्रसाद
- (3) लघुता
- (4) रूग् उपशमन/अनामयत्वम् (व्याधीचे शमन)
- (5) वातानुलोमन

- (6) अग्निवृद्धी
- (7) उर्जा
- (8) मल-पित्त, कफ, वायूचे क्रमाने निस्सारण

* रूग उपशमन - हे लक्षण तात्काळ दिसत नाही तर कालांतराने प्रगट होणारे लक्षण आहे.

विरेचन अयोग/हीनयोग लक्षणः

हृत्कुक्ष्यशुद्धिररूचिरुत्कलेशः श्लेष्मपित्तयोः।

कण्डूर्विदाहः पिटकाः पीनसो वातविड्ग्रहः।। (अ.ह.सू. 18/36-37)

- | | |
|--------------------------------------|---------------------------|
| (1) हृदय कुक्षीप्रदेशी अशुद्धि | (2) अरूचि (Anorexia) ✓ |
| (3) कफ, पित्त उल्लेश | (4) कंडू (Pruritus) |
| (5) विदाह (Internal burning) | (6) पिडका (Skin eruption) |
| (7) पीनस (Rhinitis) | (8) वात ग्रह (Flutulence) |
| (9) विड्ग्रह (Constipation) | (10) व्याधीवृद्धी |
| (11) विभ्रंश (Altered consciousness) | (12) शोथ (oedema) |
| (13) हिक्का (Hiccup) | (14) तमोदर्शन (Blackout) |
| (15) पिण्डकोद्वेष्टन (cramps) | (16) उरूसाद |

अयोग कारणः

- (1) रुग्णाचे स्नेहन स्वेदन सम्यक झालेले नसेल
- (2) रुग्ण रूक्ष शरीर असणारा असल्यास
- (3) विरेचन मात्रा अल्प दिल्यास
- (4) विरेचन औषधी पुराण, हीन वीर्य किंवा भेसळयुक्त (Adulterated) असल्याने, रुग्णाचे सम्यक स्नेहन न झाल्यास व रुग्णामध्ये वातप्रकोप असून क्रूरकोष्ठ असल्यास किंवा रुग्ण व्यायाम करणारा असून तीक्ष्णाग्नियुक्त असल्यास अयोगाचे लक्षणे दिसून येतात.

चिकित्साः

- औषध अजीर्ण व अयोग झाल्यास पुनः विरेचन करू नये कारण शोषौषधी व पुनः विरेचन औषधीमुळे अतियोग होण्याची शक्यता असते.
- औषधी जीर्ण झाल्यास परंतु अयोग झाल्यास त्या दिवशी भोजन देवून दुसऱ्या दिवशी पुनः विरेचन करावे.
- या नंतरही विरेचन योग्य न झाल्यास दहा दिवसानंतर स्नेहन स्वेदन करून आधीच्या चुकांचे निराकरण करून विरेचन करावे. (अ.ह.सू. 18/34-35)

- (1) स्नेहन स्वेदन करून तीव्र विरेचन किंवा
- (2) गोमूत्र, क्षारयुक्त तीक्ष्ण बस्ति
- (3) बस्तिनंतर मांसरस (Chicken soup)
- (4) मंदाग्नि असलेल्या रुग्णास, अयोग झाल्यास अर्जीण लक्षण असतांना व रुग्ण दुर्बल नसल्यास 'लंघन' चिकित्सा करावी यामुळे उत्कलीष्ट दोषांमुळे स्रोतोसंग होणार नाही (अ.ह.सू. 18/42)
- (5) रुग्ण वातप्रकोपीत, क्रूरकोष्ठी, व्यायाम करणारा किंवा तीक्ष्ण अग्नि असणारा असल्यास विरेचन औषधीचे पचन झाल्याचे अयोग होते. अशावेळी प्रथम बस्ति देवून नंतर स्नेह विरेचन करावे किंवा फलवर्तीने मलशोधन करून स्नेह विरेचन द्यावे. (अ.ह.सू. 18/51-53)
- (6) शंखवटी 500 mg BD
- (7) सूतशेखर 250 mg BD

अतियोग लक्षण : (च.सि. 1/19, सु.चि. 32/24, अ.ह.सू. 18/38-39)

वेग संख्या 30 पेक्षा अधिक होणे, अधिक प्रमाणात मल प्रवृत्ती होणे अतियोग आहे.

- (1) कफ, पित्त, रक्त, वायू चे क्षय
- (2) सुप्ति (Numbness)
- (3) अंगमर्द (bodyache)
- (4) क्लम (Tiredness)
- (5) वेपन (कम्पन) (Tremors)
- (6) निद्रा
- (7) बलनाश (Debility)
- (8) तम (Blackout)
- (9) हिक्का (Hiccups)
- (10) उन्माद (Mania)
- (17) भ्रम (Giddiness)
- (18) वमनाच्या अतियोगाचे लक्षण
- (11) मुर्च्छा (Transient loss of consciousness)
- (12) गुदभ्रंश (Prolapse of the rectum)
- (13) शूल (Abdominal Pain)
- (14) मल वैवर्ण्य (रक्तवर्ण मलप्रवृत्ती कफ व पित्त विरहीत, मेदखंड मिश्रीत द्रवमल प्रवृत्ती मांसधावना सारखे मल) (Black, blood stained or mucous erosions)
- (15) तृषा (Thirsty)
- (16) नेत्रप्रवेश (Sunken eyes)

| कफक्षय लक्षण | पित्तक्षय लक्षण | वातक्षय लक्षण अ.ह.सू. 11/15 |
|---------------|-----------------|-----------------------------|
| हृदयशून्यता | अग्निमांद्य | अंगसाद |
| हृदगती वृद्धी | शीत शरीर | बोलण्याची अनिच्छा |
| संधी शैथिल्य | वर्ण हानि | संज्ञामोह |
| भ्रम | | |

अतियोग कारणः

- (1) मृदूकोष्ठी रुग्णामध्ये तीक्ष्ण औषधांचा प्रयोग
- (2) मृदूकोष्ठी रुग्णांमध्ये अधिक मात्रेत औषध प्रयोग

चिकित्सा:

- (1) मृदू वमन औषधी ज्यामुळे दोषांची उर्ध्वगती होवून द्रवमल प्रवृत्ती थांबवता येईल.
- (2) शीत परिषेक, अवगाह
- (3) ज्वर, अतिसार, दाह चिकित्सा गरजेनुसार.

उदा. संजीवनी वटी
शंखवटी
कुटजघनपर्पटी
चंद्रकला रस
प्रवाळपिष्टी
बिल्वमज्जाचूर्ण

- (4) द्रव, तर्पक आहार

Modern Treatment:

- (1) ORS
- (2) IV-Fluid as per need - RL, NS, DNS
- (3) Symptomatic

पश्चातकर्म

सम्यक योगाचे लक्षण दिसल्यानंतर ते प्राकृत भोजनापर्यंत करण्यात येणारे कर्म पश्चात कर्म आहेत. वमनातील धूमपान वगळता सर्व क्रिया विरेचनात ही केल्या जातात.

- (1) संसर्जन क्रम
 - (2) संतर्पण क्रम
 - (3) परिहार विषय व परिहार काल
- (1) **संसर्जन क्रम:** कोणत्याही शोधन क्रियेमुळे अग्निमांड्य होते. त्यामुळे दुर्बल, अग्नी प्रदीप्त होई पर्यंत लघु आहार देणे आवश्यक आहे. त्यामुळे 'वमन' कर्माचे वर्णिल्याप्रमाणे पेयादिक्रम विरेचनानंतरही रुग्णास द्यावा. यामुळे जठराग्निचे हळुहळू संधूक्षण होवून तीव्र होण्यास मदत होते.

पेयां विलेपीमकृतं कृतंच । युषं रसं त्रीनुभयं तथैकम्।

क्रमेण सेवेत नरोऽन्नकालान् प्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः।।

अ.ह.सू. 18/27

अवर शुद्धी संसर्जन क्रम:-

| दिवस | प्रथम अन्नकाल | द्वितीय अन्नकाल |
|------|---------------|-----------------|
| 1 | पेया | विलेपी |
| 2 | अकृत युष | कृत युष |
| 3 | मांसरस | प्राकृत भोजन |

मध्यमशुद्धी संसर्जन क्रम:-

| दिवस | प्रथम अन्नकाल | द्वितीय अन्नकाल |
|------|---------------|-----------------|
| 1 | पेया | पेया |
| 2 | विलेपी | विलेपी |
| 3 | अकृत युष | अकृत युष |
| 4 | कृत युष | कृत युष |
| 5 | मांसरस | मांसरस |
| 6 | प्राकृत भोजन | प्राकृत भोजन |

अवर शुद्धी संसर्जन क्रम:-

| दिवस | प्रथम अन्नकाल | द्वितीय अन्नकाल |
|------|---------------|-----------------|
| 1 | पेया | पेया |
| 2 | पेया | विलेपी |
| 3 | विलेपी | विलेपी |
| 4 | अकृत युष | अकृत युष |
| 5 | अकृत युष | कृत युष |
| 6 | कृत युष | कृत युष |
| 7 | मांसरस | मांसरस |
| 8 | मांसरस | प्राकृत भोजन |

- (2) **संतर्पण क्रिया:** पित्त व कफाचे अल्प शोधन झाले असल्यास मद्यपी व वात-पित्त दोषांचे प्राधान्य असल्यास पेयादि क्रमाच्या ऐवजी 'तर्पणादि' क्रम रुग्णास द्यावे. (अ.ह.सू. 18/44) तर्पणादि क्रम पेया पेक्षा लघु आहे. पेयाच्या स्थानी (अधिक पातळ) तर्पण द्यावे व विलेपीच्या ऐवजी घन तर्पण द्यावे.

शर्करा, पिप्पलीमूल, घृत, मधू समान भाग व दोन भाग सक्तु घेवून मंथ तयार करून रुग्णास तर्पणार्थ द्यावा.

प्रथम अन्नकालात लाजा, सक्तु द्यावा. द्वितीय अन्नकालात जुने तांदळाचा भात तर तिसऱ्या अन्नकालात मांसरस द्यावे.

आयुर्वेदामध्ये तर्पण हे ORS (Oral Rehydration Solution) सारखे कार्य करणारे द्रव्य आहे.

(3) **परिहार्य विषय परिहार काल:** पंचकर्मातील क्रिया करतांना खालील परिहार्य विषय आहेत रुग्णांस त्याचे पालन करण्यास सांगावे. आजच्या काळानुरूप रुग्णांस तथा परिहार्य विषयाच्या सूचना द्यावा तरच 'विरेचन' कर्माचे अपेक्षित यश मिळतील.

- (1) अधिक जोराने बोलणे. (शिक्षक, वक्ता यांना अधिक बोलण्यास मनाई करावी.)
- (2) अधिक भोजन करणे.
- (3) एकास्थानी अधिककाळ बसणे. (Continuous sitting, exam period for student Clerical or Official work, IT Professionals)
- (4) अधिक बाहेर फिरणे. (Tour/Travelling)
- (5) राग येणे, दुःखी राहणे
- (6) शीत वायू सेवन (Avoid AC)
- (7) वाहन (Traveling by Scooter, Bike, Bus)
- (8) मैथून
- (9) रात्री जागरण (Avoid night shift work, late night TV watching etc.)
- (10) दिवास्वाप
- (11) विरूद्ध भोजन (Avoid Milk shake etc.)
- (12) वेगावरोध
- (13) वेगांचा बलपूर्वक उदीरण

विरेचन व्यापद व चिकित्सा

विरेचनाचे व्यापदाचे प्रमुख कारणे खालीलप्रमाणे आहेत:

- (1) **चिकित्सक:** चिकित्सकांने व्याधीचे व रुग्णाचे परीक्षण योग्य न केल्यास व्यापद उद्भवू शकतात. विरेचनामध्ये सर्वात महत्त्वाचे म्हणजे चिकित्सकाकडून कोष्ठ परिक्षणात चूक होवू नये कारण त्यावरून मात्रेचे निर्धारण केले जाते.
- (2) **औषध:** औषधीची गुणवत्ता सम्यक योगासाठी आवश्यक असते. औषधी आमवीर्य, भेसळयुक्त असल्याने अपेक्षित लक्षणे रुग्णांमध्ये दिसत नाही. अयोगाची किंवा अतियोगाची लक्षणे दिसतात.
- (3) **रुग्ण:** चिकित्सकांने मार्गदर्शन केल्याप्रमाणे रुग्णांने पथ्य-अपथ्य पालन न केल्यास व्यापद उत्पन्न होतात.

- (4) **परिचारकः** चिकित्सकांनी मार्गदर्शन केल्याप्रमाणे रुग्णाची परिचर्या न सांभाळल्याने किंवा मार्गदर्शनाप्रमाणे औषधे निर्मिती पासून तर इतर सुचनांचे पालन न केल्यामुळे व्यापद उत्पन्न होऊ शकतात.

विरेचनाचे अयोग व अतियोगामुळे व्यापद उत्पन्न होतात. वमनाचे व विरेचनाचे व्यापद सारखेच वर्णिलेले आहेत परंतु.

- | | |
|--|----------------------------------|
| (1) आध्मान (Distension of Abdomen) | (2) परिकर्तिका (gripping pain) |
| (3) स्राव (Excessive salivation) | (4) हृदग्रह (Cardiac discomfort) |
| (5) गात्रग्रह (Stiffness in limbs) | (6) जीवादान (Bleeding parietal) |
| (7) विभ्रंश (Altered state of consciousness) | (8) स्तम्भ (Rigidity) |
| (9) उपद्रव | (10) क्लम (Exhaustion) |

सुश्रुताचार्यांनी वमन व विरेचनाचे खालीलप्रमाणे व्यापद वर्णिलेले आहेत.

- | | |
|-----------------------------------|---------------------------------------|
| (1) वमन | (2) सावशेषत्व |
| (3) जीर्णौषधत्व (औषधाचे पचन होणे) | (4) हीन दोषापहरण |
| (5) वातशूल (अंगग्रह) | (6) अयोग |
| (7) अतियोग | (8) जीवादान (Bleeding) |
| (9) आध्मान (Distension) | (10) परिकर्तिका (pain in anal region) |
| (11) परिस्राव (Anal discharge) | (12) प्रवाहिका (Tenesmus) |
| (13) हृदयासरण | (14) विबंध (Constipation) |

अयोगामुळे होणारे व्यापदः

- | | | |
|----------------|-----------------|------------------|
| (1) आध्मान, | (2) परिस्राव, | (3) हृदग्रह, |
| (4) गात्रग्रह, | (5) उपद्रव, | (6) क्लम, |
| (7) सावशेषत्व | (8) जीर्णौषधत्व | (9) हीन दोषापहरण |

अतियोगामुळे होणारे व्यापदः

- | | | |
|---------------|--------------|-------------|
| (1) परिकर्त | (2) जीवादान | (3) विभ्रंश |
| (4) प्रवाहिका | (5) हृदयासरण | |

वरील व्यापदांमध्ये अयोग, अतियोग, सावशेषत्व, जीर्णौषधत्व, हीन दोषापहरण हे व्यापदांचे कारण आहेत. प्रत्यक्ष व्यापद खालील प्रमाणे आहेत. या व्यापदांचे लक्षण व हेतुंचा अभ्यास करून चिकित्सेची मांडणी करावी लागते.

1) वमनः विरेचनाची औषधी दिल्यानंतर रुग्णास वमन होते.

- हेतूः (1) कफ दोषाचा उत्क्लेश झाल्यास
(2) औषधाच्या गंधामुळे किंवा चवीमुळे
(3) आदल्यारात्री जेवणाचे पचन न झाल्यामुळे

चिकित्साः

- (1) रुग्णात स्नेहन स्वेदन पुनः करून विरेचन औषधी पून्हा द्यावी.
(2) कधी-कधी दोषांचा उत्क्लेश उर्ध्वग होत असेल व कफोक्लेश अधिक आहे असे वाटत असल्याने चिकित्सकानी सद्-विवेके बुद्धीने कफाचा उत्क्लेश समजून जवळच्या 'मागनि दोषांचे हरण' या न्यायाने वमन करावे.

2) आध्मानः

- हेतूः (1) दोषाधिक्य असतांना रुग्णास मृदू विरेचक औषधी किंवा अल्प मात्रेत औषधी दिल्यास.
(2) रूक्ष शरीर असल्यास (सम्यक स्नेहन न झाल्यास)
(3) Poor digestion & absorption.

- लक्षणः (1) आध्मान (4) शिरःशूल
(2) पृष्ठशूल (5) श्वास
(3) पार्श्वशूल (6) विट, मूत्र संग

- चिकित्साः (1) अभ्यंग - स्वेद (By Hot fomentation bag)
(2) फलवर्ति
(3) निरूहबस्ति, अनुवासन बस्ति

3) परिकर्तिकाः रुग्णाच्या गुदभागी कापल्याप्रमाणे वेदना होतात.

- हेतूः (1) दोषांची सामावस्था क्रूर कोष्ठी रुग्णास, तीव्र विरेचक दिल्यास परिकर्तिका उत्पन्न हेऊ शकते.
(2) अल्प बल व मंदाग्नि असलेल्या रुग्णांमध्ये मृदू कोष्ठ असतांना लवण रसात्मक, उष्ण, रूक्ष विरेचक औषधी दिल्यास.

- लक्षणः (1) परिकर्तिका (5) पिच्छास्राव
(2) गुददाह (6) रक्तस्राव
(3) मेढ्रदाह (7) वातसंग
(4) बस्ति, दाह (8) विष्टंभ

- चिकित्साः (1) लंघन-पाचन, उष्ण व रूक्ष चिकित्सा (साम दोष असतांना पिच्छास्राव असतांना)

- (2) लघु, आहार
- (3) रक्तस्राव असतांना पिच्छाबस्ति
- (4) मधुयष्टी तैल, किंवा जात्यादि तैल - मात्रा बस्ति (30 ml- 50 ml)

4) परिस्त्रावः वारंवार गुदमार्गातून स्राव येणे.

हेतूः (1) क्रूरकोष्ठी व बहूदोष युक्त रुग्णास मृदू व अल्प मात्रेत औषधी दिल्यास

- लक्षणेः
- | | |
|----------------|-----------------------|
| (1) परिस्त्राव | (5) अग्निमांद्य |
| (2) कंडू | (6) अरूचि |
| (3) शोथ | (7) विष्टंभ |
| (4) गौरव | (8) दौर्बल्य, अंगमर्द |

चिकित्साः (1) दोषाधिक्य असल्यास वमन व/किंवा विरेचन कर्म

- (2) आस्थापन बस्ति (बला क्वाथाने)
- (3) शमन चिकित्सा (दोष अल्प असल्यास)
- (4) शमन चिकित्सा (लक्षण व अवस्थेनुसार):

- (i) चित्रकादि वटी 2 BD
- (ii) कुटजघन वटी 2 BD
- (iii) अभयारिष्ट/कुटजारिष्ट 4-6 TSF BD
- (iv) संजीवनी वटी 250 mg BD

5) हृदग्रहः हृदयप्रदेशी जखडल्या सारखे वाटणे. विरेचन औषधी दिल्यानंतर रुग्ण कोणत्याही कारणाने वेगावरोध केल्यास वातादि दोष प्रकुपीत झाल्याने हृदग्रह हे लक्षण उत्पन्न होते. रुग्ण विरेचनासाठी अंतप्रवेशीत झाल्यानंतर Toilet स्वच्छ नसल्यास किंवा सर्व स्टाफ/विद्यार्थी/नर्स यांच्या समोर संकोचून वेग धारण करण्याचा प्रयत्न केल्यास हे लक्षण उत्पन्न होते.

- लक्षणेः
- | | |
|--------------------------------------|--|
| (1) हिक्का (Hiccough) | (5) अक्षिविभ्रम (Rotating the eye balls) |
| (2) कास (Cough) | (6) जीव्हम् खादती (Biting the tongue) |
| (3) पार्श्वशूल (Pain in chest) | (7) संज्ञानाश (Loss of consciousness) |
| (4) लालास्राव (Excessive salivation) | (8) दंतम्किटकटपायन (Teeth biting) |

चिकित्साः

- (1) वमन करून शमन चिकित्सा अर्थात हृदसंबंधी इतर रोगांची उदा. Acute Myocardial Infarction (AMI), Angina इ. ची संभावना नाही हे खात्री करून
- (2) शमनचिकित्सा - पित्तप्रधान दोषांमध्ये - मधूर रस प्रधान औषधी उदा. सूतशेखर वटी, शंखवटी,

पथ्यादिक्वाथ, दशमूलारिष्ट, मधुयष्टी चूर्ण

- कफप्रधान दोषांमध्ये - कटू औषधी उदा. पंचकोल चूर्ण

(3) अनुवासन बस्ति - मधुयष्टी तैल 60-120 ml

(4) नस्य - (तीक्ष्ण शिरोविरेचन)

6) अंगग्रहः हेतू - विरेचन औषधी दिल्यानंतर रुग्णाकडून वेगधारण केल्यास कफाने वायू अवरोध झाल्याने अंगग्रह हे व्यापद उत्पन्न होते.

लक्षणः (1) अंगग्रह (Stiffness of body)

(2) कंप (Tremors)

(3) पिण्डकोद्वेषन (Calf muscle cramps)

(4) तोद (Pricking pain)

चिकित्साः (1) अभ्यंग - स्वेदन

7) जीवादानः मलप्रवृत्तीसोबत रक्त प्रवृत्ती होणे.

हेतू - (1) मृदूकोष्ठ, अल्पदोष असतांनी तीक्ष्ण विरेचन औषधी दिल्यास.

लक्षणः (1) जीवरक्त (शुध्दरक्त) स्राव, मांसधावनसमान उदकस्राव (Fatal bleeding)

(2) तृष्णा (Excess thirst)

(3) मूर्च्छा (Transient loss of consciousness)

(4) मद (Irrelevant behavior)

चिकित्साः अल्प प्रमाणात दुष्ट रक्त स्राव होत असल्यास रक्तस्तंभन चिकित्सा करू नये. यामुळे दुष्ट दोष रक्तावाटे जात आहेत असे समजून उपेक्षा करावी.

(1) मूर्च्छा असल्यास शीतजल परिषेक

(2) दाडिम, द्राक्षा, शर्करायुक्त शर्बत

(3) दुर्वा, उशीर, प्रियंगू सिध्द दूध

(4) पिच्छाबस्ति (न्यग्रोधादि गण + घृत यांची बस्ति)

(5) चंद्रकलारस, प्रवाळपिष्टी, स्फटिकाचूर्ण, अकीकपिष्टी, मुक्तापिष्टी यांचे एकल किंवा आवश्यकतानुसार एकत्र मात्रांचा विचार करून वारंवार चाटण द्यावे.

(6) बिल्व मज्जा चूर्ण, कुटजचूर्ण

(7) कुटजघनवटी, कुटजपर्पटी

Acute lower gastrointestinal bleeding: - LGIB may be massive when associated with any of

(1) Passage of large amount of red or maroon blood through rectum.

- (2) Initial decrease in hematocrit level of 6 gm/dL or less.
- (3) Bleeding continues for 3 days.

It presents by i) Hematochezia-passing red blood via rectum from lower GI tract.
ii) Melena-black, tarry, colored stool indicates upper GI bleeding.

Enolosity: Incidence 20 to 27% episodes per one lakh persons mortality rate 4 to 10% mortality rates increase in patients with old age.

- In India -**
- (1) Colonic angiodysplasias (32.5%)
 - (2) Iliac Crohn's disease (20%)
 - (3) Intestinal tuberculosis (10%)
 - (4) Intestinal tumors (10%)
 - (5) Non specific bowel ulcers & stricture (7.5%)
 - (6) Micksel's diverticulum (5%)
 - (7) Hemophilia (2.5%)
 - (8) In child < 10 yrs. Age, colonic polyp is most common cause.

Clinical features:

- Cause:**
- (1) Colitis -(a) Ischaemic colitis, (b) Ulcerative colitis
 - (2) Hemorrhoids
 - (3) Angiodysplasia
 - (4) Diverticular disease
 - (5) Colonic polyps
 - (6) Colon cancer
 - (7) NSAID enteropathy
 - (8) Inflammatory bowel disease (IBD)

Clinical features:

- (1) Blood loss
- (2) Fatigue
- (3) Weakness
- (4) Shortness of breath
- (5) Abdominal pain
- (6) Anemic
- (7) SBP > 90 ml/g
- (8) Heart rate > 100/min

Management: It should be treated as an emergency.

- (1) In sever blood loss, monitor vital sign and give oxygen.
- (2) IV fluids to replace lost volume.
- (3) Blood transfusion if needed.
- (4) Surgical consult will be advised if the patient can not be stabilized by non invasive technique.
- (5) Maintain proper diet, follow up with physician so that can prevent further progression and complications.

8) **विभ्रंशः** (च.सि. 6/85-87, च.पा.टिका 85-87)

विभ्रंश तीन प्रकारचे आहेत:

- (a) गुदभ्रंश (Prolapse of rectum)
- (b) संज्ञा विभ्रंश (Altered state of consciousness)
- (c) अयोगजन्य विभ्रंश :- कंडू इ. लक्षणे

चिकित्सा:

- (a) **गुदभ्रंशः** (1) कषाय रस युक्त द्रव्यांच्या क्वाथ व चूर्णाने लेपन (लोध्र, उदुम्बर)
 (2) बाहेर आलेला गुदभाग अल्प स्नेह स्वेद करून हाताने अंतःप्रविष्ट करणे.
 (3) मुषक तैलाचे पिचूधारण.

Modern View: The rectum is located just above the anal canal. The rectum is attached to the pelvis with the help of ligaments and muscles. This attachment firmly holds the rectum in place.

Stages:

- (1) In early stages of rectal prolapsed, the rectum poorly attached but stays within the body, it is called as mucosal prolapsed i.e. rectal mucosa protrude from the anus.
- (2) When the ligaments and muscles weaken, this may cause rectal prolapsed on straining during defecation.

- Causes:**
- (1) Long term constipation
 - (2) High gastrointestinal helminth loads
 - (3) Previous surgery
 - (4) Cystic fibrosis
 - (5) COPD
 - (6) Sphincter paralysis

Medical treatment:

- (1) Partial prolapsed may be treated by diet high in fiber.
- (2) Stool softness

(3) The rectal mucosa must be returned to the rectum manually. A soft, warm, wet cloth is used to apply gentle pressure to the mass to push it back through anal opening. The affected person should be in a knee-chest position before applying pressure to allow the gravity to help return the prolapsed.

(4) If require prepare the patient for surgery.

(b) संज्ञाभ्रंशः (1) संगीत चिकित्सा

(2) रुग्णाची सत्वावजय चिकित्सा करावी.

(c) अयोगजन्य विभ्रंशः कंडू-कुष्ठ इ. अयोग लक्षण

(1) पुनः स्नेहपान करून तीक्ष्ण विरेचन.

9) स्तम्भः हेतूः-स्निग्ध रुग्णात स्निग्ध विरेचन

लक्षणः (1) वाताचा अवरोध (2) गुदास्तम्भ (Prolapse rectum)

(3) गुदशूल (4) अल्प मल प्रवृत्ती

चिकित्साः (1) लंघन, पाचन, तीक्ष्ण बस्ति (2) विरेचन

10) उपद्रवः हेतूः- रूक्ष रुग्णास रूक्ष विरेचन दिल्यास उदा. इच्छाभेदी

लक्षणः (1) स्तम्भ (2) गात्रग्रह

(3) शूल (4) मूर्च्छा

चिकित्साः (1) मुर्च्छा असल्यास जल परिषेक (2) स्तम्भ, शूल इ. उपद्रवांसाठी अभ्यंग व स्वेद

(3) दशमुलारिष्ट (4) आभ्यन्तर शमन स्नेह

11) क्लम (Sense of exhaustion):

हेतूः स्निग्ध, मृदूकोष्ठी रुग्णास मृदू औषध दिल्यामुळे कफाचा उत्क्लेश होतो. कफामुळे वायू व पित्ताचा अवरोध होवून क्लम हे उपद्रव उत्पन्न होते.

लक्षणेः (1) तंद्रा (2) गौरव

(3) दौर्बल्य (4) अंगसाद

चिकित्साः (1) लंघन, पाचन - चित्रकादि वटी, रसोनादि वटी, हिंवादी वटी

(2) स्नेहन (3) तीक्ष्ण शोधन

12) अतियोग (Excessive purgation):

Due to excess loose motions, fluid loss may occur. The assessment of severity of fluid loss should be done and maintain the dehydration and electrolyte imbalance accordingly.

Degree of Dehydration

| Symptoms | Degree of dehydration | | |
|-------------------|---|---|--|
| | Minimal or none (<3% loss of body weight) | Mild to moderate (3-9% loss of body weight) | Severe (>9% loss of body weight) |
| Mental status | Well; alert | Normal, fatigued or restless, irritable | Apathetic, lethargic, unconscious |
| Thirst | Drinks normally; might refuse liquids | Thirsty; eager to drink | Drinks poorly; unable to drink |
| Heart rate | Normal | Normal to increased | Tachycardic; bradycardic in severe cases |
| Quality of pulses | Normal | Normal to decreased | Weak, thready, or impalpable |
| Breathing | Normal | Normal; fast | Deep |
| Eyes | Normal | Slightly sunken | Deeply sunken |
| Tears | Present | Decreased | Absent |
| Mouth & tongue | Moist | Dry | Parched |
| Skin fold | Instant recoil | Recoil in <2 seconds | Recoil in >2 seconds |
| Capillary refill | Normal | Prolonged | Prolonged; minimal |
| Extremities | Warm | Cool | Cold; mottled; cyanotic |
| Urine output | Normal to decreased | Decreased | Minimal |

[Source: - www.bt.cdc.gov/disaster/guidelines/.]

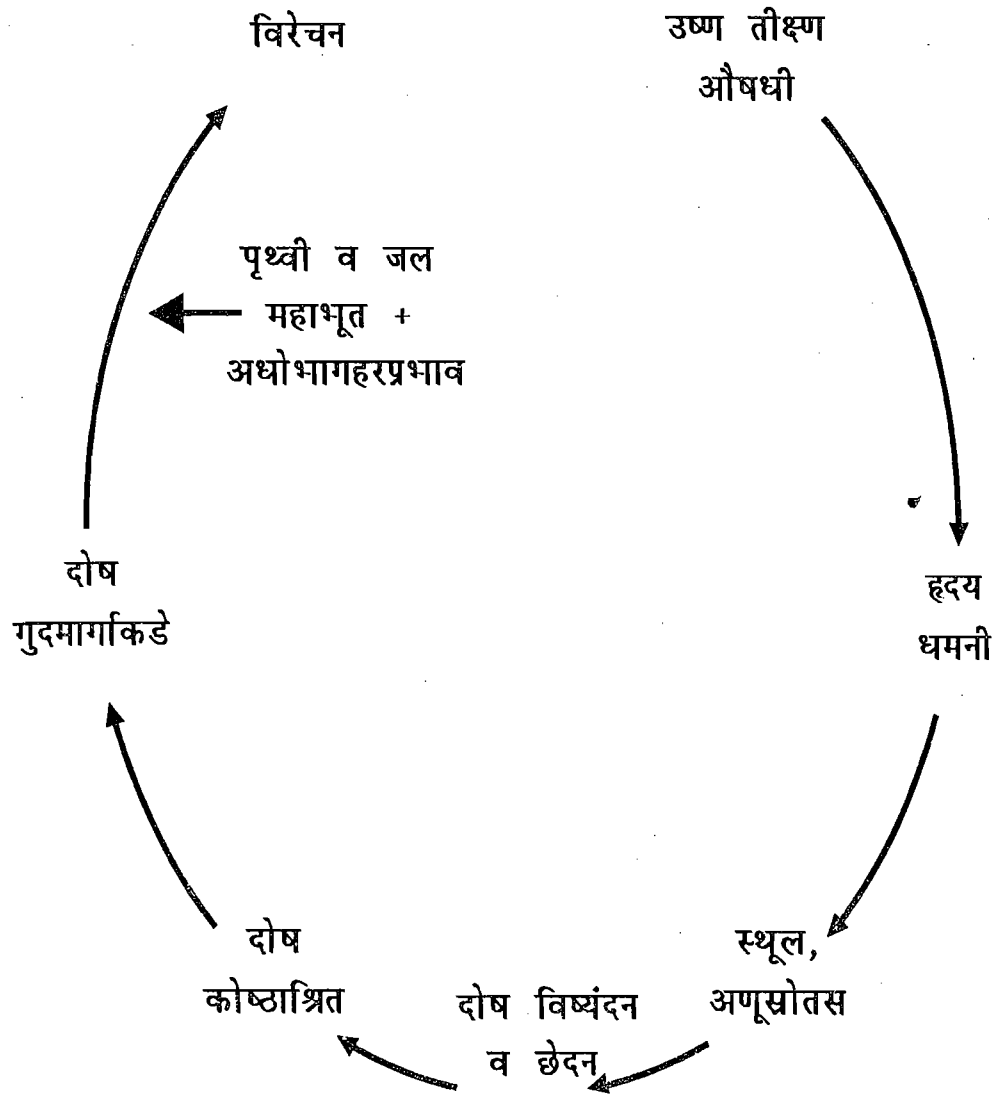
Treatment: - Mild dehydration:- Patients should be offered coconut water, rice, kanji, lemon sugar. If worsening occurs home made ORT should be started.

ORT [6-8 TSF sugarcane (40 gm sucrose) + 1 TSF salt (5 gm) + or 1 liter water]

विरेचन कार्मुकता (Mode of Action)

विरेचन द्रव्यांची कार्मुकता वमन द्रव्यांसारखी आहे. विरेचन द्रव्याच्या अधोभागहर प्रभाव व जलपृथ्वी महाभूतांच्या अधिक्यामुळे दोष अधोमागनि निर्गमीत केले जातात.

विरेचन द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण, सुक्ष्म, व्यवायी व विकासी असतात त्यांच्या या गुणधर्मांमुळे ते हृदयापर्यन्त पोहचतात व सर्व धमन्यांमध्ये परिचलन करतात. त्यांच्या उष्ण गुणामुळे दोषांचे विलयन केले जाते. तीक्ष्ण गुणांमुळे दोषांचे छेदन केले जाते, स्रोतसांमध्ये चिकटलेले दोष छेदनाने काढले जातात. सर गुणांमुळे स्रोतसांमधील दोष कोष्ठाकडे आणले जातात. पृथ्वी व जल महाभूतांच्या अधिक्यामुळे व त्यांच्या अधोभागहर प्रभावामुळे दोष अधोभागाने निर्हरीत केले जातात.



Modern view:

Purgatives/Laxatives:

These are drugs which accelerate the passage of food through intestines promoting defecation and evacuation of bowel.

Symptoms - (1) Laxative, (2) Purgatives, (3) Evacuats, (4) Cathartics.

Classification -

- 1) **Bulk Purgatives (Hydrophillic colloids):** These purgatives absorb water forming bulky, emollient gel that distends the colon and increase the peristalsis. Plant fibers not fermented imbibe water, increases bulk and form the softness of stool. e.g. Isaphgol husk, Psyllium seeds.
- 2) **Stimulant Purgatives:** These also known as cathartics. These acts by enteric nervous system, local irritation in the small intestines which increases the gut motility. It also

acts by accumulation of water and electrolytes in the lumen by altering the absorptive and secretory activity of mucosal cells.

- (a) Anthraquinone derivatives e.g. Senna, Aloe
 - (b) Diphenyle methane derivatives-Bisacodyl
 - (c) Castor oil
- 3) **Stool Softener:** These agents are anionic detergent, softens stool by net water accumulation in the lumen through an action on intestinal mucosa. It emulsifies the colonic contents and increases penetration of water into faeces.
- Liquid paraffin is a viscous and mixture of petroleum hydrocarbons pharmacologically inert softens stools and lubricate hard stool by coating. e.g. Sodium docosate, Potassium docosate, mineral oil, liquid paraffin.
- 4) **Osmotic Purgative:**
- (a) **Saline purgative** -These solutions are not absorbed in the intestine retain water osmotically and distend the bowel increasing peristalsis. e.g. Mg sulfate, Mag hydroxide.
 - (b) **Non absorbable sugar** - Lactulose is neither digested nor absorbed in small intestine and retains water. Further, it is broken down in the colon by bacteria to osmotically more active products. e.g. Lactulose
- 5) **5HT₄ Receptor Antagonist:** These enteric neurons stimulate proximal bowel contraction via Acetylcholine and substance P and distal colon relaxation via No and vasoactive peptide. Stimulation of 5HT₄ receptor activates cAMP dependent chloride secretion from the colon lead to increase stool liquidity. e.g. Tegaserol.

Mode of Action

The virechan drug acts in pachyamana awastha, means in the digestion state. So it starts its action in stomach, small intestine. These drugs act by the mechanism of osmotic pressure, myenteric plexus stimulation, receptor activation causes local irritation etc. Hence it is not possible to explain in a single theory. Probably the virechan drugs may act as follows:

- i) Hydrophillic or bulk purgatives, retaining water forming a bulky gel increases the volume of colon content and promotes peristalsis.
- ii) Direct stimulation of myenteric plexus of enteric nervous system.
- iii) Accumulation of water and electrolytes in the lumen by altering the absorptive and secretory activity of mucosal cells.

- iv) Containing Racinoleic acid a local irritant in the small intestine that increases gut motility.
- v) Cathartic has stronger action resulting more fluid evacuation. They may cause fluid accumulation in the colon by one or more mechanism.
 - a) Transport of Na^+ and water into interstitium is reduced while secretion is enhanced.
 - b) Secretion is enhanced by activation of cyclic AMP in crypt cells.
 - c) Increased prostaglandin synthesis.
 - d) Structural injury to the absorbing intestinal mucosal cells.

Some of the virechan drug acts on nerves, hormones, liver and crypts of lieberkuhn and they have irritating effect on defecation centre in medulla oblongata. The vagus nerve stimulate pancreas and liver to produce secretion. Bile is secreted due to contraction of gall bladder due to irritation and stimulation of vagus. Bruner's gland are stimulated which secrete mucus.

Finally all these mechanisms cause osmotic movements of water and fluidity and the purgation occurs. The process of virechana may be regulated and controlled by medulla oblongata (in some cases) in the brain, the centre is close to respiratory and vomiting centre. When purgation centre stimulates or local irritation or hydrophilic activity of the drug occurs the increased hydrostatic pressure of the matter reached to the large intestines, sacral plexus (2nd, 3rd & 4th sacral nerves) get stimulated due to mechanical pressure. Due to this activity irritation of motor reaction occurs which relaxes the iliosacral valve and anal sphincter muscles. The respiration is arrested momentarily; diaphragms are activated and press transverse colon. Simultaneously, the accessory muscles of the abdomen are also activated which helps in propelling the faecal matter toward anus. Faecal matter when reaches to intestine, stimulate local nerve plexuses and enforced peristalsis, further helps in expelling contents of intestine towards rectum finally from the body downwards through anus.

Elimination of Pitta: The cholecystikin stimulated the gall bladder contraction, which causes increased secretion of digestive enzymes from pancreas. Gall bladder is also stimulated by Acetylcholine. Due to relaxant action of sphincter of oddi, bile enters into duodenum which is eliminated out at the time of purgation.

विरेचक द्रव्य

त्रिवृत्त/निशोथ *Operculina ipomoea* Linn.

गण - भेदनीय (च) अधोभागहर, श्यामादि (सु.)

कुल - त्रिवृत्त कुल

Family - Convolvulaceae

Latin Name - *Operculina* (opening by a lid) *ipomoea*
Operculina turpethum (*Impomaea turpethum*)

English - Turpeth

संस्कृत - लालवर्ण - कालिंदी, रेचनी, कोषफला, रसायनी
शामवर्ण - त्रिवृत्त, श्यामा, मालविका

मराठी - निशोथ

परिचय - बहुवर्षीय लता. पत्र - अंडाकार किंवा त्रिकोणाकार

पुष्प - घंटिकाकार (Bell shaped) श्वेत वर्णाचे पावसाळ्यामध्ये, फल-2.5 सेमी लांब गोल/अंडाकार, हिवाळ्यामध्ये, बीज - कृष्णवर्णीय, प्रत्येक फळात 4 बीज.

मूल - जाड शाखायुक्त, तांबूस श्वेत वर्णाचा

भेद

| श्वेत त्रिवृत्त | शाम (कृष्ण) त्रिवृत्त |
|---|--|
| 1) मूळ तांबूस, श्वेत वर्णाचा | 1) मूळ कृष्ण वर्णाचा |
| 2) मृदू विरेचक (Laxative). | 2) तीक्ष्ण विरेचक (Strong purgative) |
| 3) मृदुकोष्ठी, बालक, दुर्बल रुग्णांमध्ये उपयोगी | 3) क्रूर कोष्ठाच्या रुग्णांमध्ये उपयोगी. |

उत्पत्ती स्थान - भारतात सर्वत्र

Chemical composition: -The root bark contains glycosodium resin which is 10%. It also contains glycoside i.e. turoethin which is responsible for purgation. It has albumin, starch, lignanine, iron and salt.

गुणधर्म - गुण: लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण रस: कटु, तिक्त, मधूर, कषाय

विपाक: कटू वीर्य: उष्ण

कर्म: कफ पित्त शोधक, वातवर्धक

पचनसंस्थान - भेदक व रेचक आहे. सर्वोत्तम सुख विरेचक. त्रिवृत्त मुरड आणून (gripping pain) मल-काढणारा द्रव्य आहे. मलशोधक व कफ पित्त शोधक कार्य करणारा असल्यामुळे मलबध्दता, अर्शा, कामला, वातरक्त, आमवात, श्वास, शोथ इ. व्याधींमध्ये उपयुक्त.

| | |
|----------------|--|
| रक्तवह संस्थान | - कुष्ठामध्ये प्रमुख दोष कफ व पित्त असल्याने त्यांच्या शोधनासाठी उपयोगी. शरीरातून द्रवाचे मलरूपाने शोधन करता असल्यामुळे शोधामध्ये उपयोगी. |
| सात्मीकरण | - मेदाचे पाचन व कर्षण करणारा आहे त्यामुळे स्थौल्यामध्ये उपयोगी. |
| प्रयोज्यांग | - मूलत्वक, मूल |
| मात्रा | - 10-30 mg (मूळ 4-6 gm) |
| स्रोतोगामित्व | - दोष - कफ, पित्त शोधन, वातवर्धक धातु - रस, रक्त मल - पुरीष अवयव - आंत्र |

Some Researches -

- 1) **Hepatoprotective Activity** - The experimental study [SV Suresh Kumar *et al*; 2006], effect of ethonolic extract of *O.turpethum* was assessed for hepatoprotective activity in rats by inducing liver damage by paracetamol. The ethanol extract at an oral dose of 200 mg/kg exhibited a significant protective effect by lowering SGOT, SGPT, alkaline phosphatase and total bilirubin. [Suresh Kumar S.V. *et al*, protective effect of root extract of *O.turpethum* against paracetamol induced hepatotoxicity in rats. Indian J Pharma Sci 2006; 68: 32-5].
In experimental studies an Ayurvedic herbomineral formulation i.e. Prak-20 containing *O.turpethum* as one of the ingredients reported significant hepatoprotective activity.
- 2) **Anti inflammatory** - Trivrit has anti inflammatory effect [Kohli K.R. *et al*, A comprehensive review on *Trivrit*, Indian J. Pharma Sci Dec 2010, 1/4]
- 3) **Anti Cancer & Antioxidant Activity** - The effect of methanolic extract of *O.Perculina turpethum* stems on dimethylbenz (a) anthracene (DMBA) induced breast cancer rats were studied. The oral administration of MEOT remarkably reduced the lipid peroxidation activity and increased the antioxidants level in drug treated animals and decreased tumour weight significantly (P<0.05) which shows the antioxidant property of MEOT and protective role against breast cancer. [C. Anbuselvam *et al*, protective effect of *Operculina turpethum* against 7, 12 DMBA induced oxidative stress with respect to breast cancer in experimental rats, Chemo-Biological interactions Vol. 168, 3, (2007) 229-236].

एरण्ड *Ricinus Communis*

| | |
|------------|---|
| गण | - भेदनीय, स्वेदोपग, अंगमर्द प्रशामन, मधुरस्कन्ध (च.) विदारिगंधादि, अधोभागहर, वातसंशामन (सु.) |
| कुल | - एरण्ड कुल |
| Family | - Euphorbiaceae |
| Latin Name | - <i>Ricinus (a little tick) Communis</i> (Common) |
| English | - Castor plant |

| | |
|---|---|
| संस्कृत | - श्वेत - एरण्ड, गंधर्वहस्त, चित्रा, वातारि रक्तवर्ण - व्याघ्रा, नागकर्ण, व्याघ्रकर, हस्तिकर्ण, करपर्ण |
| मराठी | - एरण्डी |
| परीचय | - गुल्म 2-3 मीटर उंच, पत्र - हरीत किंवा भूरकट (Brown) वर्णाचे मोठे, खण्डीत बोटांच्या सारखे. दंठल - 10-30 सेमी लांब, पुष्प - एकलिंगी 0.75 सेमी व्यासाचे. फल - कंटक युक्त, द्विशिरा युक्त बीज - आयताकार, चमकणारे, धुसर - कृष्णाभ. |
| जाती | - (1) श्वेत (a) लहान - मूळ व तैल उपयोगी (b) मोठी - पत्र उपयोगी (2) रक्त - तैल अधिक कार्यकर |
| आयुनुसार | - (1) एक वर्षीय (annual) (2) बहुवर्षीय (Perennial) फल व बीज मोठी असतात. |
| उत्पत्ती स्थान | - भारतात सर्वत्र |
| Chemical composition- Stable oil 45%, sugar, white juice and salt 10%, seeds contain toxic element ricin. It may lead to death. Three terpenoids and a tocopherol related compounds found named 19-hydrocasba-3, 7, 11-trein-one, 6- α -hydroxy-20(29)-in-3-one and trimethyl tridecyl. | |
| गुणधर्म | - गुण - स्निग्ध, गुरू, तीक्ष्ण, उष्ण रस - मधूर, कटू, कषाय विपाक - मधूर वीर्य - उष्ण प्रभाव - विरेचन |
| कर्म | - वातकफशामक, उष्ण वीर्यामुळे पित्तवर्धक परंतु मधूर रसामुळे पित्तशामन करण्याचे कार्य म्हणून वातकफज व्याधीमध्ये शमनासाठी तर पित्तप्रधान व्याधीमध्ये विरेचनासाठी. |
| पचनसंस्थान | - उष्ण गुणांमुळे पाचन व तीक्ष्ण गुणांमुळे भेदन कार्य, जलोदर, उदरशूल, कृमी, यकृतदाल्युदर, अर्श व्याधीमध्ये उपयुक्त. |
| रक्तवहसंस्थान | - हृदय, शोथहर |
| स्वसवसंस्थान | - उष्ण-तीक्ष्ण गुणांमुळे तमकश्वासामध्ये उपयोगी |
| मूत्रवहसंस्थान | - मूत्रकृच्छ्र व मूत्राशय शूल, मूत्रशोधनाचे कार्य |
| मज्जावहसंस्थान | - वातशामक, रसायन कार्य करणारा, वेदनाशामक, मेध्य. पक्षाघात, अर्दित, गृध्रसी, कम्पवात, शिरःशूल यांत उत्तम कार्य, वेदनास्थापक व अनुलोमन. |

| | | |
|-------------|--|---|
| आमवात | - आमवातामध्ये एरण्ड तैल ही सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा. | |
| सात्मीकरण | - बल्य रसायन कार्य करणारा, दौर्बल्य नाश, कामलामध्ये पत्रस्वरस, | |
| प्रयोज्यांग | - मूल, पत्र, बीज, तैल | |
| मात्रा | - मूल - 3-6 ग्रॅम, बीज - 2-6 | पत्र - 10-20 ग्रॅम, तैल - 20-50 मिली |
| सातोगामित्व | - दोष - वात कफ पित्त मल - पुरीष शोधन, कृमीहर | धातु - शुक्र (वाजीकर) रस, रक्त, मज्जा अवयव - आंत्र, संधी (आमवात) |

Some Researches -

Antibacterial Activity - Significant susceptibility was recorded by most of the organisms tested (*Klebsiella pneumonia*, *proteus vulgaris*, coagulase negative staphylococcus, *pseudomonas aeruginosa* and *E.Coli*. [Jombo & Enenebeaku, Nigerian Joun of Phys. Sci 23(1-2): 55-59, 2008, Antibacterial profile of fermented seed extracts of *Ricinus communis*.]

Hepatoprotective Activity - *Ricinus communis* was evaluated for the hepatoprotective, choleric and anticholestatic activity. An ethanol extract showed significant protection against galactosamine to induced hepatic damage. It also showed dependent choleric and anti-cholestatic activity. Two active compounds were isolated i.e. ricinine and N-demethyl-ricinine. N-demethylricinine was found more effective and reversed the biochemical changes (SGOT, PT etc.) [Visen PK *et al*, Hepatoprotective Activity of *R.Communis* leaves *Pharmaceutical Biology* Vol-30(4);1992,pp-241-25].

Anti-inflammatory activity - Anti-inflammatory and free radical scavenging (सफाई) activities of methanolic extract *R.Communis* (RCM) was studied. The RCM showed significant free radical scavenging (सफाई) activity by inhibiting lipid peroxidation initiated by carbon tetrachloride and ferrous sulphate in rat liver and kidney homo-genates. RCM root possess significant anti-inflammatory activity in acute and chronic inflammatory models of rats. The observed pharmacological activity may be due to the presence of phytochemicals like flavonoids, alkaloids and tannins present in the plants extract. [Raju Ilavarason *et al*, anti-inflammatory and Free radical scavenging activity of *R.Communis* root extract, *Journal of ethanopharmacology*, Vol. 50(3); 2006, pp, 478-480]

Antidiabetic Activity - The antidiabetic activity of 50% ethanolic extract of roots of *Ricinus communis* along with its biassary-guided purification was studied. 500 mg/kg body weight dose found effective. It showed favourable effects not only on fasting blood glucose, but also on total lipid profile and liver and kidney functions on 10th and 20th day. [Shokeen P *et al*, Antidiabetic activity of 50% ethanolic extract of *R.Communis* and its purified fractions, *food and chemical toxicology*, 46(11)-3458-66 (2008)].

Anti-asthmatic Activity - The study was carried out to evaluate antiasthmatic activity of the ethanol extract of *R.Communis* root (ERCR) on milk induced leucocytosis and eosinophilia

in mice, egg albumin induced mast cell degranulation in mice and passive cutaneous anaphylaxis in rats.

ERCR decreases the difference in leucocytes and eosinophil count. Decrease in leucocytes and eosinophil is mediated by adaptogenic and type-I hypersensitivity hence ERCR may be useful in allergic condition. ERCR significantly protect mast cell degranulation comparable to disodium chromoglycate which indicates that ERCR effective in type I hypersensitivity reactions and effective in stabilizing mast cell. ERCR shows antihistaminic and anti-inflammatory mechanism.

Phytochemical screening of ERCR revealed the presence of steroids, saponin, alkaloids, flavonoids and glycosides. Saponin are reported to posses mast cell stabilizing. Several flavonoids are responsible for smooth muscle relaxant and bronchodilator activity and antihistamine activity. [Taur D, Patil R, Antiasthamatic activity of R. Communis roots, Asian Pacific Journal of Tropical Biomedicine (2011) S13-S 16.]

आरग्वध *Casia Fistula* Linn

| | |
|--------------|--|
| गण | - कुष्ठघ्न, कंडूघ्न, विरेचन, तिक्तस्कंध (च) आरग्वधादि, श्यामादि, अधोभागहर (सु.) |
| कुल | - शिम्बी (Leguminosae) <u>उपकुल</u> - पुतिकरंज (Caesalpinoideae) |
| Family | - Caesalpinoid (Italian botanist) |
| Latin Name | - Cassia (Greek word name of plant) Fistula (tube) |
| English Name | - Purging Casia |
| संस्कृत | - आरग्वध, आरोग्यशिम्बी, राजवृक्ष, शम्पाक |
| मराठी | - अमलतास, बहावा |
| परीचय | - वृक्ष - 8 ते 10 मीटर, खोड - सरळ, त्वचा मऊ हरीत, धुसर किंवा तांबूसवर्ण, पत्र - संयुक्त 0.33 मीटर लांब, 8 ते 16 च्या जोडीने, पुष्प - पीतवर्णाचे, सुगंधीत, पाच दल व दहा पुंकेसर युक्त, फल - 0.33 ते 1 मीटर लांब, 2.5 से. मी. रूंद, कठीण अनकुचीदार, अपक्व अवस्थेत हिरव्या रंगाचे, पक्वावस्थेत कृष्णवर्णाचे, मज्जा - कृष्णवर्णाची, बीज - अधिक, मऊ, चपटे, धुसरवर्णाचे. |

Chemical Composition: Anthroquinone, glucosides, sennosides A & B, Rhein, barbaloin, aloin, formic acid, butyric acid, oxalic acid, tannin, pectin. Pulp contain protein (19.9%), carbohydrate (26.3%), arginine, leucine, methionine, phenylalanine, tryptophan, aspartic, glutamin acid.

Flowers contain Aurantiamide acetate (0.011), β -sitosterol (0.006) and its β D glucoside(0.02%).

Roots contain 7-methylphscion, butilinic acid and β -sitosterol.

The stem bark contains two flavonol glycosides 5, 7, 3', 4'- tetrahydroxy-6, 8-dimethoxyflavone-3-O- α -arabino pyranoside, 5,7,4'-trihydroxy-6,8,3' trimethoxyflavone-3O- α -L-rhamnosyl. (1 \rightarrow 2)-O-B-D-glyco pyranoside (C₃₀H₃₆O₁₈ m.p. 210⁰) and xanthone glycoside.

The cuticular wax of leaves contains hentria contanoic, triacontaneic, nonacosanoic and heptacosanoic acid. The seed oil contains cyclopropenoid fatty acids, viz. Vernolic, malvalic and sterculic acid. [Mohd. Danish *et al*, J.Nat, Plant Resiur, 2011, 1(11) 101-118].

| | | | |
|-----------------|--|----------------------------|--|
| उत्पत्ती स्थान | - भारतात सर्वत्र | | |
| गुणधम | - गुण - गुरू, स्निग्ध | रस - मधूर, तिक्त | |
| | विपाक - मधूर | वीर्य - शीत | |
| कर्म | - मधूर व स्निग्ध गुणामुळे वातशामक, शीतवीर्यामुळे पित्तशामक विरेचक असल्याने कफ व पित्त शोधक. | | |
| पाचन संस्थान | - यकृत उत्तेजक, मृदू विरेचक, विबंध, कामला व्याधीमध्ये उपयुक्त | | |
| रक्तवह संस्थान | - हृद्य (Cardiac protective), शोथघ्न, रक्तशोधक, रक्तस्रावजन्य विकार (Hemorrhagic disorders), वातरक्त | | |
| श्वसन संस्थान | - मधूर व स्निग्ध गुणामुळे कफनिःस्सारक, शुष्क कासामध्ये उपयोगी. | | |
| मूत्रवह संस्थान | - मूत्रल, बीज प्रमेहघ्न | | |
| मज्जा संस्थान | - शूलहर | | |
| त्वचा | - कुष्ठघ्न, शीत | | |
| प्रयोज्यांग | - मज्जा, मुलत्वक, पत्र, पुष्प | | |
| मात्रा | - मज्जा - 10 ते 20 ग्रॅम, विरेचनासाठी - 20 ते 40 ग्रॅम, कवाथ (मूलत्वक) - 20 ते 40 मिली पुष्प - 50 ते 10 ग्रॅम. | | |
| स्रोतोगामित्व | - दोष - पित्त, कफ | धातु - रक्त (यकृत उत्तेजक) | |
| | मल - पुरीष (विरेचक) | अवयव - आंत्र | |

Some Researches:

Leukotriene inhibition activity - Kumar *et al*, (1998) studied that methanol extract of fruits of *C.fistula* inhibited the 5-lipoxygenase catalysed formation of leukotriene-B₄ in bovine polymorphonuclear leukocytes (IC₅₀ value of 38 mcg/ml). Lipid peroxidation in bovine brain phospholipids liposomes induced with 2, 2'-azo-bis (2-amidino-propane) dihydrochloride (AADH) was inhibited. A linear correlation was obtained between the

effects of the extracts in the 2 assays a redox-based mechanism for the inhibition of 5-lipoxygenase enzyme. [Kumar *et al*, Physiotherapy research, 1998, 12(7)-520-528].

Antioxidant activity - G. Manonmani *et al* (2005) reported that aqueous extract of *C.fistula* flowers (ACF) have antioxidant effect in alloxan induced diabetic rats. An appreciable decrease in peroxidation products viz. thiobarbituric acid reactive substance, conjugated dienes, hydroperoxide was observed in heart tissues of ACF treated diabetic rats. The decreased activities of key antioxidant enzymes such as superoxide dismutase, catalase, glutathione peroxidase, glutathione reductase and glutathione in diabetic rats were brought back to near normal range upon ACF treatment. These results shows that ACF has got promising antioxidative activity. [G. Manonmania *et al*, Journal of Ethnopharmacology (2005), 97, 39-42].

Raju Ilavarasan studied the antioxidant activity of aqueous (CFA) methanolic extracts (CFM) of *C.fistula* and showed significant radical scavenging by inhibiting lipid peroxidation initiation by CCL_4 and FeSO_4 in rat liver and kidney homogenates. [Raju I lavarason *et al*, Anti-inflammatory antioxidant activities of *C.fistula* linn bark extracts, Afr J. Trad CAM (2005) 2(1): 70-85].

Anti-inflammatory activity -

T. Bhakta *et al* (1999) evaluated that the extract of leaves of *C.fistula* was tested for anti-inflammatory effects and compared with phenylbutazone, using carageenan-histamine and dextran induced paw oedema assays in rats. Potent anti-inflammatory activity against all phlogistic agents was noted. [T Bhakta *et al*, Journal of Medicininal & Aromatic plants sciences, 2001, 22/23 (4A/1A), 70-72].

Raju Ilavarason *et al* (2005) noted the anti-inflammatory activity of aqueous (CFA) & methanolic extracts (CFM) of *C.fistula*. these extracts found to possess significant anti-inflammatory effect in both acute & chronic model. [Raju Ilavarason, Afr. J. Trad CAM (2005) 2(1): 70-85].

Hypocholesterolemic and Hypoglycemic activity -

Nirmal *et al* (2008) reported the hypocholesterolemic and hypoglycemic effects of the hexane extract of stem bark of *C.fistula* in normal & strepto zotocin induced diabetic rats. The extract at 0.45 g kg^{-1} was found to be effective comparable with glibenclamide. The lipid profile (Total cholesterol, TG, HDL, LDL, VLDL) after treatment showed remarkable improvement to the diabetic control rats. Antioxidant and polyphenol content present in extracts might contribute to the hypoglycemic and antilipidemic properties. [Nirmal *et al*, Int. Journal of Pharmacology, 2008 4(4), 292-296].

Antitumour activity -

The effects of methoniolic extract (ME) of *C.Fistula* seed on the growth of Ehrlich ascites carcinoma (EAC) and on the life spam of tumour bearing mice were studied. ME treatment showed on increase of life spam and decrease in the tumour volume and viable

tumour cell count in the EAC tumour lasts. [M.Gupta *et al*, Journal of Ethnopharmacology, 2000, 72, 151-156].

K. Vasudevan *et al* (2008) investigated the chemopreventive efficacy of *C.fistula* bark extracts in 7, 12-demethyl benz(a)anthracene (DMBA) induced hamster buccal pouch carcinogenesis. Oral administration of *C.fistula* bark extracts to DMBA painted animals completely prevented the formation of oral squamous cell carcinoma. [K. Vasudevan *et al*, Int. Journal of Chem. Sciences 2008, 6(3), 1341-1354]

कुटकी *Picrorrhiza Kurroa*

| | |
|---------------|---|
| गण | - भेदनीय, लेखनीय, स्तन्यशोधन, तिक्तस्कंध (च)पटोलादि, पिप्पल्यादि, मुस्तादि (सु.) |
| कुल | - तिक्त कुल |
| Family | - Scrophulariaceae (Fig wort) like scrophula. |
| Latin Name | - <i>Picrorrhiza</i> (Palmented root) <i>Kurroa</i> |
| English | - Helebore, <i>picrorrhiza</i> |
| संस्कृत | - कटुका, तिक्ता, कटुकरोहिणी, मत्स्यपित्ता, शतपर्वा, कृष्णा, महौषधी |
| मराठी | - कुटकी, काळी कुटकी |
| परीचय | - बहुवर्षायु क्षुप मुळ्यासारखे (Raddish). मूल-बांधा खर, पत्र - दंतूरीत, 5-10 सेमी लांब, गोलाकार टोक, पुष्प -श्वेत, डंठल (Stalk), कठीण, जून-जुलै मध्ये. मूल - अंगुलीसम, जाडी, 15-25 सेमी लांब. बाजारात 2.5-5 सेमी लांबीचे तुकडे विकायला असतात. तांबूस धुसर वर्णाचे, सहज तुटणारे, आतमध्ये कृष्णवर्णाचे. |
| उत्पत्तीस्थान | - हिमालय, कश्मीर ते सिक्कीम पर्यंत 2-4 हजार मीटर उंचावर. सध्या ही वनस्पती दुर्लक्षामुळे लोप पावली जात आहे. त्यामुळे हिमाचल सरकारने सलूनी वन विभाग, चम्बा मध्ये लागवट सुरू केली. |

Chemical Composition: - Kutkin-bitter glucoside, isolated D-Mannitol and some steroids. A non bitter product Kurrin, besides vanillic acid, Kutkisteral, Picroside-II has been isolated and shown hepato-protective activity. Apocynin is a potent NADPH oxidase inhibitor and anti-oxidant and anti-inflammatory activity. Androsin has anti-asthmatic effect.

| | | |
|-------------|---|-------------|
| गुणधर्म | - गुण - रूक्ष, लघू | रस - तिक्त |
| | विपाक - कटू | वीर्य - शीत |
| कर्म | - कफपित्त शोधक | |
| पचन संस्थान | - यकृत उत्तेजक व पित्तवृद्ध करणारा (Cholagogue), कृमीघ्न, विरेचक कामला (अवरोधजन्य), विबंध, जलोदर. | |

| | |
|---------------------|---|
| रक्तवह संस्थान | - पित्तवहस्रोतोगामी व रक्तवहस्रोतोगामी, हृदगती कमी करणारा, हृदय बल वाढविणारा (increases heart strength & blood pressure), रक्तशोधक, नाडीगती कमी करणारा, प्रमेह व पांडूमध्ये उपयोगी. |
| श्वसनवह संस्थान | - कफनिःसारक, कफ व श्वास रोग शामक मूत्रल |
| त्वक | - दाह व कंडू शामक |
| सात्मीकरण | - अल्पमात्रेत रसायन, अधिक मात्रेत लेखन करणारा |
| प्रयोज्यांग | - मूल |
| भेसळ (Adulteration) | - तिक्त रसात्मक द्रव्य, नारिकेल मूल |
| मात्रा | - 0.75 ग्रॅम ते 1 ग्रॅम (अल्पमात्रा) 3 ग्रॅम ते 6 ग्रॅम (विरेचक, जीर्ण ज्वर) |
| स्रोतोगामित्व | - दोष - कफ, पित्त धातु - रस, रक्त, मेद मल - पुरीष अवयव - हृदय, यकृत |

Some Researches:

Immunostimulatory activity - A 50% ethanolic extract of *Picrorrhiza Kurroa* Royle ex Benth leaves (PKLE) was found to stimulate the cell-mediated and humoral components of the immune system as well as phagocytosis. PKLE exhibited no mitogenic activity but augmented the responsiveness of murine splenocytes to T-cell mitogens phytohaemagglutinin (PHA) and concanavalin A (Con-A) & B cell mitogen lipopolysaccharide. [M.L. Sharma, *et al*, Journal of Ethnopharmacology (1994, 41(3), 185-192].

Antidiabetic activity - An alcoholic extract of *P. Kurroa* was found to lower blood glucose in basal condition and after heavy glucose load in normal rats. *P. Kurroa* extract was also found to reduce the increase of blood sugar in alloxan-induced diabetic rats. The extract was also found to reduce the increased blood urea nitrogen and S.lipid peroxides in alloxan-induced diabetic animals and to inhibit the body weight reduction and leukopenia. [K.L. Joy, *et al*, Journal of Ethnopharmacology (1999), 67(2), 143-148].

Hepatoprotective activity - Kutkins are group of pharmacologically active compounds present in *P. Kurroa* the chemical composition of picrorrhiza has been studied and active constituents are group of iridoid glycosides known as picrosides and kutkosides, studies have shown that kutkins are more potent than silymarin (active constituent and hepatoprotective constituent of *Silybum marianum*) as far as hepatoprotective activity is concerned. [A.P. Singh, Kutkins A review of chemistry and pharmacology].

Shetty *et al*, studied the standardized extracts of *P. Kurroa*, in experimental non alcoholic fatty liver disease (NAFLD) correlating with those seen in humans and found that the extract of *P. Kurroa* regressed several features of NAFLD like lipid content of the liver tissue, morphological regression of fatty infiltration, hypolipidemic activity and reduction of cholestasis. [Sapna N. Shetty, *et al*, Journal of Ayurveda & Integrative Medicine, 2010, 1(3), 203-210].

Cardioprotective activity - D. Rajaprabhu *et al* (2007), studied the protective effect of *P.Kurroa* on antioxidant status and cardiomyopathy in rats. The results of this study indicated the cardioprotective effect of *P.Kurroa* against adrimycin induced cardiomyopathy. [Rajaprabhu *et al*, J. Med. Plants Res. 2007, 1(4), PP080 085].

जयपाल *Croton tiglium*

| | |
|------------------------------|--|
| कुल | - एरण्ड कुल |
| Family | - Euphorbiaceae |
| Latin Name | - Croton-a tick Tiglium-a small beam |
| English Name | - Kroton |
| संस्कृत नांव | - दंतीबीज, रेचक, कुम्भीबीज, शोधीनी |
| मराठी | - जमालगोटा |
| परीचय | - सदाहरीत वृक्ष, पत्र - 5 10 cm लांब, दीर्घवृन्त, श्लक्ष्ण, पुष्प-एकलिंगी, हरीतपीत वर्णाचे, त्रिकोणीय, काल-उन्हाळा, झुबक्याने (in clusters), फल - 2.5 cm लांब, अंडाकार, श्वेत, काल - हिवाळा, बीज - धुसर (Brown) |
| उत्पत्तीस्थान | - भारतात सर्वत्र, लक्षद्वीप-मालीदीव, श्रीलंका, चीन. |
| Chemical Composition: | - Seeds contain tiglinic acid, crotonic acid, crotonotic acid, croton oil. It also contains alkaloids, flavonoids, tannin, phlobatanin, terpenoid, saponin. Isoguanosive was isolated which has antitumour activity. |
| गुणधर्म | - गुण - गुरू, स्निग्ध, तीक्ष्ण रस - कटू विपाक - कटू वीर्य - उष्ण कर्म - कफवातहर |
| पचन संस्थान | - अग्निवृद्धीकर, विरेचक, कृमीघ्न, मलबद्धता, जलोदर. |
| रक्तवह संस्थान | - विसर्प, अवस्थेत उपयोगी, intra cranial hemorrhage, to reduce water content of the blood in many condition. [Ayurvedic pharmacology & Therapeutic uses of medicinal plants Dravyaguna vigyan. V.M. Gogate, pp. 614] |
| सात्मीकरण | - विषघ्न |
| प्रयोज्यांग | - बीज, बीज तैल |
| मात्रा | - बीज 30 ते 60 मिग्रॅम, तैल 0.5 ते 1 बिंदु |
| स्रोतोगामित्व | - दोष - कफ वात धातु - रस मल - पुरीष अवयव - आंत्र |

विषाधता (Antitode) - मधूर रसात्मक शीत वीर्य द्रव्य उदा. दुग्ध, तक्र, घृत, निम्बू पाणी
बीज शोधन . - बीज गोदुग्धात 1-2 तास उकडावे.

त्यानंतर गरम पाण्यात धूवून निम्बू स्वरसात, बूडवून ठेवावे.

नंतर बीज सूर्यप्रकाशात वाळवून घ्यावे व उपयोगासाठी सुरक्षीत ठेवावे

Researches:

Anticancer activity - The studies on anticancer active constituents from *C.tiglium* carried out. It had been used to cure malignant, arthritis. Studies included three parts:

- i) Studies on the compounds and anticancer activity and found that this plant had good inhibition to ten tumours cells and it may be those active compounds are diterpenoids esters.
- ii) Constituents of essential oil from leaves were analyzed by GC-MS and were studied on the anticancer activity and it has good anticancer activity to HCT 116.
- iii) Content of metal microelement of *C.tiglium*, it is rich in K, Cu, Fe, Zn, Ca, Mg, Mn, Al, S₂, Na.



6

बस्ति (Enema Therapy)

निरूक्ति :

वस - निवासे, वस - आच्छादने, वसति मूत्रम् अत्र (अमरकोश-रामाश्रमी टीका).

बस्ति - वस्तेः आवृणोति मुत्रं । वस-तिच्। प्रत्यय.

व्याख्या:

बस्तिना दीयते इति बस्तिः। अ.ह.सू. 19.1

प्राणीमात्राच्या मुत्राशयाद्वारे देण्यात येते म्हणून या क्रियेला बस्ति म्हणतात.

तसेच बस्तिद्वारे शरीरात अंतःप्रविष्ट औषधीद्रव्य शरीरात वास (टिकून राहते) करते म्हणून या क्रियेला बस्ति म्हटले जाते.

व्याधि व रुग्णानुसार गुदमार्गाद्वारे औषधी देण्याची क्रिया बस्ति होय.

परिचय (Introduction)

आयुर्वेदातील बस्ति ही प्रमुख चिकित्सा आहे. आचार्यांनी बस्तिला अर्धचिकित्सा संबोधून चिकित्सेतील महत्त्व स्पष्ट केले. बस्ति क्रिया आधुनिकशास्त्राच्या Enema पेक्षा कितीतरी व्यापक आहे. केवळ पक्वाशय किंवा गुदमार्गाचे शोधन करणारी क्रिया म्हणजे बस्ति नव्हे. बस्तिक्रियेचे गूढ आधुनिक शास्त्राच्या तत्वांवर बसवणे कठिण आहे. ते प्रत्यक्षात विश्वासाने अनुभवण्यासारखे आहे.

बस्ति क्रिया गुदमार्गाव्यतिरिक्त योनिमार्गाने, मूत्रमार्गाने दिली जाते. एवढेच नव्हे तर व्रणांमध्ये सुद्धा बस्ति दिली जाते. (सु.चि.35/1)

उपयोगिता (Utility): (सु.चि. 35/1-2)

- (1) बस्ति ही केवळ मलशोधनाची क्रिया नसून शरीरातील दोषांची शोधन करणारी क्रिया आहे. शोधनासोबतच बस्ति शमनचिकित्सेसाठी तेवढीच उपयुक्त आहे.
- (2) बस्ति स्थूलांना कृश करणारी व कृश व्यक्तीत बृंहण करणारी आहे.
- (3) शुक्र वृद्धिसाठी बस्ति क्रियेचा उपयोग केला जातो. उदा. यापन बस्ति.
- (4) नेत्र्यकर तथा वर्ण्यकर कार्य बस्तिद्वारे होते.
- (5) वयःस्थापन (Rejuvenation) करण्याचे कार्य बस्तिद्वारा केले जाते.
- (6) बस्ति क्रियेद्वारे बल वृद्धी केली जाते.
- (7) व्याधिनुरूप बस्ति द्रव्यांची संरचना करून व्याधिनाश करण्यासाठी बस्ति उपयुक्त आहे.

महत्त्व (Importance): च.सि.1/40-41, सु.चि. 35/3

सर्व व्याधि त्रिदोषांमुळे होत असले तरी कफ व पित्त पंगु आहे दुष्ट दोषांचे वहन करण्याचे काम वातच करत असतो. त्यामुळे वातास त्याचे प्राकृत स्वरूप व गती प्राप्त करून देणे आवश्यक असते. वायू ची सर्वोत्तम चिकित्सा बस्ति आहे. त्यामुळे पर्यायाने सर्व व्याधिंमध्ये बस्तिचे महत्त्व अनन्यसाधारण आहे. म्हणूनच बस्तिकर्मास अर्धी चिकित्सा तर कधी पूर्ण चिकित्सा संबोधल्या जाते. यावरून बस्तिचे महत्त्व लक्षात येते.

नानात्मज व्याधिंमध्येही वातव्याधीची संख्या (80) इतरांच्या तुलनेत अधिक आहे. त्यामुळे बस्ति चिकित्सा महत्त्वपूर्ण मानली जाते.

बस्तिर्वाते कफे पित्ते रक्तेच शस्यते।

शरीरोपचयं वर्ण बलमारोग्यमायुषः।

कुरुते परिवृद्धीं च बस्तिः सम्यगुपासितः॥ सु.चि. 35/4

इह खलु बस्तिर्नानाविधद्रव्यसंयोगाद्योषाणां संशोधनशमन

संग्रहणानि करोति, क्षीणशुक्रं वाजीकरोति, कृशं बृहयति,

स्थूलं कर्शयति, चक्षुः प्रणयति, वलीपलितम् पहन्ति;

वयः स्थापयति॥

सु.चि. 35/3

बस्ति ही केवळ वाताचीच चिकित्सा नाही तर कफ, पित्त, रक्त तसेच संसर्ग, सन्निपातज व्याधिंचीही चिकित्सा आहे. त्यामुळे पंचकर्म उपक्रमांमध्ये बस्तिचे महत्त्व अधिक आहे. म्हणूनच कुष्ठ चिकित्सेमध्ये एकीकडे बस्ति निषेध असतांनाही कुष्ठाची चिकित्सा करतांना विशिष्ट अवस्थांमध्ये बस्ति क्रिया सांगितली गेली आहे आणि अनुभवाने ते सिद्धही झाले आहे.

बस्ति प्रकार

(A) कर्मभेद : बस्तिचे चिकित्सेमधील कार्यानुसार भेद केले आहेत. सुश्रुत, वाग्भट व शाड्गर्धर यांनी वेगवेगळ्या कर्मानुसार बस्तिचे भेद वर्णन केलेले आहे.

(1) शोधन बस्ति -

शोधनद्रव्यानिः क्वाथास्तत्कल्कस्नेहसैधवैः।

युक्ताः खजेन मथिता बस्तयः शोधनाः स्मृताः॥ सु.चि. 38/81

ज्या बस्तिद्वारे दोष तथा मल शरीरा बाहेर काढले जातात अशा प्रकारची बस्ति शोधन बस्ति होय. या बस्तिमध्ये शोधन करणारी तीक्ष्ण द्रव्ये वापरली जातात.

(2) लेखन बस्ति -

त्रिफलाकवाथगोमूत्र क्षौद्रक्षारसमायुताः।

ऊषकादिप्रतीवापां बस्तये लेखनाः स्मृताः।

सु.चि. 38/82

ही मेदोधातु वृद्धि झाल्यास मेद धातुचे लेखन करणारी बस्ति होय. या बस्तिमध्ये उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष व तिक्त-कषाय गुणांचा द्रव्यांचा वापर केला जातो. उदा:- त्रिफला कवाथ, गोमूत्र, मधू क्षार युक्त बस्ति.

(3) स्नेहबस्ति -

बृंहणद्रव्यनिष्कवाथाः कल्कैर्मधुरकैर्युताः।

सर्पिर्मांसरसोपेता बस्तयो बृंहणाः स्मृताः।।

सु.चि. 38/83

शरीरामध्ये रूक्षता उत्पन्न झाल्यास स्नेहप्रधान बस्ति दिली जाते. शरीरात स्नेहन करण्यासाठी उपयुक्त ठरते. वारंवार शोधन केल्याने शरीरामध्ये रूक्षता उत्पन्न होते अशावेळी स्नेहबस्ति उपयुक्त ठरते. (च.चि. 7)

(4) बृंहणबस्ति -

ऐतेष्वे च योगेषु स्नेहाः सिद्धाः पृथक् पृथक्।

समस्तेष्वथवा सम्यग्विधेयाः स्नेह बस्तयः।।

सु.चि. 38/88

बृंहण द्रव्य (विदारीकंदादि गण), मधुर द्रव्य, घृत, तैल तथा मांसरस याचे योजन करून शरीर बलवान करण्यासाठी जी बस्ति दिली जाते त्या बस्तिला बृंहण बस्ति म्हणतात.

अशाप्रकारची बस्ति ज्या व्याधिच्या संप्राप्तीमध्ये मांसशोष (Muscle wasting), धातुक्षय यासारखी लक्षणे उत्पन्न होतात तेथे अधिक उपयुक्त आहे.

बस्तिभेदः

| कर्मभेद | संख्याभेद | अधिष्ठानभेद | द्रव्यभेद |
|-----------------------|---------------|----------------|-------------|
| (पुढील तालिकाप्रमाणे) | (1) कर्म - 30 | (1) पक्वाशयगत | (1) निरूह |
| | (2) काल - 16 | (2) गर्भाशयगत | (2) अनुवासन |
| | (3) योग - 8 | (3) मूत्राशयगत | |
| | | (4) व्रणगत | |

कर्मबस्ति भेदः

| सुश्रुत | वाग्भट | शाङ्गधर | चरक |
|------------|--------------|--------------|---------------|
| (1) शोधन | (1) उत्कलेशन | (1) उत्कलेशन | (1) वातघ्न |
| (2) लेखन | (2) दोषहर | (2) दोषहर | (2) बलवर्णकृत |
| (3) स्नेहन | (3) शमन | (3) शोधन | (3) स्नेहनीय |
| (4) बृंहण | | (4) शमन | (4) शुक्रकृत |
| | | (5) लेखन | (5) कृमिघ्न |
| | | (6) बृंहण | (6) वृषत्वकृत |
| | | (7) पिच्छा | |
| | | (8) दीपन | |

(5) उत्कलेशन बस्ति - दोषांचे विलयन करून दोष बाहेर पाडण्यास प्रवृत्त होतात.

उत्कलेशनं शुद्धिकरं दोषाणां शमनं क्रमात्।

त्रिधैव कल्पयेद्वस्निमित्यन्तेऽपि प्रचक्षते।। अ.ह.सू. 19/61

(6) दोषहर बस्ति - ही शोधन बस्ति आहे. दोषांना त्वरीत बाहेर काढण्यासाठी या बस्तिचा उपयोग केला जातो. उदा. निरूह बस्ति.

(7) शमन बस्ति - वृद्ध दोषांना शमन करण्यासाठी उपयुक्त बस्ति. उदा. मात्राबस्ति दोषांनुसार.

(8) लेखन बस्ति/कर्षण बस्ति - प्रामुख्याने स्थूल व्यक्तींना कृश करण्यासाठी या बस्तिचा चिकित्सेत उपयोग केला जातो.

सध्याच्या काळात स्थौल्याचे रुग्ण अधिक वाढत आहे. विविध प्रकारचे Junk food, अत्याधिक मानसिक तणाव, Thyroidism इ. अनेक कारणे स्थौल्य उत्पन्न करणारी आहेत. परंतु चिकित्सकांना कर्षणबस्तिचा उपयोग करतांना मेदधात्वाग्निमांड्याचा जरूर विचार करून चिकित्सेची उपाय योजना ठरवावी.

(9) रसायनबस्ति - नावाप्रमाणे रसायनकर्मासाठी वापरली जाणारी बस्ति होय.

(10) वाजीकरणबस्ति - लैंगिक सामर्थ्य वाढविण्यासाठी तथा शुक्रवृद्धिसाठी या बस्तिचा वापर केला जातो.

(11) बृंहणबस्ति - कृश व्यक्तींसाठी पोषक व बृंहण करणारी बस्ति.

(B) द्रव्यभेदानुसारः

बस्तिकर्मास उपयुक्त औषधीमध्ये प्राधान्याने कोणती द्रव्ये वापरली जातात (क्वाथ प्राधान्य/स्नेह

प्राधान्य) यावरून बस्तिंचे प्रमुख दोन प्रकार आहेत. (1) निरूहबस्ति (2) अनुवासनबस्ति. यामध्ये बस्तिच्या सर्वच प्रकारांचा समावेश होतो म्हणून हे भेद प्रधान मानले जातात.

(1) निरूहबस्ति / आस्थापन बस्ति -

स दोष निर्हरणात् शरीरनीरोहणाद्वा निरूहः।

वयः स्थापनात् आयुः स्थापनात् वा आस्थापनम्।।

सु.चि. 35/18

या बस्ति कल्पनेत क्वाथाची प्रधानता असते. या कल्पनेला आस्थापन बस्ति म्हणतात. निरूह बस्तिमुळे दोषांचे निर्हरण केले जाते व व्याधिचे शमन केले जाते म्हणून निरूह बस्ति म्हणतात. तसेच आयुचे स्थापन केले जाते म्हणून आस्थापन बस्ति म्हटले जाते. यामुळे शरीर स्वस्थ ठेवले जाते व आयुची वृद्धि केली जाते.

निरूह बस्तिचे माधुतैलिक हे विकल्प आहे तर यापन, युक्तरथ, हे पर्याय आहेत. (सु.चि. 38/114-116)

(2) अनुवासनबस्ति - ज्या बस्तिमध्ये स्नेहाची प्रधानता असते त्या बस्तिला अनुवासन बस्ति म्हणतात. यालाच सुश्रुतांनी स्नेहिक बस्ति म्हटले आहे. अनुवासनबस्तिची निरूह बस्तिच्या चतुर्थांश एवढी अधिकतम मात्रा असते.

अनुवासन अपि न दुष्यति, अनुदिवसं वा दीयते इती अनुवासनः।

सु.चि. 35/18.

अनुवासन बस्ति शरीरात प्रतिदिवस दिली जाऊ शकते व शरीरात कोणताही दोष उत्पन्न करत नाही. (सु.चि. 35/18)

मात्रेच्या आधारे अनुवासन बस्तिचे 3 प्रकार आहेत. (चक्रपाणि टीका च.सि. 4/54 वर व डल्हण टिका सु.चि. 37/2 वर)

सार्धपलमानो मात्रा बस्ति रुक्तो भवति; तत्र हि षट्पलः स्नेह बस्ति रुक्तः, अनुवासनं तु त्रिपलं। सुखोपचर्यमिति चेष्टाहार नियमाभावादेव।।

(1) स्नेह बस्ति : वयानुसार बस्तिची मात्रा निर्धारित केली जाते. निरूह बस्तिच्या एक चतुर्थांश मात्रा स्नेहबस्तिची आहे.

मात्रा : 240 मिली (6 पल/24 तोळे)

(2) अनुवासन बस्ति : स्नेहबस्तिच्या अर्ध्या प्रमाणात मात्रा दिल्या जातात.

मात्रा : 120 मिली (3 पल/12 तोळे)

(3) मात्रा बस्ति : न्हस्वया स्नेहमात्रायाः मात्राबस्ति समोभवते। च.सि. 4/53

स्नेहपानाची न्हस्वमात्रा वा अनुवासन बस्तिचे अर्ध प्रमाण मात्राबस्तिसाठी वापरला जातो.

मात्रा: 60 मिली (1^{1/2} पल/6 तोळे) चिकित्सेमध्ये सोईस्कर व प्रसिद्ध बस्ति प्रकार आहे.

यथावयो निरूहाणां या मात्राः परिकीर्तीता।

पादावकृष्टास्ताः कार्याः स्नेहबस्तिषु देहिनाम। सु.चि. 37/4

(C) संख्यानुसार बस्तिभेद

वरील विविध प्रकारच्या बस्तिं व्यतिरिक्त बस्ति किती दिवस द्यावे हे निश्चित करण्यासाठी चरक व वाग्भटांनी संख्येच्या आधारावर बस्तिचे 3 प्रकार केले (च.सि.- 1-47-48)

(1) कर्मबस्ति, (2) कालबस्ति, (3) योगबस्ति.

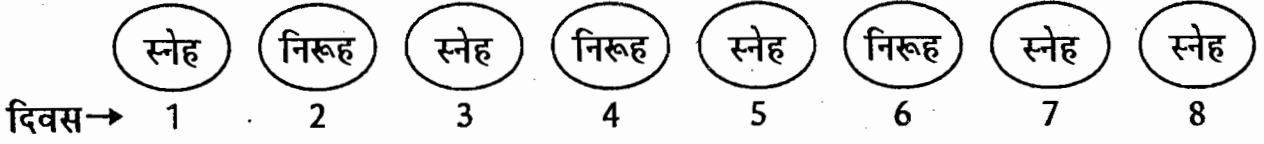
कर्मबस्ति: या प्रकारात एकूण 30 बस्ति दिल्या जातात. यामध्ये अनुवासन व आस्थापन दोन्ही बस्ति दिल्या जातात. सुरुवात स्नेह (अनुवासन) बस्तिने केली जाते. त्यानंतर व्यत्यासाने निरूह व अनुवासन 12. + 12 बस्ति दिल्या जातात व शेवटी 5 अनुवासन बस्ति देवून बस्ति बंद केली जाते. यामध्ये एकूण 12 निरूह व 18 अनुवासन बस्तिंचा अंतर्भाव केला जातो.

| | | | | | | | | |
|--------|-------|-------|-------|-------|-------|-------|-------|-------|
| दिवस → | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 |
| | स्नेह | निरूह | स्नेह | निरूह | स्नेह | निरूह | स्नेह | निरूह |
| दिवस → | 9 | 10 | 12 | 11 | 13 | 14 | 15 | 16 |
| | स्नेह | निरूह | स्नेह | निरूह | स्नेह | निरूह | स्नेह | निरूह |
| दिवस → | 17 | 18 | 19 | 20 | 21 | 22 | 23 | 24 |
| | स्नेह | निरूह | स्नेह | निरूह | स्नेह | निरूह | स्नेह | निरूह |
| दिवस → | 25 | 26 | 27 | 28 | 29 | 30 | | |
| | स्नेह | स्नेह | स्नेह | स्नेह | स्नेह | स्नेह | | |

कालबस्ति - एकूण 16 बस्ति दिल्या जातात. प्रथम स्नेहबस्ति व त्यानंतर क्रमाने निरूह व अनुवासन (स्नेहबस्ति) अशा व्यत्यासात क्रमाने 6-6 बस्ति दिल्या जातात. बस्ति चिकित्सेचा शेवट तीन स्नेह बस्तिने केला जातो. यामध्ये एकूण निरूह 6 व अनुवासन बस्ति 10 दिल्या जातात.

| | | | | | | | | |
|--------|-------|-------|-------|-------|-------|-------|-------|-------|
| दिवस → | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 |
| | स्नेह | निरूह | स्नेह | निरूह | स्नेह | निरूह | स्नेह | निरूह |
| दिवस → | 9 | 10 | 12 | 11 | 13 | 14 | 15 | 16 |
| | स्नेह | निरूह | स्नेह | निरूह | स्नेह | स्नेह | स्नेह | स्नेह |

योगबस्ति - एकूण बस्ति संख्या 8. अनुवासन बस्तिने सुरुवात त्यानंतर क्रमाने 3 निरूह व 3 अनुवासन बस्ति व्यत्यासाने दिल्या जातात. शेवटी एक अनुवासन बस्ति देवून बस्ति पूर्ण केला जातो. यामध्ये एकूण 5 अनुवासन व 3 निरूह बस्ति दिल्या जातात.



(D) अधिष्ठानभेदाने बस्ति प्रकार :

बस्ति देण्याच्या स्थानावरून बस्तिचे 4 प्रकार आहेत.

- (1) पक्वाशयगत (Rectal) - बस्तिद्रव गुदमार्गातून दिले जाते व पक्वाशयात (Large intestine) मध्ये पोहचवले जाते. चिकित्सेमध्ये अधिक वापर या बस्ति प्रकाराचा केला जातो. पक्वाशयगत बस्तिचे कार्य केवळ स्थानिक दोषांपर्यंतच मर्यादित नसून अनेक व्याधिंमध्ये आहे.
- (2) गर्भाशयगत (Uterine) - स्त्रियांमध्ये अपत्यमार्गाद्वारे दिली जाणारी बस्ति बस्तिद्रव्य गर्भाशयात पोहचवली जाते. ही उत्तरबस्ति आहे. योनिगत व गर्भाशयाच्या व्याधिंमध्ये उपयुक्त.
- (3) मूत्राशयगत (Urethrovesical) - स्त्रि-पुरूषांमध्ये मूत्रमार्गाद्वारे बस्ति दिली जाते. ही उत्तरबस्ति आहे. मूत्रमार्गाच्या व्यधिंसाठी उपयुक्त उदा. मूत्रकृच्छ्र (Urethral stricture).
- (4) व्रणगतबस्ति - व्रणमुखातून दिली जाणारी बस्ति. व्रणाचे शोधन किवा धावन व रोपण करण्यासाठी या बस्तिचा उपयोग केला जातो. आधुनिक चिकित्सेमध्ये निदानासाठी उपयोग करतांना आढळतो. (उदा. Sino graph or fistulograph)

(E) मात्राभेदाने बस्तिचे प्रकार:

बस्तिमध्ये बस्तिद्रव्यांची मात्रा कमी अधिक करून विविध प्रकारच्या बस्तिंचा चिकित्सेमध्ये उपयोग केला जातो. बस्तिची मात्रा वयानुसार असली तरी काही बस्ति विशिष्ट प्रमाणातच देण्याचे सांगितले आहे. मात्रा भेदाने अनुवासन बस्तिचे 3 प्रकार आहेत त्याचे वर्णन आधीच केले गेले आहे.

- (1) स्नेह - 240 मिली
- (2) अनुवासन - 120 मिली
- (3) मात्रा - 60 मिली

या व्यतिरिक्त काही बस्ति खालीलप्रकारे मात्रेच्या अनुषंगाने वर्णिलेल्या आहेत. त्यांचे नामकरण मात्रेच्या आधारावर केले गेले.

- (1) प्रसृत/प्रासृत यौगिकी बस्ति - ज्या बस्ति प्रसृत प्रमाणामध्ये दिल्या जातात त्यांना प्रसृत यौगिकी बस्ति म्हणतात. चरकांनी सिद्धिस्थान अध्याय 8 मध्ये प्रसृत यौगिकी बस्तिचे वर्णन केलेले आहे. उदा. क्षीरबस्ति, विडंगादि.

1 प्रसृत = 8 तोळे = 80 मिली.

- (2) द्वादश प्रसृतिकी बस्ति (सु.चि. 38/37-39) - ज्या बस्तिमध्ये द्रव्याचे एकूण प्रमाण 12 प्रसृति (96 तोळे = 960 मिली) असते त्यास द्वादश प्रसृतिकी बस्ति म्हणतात. हे बस्तिचे अधिकतम

प्रमाण आहे. माधुतैलिक बस्ति याचे उत्तम उदाहरण आहे.

मधू - 2 प्रसृत = 160 मिली

सैधव - 1 रुक्ष = 10 ग्रॅम

स्नेह - 3 प्रसृत = 240 मिली

कल्क - 1 प्रसृत = 80 ग्रॅम

क्वाथ - 4 प्रसृत = 320 मिली

आवापद्रव्य - 2 प्रसृत = 160 मिली

एकूण - 12 प्रसृत = 960 मिली

- (3) पादहीन बस्ति - पादहीन म्हणजे एक चतुर्थाश कमी करून द्वादश प्रासृतिकी बस्तिमधील एक चतुर्थाश मात्रा कमी करून जी बस्ति दिली जाते तिला पादहीन बस्ति म्हणतात. ही 9 प्रसृत (72 तोळे = 720 ml) मात्रेत दिली जाते. ही देखील मधुतैलिक बस्ति आहे.

उदा. - मधुतैले समे स्यान्ता माधुतैलिकसंज्ञितः॥ सु.चि. 38/100-101

द्रव्य - (1) मधू व तैल (4 प्रसृत) - 320 मिली

(2) एरण्डमूलक्वाथ (4 प्रसृत) - 320 मिली

(3) कल्क (1 पल) - 40 ग्रॅम

(4) सैधव (1 कर्ष) - 10 ग्रॅम

(5) शतपुष्पा - 1/2 पल - (20 मिली)

(6) मदनफळ - 1 नग - (10 ग्रॅम)

एकूण - 9 प्रसृत - (720 मिली)

पुतोयवान्यादि कल्क (अ.ह.क. 4/2) - ज्या बस्तिच्या वर्णनात कोणता कल्क घ्यावा याचा स्पष्ट उल्लेख नसेल अशा बस्तिमध्ये पुतोयवान्यादि कल्क घ्यावा.

द्रव्य - अजवायन, मदनफल, बिल्व, कुष्ठ, वचा, सौफ, मुस्तक, पिप्पली

(F) विशिष्ट बस्ति :

(1) यापन बस्ति -

यापनास्तु बस्तयः सर्वकालं देयाः। च.सि. 12/15

चक्रपाणि - आयुषो यापनं दीर्घकालानुवर्तनम् कुर्वन्तीति।

जी बस्ति आयुचे यापन करते, त्या बस्तिला यापन बस्ति म्हणतात. ही सर्वकाळात देता येते. तसेच दीर्घकाल शरीरात राहते.

शरीराचे बल, मांस वाढविणारी व शुक्रधातुचे पोषण करणारी बस्ति आहे. या बस्तिचे व्यापद

नगण्य आहे व कार्य आश्चर्यकारक आहेत. याबस्तिमध्ये मांसरस, मधु, दुग्ध, घृत इ. चा उपयोग केला जातो. प्रचलनात काही वैद्य मज्जाबस्ति म्हणून पण उल्लेख करतात.

चरक सिध्दी स्थान अध्याय 12 मध्ये एकूण 26 यापन बस्तिंचे वर्णन केलेले आहे.

- (2) **सिध्दबस्ति** - विशिष्ट रोगानुसार विशिष्ट द्रव्यांचा वापर करून व्याधि शमनासाठी प्रयोगात आणलेली बस्ति सिध्द बस्ति होय.

सिद्धानां बस्तिनां शस्तानां तेषु तेषु रोगेषु।

गदतः सिध्दिं सिध्दिप्रदां भिषजाम्।। च.सि. 10/3

- (3) **तीक्ष्ण बस्ति** - क्षार, लवण, गोमूत्र व इतर तीक्ष्ण, उष्ण द्रव्यांची बस्ति ही तीक्ष्ण बस्ति होय. लगेच मल निष्कासनासाठी किंवा औषधीद्रव्य बाहेर काढण्यासाठी तीक्ष्ण बस्तिचा उपयोग केला जातो. ही शोधन बस्ति आहे. परंतु सर्व शोधन बस्ति ह्या तीक्ष्ण नसल्याने ह्या बस्तिचा विशिष्ट बस्ति म्हणून वर्णन केला आहे.

- (4) **मृदु बस्ति** -

मृदुर्बस्तिःप्रयोक्तव्यो विशेषात् बालवृध्दयोः।

तयोस्तीक्ष्ण प्रयुक्तस्तु बस्तिर्हिस्याद् बलायुषी।। सु.चि. 35/10

बाल, वृद्ध, सुकुमार व हीन सत्व रुग्णांना मृदू द्रव्यांची बस्ति दिली जाते. यात दूध, घृत इ. चा उपयोग केला जातो.

- (5) **पिच्छाबस्ति** - ही संग्राही प्रकारची बस्ति आहे. पिच्छिल गुणात्मक द्रव्यांचा (उदा. मोचरस) या बस्तिचा वापर केला जातो. प्रामुख्याने रक्तस्त्राव, अतिसार, स्तम्भनार्थ पिच्छा बस्तिचा उपयोग केला जातो.

- (6) **रक्तबस्ति** -

तदेव दर्भमृदितं रक्तं बस्तिं प्रदापयेत्।

श्यामाकाशमर्यबदरीदूर्वोशीरैः श्रुतंपयः।। चक्रपाणि टिका च.सि. 6/83

रक्ते रक्तेन। या न्यायाने शरीरातून रक्तस्त्राव झाला असल्यास किंवा रक्तधातुची अल्पता (पांडू) असल्यास रक्तबस्ति दिली जाते. ह्या बस्ति प्रकारात अजारक्त वापरले जाते.

काही वैद्यगण प्रत्यक्ष मानवी रक्ताचा बस्तिमध्ये उपयोग करतात अर्थात आधुनिकाप्रमाणे सर्व परीक्षणा अंती (उदा. HIV इ.) यात रक्तगटाची अट नसते. अर्थात हा संशोधनाचा विषय आहे.

बस्ति यंत्र

बस्ति देण्यासाठी वापरण्यात येणारे उपकरण म्हणजे बस्ति यंत्र होय. बस्ति यंत्राचे दोन भाग आहेत:

- (1) बस्ति नेत्र (2) बस्ति पुटक

- (1) **बस्ति नेत्र (च.सि. 3/7-9)** - नेत्र म्हणजे नलिका; बस्ति पुटकाला जोडली जाते. बस्ति देतांना गुदमार्गामध्ये प्रविष्ट केली जाते. शास्त्रामध्ये बस्ति नेत्र स्वर्ण, रजत, ताम्र, कास्य, अस्थि, श्रृंग, दंत इ. पासून तयार करून वापरण्याचा उल्लेख आहे. मात्र सध्याच्या काळात आर्थिक, सहज उपलब्धता

इ. चा विचार करून Rubber catheter, पितळ निर्मित बस्ति नेत्र किंवा प्लास्टिक निर्मित बस्ति नेत्राचा वापर केला जातो. वैद्याने स्वसोयीने बस्ति नेत्र वापरावा.

प्रमाण: बस्ति नेत्रासाठी वापरण्यात येणारी नलिकेची लांबी, दोन्ही टोकाच्या छिद्रांचे आकार यासाठी आचार्यांनी विशिष्ट प्रमाण सांगितले आहे.

षड्द्वादशाष्टाङ्गुलसम्मितानि षड्विंशतिद्वादशवर्षजानाम्।

स्युर्मुद्गककर्कन्धुसतीनवाहिच्छिद्राणि वर्त्याऽपिहितानि चैव।।

यथावयोऽङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां मुलाग्रयोःस्युः परिणाहवन्ति।

ऋजूनि गोपुच्छसमाकृतीनि श्लक्ष्णानि च स्युर्गुडिकामुखानि।।

च.सि. 3/8-9

चरकानुसार बस्ति नेत्र :

| अ.क्र. | वय (वर्ष) | बस्ति नेत्र लांबी | |
|--------|-------------|-------------------|-----------------|
| | | अंगुलप्रमाण | से.मी. (Approx) |
| 1 | 1 ते 6 | 6 | 9 |
| 2 | 7 | 6 ^{1/3} | 9.5 |
| 3 | 8 | 6 ^{2/3} | 10 |
| 4 | 9 | 7 | 10.5 |
| 5 | 10 | 7 ^{1/3} | 11 |
| 6 | 11 | 7 ^{2/3} | 11.5 |
| 7 | 12 | 8 | 12 |
| 8 | 13 | 8½ | 12.75 |
| 9 | 14 | 9 | 13.5 |
| 10 | 15 | 9½ | 14.25 |
| 11 | 16 | 10 | 15 |
| 12 | 17 | 10½ | 15.75 |
| 13 | 18 | 11 | 16.5 |
| 14 | 19 | 11½ | 17.25 |
| 15 | 20 आणि पुढे | 12 | 18 |

(6 ते 12 वर्षा पर्यन्त 1/3 अंगुल वृद्धी, 12 ते 20 वर्षा पर्यन्त 1/2 अंगुल वृद्धी)

आचार्य सुश्रुतानुसार (सु.चि. 35/7):

| अ.क्र. | वय (वर्ष) | बस्तिनेत्र लांबी | |
|--------|------------------|------------------|-----------------|
| | | अंगुलप्रमाण | से.मी. (Approx) |
| 1 | 1 ते 7 | 6 | 9 |
| 2 | 8 ते 15 | 8 | 12 |
| 3 | 16 ते 25 पर्यन्त | 10 | 15 |
| 4 | 25 पुढे | 12 | 18 |

आचार्य वाग्भटानुसार (अ.ह.सू. 19/10-12):

| अ.क्र. | वय (वर्ष) | बस्तिनेत्र लांबी | | बस्तिनेत्र मूल | |
|--------|----------------|------------------|------|----------------|------|
| | | अंगुलप्रमाण | सेमी | अंगुलप्रमाण | सेमी |
| 1 | 1 वर्ष पर्यन्त | 5 | 7.5 | 1 | 1.5 |
| 2 | 1 ते 6 | 6 | 9 | 1 | 1.5 |
| 3 | 7 | 7 | 10.5 | 1.5 | 2.25 |
| 4 | 8 ते 12 | 8 | 12 | 2 | 3 |
| 5 | 13 ते 16 | 9 | 13.5 | 2.5 | 3.75 |
| 6 | 16 पेक्षा अधिक | 12 | 18 | 3 | 4.5 |

बस्तिनेत्रास तीन कर्णिका असतात. अग्रभागी चतुर्थ भागानंतर प्रथम कर्णिका. ज्यामुळे गुदामध्ये प्रविष्ट करण्याची अधिकतम लांबी निश्चित राहते. मुलभागास एक कर्णिका व एक अंगुल सोडून दुसरी कर्णिका असते. यामुळे दोन्ही कर्णिकांच्या मध्ये बस्तिपुटक बांधणे सोयीचे होते.

प्रत्यक्षात वयानुसार वेगवेगळ्या लांबीचे एवढे सारे नेत्र बनविणे शक्य नाही. लहान वयासाठी पारंपारिक नेत्र व कर्णिका बनविल्यास प्रत्यक्ष बस्ति देण्यासाठी नेत्र सहज स्वीकार्य अडचणीचे होईल म्हणून Rubber catheter वापरणे सोयीचे ठरते. अर्थात त्यामुळे बस्तिनेत्राचे व्यापदही टाळता येतात. बस्ति नेत्राचा मूलभाग व अग्रभागी असणाऱ्या छिद्राचेही प्रमाण आचार्यानी स्पष्ट केले आहे.

आचार्य चरकानुसार नेत्र छिद्र प्रमाण (च.सि. 3/8):

| अ.क्र. | वय (वर्ष) | छिद्र प्रमाण |
|--------|-----------|-----------------|
| 1 | 1 - 6 | मुंगा एवढे |
| 2 | 7 - 12 | कलाय/वटाणा एवढे |
| 3 | 13 - 20 | बोरा एवढे |

आचार्य सुश्रुतानुसार नेत्र छिद्र प्रमाण (सु.चि. 35/7):

| अ.क्र. | वय (वर्ष) | बस्ति नेत्र छिद्र | |
|--------|----------------------|-------------------------------|---------------------|
| | | मुळ भाग | अग्र भाग |
| 1 | 1 | कंक पक्षी नाडी प्रवेश योग्य | मुंग |
| 2 | 2 ते 8 | श्योन पक्षी नाडी प्रवेश योग्य | माष |
| 3 | 9 ते 16 | मयूर नाडी प्रवेश योग्य | कलाय |
| 4 | 17 ते 25 पेक्षा पुढे | गृध्र नाडी प्रवेश योग्य | भिजवुन फुगलेले कलाय |

उत्तरबस्ति नेत्र प्रमाण (च.सि. 9/50-51, सु.चि. 37/111) :

पुष्पनेत्रं तु हैमं स्याच्छ्लक्ष्णमौत्तरबस्तिकम्।।

जात्यश्वहनवृन्तेन समं गोपुच्छसंस्थितम्।

रौप्यं वा सर्षपच्छिद्रं द्विकर्णं द्वादशाङ्गुलम्।।

च. सि. 9/51

उत्तरबस्तिच्या नेत्राला 'पुष्पनेत्र' पण म्हटले जाते. याचा आकार चमेली/कनेर पुष्पा समान वृन्ताकार तथा सरळ (ऋजू) असावा. या नेत्राची देखील निर्मिती स्वर्ण, रजत, ताम्र इ. धातुपासून केली जात होती.

आचार्य चरकानुसार लांबी 12 अंगुल (18 सेमी) तर सुश्रुतानुसार नेत्राची लांबी 16 अंगुल (24 सेमी) असावी. छिद्राचा आकार सर्षप (मोहरी) एवढा असावा. उत्तरबस्ति नेत्राला दोन कर्णिका मूलभागी असतात.

व्रणबस्ति नेत्रप्रमाण (सु.चि. 35-11):

व्रणबस्तिसाठी नेत्राची लांबी 18 अंगुल (27 से.मी.) असावी व छिद्राचा आकार मुंगा एवढा असावा. प्रत्यक्षात व्रणानुसार असावा.

बस्तिनेत्र दोष व व्यापद (च.सि. 5/4):

न्हस्वदीर्घं तनु स्थूलं जीर्णं शिथीलबंधनम्।

पार्श्वच्छिद्रं तथा वक्र अष्टौनेत्राणि वर्जयेत्।

अप्राप्त्यगति क्षोभकर्षणक्षणनस्रवाः।

गुदपीडा गर्तिर्जिह्वा तेषां दोषा यथाक्रमम्।।

च.सि. 5/4-5

पारंपारीक बस्तिनेत्राची निर्मिती करतांना खालील उल्लेखित दोषांना टाळावे ज्यायोगे होणारे व्यापद सहजपणे टाळता येऊ शकतात.

| अ.क्र. | नेत्रदोष | व्यापद |
|--------|--------------------|--|
| 1 | न्हस्व (आखूड) | अप्राप्यगती - बस्ति द्रव्य आत जात नाही |
| 2 | दीर्घ (लांब) | अतिगतीने द्रव्य जाते |
| 3 | तनु (पातळ) | गुदक्षोभ |
| 4 | स्थूल (अधिक व्यास) | गुदभागी कर्षण |
| 5 | जीर्ण | गुदक्षत होण्याची शक्यता |
| 6 | शिथिलबंधन | स्राव (पुटकातून बस्ति द्रव्य बाहेर) |
| 7 | पार्श्वछिद्र | पीडा (Pain) |
| 8 | वक्रता | शूल (Pain) |

बस्तिपुटक:

बस्तिपुटक ही एक प्रकारची पिशवी आहे ज्यामध्ये बस्ति देण्यासाठी द्रव्य साठविले जाते. बस्तिपुटक हे नेत्राशी संलग्नित करून गुदमागनि बस्तिद्रव्य प्रविष्ट केले जाते.

शास्त्रामध्ये पुटक निर्मितीसाठी प्राण्यांच्या मूत्राशयाचा उल्लेख आहे. परंतु आजच्या काळात Rubber bag, प्लास्टिक पिशवी, Enema can यांचा बस्ति पुटक म्हणून सुलभतेने प्रयोग केला जातो.

बस्तिपुटक दोष व व्यापद (च.सि. 5/6-7):

विषम मांसल छिन्न स्थूल जालिक वातलाः।

स्निग्धः क्लिनश्च तानष्टौ बस्तिन् कर्मसु वर्जयेत।।

गतिवैषम्य विस्रत्वस्राव दौर्ग्राह्यनिस्रवाः

फेनिलच्युत धार्यत्वं बस्तेः स्युर्बस्तिदोषतः।। च.सि. 5/6-7

| अ.क्र. | बस्तिपुटक दोष | व्यापद |
|--------|---------------|---|
| 1 | विषम | गती विषम |
| 2 | मांसल | विस्रगंध |
| 3 | छिद्रयुक्त | औषध बाहेर येते |
| 4 | स्थूल | दाबण्यासाठी त्रास |
| 5 | जालयुक्त | औषध बाहेर स्रवते |
| 6 | वातल | औषधासोबत वायू गुदामध्ये जाण्याची शक्यता |
| 7 | स्निग्ध | हात घसरते |
| 8 | क्लिन | पुटक व्यवस्थित पकडता येत नाही |

यातील बरेचशे दोष प्राण्यांच्या मूत्राशयापासून तयार केलेल्या पुटकांमध्ये दिसून येतात. सध्याच्या काळात वापरण्यात येणाऱ्या पुटकांमध्ये हे दोष टाळता येतात. त्यामुळे पर्यायाने व्यापदही टाळले जातात. अर्थात नवीन पुटकांमध्ये होणारे दोष व त्यापासून होणारे व्यापदही वेगळे आहे. चिकित्सकांनी तेही ध्यानात ठेवणे गरजेचे आहे.

प्रचलीत बस्ति यंत्र:

(1) नेत्र - Rubber Catheter No. 8-10

पुटक - Syringe 100 ml

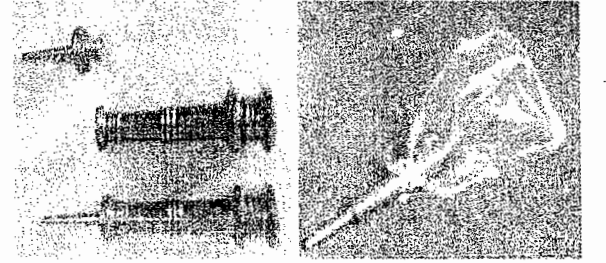
उपयोग - मात्राबस्तिसाठी उपयोगी



(2) पारंपारिक शास्त्रोक्त बनविलेला पीतळी नेत्र

पुटक - जाड प्लास्टिक पिशवी 1^{1/2} लिटर

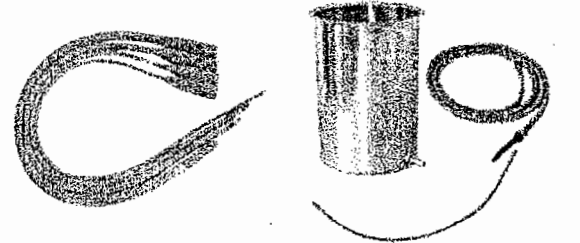
उपयोग - निरूह बस्ति देण्यासाठी



(3) Enema Can :-

उपयोग - यापन बस्ति, क्षीर बस्ति तथा

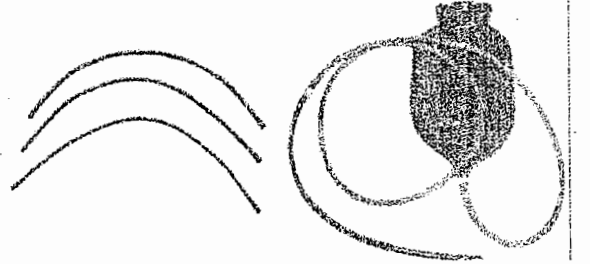
अधिक मात्रेची निरूह बस्ति देण्यासाठी



(4) नेत्र - Rubber Catheter

पुटक - Hot fomentation bag.

उपयोग - निरूह बस्तिसाठी



(5) नेत्र - Scalp vein (पुढील Needle तोडून)/Catheter

पुटक - 10-20 ml Syringe

उपयोग - लहान मुलांना मात्रा बस्तिसाठी

- उत्तर बस्तिसाठी



अनुवासन व आस्थापनोपयोगी द्रव्य

बस्तिसाठी उपयुक्त द्रव्यांची संख्या निश्चित करणे अशक्य आहे. व्याधी, व्याधी अवस्था, रुग्ण प्रकृती, द्रव्यांची उपलब्धता, देश, काल या सर्वांचा विचार करता चिकित्सकांनी द्रव्यांची निवड करणे आवश्यक आहे. कोणत्या एका द्रव्यासाठी अडून बसणे पण संयुक्तिक नाही. प्राधान्याने खालील प्रमाणे शास्त्रोक्त बस्तिद्रव्यांचे वर्णन आलेले आहे.

(A) आचार्य चरकोक्त बस्ति द्रव्य :

(1) फलिनी

धामार्गवमय इक्ष्वाकुजीमूतं कृतवेधनम्।

मदनं कुटजं चैव त्रपुषं हस्तिपर्णीनी।। च.सु. 1/88

- | | | |
|--------------|-------------------|--------------|
| (i) धामार्गव | (ii) इक्ष्वाकु | (iii) जीमूतक |
| (vi) कृतवेधन | (v) त्रपूष | (iv) कुटज |
| (vii) मदनफल | (viii) हस्तिपर्णी | |

(2) स्नेह वर्ग

सर्पिस्तेलं वसा मज्जा स्नेहो दृष्टश्चतुर्विधः।

पानाभ्यंजनबस्त्यार्थं चैवयोगतः।।

च.सू. 1/88

- | | |
|----------|------------|
| (i) घृत | (iii) वसा |
| (ii) तैल | (iv) मज्जा |

(3) मूत्रवर्ग

अविमूत्रमजामूत्रं गोमूत्रं माहिषं च यत्।

हस्तिमूत्रमथोष्ट्रस्य हयस्य च खरस्यच।

युक्तमास्थोपनेषु मूत्रं युक्तं चापिविरेचने। च.सू. 1/93

- | | |
|-------------------------|------------------------|
| (i) अजामूत्र (बकरी) | (v) हस्तिमूत्र (हत्ती) |
| (ii) अविमूत्र (मेंढी) | (vi) उष्ट्रमूत्र (उंट) |
| (iii) गोमूत्र (गाय) | (vii) हय (अश्व) मूत्र |
| (iv) माहिषमूत्र (म्हैस) | (viii) खर (गाढव) मूत्र |

(4) अष्टक्षीर

अविक्षीरमजाक्षीरं गोक्षीरं माहिषं च यत् ।

उष्ट्रीणामथ नागीनां वडवायाः स्त्रियास्तथा।

च.सू. 1/107

- | | |
|-------------------|---------------------|
| (i) अविक्षीर | (v) हस्तीनी दुग्ध |
| (ii) अजाक्षीर | (vi) उंटनी दुग्ध |
| (iii) गोदुग्ध | (vii) घोडी दुग्ध |
| (iv) माहिषी दुग्ध | (viii) स्त्री दुग्ध |

(5) पंचलवण

सौवर्चलं सैधवं च बिडमौद्भिदमेव च।

सामुद्रेण सहैतानि पंच स्युर्लवणानिच।। (च.सू. 1/88)

- | | |
|-----------------|-----------------|
| (i) सौवर्चल लवण | (ii) सैधव लवण |
| (iii) विड्लवण | (iv) औद्भिद लवण |
| (v) सामुद्रलवण | |

(6) आस्थापन व अनुवासन उपयोगी गण

पाटलां चाग्निमथं च बिल्वं श्योनाकमेवच।

काश्मर्यं शालिपर्णीं च पृश्निपर्णीं निदिग्धिकाम् ।।

बलां श्वदंष्ट्रां बृहतीमेरण्डं सपुनर्नवम् ।

यवान् कुलत्थान् कोलानि गुडुचीं मदनानि च ।।

पलाशं कतृणं चैव स्नेहाश्वं लवणानि च। च.सू. 2/11-13

- | | | |
|-----------------|-----------------|-----------------|
| (1) पाटला | (2) अग्निमंथ | (3) बिल्व |
| (4) श्योनाक | (5) काश्मरी | (6) शालपर्णी |
| (7) पृश्निपर्णी | (8) बृ. कंटकारी | (9) लघु कंटकारी |
| (10) बला | (11) गोक्षुर | (12) एरण्ड |
| (13) पूनर्नवा | (14) यव | (15) कुलत्थ |
| (16) गिलोय | (17) मदनफल | (18) बोर (कोल) |
| (19) पलाश | (20) कतृण | |

यांनी सिध्द स्नेहद्रव्यांचा अनुवासनासाठी तर क्वाथाचा आस्थापन बस्ति साठी प्रयोग करतात.

(7) आस्थापनोपयोगी द्रव्य -

त्रिवृत्बिल्वपिप्पली कुष्ठसर्षप वचावत्सकफलशतपुष्पामधुकमदनफलानीति

दशोमानि आस्थापनोपगानि भवन्ति।

च.सू. 4/25

- | | | |
|----------------------|--------------|--------------|
| (1) त्रिवृत्त | (2) बिल्व | (3) पिप्पली |
| (4) कुष्ठ | (5) सर्षप | (6) वचा |
| (7) वत्सक् (इंद्रयव) | (8) शतपुष्पा | (9) मुधयष्ठी |
| (10) मदनफल | | |

(8) षड्आस्थापन स्कन्ध

षड्रसावरून सहा स्कंध आहेत. रस प्राधान्यानुसार व विपानानुसार त्या त्या स्कंधातील द्रव्य व्याधिनुसार उपयोगात आणावी.

| | | |
|------------|---|-----------|
| मधुरस्कंध | - | वात पित्त |
| अम्लस्कंध | - | वात |
| लवणस्कंध | - | वात |
| कटुस्कंध | - | कफ |
| तिक्तस्कंध | - | कफ-पित्त |
| कषायस्कंध | - | कफ-पित्त |

षडस्कंधातील प्रमुख द्रव्यः

| मधुर | अम्ल | लवण | कटु | तिक्त | कषाय |
|--------------|----------------|------------|------------------|-------------|------------|
| जीवक | आम्र | सैधव | पिप्पली | चंदन | प्रियंगु |
| ऋषभक | लिकुच | सौवर्चल | पिप्पलीमूल | जटामांसी | अनंतमूल |
| जीवंती | करमर्द | काललवण | हस्तिपिप्पली | उशीर | आम्रमज्जा |
| आमलकी | वृक्षाम्ल | विड्लवण | चव्य | आमलतास | अंबष्ठकी |
| मुद्गापर्णी | अम्लवेतस | आनुपलवण | चित्रक | निम्ब | कटुका |
| माषपर्णी | बदर | सामुद्रलवण | श्रृंगबेर(आर्तक) | कुटज | लोध्र |
| शालपर्णी | दाडिम | | मरिच | हरिद्रा | मोचरस |
| पृश्निपर्णी | मातुलुंग | | अजमोदा | दारूहरिद्रा | धातकीपुष्प |
| गुडूची | आमलकी | | विंडग | मूस्ता | कमल |
| सहदेवी | नंदीतरू | | एला | किराततिक्ता | कमलकेशर |
| बला | तिंतीडक (चिंच) | | कुष्ठ | कटुका | जांभूळ |
| अतिबला | अश्मंतक | | भल्लातक | त्रायमाणा | प्लक्ष |
| विदारी | चांगेरी | | हिंगू | कारवेल्लक | वट |
| रक्तपूनर्नवा | कोल | | मूलक | करवीर | पिंपळ |
| अश्वगंधा | सुरा | | सर्षप | मंडूकपर्णी | पीतोदुंबर |
| कंटकारी | सौवीरक | | लशून | पुनर्नवा | भल्लातक |

| मधुर | अग्ल | लवण | कटु | तिक्त | कषाय |
|--------------------------|--------|-----|-----------------------------|-----------------|----------------|
| एरंड | मदिरा | | करंज | कासमर्द | अशमंतक |
| गोक्षुर | तुषोदक | | शिगु | काकमाची | शिरीषपुष्प |
| शतावरी | सीधू | | खरपूष्प (खुरासनी अजवायन) | काकोदुबंरिका | सीसम |
| शतपुष्पा | दधिमंड | | एंडली | पटोल | श्वेत खदिर |
| मधुकपुष्पी | दधि | | क्षवक | पाठा | खदिर |
| यष्ठीमधू | | | क्षार | गुडूचि | सप्तपर्ण |
| मृद्विका | | | मूत्र | वेत्राग्र | अश्वकर्ण |
| खर्जुर | | | | सप्तपर्ण | अर्जुन |
| आत्मगुप्ता | | | | सुमन (चमेली) | कदंब |
| गुंजा | | | | अर्क | मंजिष्ठा |
| दर्भ | | | | अवलगुज (बाकुचि) | वंश |
| कुश | | | | त्रिफला | पद्मकाष्ठ |
| द्वारदा (पालक /सागवन) | | | | तगर | अशोक |
| एला | | | | अगरू | कट्फल |
| अनंतमूल | | | | सुगंधबाला | सर्ज |
| द्राक्षा | | | | | शमी |
| सोमलता | | | | | खरपुष्प |
| | | | | | तुंगा(सुपारी) |
| | | | | | बेहेडा |
| | | | | | मृणाल (कमलदंड) |

(9) अनुवासनोपयोगी द्रव्य

रास्ना सुरदारूबिल्वमदनशतपुष्पावृश्चीरपुनर्नवाश्वदंष्ट्राअग्निमंथ

शयोनाक इति दशोमानिअनुवासनोपगानि भवन्ति।

च.सू. 4/13

- | | | |
|----------------------|--------------|-----------------------------|
| (1) रास्ना | (2) देवदारू | (3) बिल्व |
| (4) मदनफळ | (5) शतपुष्पा | (6) वृश्चीर (रक्त पुनर्नवा) |
| (7) पुनर्नवा (श्वेत) | (8) गोक्षुर | (9) अग्निमंथ |
| (10) शयोनाक | | |

आचार्य सुश्रुतोक्त निरूहोपयोगी द्रव्य (सू.चि. 38/24-28)

- | | | |
|--------------------|--------------------|----------------------|
| (1) अष्टक्षीर वर्ग | (2) अष्टमूत्र वर्ग | (3) अम्ल वर्ग |
| (4) स्नेह | (5) क्वाथ | (6) मांसरस |
| (7) त्रिफळा | (8) रास्ना | (9) सरल |
| (10) देवदारू | (11) हरिद्रा | (12) यष्टिमधू |
| (13) हिंगु | (14) कुष्ठ | (15) संशोधनगण द्रव्य |
| (16) कटुका | (17) शर्करा | (18) नागरमोथा |
| (19) उशीर | (20) चंदन | (21) शटी (कर्पूर) |
| (22) लवण | (23) मधू | (24) शतपुष्पा |
| (25) सर्षप | (26) वचा | (27) एला |
| (28) त्रिकटू | (29) मंजिष्ठा | (30) मदनफळ |
| (31) चंडा | (32) त्रायमाणा | (33) रसांजन |
| (34) बिल्वमज्जा | (35) यवानी | (36) फलिनीवर्ग |
| (37) इंद्रयव | (38) काकोली | (39) क्षीरकोकाली |
| (40) जीवक | (41) ऋषभक | (42) मेदा-महामेदा |
| (43) मधूलिका | | |

वाग्भटोक्त निरूहोपयोगी द्रव्य :

मदनकुटजकुष्ठदेवदालीमधुकवचादशमूलदारूरास्नाः ।

यवमिशिकृतवेधनं कुलत्था मधु लवणं त्रिवृत्ता निरूहणानि ॥ अ.ह.सू. 15/3

- | | | |
|--------------|---------------------|-----------|
| (1) मदनफळ | (2) कुटज | (3) कुष्ठ |
| (4) देवदाली | (5) मधुक (यष्टीमधू) | (6) वचा |
| (7) दशमूल | (8) देवदारू | (9) यव |
| (10) कृतवेधन | (11) कुलत्थ | (12) मधू |
| (13) लवण | (14) त्रिवृत्त | |

निरूह बस्ति/आस्थापन बस्ति

बस्तिला अर्ध चिकित्सा म्हटले आहे. त्यामुळे बस्ति चिकित्सेची व्याप्ती मोठी आहे. बस्ति ही अशी चिकित्सा आहे जी पंचकर्म विशेषज्ञाच्या कुशलतेनुसार निर्माण केली जाऊ शकते. आचार्य चरक, सुश्रुत व वाग्भट यांनी खालील रोग/लक्षणांमध्ये बस्ति चिकित्सा योग्य - अयोग्य वर्णन केले आहे.

आस्थापन योग्य (Indication) : (च.सि. 2/16, सु.चि. 35/5, अ.ह.सू. 19/2-3)

| अ.क्र. | आस्थाप्य | चरक | सुश्रुत | वाग्भट |
|--------|--|-----|---------|---------------|
| 1 | सर्वांगरोग (Neurological disorder) | + | + | - |
| 2 | एकांगरोग (Neurological disorder) | + | + | - |
| 3 | कुक्षिरोग (Related to Abdomen) | + | - | - |
| 4 | वातरोग (Obstruction to flatus) | + | + | + |
| 5 | मूत्रसंग (Obstruction to urine) | + | + | + |
| 6 | * मलसंग (Constipation) | + | + | + |
| 7 | शुक्रसंग (Obstruction in ejaculation) | + | - | + |
| 8 | बलक्षय (Loss of physical stage) | + | - | - |
| 9 | मांसक्षय (Emaciation) | + | - | - |
| 10 | दोषक्षय | + | - | - |
| 11 | शुक्रक्षय (Oligospermia) | + | + | - |
| 12 | आध्मान (Abdominal distension) | + | + | + |
| 13 | अंगसुप्ती (Numbness) | + | - | - |
| 14 | कृमिकोष्ठ (Worm infestation) | + | - | - |
| 15 | उदावर्त (Retrograde intestinal movement) | + | + | - |
| 16 | शुद्धातिसार (Diarrhea) | + | + | + |
| 17 | पर्वभेद (Arthralgia) | + | - | - |
| 18 | अभिताप (Increased temperature) | + | - | - |
| 19 | प्लीहादोष (Disease of spleen) | + | - | + |
| 20 | गुल्म (tumour, lump in intestines) | + | + | + |
| 21 | शूल (Abdominal pain) | + | + | + |
| 22 | हृद्रोग (Heart disease) | + | - | - |
| 23 | भगंदर (Fistula) | + | - | - |
| 24 | उन्माद (Psychological disorder) | + | - | - |
| 25 | ज्वर (Fever) | + | - | + (जीर्णज्वर) |
| 26 | ब्रध्न (Scrotal swelling) | + | + | |
| 27 | शिरःशूल (Headache) | + | + | + |
| 28 | कर्णशूल (Earache) | + | - | - |

| अ.क्र. | आस्थाप्य | चरक | सुश्रुत | वाग्भट |
|--------|---|-----|---------|--------|
| 29 | हृदशूल (Cardiac pain) | + | - | - |
| 30 | पार्श्वशूल (Body pain (side)) | + | - | - |
| 31 | पृष्ठशूल (Backache) | + | - | - |
| 32 | कटीशूल (Low Backache) | + | - | - |
| 33 | वेपथू (Parkinson's disease) | + | - | - |
| 34 | आक्षेप (Convulsions) | + | + | - |
| 35 | अतिगौरव (Heaviness of body) | + | - | - |
| 36 | अतिलाघव (Lightness of body) | + | - | - |
| 37 | रजक्षय (Decreased menstrual flow) | + | + | + |
| 38 | विषमग्नि | + | - | - |
| 39 | स्फिकशूल (Pain in buttocks) | + | - | - |
| 40 | जानुशूल (Knee joint pain) | + | - | - |
| 41 | जंघाशूल (Pain in legs) | + | - | - |
| 42 | उरूशूल (Pain in thighs) | + | - | - |
| 43 | गुल्फशूल (Painful ankle joint) | + | - | - |
| 44 | पृष्ठीशूल (Pain in heel/Spur calcaneal) | + | - | - |
| 45 | पादशूल (Pain in feet) | + | - | - |
| 46 | योनिशूल (Vaginal pain) | + | + | - |
| 47 | बाहुशूल (Pain in arms) | + | - | - |
| 48 | अंगुलीशूल (Pain in fingers) | + | - | - |
| 49 | स्तनशूल (Breast pain) | + | - | - |
| 50 | दंतशूल (Tooth ache) | + | - | - |
| 51 | नखशूल (Pain in nails) | + | - | - |
| 52 | पर्व-अस्थिशूल (Bony pain) | + | - | - |
| 53 | शोष (Muscle wasting) | + | - | - |
| 54 | स्तम्भ (Stiffness) | + | - | - |
| 55 | आंत्रकूजन (Sound in abdomen) | + | - | - |
| 56 | परिकर्तिका (Anal pain) | + | - | - |
| 57 | ज्वर (Fever) | - | + | + |

| अ.क्र. | आस्थाप्य | चरक | सुश्रुत | वाग्भट |
|--------|---------------------------------------|-----|---------|--------|
| 58 | तिमिर (Refractive error) | + | + | |
| 59 | प्रतिश्याय (Rhinitis) | + | + | + |
| 60 | वातव्याधि | + | - | + |
| 61 | अधिमंथ (Glaucoma) | - | + | - |
| 62 | अर्दित (Facial paralysis/Bel's palsy) | + | + | - |
| 63 | पक्षाघात (Hemiparesis) | + | + | - |
| 64 | शर्कराशूल (Urolithiasis) | - | + | - |
| 65 | उपदंश (Ulceration in penis) | - | + | - |
| 66 | वातरक्त (Gouty arthritis) | - | + | + |
| 67 | अर्श (Hemorrhoids) | - | + | - |
| 68 | स्तन्यक्षय (Reduction in breast milk) | - | + | - |
| 69 | मन्याग्रह (Stiffness of neck) | + | + | - |
| 70 | हनुग्रह (Lock jaw) | + | + | - |
| 71 | मुढगर्भ | - | + | + |
| 72 | मूत्रकृच्छ्र (Painful micturation) | - | + | - |
| 73 | अश्मरी (Calculus) | - | + | - |

(* मलसंग हे आंत्रावरोध (Intestinal obstruction) चे एक लक्षण आहे. 10-15 दिवसांपेक्षा मलसंग असल्यास Intestinal obstruction गृहीत धरून बस्ति चिकित्सा देवू नये. आधुनिक शास्त्राने तसेच आयुर्वेदानेही बध्दगुदोदर (Intestinal obstruction) मध्ये बस्तिचा निषेध सांगितला आहे.)

आस्थापन अयोग्य: (Contraindications) (च.सि. 2/14, सु.चि. 35/21, अ.ह.सू. 19/4-6)

अनास्थाप्यास्तु - अजीर्ण्यअतिस्निग्धपीतस्नेहोत्किलष्टदोषाल्पाग्नि

यातकलान्ततिदुर्बलक्षुतृष्णाश्रमातार्तिकृशभुक्तपीतोदकवमितविरिक्तकृतनस्तः

कर्मक्रुद्धभीतमत्तमूर्च्छितप्रसक्तच्छर्दिनिष्ठिविकाशवासकासहिककाबद्ध्नाछिद्रोदकोदराध्माना

लसकविसूचिकामप्रजातामातिसारमधुमेहकुष्ठार्ताः ॥ च.सि. 2/1-14

उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा इ. व्याधीमध्ये वेगावस्थेत बस्ति निषेध आहे मात्र वेगाच्या प्रशम अवस्थेत वमन-विवेचनाने शोधन करून बस्ति देता येतो. तसेच कुष्ठ व्याधीमध्ये बस्ति निषेध आहे परंतु वातदोषाच्या प्राधान्यामध्ये बस्ति देता येतो.

| अ.क्र. | आस्थापन अयोग्य/अनास्थाप्य | चरक | सुश्रुत | वाग्भट |
|--------|-------------------------------------|-----|---------|--------|
| 1 | अजीर्ण (Indigestion) | + | + | - |
| 2 | अतिस्निग्ध | + | - | + |
| 3 | पीतस्नेह | + | - | - |
| 4 | उत्कलीष्ट दोष | + | - | - |
| 5 | अल्पाग्नि | + | + | + |
| 6 | यानकलान्त (Tired by journey) | + | - | - |
| 7 | अतिदुर्बल (Weak) | + | + | - |
| 8 | क्षुधार्त (Hungry) | + | + | - |
| 9 | तृष्णार्त (Thirsty) | + | - | - |
| 10 | श्रमार्त (Tired) | + | - | + |
| 11 | अतिकृश (Chachexic) | + | + | + |
| 12 | भूक्तभक्त (Taken Meal) | + | - | |
| 13 | पीतोदक (Just taken water) | + | - | + |
| 14 | वमित (वमन घेतलेला) | + | - | + |
| 15 | विरिक्त (विरेचन घेतलेला) | + | - | + |
| 16 | कृतनस्य (नस्य घेतलेला) | + | - | - |
| 17 | क्रोधीत (Angry) | + | - | - |
| 18 | भयभीत (Feared) | + | - | - |
| 19 | मत्ता (Delirium) | + | + | - |
| 20 | मुर्च्छित (Unconscious) | + | + | + |
| 21 | प्रसक्तच्छर्दि (Having vomiting) | + | + | + |
| 22 | प्रसक्तनिष्ठीविक (Expectoration) | + | - | + |
| 23 | प्रसक्तश्वास (Dyspnic) | + | + | + |
| 24 | प्रसक्तकास (Continuous cough) | + | + | + |
| 25 | प्रसक्तहिकका (Hiccup) | + | - | + |
| 26 | बध्दगुदोदर (Intestinal obstruction) | + | - | + |
| 27 | छिद्रोदर (Intestinal perforation) | + | - | + |
| 28 | दकोदर (Ascites) | + | - | + |
| 29 | आध्मान (Flatulence) | + | - | + |
| 30 | अलसक (Pyloric obstruction) | + | - | - |

| अ.क्र. | आस्थापन अयोग्य/अनास्थाप्य | चरक | सुश्रुत | वाग्भट |
|--------|--------------------------------------|-----|----------------|---------------|
| 31 | विसुचिका (Cholera) | + | - | - |
| 32 | आमदोष | + | - | - |
| 33 | आमातिसार (Amoebic dysentery) | + | - | + |
| 34 | मधुमेह (Condition like diabetes) | + | + | + |
| 35 | कुष्ठ (Skin diseases) | + | + | + |
| 36 | अर्श (Piles) | + | + | + |
| 37 | आमप्रजाता | + | - | - |
| 38 | पांडू (Anemia) | - | + | - |
| 39 | भ्रम (Vertigo) | - | + | - |
| 40 | अरोचक (Anorexia) | - | + | - |
| 41 | उन्माद (Insanity) | - | + | - |
| 42 | शोकावस्था (In grief) | - | + | - |
| 43 | स्थौल्य (Obesity) | - | + | - |
| 44 | कंठशोष (Dryness of throat) | - | + | - |
| 45 | क्षतक्षीण (Emaciation due to injury) | - | + | + |
| 46 | गर्भिणी (pregnant) | - | + (चतुर्थमांस) | + (सप्तममांस) |
| 47 | बाल, वृद्ध | - | + | - |
| 48 | अल्पवर्च (Less stool) | - | - | + |
| 49 | गुदशोथ (शुनपायु) (Inflammation) | - | - | + |

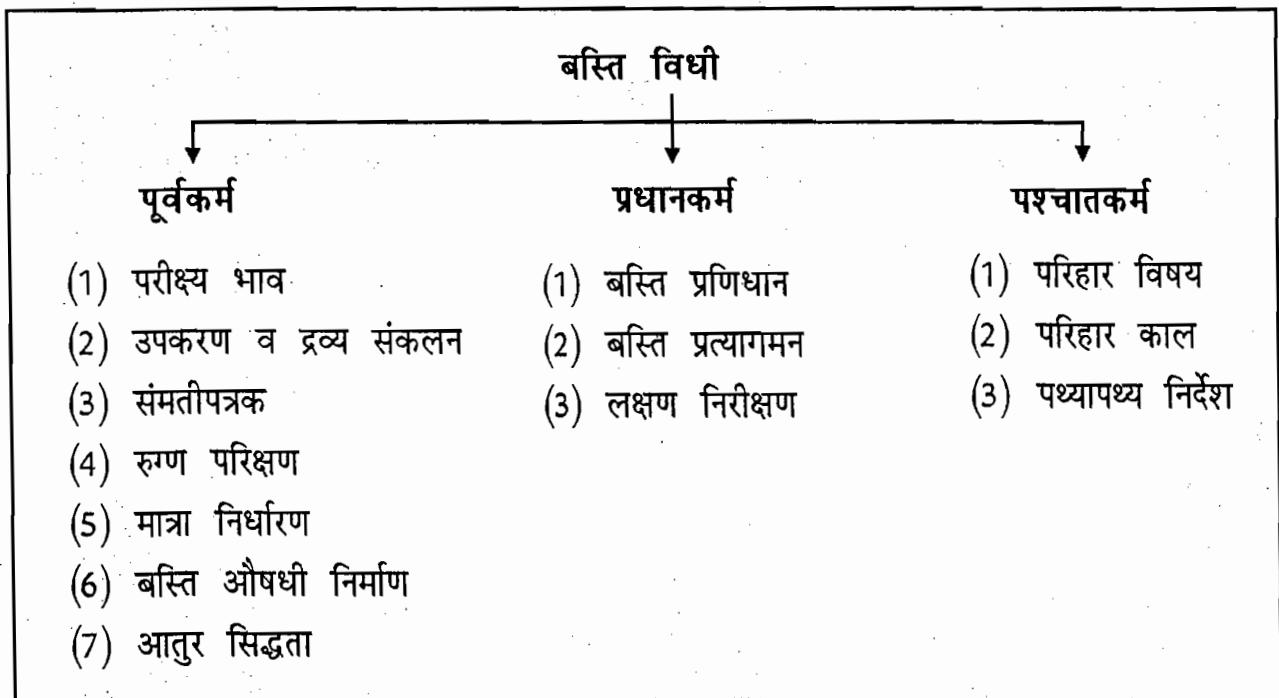
अनास्थाप्य रुग्णात बस्ति दिल्याने होणारे व्यापदः

| अ.क्र. | अवस्था | व्यापद | कारण |
|--------|---|-------------------------|--|
| 1 | अजीर्ण, पीतस्नेह, अतिस्निग्ध | दुष्योदर, मूर्च्छा, शोथ | बस्तितील स्नेहाने उत्क्लेश वाढतो |
| 2 | उत्किलष्टदोष | दोषवृद्धी | |
| 3 | अतिदुर्बल, क्षुधार्त, तृष्णार्त, श्रमार्त, यानकलान्त | तीव्रपीडा, प्राणोपरोध | |
| 4 | अतिकृश | काश्य वाढविते | बृंहणबस्ति देऊ शकतो |
| 5 | भूक्तभक्त, पीतोदक | दोषोत्क्लेश | अनुवासन बस्तिमात्र भोजनोत्तर द्यावी |

| अ.क्र. | अवस्था | व्यापद | कारण |
|--------|------------------------------------|----------------------|--|
| 6 | वमित, विरिक्त | रूक्षता उत्पन्न करणे | वमन विरेचनाने आधीच रूक्षता उत्पन्न होते(च.चि.7) |
| 7 | कृतनस्य | विभ्रंश, स्रोतरोध | |
| 8 | क्रुध्द व भयभीत | बस्तिचे अतिउर्ध्वगमन | |
| 9 | मत्त, मुर्च्छित | संज्ञानाश, हृदयोपघात | |
| 10 | बध्दगुदोदर, छिद्रोदर, दकोदर आध्मान | आध्मान, प्राणनाश | |
| 11 | च्छर्दि, निष्ठिविका, श्वास कास | बस्ति उर्ध्वगमन | वायू चे उर्ध्वगमन झाल्याने सोबत बस्तिपण उर्ध्वगामी होतो. |
| 12 | अलसक | आध्मान, आमदोष | आमदोषात व बस्ति दिल्याने पुन्हा आमदोषाची वृद्धि |
| 13 | विसूचिका | आमदोष | आमदोषात व बस्ति दिल्याने पुन्हा आमदोषाची वृद्धि |
| 14 | कुष्ठ, मधुमेह | व्याधी वृद्धी | |

बस्तिदान विधी (Administration of Basti)

बस्ति कर्मास सामान्यतः तीन भागात विभागल्यास नियोजन व्यवस्थित केले जाऊ शकेल.



पूर्वकर्म (Preoperative)

- 1) **परीक्ष्यभावः** पंचकर्म विशेषज्ञाने बस्ति चिकित्सा एखाद्या रुग्णासाठी योजना करतांना परीक्ष्यभावाचा विचार करावा त्यामुळे चिकित्सेमधील अपयश टाळता येईल.
- i) **दोष** - बस्ति ही वातदोषाची प्रधान चिकित्सा असली तरी देखील प्रसंगानुरूप आवश्यकतेनुसार पित्त, कफ व रक्तव्याधीमध्येही देता येते. दोषांनुसार बस्ति द्रव्यांची योजना व्यवस्थित करता येईल उदा. अस्थिगत वातव्याधीमध्ये तिक्तक्षीर बस्ति, मेदोगत दोषामध्ये लेखन बस्ति.
- ii) **औषध** - औषधीचे रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव इ. विचार करून संकलन करणे आवश्यक आहे. आचार्यांनी सांगितलेल्या 11 दोषांपासून औषध मुक्त असणे आवश्यक आहे.

द्रवदोष :

- | | | |
|-------------------|------------------|------------------|
| (1) आमता | (2) हीनमात्रता | (3) अतिमात्रता |
| (4) अतिशीलता | (5) अतिउष्णता | (6) अतितीक्ष्णता |
| (7) अतिमृदुता | (8) अतिस्निग्धता | (9) अतिरूक्षता |
| (10) अतिसान्द्रता | (11) अतिद्रवता. | |

iii) देश -

- (a) **भूमीदेश** : भूमी देशा विरुद्ध बस्तिचा उपयोग प्रशस्त आहे. उदा. आनुपदेशात कफ प्रधान व्याधी असतील तर विरुद्ध गुणांच्या बस्तिचा उपयोग.
- (b) **आतुरदेश** : रुग्णशरीरासंबंधी सर्व विचार.

iv) काल -

- (a) ऋतूनुसार - वर्षा ऋतूमध्ये बस्ति देणे प्रशस्त ठरते.
- (b) निरूहबस्ति देण्याचा काळ अभूक्त अवस्थेत आहे-
- (c) बस्तिकर्म विरेचनानंतर 7 दिवसांनी करण्याचे विधान आहे.

या सर्व गोष्टींचा पंचकर्म विशेषज्ञाने विचार करावा.

- v) **सात्म्य** - आहार इ. ची अनुकूलता व निरूहबस्ति यांचा एकत्र विचार म्हणजे सात्म्य होय. उदा. निरूहबस्ति अभूक्त अवस्थेत देण्यात यावे. भोजनोत्तर दिल्यास विसूचिका, चर्द्धि रोग उत्पन्न होतात.
- vi) **अग्नी** - मंदाग्नीमध्ये बस्ति निषेध आहे. त्यामुळे दीपन पाचन केल्यानंतर बस्तिकर्म करावे.
- vii) **सत्व** - रुग्णांच्या सत्वानुसार (सहिष्णुतेनुसार) बस्तिची योजना करणे अपेक्षित आहे. यात मात्रा, वापरण्यात येणारे द्रव्य (उष्ण, तीक्ष्ण, लेखन) इ. चा विचार करावा. उदा. अल्प सत्वाच्या स्थूल रुग्णास लेखन बस्ति उत्तम मात्रेत दिल्यास अनर्थ होवू शकतो.
- viii) **ओक** - ओक सात्म्याचा विचार करून मात्रा, मांसरस, दूध इ. चा प्रयोग करावा.

- ix) वय - वयानुसार बस्तिची मात्रा, बस्ति यंत्र वापर इ. ची योजना करता येते. विविध ऋषींनी बस्ति देण्याचे वय वेगवेगळे सांगितले आहेत.

| ऋषी | बस्ति देण्याचे वय |
|----------|-------------------|
| गार्ग्य | जन्मापासून |
| मठर | एक महिन्यापासून |
| पूनर्वसू | चार महिन्यापासून |
| काश्यप | आठ महिन्यापासून |
| पाराशर | तीन वर्षापासून |
| भेल | सहा वर्षापासून |

- x) बल - रुग्ण बलानुसार तीक्ष्ण, मृदू बस्ति, इ. ची योजना करावी. उदा. पक्षाघाताच्या अल्प बली रुग्णास अल्पमात्रेत बस्ति योजना करावी लागते.

अतिदुर्बल रुग्णास निरूह बस्ति निषेध आहे.

2) उपकरण - द्रव्य संकलन :

खोली (Room Attached with toilet) (12 x 12 ft.)

- (1) द्रोणी
- (2) बस्तिनेत्र व पुटक (Enema can)
- (3) स्टील पात्र
- (4) गॅस
- (5) कोष्णजल
- (6) टॉवेल
- (7) मापक (Measuring glass)
- (8) कॉटन
- (9) Gloves 6 ½, 7 ½
- (10) तैल-अभ्यंगासाठी
- (11) खरल/Churner
- (12) आवश्यक (Essential ingredients) निरूहासाठीच्या औषधी:-
 - (i) लवण (ii) तैल (iii) क्वाथ (iv) मधू (v) कल्क
- (13) पंचकर्म सहाय्यक - 2

- 3) **संमतीपत्रक (Written consent):** रुग्णास समजेल अशा भाषेत पंचकर्मनील विधीमुळे होणारे फायदे व संभावीत व्यापद समजावून लिखित पत्रकावर रुग्णाची व/अथवा नातेवाईकांची स्वाक्षरी/अंगठा घ्यावा.
- 4) **रुग्ण परीक्षण :** रुग्णास अर्श भगंदर, परिकर्तिका इ. गुदस्थानातील व्याधी तर नाही यासाठी गुदगत परीक्षण करावे.

- Biochemical investigation
- Radiological investigation X ray, MRI, ECG.

5) **मात्रा निर्धारण :**

निरूहमात्रा प्रसृतार्धमाद्ये वर्षे ततोऽर्धप्रसृतभिवृद्धीः।

आ द्वादशात् स्यात् प्रसृताभिवृद्धिरष्टादशाद् द्वादशतः परं स्युः ॥

आसप्ततेस्त द्विहितं प्रमाणमतः परं षोडशवद् विधेयम् ।

निरूहमात्रा प्रसृतप्रमाणा बाले च वृद्धे च मृदुर्विशेषः ॥ च.सि. 3/31-32

आचार्य चरकानुसार (च.सि. 3/31-32) एक वर्ष वयासाठी निरूह मात्रा 1/2 प्रसृत (4 तोळे = 40 मिली) एवढी आहे ही निम्नतम मात्रा आहे. 12 वर्षा पर्यंत ही मात्रा 1/2 प्रसृताने वाढवावी म्हणजे 12 व्या वर्षी मात्रा 6 प्रसृतात (48 तोळे = 480 मिली) त्यानंतर 18 व्या वर्षापर्यन्त 1 प्रसृताने मात्रा वाढवावी 70 व्या वर्षी ही मात्रा 12 प्रसृत (96 तोळे = 960 मिली) एवढी होणे ही उच्चतम मात्रा आहे. 70 वर्षाच्या पुढे ही मात्रा 10 प्रसृत (80 तोळे = 800 मिली) एवढी आहे.

| शास्त्रकार | हीन मात्रा | मध्यम मात्रा | उत्तम मात्रा |
|--------------------------|---------------------------------|-----------------------------------|---------------------------------------|
| सुश्रुत | 160 मिली (2 प्रसृत) | 320 मिली (4 प्रसृत) | 640 मिली (8 प्रसृत) |
| शाडूर्गधर व भावप्रकाश | 480 मिली (6 प्रसृत)/ एक कुडव | 640 मिली (8 प्रसृत)/ एक प्रस्थ | 800 मिली (10 प्रसृत)/ सव्वा प्रस्थ |
| अन्यमत | 160 मिली | 320 मिली | 460 मिली |

निरूह बस्ति तयार करतांना दोषानुसार स्नेहाची मात्रा विशिष्ट प्रमाणात असावी लागते.

स्वस्थ व्यक्तीमध्ये

चरकानुसार - 4 पल = 160 मिली (एक षष्टांश)

सुश्रुतानुसार - 5 पल = 200 मिली

| बस्तिद्रव्य | वातप्राधान्यामधे | पित्तप्राधान्यामधे | कफप्राधान्यामधे | स्वस्थामधे |
|-------------|---------------------------|---------------------------|----------------------------|---------------------------|
| मधू | 1½ प्रसृत | 2 प्रसृत | 3 प्रसृत | 2 प्रसृत |
| सैधव | 1 तोळा | 1 तोळा | 1 तोळा | 1 तोळा |
| स्नेह | 3 प्रसृत (निरुहाच्या¼) | 2 प्रसृत (निरुहाच्या⅙) | 1½ प्रसृत (निरुहाच्या⅛) | 3 प्रसृत (निरुहाच्या⅙) |
| कल्क | 1 प्रसृत | 1 प्रसृत | 1 प्रसृत | 1 प्रसृत |
| क्वाथ | 5 प्रसृत | 5 प्रसृत | 5 प्रसृत | 5 प्रसृत |
| आवाप द्रव्य | 1½ प्रसृत | 2 प्रसृत | 1½ प्रसृत | 2 प्रसृत |

6) बस्ति औषधी निर्माण :

पूर्व हि दद्यान्मधु सैधवं तु स्नेहं विनिर्मथ्यं ततोऽनुकल्कम् ॥

विमथ्य संयोज्य पुनर्द्रवैस्तं बस्तौ निदध्यान्मथितं खजेन । च.सि. 3/23

माक्षिकं लवणं स्नेह कल्कं क्वाथमिति क्रमात्।

आवपेत निरूहाणां ह्येष संयोजनं विधिः ॥

अ.ह.सू. 19/45

निरूह बस्तिसाठी द्रव निर्माण करण्याची विशिष्ट पद्धत आहे. आचार्यांनी बस्ति द्रव्य हे विशिष्ट क्रमांतच सम्मिलित करण्यास सांगितले आहे.

सर्व प्रथम मधू व लवण एकत्र मर्दन करावे व दोन्ही एकजीव झाल्यानंतर स्नेह घालून पुन्हा मथावे. यानंतर हया मिश्रणात कल्क घालून त्यास एकजीव करावे नंतर क्वाथ घालून एकजीव मिश्रण (Emulsified) होईपर्यन्त मथावे. मिश्रण करण्यासाठी खरल किंवा Grinder mixer चा उपयोग करावा. यासाठी एकजीव झालेले मिश्रण एका पात्रात घालून पात्र कोष्ण जलामध्ये ठेवावे. ज्यामुळे मिश्रण कोष्ण होईल. बस्ति देतांना बस्तिद्रव्य कोष्ण असावे. मात्र बस्तिद्रव्यांचे मिश्रण प्रत्यक्ष (Direct) अग्निवर ठेवून कोष्ण करू नये.

बस्ति द्रव्य तयार झाल्यानंतर बस्ति पुटकामध्ये घेवून बस्ति पुटकास बस्ति नेत्र जोडावे. बस्ति नेत्रामध्ये वायू नसावा याची खात्री करून घ्यावी.

7) आतुरसिध्दता (Preparation of the patient) :

- निरूह बस्ति नेहमी रिकाम्या पोटी/अभुक्तावस्थेत देण्यात येते.

बस्तिदान काल सकाळचा 9-10 am किंवा भोजनोत्तर पाच तासांनी 4-6 pm

- मल-मूत्र विसर्जन झालेले असावे.

- स्नेहन व स्वेदन : सर्वांग स्नेहन स्वेदन करणे हितकर परंतु शक्य नसल्यास

किमान उदर, कटिप्रदेशी-स्नेहन व स्वेदन करावे.

- अनुवासन बस्ति - अधिक रूक्षता असल्यास अनुवासन बस्ति नंतर निरूह बस्ति द्यावी. कोणत्याही शोधनासाठी स्नेह आवश्यक असते. त्यामुळे अनुवासनाने ही आवश्यकता पूर्ण केली जाते.

प्रधानकर्म (Operative procedure)

(1) बस्ति प्रणिधान - पूर्वकर्म झालेल्या रुग्णात द्रोणीवर वाम पार्श्व (Left lateral position) भागावर लेटवावे. यावेळी रुग्णाचे दक्षिण पाद वंक्षण भागी संकुचित करून जानू उर: भागापर्यन्त येईल. त्यानंतर वंक्षण व गुदभाग खुला करावा. रुग्णाचे या स्थितीत बस्ति सुखपूर्वक दिली जाऊन तिचे सुखपूर्वक प्रत्यागमनही होते.

बस्तिदात्याने Gloves घालावे रुग्णाच्या गुदस्थानी तैल/घृत (जात्यादी) पिचूद्वारे स्निग्ध करावे तसेच बस्ति नेत्रासही स्निग्ध करावे. यानंतर बस्ति नेत्र हळूहळू गुदामध्ये प्रविष्ट करावे 4½ ते 6 इंच पर्यन्त नेत्र (Catheter) प्रविष्ट केला जातो. (तत्पश्चात Enema can असल्यास Nozzle lock उघडावे. यावेळी Enema can दात्याने उंचावर पकडून ठेवलेला असावा). बस्तिपुटकास समांतर दाबाने दाब द्यावे व बस्तिद्रव्य आतमध्ये प्रविष्ट करावे. बस्तिनेत्र गुदामध्ये प्रविष्ट करतांना दात्याच्या हातास कंपन नसावे. यावेळी रुग्णास दीर्घ श्वास घेण्यास सांगावे.

बस्ति द्रव्य गुदप्रविष्ट करतांना पुटक पूर्णतः रिकामे होणार नाही यांची काळजी घ्यावी. यामुळे पुटकातील वायू गुदामध्ये जाण्याची शक्यता असते व त्यायोगे रुग्णात पीडा उत्पन्न होते. बस्ति दिल्यानंतर सावधानीपूर्वक बस्ति नेत्र बाहेर काढावे. रुग्णाच्या वंक्षण प्रदेशी थोपटावे.

यापन बस्ति, बल्य बस्तिसाठी रुग्णास बस्ति दिल्यानंतर 2-4 मिनिटे त्याच स्थितीत राहू द्यावे. त्यानंतर उदरबलावर (Prone) होण्यास सांगावे, लगेच दक्षिण पार्श्ववावर (Right lateral position) होवून उत्तान शयन (Supine) स्थितीत यावे. यानंतर याच स्थितीत कटिप्रदेश उंचीवर राहिल (उशी लावून) याची काळजी घ्यावी सोबतच थोड्या थोड्या वेळाने रुग्णाचे पाय उंच करून वंक्षण प्रदेशातुन संकुचीत करत राहावे.

(2) बस्ति प्रत्यागमन - प्रत्यक्षात बऱ्याच रुग्णांमध्ये निरूहबस्ति लगेचच प्रत्यागमीत होते. प्रत्यागमन न झाल्यास पंचकर्म विशेषज्ञाने एक मुहुत म्हणजे 48 मिनिटे वाट बघावी. या पेक्षा अधिक काळ झाल्यास बस्ति हानीकारक सिद्ध होवू शकते.

वेळेत बस्ति प्रत्यागमन न झाल्यास उत्पन्न लक्षणे:- (सु.चि. 38/18, अ.ह.सू. 19/47)

- | | |
|---|---------------------------------------|
| (1) आध्मान (Abdominal distension) | (4) मूत्रशूल (Pain in bladder region) |
| (2) पक्वाशय शूल (Abdominal pain) | (5) ज्वर (Fever) |
| (3) हृदय प्रदेशी पीडा (Discomfort in chest) | (6) मृत्यू (Death) |

चिकित्सा (सु.चि. 38/17, अ.ह.सू. 19/47-48) :

- (1) तीक्ष्ण बस्ति - यवक्षार, गोमूत्र, अम्लद्रव्य व मिश्रण द्रव्य युक्त.
- (2) फलवर्ति - (Suppository)
- (3) स्वेदन - उदर, स्फिक, वंक्षण प्रदेशी
- (4) त्रासन - रोग्यास भिती दाखवावी
- (5) विरेचन - त्रिवृत्त, हरितकी किंवा एरंड स्नेह

(3) लक्षण निरीक्षण - बस्तिकर्माची व्यवस्थीत आखणी केल्यास अपेक्षित यश मिळते. परंतु काही चुका झाल्यास त्याचे अतियोग किंवा हीनयोग बघण्यास मिळतात. निरूहबस्ति नाभ्मी, कटिपार्श्व, कुक्षी पर्यन्त जावून तेथील मल एकत्रित करून शरीर व पक्वाशयास स्निग्ध करीत दोष व मलांचे निर्हरण करते ती 'सम्यक बस्ति' समजावी. (च.सि. 1/40)

| सम्यक लक्षण (च.सि. 1/41) | अयोग लक्षण (च.सि. 1/42, सु.चि.38/8) | अतियोग (च.सि. 1/43, सु.चि.38/9) |
|---------------------------------------|--|--|
| सम्यक मल, मूत्र, वायू, प्रवृत्ति | शिर, हृदय, नाभी प्रदेश, गुदा बस्ति, मेढू/योनि शूल | अंग सुप्ति (Numbness in body parts) |
| क्रमशः मल, पित्त, कफ, वायू विसर्जन | शोथ (Anasarca) | क्लम (Sense of exhaustion) |
| शरीर लाघव | प्रतिश्याय | अंगमर्द (Bodyache) |
| भोजन रुचि | कर्तिका (Cruciating pain in anal region) | कम्प (Tremors) |
| अग्निदीप्ती | हल्लास (Nausea) | निद्रा (Sleep) |
| आशय (पक्वाशय व मलाशय) लाघव | वातसंग (obstruction of flatus) | दौर्बल्य (Weakness) |
| रोगोपशमन | मूत्रसंग (Retention of urine) | तमःप्रवेश (Black out) |
| प्रकृती स्थिती (Healthy feeling) | श्वासकृच्छ्रता (Breathlessness) | उन्माद (Irrelevant speech/behavior) |
| बल वृद्धी | अल्पवेग-बस्तिद्रव मलाचे कमी विसर्जन अरुचि (Tastelessness) गौरव (Heaviness of body) | हिकका (Hiccup) |

प्रसृष्ट विण्मूत्रसमीरणत्वं रूच्यग्निवृद्ध्याशयलाघवानि ।

रोगोपशान्तिः प्रकृतिस्थता च बलं च तत्स्यात् सुनिरूढलिङ्गम् ॥ च.सि. 1/41

स्याद्रुक्छिरोहृद्गुदबस्तिलिङ्गे शोफः प्रतिश्यायविकर्तिके च ।

हल्लासिका मारूतमूत्रसङ्गः श्वासो न सम्यक् च निरूहिते स्युः॥ च.सि. 1/42

लिङ्गं यदेवातिविरेचितस्य भवेत्तदेवानिनिरूहितस्य ॥

च.सि. 1/43

दुर्निरूढः स विज्ञेयो मूत्रात्येरूचिजाड्यवान् ।

यान्येव प्राङ्गयोक्तानि लिङ्गान्यतिविरेचिते ॥

सू.चि. 38/8

आगतौ परमः कालो मुहूर्तो मृत्यवे परम् ॥

तत्रानुलोमिकं स्नेहक्षारमूत्राम्लकल्पितम् ।

त्वरितं स्निग्धतीक्ष्णोष्णं बस्तिमन्यं प्रपीडयेत् ॥

विदद्यात्फलवर्ति वा स्वेदनोत्रासनादि च।

अ.ह.सु. 19/47-49

पश्चातकर्म (Post operative)

(1) परिहार विषय (संयम-नियम): बस्ति चिकित्सेपश्चात रुग्णाने काही संयम-नियम पाळावयाचे असतात. काही विषयांचा परित्याग करायचा असतो त्यास परिहार म्हटले आहे ते खालील प्रमाणे अर्थात त्या त्या व्यवसायाशी निगडीत लोकांनी अवश्य पालन करणे आवश्यक आहे.

अत्यासनंस्थानवचांसि यानं स्वप्नं दिवा मैथुनवेगरोधान्।

शीतोपचारातपशोक रोषां स्त्यजेद् अकालाहित भोजनं च।

च.सि. 1/54

(1) अत्यासन - अधिक वेळ पर्यन्त बसून राहणे, उदा. ऑफीसचे काम

(2) अतिस्थान - सतत उभे राहणे, उदा. ट्राफिक पोलीस, गार्ड

(3) यान - यात्रा करणे (कोणतेही वाहन अथवा हवाई यात्रा)

(4) भाषण करणे-उदा. शिक्षक, वक्ता

(5) दिवास्वप्न -दिवसा झोपणे

(6) मैथुन

(7) वेगावरोध

(8) शीतोपचार-शीत जलाने स्नान, ए.सी. रूमचा वापर

(9) आतप -उन्हात फिरणे

(10) शोक व क्रोध

(11) अकाल भोजन व अहित भोजन

(2) परिहार काल : कालस्तु बस्त्यादिषु याति यावन् तावान् भवेत् द्विपरिहारकालः॥

च.सि. 1/53

जेवढे दिवस बस्ति चिकित्सा घेतली त्यापेक्षा दुष्पट दिवस परिहार विषयांचे पालन करण्याचा काळ परिहार काल होय.

| | | | |
|------|-----------------------|---|---------|
| उदा. | कर्म बस्ति परिहार काल | - | 60 दिवस |
| | काल बस्ति परिहार काल | - | 32 दिवस |
| | योग बस्ति परिहार काल | - | 16 दिवस |

(3) पथ्यापथ्य निर्देश (Diet & Regimen) :

- (1) सर्व प्रकारासाठी कोष्ण जलाचा वापर
- (2) सुखपूर्वक प्रत्यागमनानंतर काही काळ विश्राम
- (3) सुखोष्ण जलाने स्नान
- (4) लघु आहार - दुग्ध (पित्ताधिक्य)
युष (कफदोषासाठी)
मांसरस (वातदोषासाठी)

(बस्ति चिकित्सेनंतर वमन विरेचनोपरांत संसर्जन क्रमाची आवश्यकता नाही कारण वमन व विरेचनासारखे या चिकित्सेत स्रोतसांचा क्षोभ होत नाही त्यामुळे केवळ लघु आहाराची उपाय योजना करावी.) निरूह बस्तिनंतर सायंकाळी भोजनोपरांत अनुवासन बस्ति द्यावी मात्र रुग्ण शरीरात सामता असल्यास त्याच रात्री अनुवासन न देता दुसऱ्या दिवशी द्यावी.

बस्ति व्यापद व चिकित्सा (Complications & Treatment):

बस्तिकर्म करीत असतांना सावधानता न बाळगल्यामुळे किंवा अनावधानाने काही उपद्रव निर्माण होतात त्यास बस्ति व्यापद म्हणतात. हे यंत्रामुळे, चिकित्सकांमुळे, औषधांमुळे किंवा रुग्णांमुळे होवू शकतात. प्रामुख्याने व्यापद खालील प्रकारे विभागले जावू शकतात.

- (1) बस्ति नेत्र व्यापद
- (2) बस्ति पुटक व्यापद
- (3) प्रणेता (बस्तिदाता) व्यापद
- (4) शयन स्थिती (Position of patient)
- (5) अन्य व्यापद

(1) बस्ति नेत्र व्यापद: यापूर्वीच वर्णन केलेले आहे.

चिकित्सा:- (1) दोषयुक्त बस्ति नेत्र त्यागने हीच खरी चिकित्सा

(2) अप्राप्य गतीमध्ये दुसऱ्या नेत्राने पुनः बस्ति

(3) अतिगती मध्ये बस्ति प्रत्यागमनासाठी वाट बघावी. प्रत्यागमन व्यवस्थित झाल्यास काहीही करू नये.

(4) गुदाक्षोभ/क्षत झाल्यास जात्यादी/मधुयष्टी तैल वा घृत स्थानिक लावाने किंवा पिचु धारण कराव्यास सांगावे.

(2) बस्ति पुटक व्यापद : यापूर्वीच वर्णन केलेले आहे.

चिकित्सा:- (1) दोष युक्त पुटक बदलणे.

(2) गतिवैषम्य असल्यास प्रत्यागमानासाठी वाट बघावी व त्यानंतर लाक्षणिक चिकित्सा करावी.

(3) बस्ति द्रव्या सोबत वायू प्रवेशीत झाल्यास वाताशमक चिकित्सा.

(3) प्रणेताजन्य (बस्तिदाता) व्यापद : बस्तिदाता शिक्षीत नसेल किंवा निष्काळजीपणामुळे त्याच्या प्रमादामुळे खालीलप्रमाणे व्यापद होतात.

सवाताति द्रुतोत्क्षिप्ततिर्यग् उल्लुप्तकम्पिताः।

अति बाह्यगमन्दाति वेगदोषाः प्रणेतृतः।।

च.सि. 5/8

(i) सवातबस्तिदान - बस्तिद्रव्यांसोबत वायू प्रविष्ट. त्यामुळेच बस्ति सावशेष देण्याचे विधान आहे.

लक्षण - शूल व तोद

चिकित्सा: क्षीरबला, पंचगुण तैलाने अभ्यंग

स्वेदन (मृदू)

Modern -Hot water bag fomentation

(ii) दृतप्रणीत बस्ति : बस्ति नेत्र घाईने प्रविष्ट करणे, घाईने निष्कासन करणे

लक्षण - गुद, वंक्षण, कटिशूल, बस्ति स्तम्भ, मूत्राघात

चिकित्सा: वातघ्न अन्नपान, मांसरस, घृत, दुग्ध

अभ्यंग, स्वेदन, अनुवासन बस्ति

(iii) तिर्यग प्रणिधान : बस्तिनेत्राचे तिर्यक प्रवेश केल्याने.

लक्षण - बस्ति द्रव्य आत प्रविष्ट होत नाही.

चिकित्सा: बस्ति नेत्र बाहेर काढून पुनः सरळ प्रविष्ट करणे.

(iv) उल्लुप्त बस्तिदान: बस्तिदानाच्या वेळी बस्तिपुटक वारंवार दाबणे.

लक्षण - वारंवार दाबल्याने गुदामध्ये वायू प्रकोप, वंक्षणशूल, शिरःशूल, उरूसाद

चिकित्सा: बस्ति - (त्रिवृत्त, बिल्व, मदनफल + गोमूत्र)

(v) सकंप बस्तिदान: बस्तिदात्याचे बस्ति देते वेळी हस्त कंपन होणे.

लक्षण - गुदाशोथ, दाह

चिकित्सा: बस्ति - कषाय, मधूर रस सिध्द (लोध्र,त्रिफला, आरग्वध, बदर, खदिर इत्यादि)

गुदापरिषेक - मधूर रस सिध्द क्वाथाने (द्राक्षादि)

(vi) अति प्रणीत बस्तिदान: बस्ति नेत्र गुदभागामध्ये अधिक प्रविष्ट केल्याने

लक्षण - गुदव्रण, शूल, दाह, गुदभ्रंश

चिकित्सा: बस्ति - पिच्छाबस्ति, क्षीरबस्ति

पिचूधारण - जात्यादि तैल, लाक्षादि तैल, अर्शोघ्न तैलाने

Sitz bath.

(vii) अतिबाह्य वा अतिमंद बस्ति : बस्तिनेत्र गुदामध्ये पूर्णतः प्रविष्ट न करणे किंवा मंदगतीने बस्ति दिल्याने.

लक्षण - बस्ति अप्राप्ति व अयोग लक्षण

चिकित्सा: पुनःबस्ति

(viii) अतिवेग बस्ति : तीव्र वेगाने बस्ति दिल्याने.

लक्षण - बस्ति द्रव्याचे अप्रत्यागमन

च्छर्दि (बस्ति द्रव्यांचे उर्ध्वगमन)

चिकित्सा: पुनःबस्ति

विरेचन - त्रिवृत्तचूर्ण, अविपत्तीकर चूर्ण

शीत जलाने परिषेक

सुतशेखरवटी, शंखभस्म

Modern - Metaclopramide (Perinorm)

Rest-

(4) शयनस्थिती (Position) मुळे होणारे व्यापद.

(1) बस्ति देण्याचे वेळेस डोके उंच असल्यास/उशी ठेवली असल्यास.

लक्षण - पक्वाशय व आंत्र यांची दिशा योग्य नसल्यामुळे बस्ति मूत्राशय व मेढ्राच्या दिशेने आंत्रपीडन करते. आनाह.

चिकित्सा: मृदू स्वेदन, उत्तरबस्ति (गरज असल्यास)

(2) रुग्णाचे डोके खाली असल्यास (Low head)

लक्षण - बस्तिचे विमार्गगमन, हृदपीडा, गुदपीडा, कोष्ठशूल

चिकित्सा: मृदू स्वेदन

(3) उत्तान अवस्थेत (Supine) बस्ति दिल्याने

लक्षण - मार्गाविरोधाने बस्ति प्रविष्ट होत नाही.

चिकित्सा: पुनः वामपार्श्वस्थितीत बस्ति देणे.

(4) बस्तिदानाच्या वेळी रुग्णाने नेत्र फिरविणे

लक्षण - वायू प्रकोप

चिकित्सा: वातशमन चिकित्सा

(5) बस्तिदानाच्या वेळी दोन्ही सक्थ (मांडया) संकुचित केलेल्या असल्यास.

लक्षण - बस्ति वायू ने आवृत्त, प्रत्यागमन नाही.

चिकित्सा: प्रत्यागमनाची वाट बघावी

उदर प्रदेशी मृदूस्वेद

विरेचन, फलवर्ती

(6) दक्षिण पार्श्व स्थितीमध्ये बस्तिदान

लक्षण - पक्वाशयापर्यन्त बस्ति पोहचत नाही, अयोगातील लक्षणे

चिकित्सा: लाक्षणिक चिकित्सा

(7) बसलेल्यास्थितीत बस्ति देणे

लक्षण - अयोग

चिकित्सा: पुनः बस्ति-वामपार्श्व स्थितीत

(5) अन्य व्यापद :

नातियोगौ कलमाध्माने हिक्का हृत्प्राप्ति रूर्ध्वता ।

प्रवाहिका शिरोङ्गार्ति परिकर्तः परिस्रवः ॥

द्वादश व्यापदो बस्तेरसम्यग्योग संभवाः

च.सि. 7/5-6

चक्रपाणिनी अतियोग व अयोग यांना वगळल्याने 'दशैता व्यापदोबस्ति' म्हणून 10 व्यापद मानले आहे.

(1) अयोग: हेतू - गुरूकोष्ठी, वातबहुल, अतिरूक्ष शरीर असलेले, वात प्रधान रुग्णात अनुष्ण, शीत, अल्प स्नेह, हीनगुणयुक्त बस्तिप्रयोग.

लक्षण - बस्तिचे प्रत्यागमन न होणे, उदर गौरव, मल-मूत्र संग, नाभी, बस्ति रूजा, हृदयोपलेप, शोथ, गुदकंडू, पिडिका, वैवर्ण्य, अरूचि, अग्निमांद्य.

चिकित्सा: उष्ण प्रमथ्या (दीपनपाचक कषाय)

स्वेदन, फलवर्ति

बस्ति (बिल्वमूल, त्रिवृत्त, देवदारू, कोल, यव, कुलत्थ यांचा क्वाथ, सुरा, गोमूत्र).

Modern -Hot fomentation

Glycerine suppository

Cyclopam on severe spasmodic pain.

(2) अतियोग: हेतू - स्निग्ध-स्विन्न, मृदूकोष्ठी रोग्यास अति तीक्ष्ण व अति उष्ण बस्ति दिल्यास

लक्षण - विरेचनाचे अतियोग लक्षण

चिकित्सा: बस्ति (पृश्निपर्णी, स्थिरा, कमल, द्राक्षा, गंभारी, बला, यष्टीमधू यांचे कल्प+तंदुलोदक+दुग्ध+घृत)

संजीवनी वटी, सूतशेखर रस, शंखवटी

Modern -IV fluid

Inj. Atropine

Tab. Loperamide

Inj. Dexona

(3) **कलम (Tiredness):** हेतू - आमदोष अवस्थेत मृदू निरूह दिल्याने अल्प दोष निर्हरण.

वायूचे आम, पित्त, कफाने मार्गाविरोध झाल्यामुळे अग्निमांद्य.

लक्षण - विदाह, हृद्शूल, गौरव, पिण्डकोद्वेषन

चिकित्सा: आमपाचन, विरूक्षण - (चित्रकादि वटी)

स्वेदन

कषाय - (गंधतृण, उशीर, देवदारू, मूर्वा, सौवर्चल लवण)

बस्ति - i) गोमूत्र व क्षारयुक्त ii) दशमूल क्वाथ+गोमूत्र

(4) **आध्मान:** हेतू - दोषाधिक्य अवस्थेत क्रूर कोष्ठी व रूक्ष रुग्णास अल्पवीर्याची बस्ति दिल्यास.

लक्षण - गुदशूल, विदाह, वंक्षणशूल, हृद्शूल

चिकित्सा: फलवर्ति

बस्ति (बिल्वादि निरूह पश्चात अनुवासन)

Modern - Suppository

Omez, Cisapride

Hot fomentation

(5) **हिकका:** हेतू - मृदूकोष्ठ, हीनबल रुग्णात अतितीक्ष्ण बस्ति

लक्षण - शोधन अधिक, हिकका

चिकित्सा: बृंहण चिकित्सा

स्त्री स्तन्य नस्य, धूमपान, अनुवासन बस्ति

वासावलेह, कंटकारी अवलेह

मयुरपिच्छामशी, सुतशेखर

(6) **हृद्प्राप्ति:** हेतू- अतितीक्ष्ण द्रव्याची बस्ति, वातल बस्ति किंवा पुटक पीडन व्यवस्थित न केल्यास

लक्षण- हृदयप्रदेश जखडणे

चिकित्सा: बस्ति (अम्ल व लवण स्कंध सिध्द)

अनुवासन (दशमूल सिध्द तैल, बला तैल)

Modern - Immediate ECG to exclude cardiac disease

(7) उर्ध्वप्राप्ति:हेतू - बस्ति दिल्यानंतर रुग्णाद्वारे मल-मूत्र वेग धारण

बस्तिपुटक अधिक दाबाने दाबल्यास

लक्षण - बस्ति अर्तावेगाने उर्ध्व मार्गास जाणे
मूर्च्छा.

चिकित्सा:नस्य-मूर्च्छा अवस्थेत तीक्ष्ण नस्य

शीतल जल परिषेक, शीतल वायू

हिंवाष्टक चूर्ण (अनुलोमनासाठी)

Modern - due to vasovagal syncope

Head low

Dexamethasone

Atropin, adrenalin SOS

(8) प्रवाहिका: हेतू - स्निग्ध-स्विन्न दोषाधिक्य रुग्णास मृदू-अल्प औषध युक्त बस्ति दिल्यास

लक्षण - प्रवाहिका, गुदशोथ, जंघासाद

चिकित्सा: बस्ति - अभ्यंग स्वेदन पश्चात निरूह बस्ति

विरेचन - (गंधर्व हरीतकी 2 gm)

लंघन

(9) शिरोऽर्ति (Headache): हेतू - क्रुरकोष्ठी, दुर्बल, तीव्र दोष युक्त रुग्णास शीत-मृदू बस्ति दिल्यास.

लक्षण - बस्ति दोषांनी आवृत्त होवून वायू प्रतिलोम

शिर:शूल, पीनस, कर्णनाद, नेत्रविभ्रम, बाधिर्य

चिकित्सा:अभ्यंग (लवण युक्त तैलाने)

प्रधमन, धूम नस्य

विरेचन

अनुवासन (स्निग्ध भोजन पश्चात)

सुतशेखर रस

Modern-Analgesic

Antacid

(10) अंगाति (Bodyache): हेतू - अभ्यंग व स्वेदन न करता तीक्ष्ण द्रव्यांची उत्तम मात्रेत बस्ति दिल्यास अतिमात्रेत शोधन व वायू प्रकोप होतो.

लक्षण - शरीर शूल, तोद-भेद, स्फुरण, जृम्भा

चिकित्सा: अभ्यंग, परिषेक, अवगाहन

निरूह-बिल्वादितैल+लवण+यव, कुलत्थ, दशमूल क्वाथ

अनुवासन (बला तैल, लवण तैल)

Modern - Analgesic

Anatacid

(11) **परिकर्तिका:हेतू** - मृदूकोष्ठ व अल्पबलयुक्त रुग्णास रूक्ष, तीक्ष्ण व अतिमात्रे बस्ति दिल्यास

लक्षण - त्रिक, बस्ति, वंक्षण, अधोनाभी प्रदेशी शूल

विबंधासोबत अल्प मल प्रवृत्ती

चिकित्सा: मधूर व शीत द्रव्य चिकित्सा

दुग्ध, इक्षु रस सेवन

अनुवासन (क्षीर+मधुयष्टी+तिलकल्क सिध्द तैलाने)

क्षीरबस्ति (सर्जरस, मधुयष्टी, अंजन सिध्द दुग्ध)

अम्ल, लवण भोजन

अवगाहन

Modern - NSAID - SOS

(12) **परिस्राव:** हेतू - पित्तप्रधान व्याधीमध्ये उष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल, लवण द्रव्यांची बस्ति दिल्यास.

लक्षण - गुदाचे लेखन होवून गुददाह, रक्तयुक्तस्राव, मूर्च्छा

चिकित्सा: पिच्छाबस्ति - (i) पंचवल्कल, यव, तिल, सौवर्चल, कांचनार सिध्द

(ii) शाल्मली डंठल(वृंत)+अजादुग्धाने सिध्द करून

मधूर, रक्त, पित्तघ्न चिकित्सा

गुदभागी मधूर व शीत द्रव्यांचे परिषेक वा लेप

गुदस्थानी जात्यादी तैल वा घृत

Modern - Emergency condition, treatment of per rectal bleeding or peritonitis as per the condition

वरील व्यापद हे कुशल चिकित्सकाकडून सहज टाळता येणारे आहेत. सध्याच्या काळात वापरात असलेल्या उपकरणांमुळे नेत्रदोष, पुटकदोषाने होणारे व्यापद सहज टाळता येतात. त्यामुळे भरमसाठ दिसणाऱ्या व्यापदांचा बाऊ करण्यात अर्थ नाही. काही व्यापद निश्चितच चिकित्सकांच्या कुशलतेवर अवलंबून आहेत. त्याकडे लक्ष दिले की झाले.

अनुवासन बस्ति (Administration of Anuvasan Basti):

अनुवासन बस्तिदानाच्या वेळी निरूह बस्ति सारखाच विचार करावा लागतो. अनुवासन बस्तिचे काही विशेष नियम आहेत.

विशेष नियम:-

- (1) रुग्णांचे परिक्षण करून रुग्ण अनुवासनास योग्य आहे किंवा नाही हे निश्चित करावे.
- (2) कफ व मेद प्रधान व्याधी प्रमेहा सारख्या संतर्पनोत्थ व्याधी मध्ये अनुवासन बस्ति निषेध आहे.
- (3) साम दोषांमध्ये बस्ति चिकित्सा देवू नये. सामावस्थेत अनुवासन दिल्याने दोष अधिक दुषीत होवून गुदप्रदेशी क्लेद उत्पन्न करतात.
- (4) शिशिर, हेमंत व वसंत ऋतूमध्ये (नोव्हेंबर ते एप्रिल) अनुवासन बस्ति दिवसा द्यावी. हया काळात (च.सि. 1/22) रात्री बस्ति देवू नये. रात्री बस्ति दिल्यास शीताधिकारामुळे दोषोत्कलेश होवून आध्मान, गौरव, ज्वर हे लक्षण निर्माण होतात. दिवसा दोष यथास्थान राहिल्याने व अग्निप्रदिप्त असल्यामुळे आहाररसाचे व्यवस्थित पचन होते. तसेच स्रोतोमुख खुले असल्याने स्नेह शरीरात योग्य प्रकारे पोहचविला जातो.

शीते वसन्ते च दिवाडनुवास्यो रात्रौ शरदग्रीष्मघनागमेषु ॥

तानेव दोषान् परिरक्षतता ये स्नेहस्य पाने परिकीर्तिताः प्राक् । च.सि. 1/22

- (5) पित्ताधिक्य, कफक्षय व वातव्याधिच्या रुग्णांमध्ये रात्री (सायंकाळ) अनुवासन देता येते.
- (6) अत्याधिक अवस्थेत काळाचे बंधन नाही.
- (7) वमनादि क्रमानंतर अनुवासन विरेचनाच्या नवव्या दिवशी द्यावी (च.सि. 1/20) मात्र आचार्य सुश्रुतांनी अनुवासन बस्ति - विरेचनानंतर 7 व्या दिवशी म्हणजे संसर्जन क्रमाच्या शेवटच्या दिवशी प्राकृत भोजन केल्यानंतर देण्याचे वर्णन केलेले आहे.

संसृष्टभक्तं नवमेऽन्ही सर्पिस्तं पाययेताप्यनुवासयेद्वा ॥

तैलाक्तगात्राय ततो निरूहं दद्यात् त्र्यहान्नानिकभुक्षिताय । च.सि. 1/20

विरेचनात् सप्तरात्रे गते जातबलाय वै ।

कृतान्नायानुवास्याय सम्यग्देयोऽनुवासनः ॥

सु.चि. 37/3

- (8) निरूहानंतर अनुवासन बस्ति द्यावी. निरूहामुळे बस्तिचे मार्ग शुध्द होते हयामुळे अनुवासनाबस्तिचे स्नेह शरीरास योग्य प्रकारे पोहचविला जातो.

निरूहः शोधनो लैखी स्नैहिको बृंहणो मतः ।

निरूह शीधितान्मार्गान् सम्यक् स्नेहोऽनुगच्छति ॥

सु.चि. 35/19

- (9) अनुवासन बस्ति भोजनानंतर लगेचच (आर्द्रपाणि - जेवणानंतर हाथ धुतल्या धुतल्या) द्यावी.

- (10) बस्ति संख्या - वातज विकारांमध्ये 9 - 11
पित्त विकारांमध्ये 5 - 7
कफ विकारांमध्ये 1 - 3

- (11) केवळ निरूह किंवा केवळ अनुवासन बस्ति देवू नये त्यासाठी व्यत्यास क्रमाने बस्ति द्यावीत
- (12) तीक्ष्णाग्नि, रूक्ष नियमित व्यायाम करणारे (अधिक ओझ्याचे काम करणारे उदा. मजूर, सायकल रिक्शा चालक इ.) वातव्याधीने पिडित, वंक्षण, श्रोणि मध्ये वातप्रकोप असणारे रुग्णांमध्ये रोज (प्रतिवासरम्) अनुवासन दिली जावू शकते. (च.सि. 4/41, अ.ह.सु. 19/34)
- (13) अनुवासन बस्तिमध्ये स्नेहासोबत सैधव (3-4 ग्रॅम) व बडिशोप (1-2 ग्रॅम) दिल्यास बस्ति सुखपूर्वक प्रत्यागमीत होते.

सन्तु सैन्धवचूर्णेन शनाद्वेन च योजितः।

देयः सुखोष्णश्च तथा निरेति सदसा सुखम्॥

सु.चि. 37/63

अनुवासन बस्ति योग्य/अनुवास्यः (Indications): च.सि. 2/19

ज्या रुग्णांस आस्थापनबस्ति देता येते ते सर्व रुग्ण अनुवासन बस्तिसाठी योग्य आहेत. तरीही विशेषत्वाने रूक्ष, तीक्ष्णाग्नि युक्त, केवळ वातरोगी अनुवासन बस्तिसाठी प्राधान्याने योग्य आहेत.

अनुवासन बस्ति अयोग्य/अननुवास्यः (Contraindications)

(च.सि. 2/17, सु.चि. 35/21, अ.ह.सु. 19/7-8)

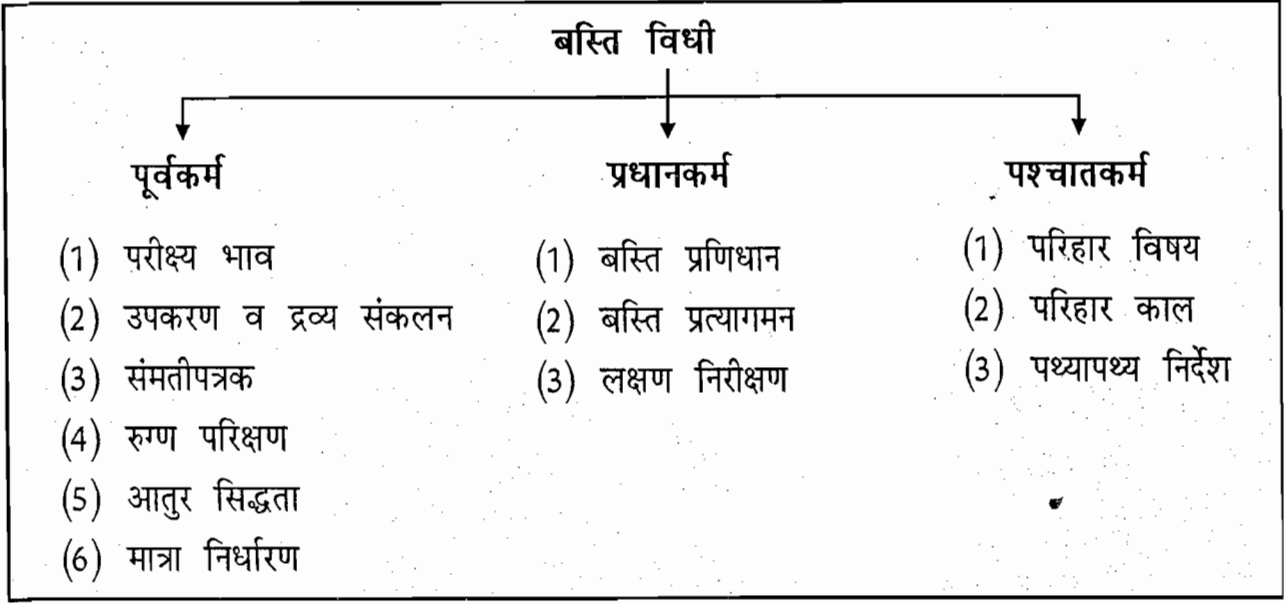
आचार्यांनी जे आस्थापन बस्तिसाठी अयोग्य सांगितले आहेत तेच अनुवासन बस्तिसाठी सुध्दा अयोग्य सांगितलेले आहेत. परंतु काही अपवाद वगळता उदा. भूक्तभक्त, कृश इ. अननुवास्य रुग्णांमध्ये बस्ति दिल्यास व्याधी अधिक वाढण्याची शक्यता असते. त्यामुळे पंचकर्मतज्ञांनी अयोग्याकडे विशेष लक्ष देवूनच बस्तिकर्म करणे अपेक्षित आहे. अननुवास्य खालील प्रमाणे आहेत.

| अ.क्र. | अनुवासन अयोग्य | चरक | सुश्रुत | वाग्भट |
|--------|-----------------------------------|-----|---------|--------|
| 1 | अनास्थाय | + | + | + |
| 2 | अभूक्तभक्त (उपाशी) | + | - | + |
| 3 | नवज्वर (Acute fever) | + | - | - |
| 4 | पांडू (Anemia) | + | + | + |
| 5 | कामला (Jaundice) | + | - | + |
| 6 | प्रमेह (Condition like polyurea) | + | - | + |
| 7 | अर्श (Piles) | + | - | - |
| 8 | प्रतिश्याय (Rhinitis) | + | - | - |
| 9 | अरोचक (Anorexia) | + | - | - |
| 10 | मंदाग्नि (Weak digestive fire) | + | - | - |
| 11 | दुर्बल (Weakness) | + | - | - |
| 12 | प्लीहोदर (Splenomegaly) | + | + | + |
| 13 | कफोदर (Ascites of kapha dominant) | + | + | + |

| अ.क्र. | अनुवासन अयोग्य | चरक | सुश्रुत | वाग्भट |
|--------|----------------------------------|-----|---------|--------|
| 14 | उरूस्तम्भ | + | - | + |
| 15 | वर्चभेद (अतिसार) (Diarrhea) | + | - | + |
| 16 | विषपीत (Poisoning) | + | - | + |
| 17 | गरपीत (Compound poisoning) | + | - | + |
| 18 | अभिष्यंद (Conjunctivitis) | + | - | + |
| 19 | गुरूकोष्ठ (Heaviness of abdomen) | + | - | + |
| 20 | श्लीपद (Filariasis) | + | - | + |
| 21 | गलगंड (Goitre) | + | - | + |
| 22 | अपचि (Cervical lymphadenitis) | + | - | + |
| 23 | कृमीकोष्ठ (Helminthiasis) | + | - | + |
| 24 | कुष्ठ (Skin Diseases) | - | + | + |
| 25 | स्थूल (Obesity) | - | + | + |
| 26 | पीनस (Rhinorrhea) | - | - | + |
| 27 | कृश (Emaciation) | - | - | + |

अनुवासन अयोग्यास बस्ति दिल्याने होणारे व्यापदः

| अ.क्र. | अनुवासन | व्यापद | कारण/शेरा |
|--------|-----------------------------|---|--|
| 1 | अभुक्तभक्त | बस्ति ऊर्ध्वगमन आध्मान, हिक्का, च्छर्दि | रिक्तमार्ग असल्यास बस्ति वर पर्यन्त पोहचते त्यामुळे अणुप्रवनभावाने स्नेहाची शीघ्र व्याप्ती होऊन व्यापद |
| 2 | नवज्वर, कामला, पांडू | उदररोग | सर्वरोग स्रोतोरोधजन्य असल्याने दोष स्नेहगती मध्ये अवरोध होवून दोषोत्कल्लष्ट होतात. |
| 3 | अर्श | अर्शाकुरकिलन्न, आध्मान | स्नेहामुळे |
| 4 | अरोचक | अरूचि | स्नेहामुळे पुन्हा अग्निमांद्य होते. |
| 5 | अग्निमांद्य, दौर्बल्य | अग्निमांद्य | स्नेहामुळे पुन्हा अग्निमांद्य होते. |
| 6 | प्रतिश्याय, प्लीहादी रोग | दोषवृद्धि | अग्निमांद्यजनित व कफ प्रधान्य विकार, दोषोत्कलेश होवून |
| 7 | कृमीकोष्ठ | कृमीची उर्ध्वगती व हृदयापकर्षण | कृमी निर्हरण न झाल्याने |



पूर्वकर्म (Preoperative procedure):

(1) **परीक्ष्यभावः** निरूह बस्तिमध्ये वर्णिल्या प्रमाणेच अनुवासन बस्तिमध्येही परीक्ष्यभावाचा विचार करावा. अनुवासन बस्ति संदर्भात कालाचे वर्णन विशेष नियमामध्ये आलेलेच आहे.

(2) **उपकरण व द्रव्य संकलनः**

- | | |
|---|---|
| (1) द्रोणी | (7) मापक (Measuring glass) |
| (2) Syringe 100 ml & Plain rubber catheter. | (8) Hand gloves |
| (3) स्टील पात्र | (9) Cotton |
| (4) गॅस | (10) बस्तिसाठी आवश्यक स्नेह उदा. बला तैल, जीवन्त्यादि, माष तैल इ. |
| (5) कोष्ण जल | (11) अभ्यंगासाठी तैल, धान्वंतर, बला, नारायण इ. रुग्णानुसार |
| (6) टॉवेल | (12) पंचकर्म सहाय्यक - 2. |

(3) **संमतीपत्रक (Written consent):** रुग्णास समजेल अशा भाषेत पंचकर्मातील विधीमुळे होणारे फायदे व संभावीत व्यापद समजावून लिखित पत्रकावर रुग्णाची व/अथवा नातेवाईकांची स्वाक्षरी/अंगठा घ्यावा.

(4) **रुग्णपरीक्षणः** रुग्णास अर्श, भगंदर, परिकर्तिका इ. गुदस्थानातील व्याधी तर नाही यासाठी गुदगत परीक्षण करावे.

Investigations-Biochemical-CDC, HDL etc.

Radiological-X-ray, MRI etc. (आवश्यकतेनुसार)

(5) आतुरसिध्दता:

अनुवासन बस्ति भोजनोत्तर दिली जाते. त्यामुळे भोजनानंतर अल्प व्यायामानंतर, ऋतुनुसार शक्य असेल त्याचा विचार करून सकाळी किंवा सायंकाळी बस्ति द्यावी. बस्ति ही अभ्यंग स्वेदानंतर द्यावी त्यासाठी खालीलप्रमाणे रुग्णास तयार करावे.

- (i) **भोजन** - रुग्णाचा आहार अतिस्निग्ध नसावा अन्यथा बस्तिनंतर मूर्च्छा उत्पन्न होवू शकते. रुग्णांचा आहार अतिरूक्षही नसावा त्यामुळे बल व वर्णाचा नाश होते. भोजन पूर्णतः पक्व असावे तसेच मात्रा फार अधिक नसावी.

वात व्याधीमध्ये-मांसरस युक्त भोजन (Chicken Soup)

पित्त व्याधीमध्ये-दुग्ध

कफ व्याधीमध्ये-युष

- (ii) **चंक्रमण (Physical exertion)** - जेवणानंतर रुग्णास शतपावली करण्यास सांगावी. अति व्यायाम किंवा शारीरिकश्रम वर्ज्य आहे.

- (iii) **मल-मूत्र विसर्जन** - चंक्रमणानंतर मल-मूत्र विसर्जन करण्यास सांगावे. त्यामुळे बस्ति अधिक काळ टिकून राहिल.

- (iv) **अभ्यंग व स्वेदन** - वंक्षण, पृष्ठ व उदर प्रदेशी तैलाने अभ्यंग करावा त्यानंतर बाष्प किंवा अवगाह स्वेद द्यावा टॉवेल गरम पाण्यात भिजवून पिळून घ्यावा व टॉवेलने सेक करावा.

- (6) **मात्रा निर्धारण:** निरूहबस्तिच्या $\frac{1}{4}$ (पादांश) एवढी मात्रा स्नेह बस्तिची आहे.

स्नेह बस्ति - 24 तोळे = 240 मिली

अनुवासन बस्ति - 3 पल = 120 मिली

वयानुसार मात्रा निर्धारण करतांना वयानुसार निरूह मात्रेच्या $\frac{1}{4}$ (पादांश) एवढी मात्रा असावी

यथावयो निरूहाणां या मात्रा परिकीर्तितः।

पादावकृष्टास्ताः कार्याः स्नेहबस्तिषु देहिनाम्।।

सु.चि 37/4

| वय | मात्रा | वयानुसार वृद्धि |
|---------|--------------------|---------------------------------|
| 1 वर्ष | 1 तोळा - 10 मिली | -- |
| 12 वर्ष | 12 तोळे - 120 मिली | प्रत्येक वर्षात एक तोळा वृद्धि |
| 13 वर्ष | 14 तोळे - 140 मिली | -- |
| 18 वर्ष | 24 तोळे - 240 मिली | प्रत्येक वर्षात दोन तोळे वृद्धि |
| 70 वर्ष | 20 तोळे - 200 मिली | -- |

प्रधानकर्म (Operative procedure):

(1) बस्तिप्रणिधानः बस्ति प्रणिधान कर्म निरूह बास्तप्रमाणेच आहे.

- पूर्वकर्म झालेल्या रुग्णास वाम पार्श्वीवर दक्षिण पाद संकुचित करून लेटवावे. वामपाद सरळ ठेवावा.
- बस्ति तैलाचे पात्र गरम पाण्याच्या पात्रात ठेवून अप्रत्यक्षपणे तैल कोष्ण करावे.
- आवश्यकतेनुसार मात्रा ठरवून बस्ति यंत्रामध्ये तैल भरावे. बस्ति पुटकामध्ये वायू (Air) असणार नाही याची काळजी घ्यावी. (Syringe मध्ये तैल भरून Rubber Catheter लावावे)
- बस्तिदात्याने Gloves घालून रुग्णाच्या गुदस्थान तैल/घृताने पिचूद्वारे स्निग्ध करावे. यानंतर बस्तिनेत्र (Catheter) हळूहळू गुदामध्ये पृष्ठवंशाच्या दिशेने प्रविष्ट करावा. यानंतर पुटकावर (Syringe piston) दाब देवून तैल आतमध्ये निर्गमित करावा. यावेळी रुग्णास दीर्घ श्वास घेण्यास सांगावे त्यानंतर काळजीपूर्वक बस्तिनेत्र बाहेर काढावा.

बस्तिनंतर लगेचच रुग्णाच्या स्फिकप्रदेशी थोपटावे व रुग्णास दोन्ही हाताचे एकमेकांवर मर्दन करण्यास सांगावे. त्याचवेळी सहाय्यकाने रुग्णाच्या पादस्थानी मर्दन करावे. बस्ति लगेच बाहेर येऊ नये म्हणून रुग्णास उत्तान स्थितीत (Supine position) पडून राहण्यास सांगावे व रुग्णाच्या नितंबाखाली उशी ठेवावी.

(2) बस्ति प्रत्यागमनः सामान्यतः अनुवासन बस्ति परत येण्याचा काळ तीन याम (12 तास) सांगितलेला आहे. त्यामुळे 12 तासापर्यन्त बस्ति टिकणे हे सम्यक लक्षण आहे. त्यापेक्षा पूर्वी बस्ति प्रत्यागमन झाली तर दुसरी स्नेह बस्ति देण्याचे निर्देश आहेत.

जर अनुवासन बस्ति 12 तासा नंतरही परत आली नाही तर 24 तासापर्यन्त प्रतिक्षा करावी. त्यानंतरही प्रत्यागमन न झाल्यास फलवर्ति किंवा तीक्ष्ण बस्ति देवून बस्तिचे प्रत्यागमन करवावे (अ. ह.सू. 19/32-33). परंतु स्नेह अतिरूक्ष शरीरामुळे प्रत्यागमित न झाल्यास व जाड्यता (lassitude) सारखा कोणताही त्रास नसल्यास उपेक्षा करावी. मात्र त्या रात्री भोजन देवू नये व सकाळी कोष्णजल किंवा सुंठी सिध्द किंवा धान्यक सिध्द जल द्यावे. (अ.ह.सू. 19/32-33)

अतिरौक्ष्यादनागच्छन्न चेज्जाड्यादिदोषकृत् ।

उपेक्षेतैव हि ततोऽध्युषितश्च निशां पिबेत् ॥

प्रातर्नागरधान्याभः कोष्णं केवलमेव वा । अ.ह.सू. 19/32-33

रुग्णास तिसऱ्या किंवा पाचव्या किंवा स्नेह जीर्ण झाल्यानंतर पुन्हा अनुवासन बस्ति द्यावी.

(3) लक्षण निरीक्षण व चिकित्सा:

- वायू व पुरीष या सोबत स्नेह दाह न होता व हळुहळू परत येणे सम्यक अनुवासानाचे लक्षण आहे.

सानिलः पुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु।

ओष चौषौ विनाशीघ्रं स सम्यक अनुवासितः।।

सु.चि. 37/67

- अनुवासनानंतर रुग्णास पीडा होत असल्यास रूजार्त अंगाचे मर्दन करावे, विश्राम करण्यास सांगावे.
- बस्ति द्रव्य, गुरू, उष्ण-तीक्ष्ण, अधिक मात्रेत असल्यामुळे किंवा सवात बस्ति दिल्याने शीघ्र परत आल्यास दुसऱ्या दिवशी आधीच्या मात्रेपेक्षा कमी मात्रेत पुनः अनुवासन बस्ति द्यावी. (सु.चि. 37/64-65)

यस्यानुवासनो दत्तः सकृदन्वक्षमाव्रजेत् ।

अत्यौष्ण्यादतितैक्ष्ण्याद्वा वायू ना वा प्रपीडितः ।।

सवातोऽधिकमोत्रौ वा गुरूत्वाद्वा सभेषजः ।

तस्यान्योऽल्पतरो देयो नहि स्निह्यत्यतिष्ठति ।।

सु.चि. 37/64-65

पश्चातकर्मः

(1-2)परिहार विषय व परिहार कालः-निरूहाप्रमाणे

- (3) भोजनक्रमः (i) बस्ति प्रत्यागमनानंतर दुसऱ्या दिवशी मध्यान्हात मनो अनुकूल भोजन द्यावे.
- (ii) सायंकाळी युष-मांसरस इ. युक्त भोजन देवून अनुवासनबस्ति द्यावी. कर्म, काल-योग क्रमाने तिसऱ्या दिवसानंतर अनुवासन बस्ति द्यायची असल्यास विधिपूर्वक अनुवासनापूर्वी निरूह द्यावी.
- (iii) धान्यक व सुंठी सिध्द जल किंवा उष्ण जल पिण्यास द्यावे यामुळे स्नेहाचे पाचन, कफाचे छेदन व वायू चे अनुलोमन होते. (च.सि. 4/43-48)

अनुवासन बस्ति व्यापद व चिकित्सा

अनुवासन बस्ति देतांना चिकित्सकाच्या दुर्लक्षामुळे उपद्रव उत्पन्न होवू शकतात. निरूह बस्तिच्या व्यापदांचे वर्णन करतांना जी व्यापद वर्णीत आहेत ते व्यापद (उदा. बस्तिनेत्र व्यापद, बस्तिपुटक व्यापद, प्रणेता व्यापद) अनुवासनाच्या वेळी ही उत्पन्न होणारे आहे. याशिवाय स्नेह बस्तिमुळे खालीलप्रमाणे काही विशेष व्यापद उत्पन्न होवू शकतात.

- | | |
|-------------------------------|--|
| (1) स्नेह वाताने आवृत होणे. | (2) स्नेह पित्ताने आवृत होणे. |
| (3) स्नेह कफाने आवृत होणे. | (4) स्नेह अन्नाने आवृत होणे. |
| (5) स्नेह पुरीषाने आवृत होणे. | (6) अभूक्त अवस्थेत बस्ति दिल्याने आवृत होणे. |

| अ.क्र | स्नेह बस्ति व्यापद | कारण | लक्षण | चिकित्सा |
|-------|--|--|--|--|
| 1 | वातावृत्त स्नेह (च.सि. 4/28,30) (सु.चि. 37/83) | वातदोषाचे प्राधान्य असतांना अतीशीत व अल्प प्रमाणात बस्ति दिल्यास वात प्रकुपित होवून स्नेहास आवृत्त करतो. | प्रत्यागमन वेळेत न होणे, अंगमर्द, ज्वर, आध्मान, स्तम्भ (Stiffness), उरूशूल, पार्श्वशूल कषायआस्यता, जुंभा, कंप | निरूह बस्ति 1) रास्ना, पीतदारू, लोध्र यांचा क्वाथ + सौवीर, कोल, कुलत्थ, यव, लवण, कांजी + तैल 2) पंचमूल क्वाथ, रास्नादितैल, गोमूत्र+क्वाथ अनुवासन, निरूहानंतर शोधनोपरांत सायंकाळी भोजनोत्तर रास्नादितैलाचा अनुवासन बस्ति. |
| 2 | पित्तावृत्त स्नेह (च.सि. 4/31, सु.चि. 37/84) | पित्तदोषप्राधान्यतः अति उष्ण बस्ति दिल्यास | दाह, तृष्णाधिक्य, मोह, ज्वर, तमःप्रवेश, कटु आस्यता, स्वेद अधिक्य, नेत्र-मूत्र-अंग पीतता | निरूह बस्ति - मधुर वा तिक्त स्कंधाच्या औषधीनी सिद्ध - पित्तशामक चिकित्सा |
| 3 | कफावृत्त स्नेह | कफदोषप्रधान अवस्थेत अति मृदू औषधी सिद्ध बस्ति दिल्यास | तंद्रा, शीतपूर्वक ज्वर, आलस्य, प्रसेक, अरूचि, गौरव, मूर्च्छा मधुरास्यता | निरूह बस्ति - कषायस्कंध, मदनफल, गोमूत्र युक्त बस्ति. - कफशामक चिकित्सा |
| 4 | अन्नावृत्त स्नेह (सु.चि. 37/87, च.सि. 4/35) | अत्याधिक भाोजन केल्यानंतर बस्ति दिल्यास. | बस्तिचे प्रत्यागमन होत नाही, छर्दि, मूर्च्छा, अरूचि, शूल, निद्रा, अंगमर्द, दाह, आम लक्षण, हृदशूल, मुखवैरस्य, श्वास, भ्रम | - त्रिकटू व सैधव मिश्रण आमपाचनार्थ चित्रकादि व लसोनादि वटी, मृदू विरेचन. उदा. गंधर्वहरितकीचूर्ण 2 ग्रॅम/अविपत्तिकरचूर्ण |
| 5 | पुरीषावृत्त स्नेह | बस्ति देण्यापूर्वी रुग्णाचे मल-मूत्र वेगाचे विसर्जन न होता बस्ति दिल्यास. | -मल-मूत्र-वायू संग -पक्वाशय गौरव -आध्मान -हृदग्रह, श्वास व शूल इ. | अभ्यंग, स्वेदन-फलवर्ति (Suppository) - निरूहबस्ति (बिल्वादि) - अनुवासन, दीपन पाचन-चित्रकादिवटी, शिवाक्षारपाचन. |
| 6 | अभूक्तप्रणीत स्नेह | रुग्णास भोजन न देता (उपाशी पोटी) बस्ति दिल्यास, स्नेह कंठा पर्यंत येतो. प्रत्यक्षात शरीर रचनेचा विचार केल्यास गुदमार्गाने दिलेला स्नेह कंठा पर्यंत येणे शक्य नाही. हे लक्षण Vasovagal Reflexes stimulation मुळे लक्षणे दिसतात. | गात्रग्रह, इंद्रियोपलेप, कास, श्वास, अरूचि | निरूहबस्ति - श्यामा-त्रिवृत्त, यव, कोल, कुलत्थ, गोमूत्र, विरेचन, छर्दि चिकित्सा, सुतशेखर 250 mg, चित्रकादिवटी |

सोबतच्या तालिकेतील 1 ते 3 स्नेह आवृत्ताचे विश्लेषण केल्यास असे लक्षात येते की तिन्ही आवृत्त स्नेहामध्ये ज्वर हे सामान्य लक्षण आहे. परंतु वातावृत्त स्नेहामध्ये शूल युक्त ज्वर, पित्तावृत्त स्नेहामध्ये दाह युक्त ज्वर कफावृत्त स्नेहामध्ये शीतपूर्वक ज्वर हे लक्षण आहे. तसेच मुखातील चव वातावृत्त स्नेहामध्ये कषाय पित्तावृत्त स्नेहामध्ये कटु व कफावृत्त स्नेहामध्ये मधुर आहे.

सुश्रुतोक्त स्नेहबस्ति व्यापदः वरील व्यापदांपैकी आचार्य सुश्रुतांनी अभुक्तप्रणीत बस्तिच्या स्थानी विरेचनादिने शोधीत रुग्णामध्ये स्नेह बस्तिचा वापर केल्यास होणाऱ्या व्यापदाचे वर्णन केलेले आहे. त्याचे लक्षण व चिकित्साही अभुक्तप्रणीत व्यापदासारखी आहे.

या व्यापदांव्यतिरिक्त 2 अधिक व्यापदांचे वर्णन आचार्य सुश्रुतांनी केले आहे.

(a) ज्या रुग्णाचे स्नेहन-स्वेदन, वमन विरेचन झालेले नाही अशा रुग्णास मृदू व अल्पमात्रेत स्नेहबस्ति दिल्यास.

- लक्षणः** 1) स्नेहाचे पूर्ण प्रत्यागमन होतांना हळुहळू थोड्या-थोड्या मात्रेत प्रत्यागमन होते.
2) पक्वाशयशूल
3) आध्मान, वायू अवरोध

- चिकित्साः** 1) अनुवासन बस्ति त्यानंतर
2) निरूह बस्ति

(b) कमी मात्रेत भोजन केल्यानंतर रुग्णास अल्प मात्रेत बस्ति दिल्यास

- लक्षणः** 1) बस्ति प्रत्यागमीत होत नाही
2) अरति
3) क्लम
4) उत्क्लेश

चिकित्साः शोधन स्नेहासोबत निरूह बस्ति उदा. दशमूल क्वाथ+एरण्ड तैल

मात्रा बस्ति

मात्रा बस्ति हा स्नेह बस्तिचाच प्रकार आहे. परंतु चिकित्सेमध्ये विशेष उपयोगात आणली जाते म्हणून विशेष महत्त्व आहे.

मात्रा बस्ति योग्य (Indications):-

- (1) अत्याधिक कार्य केल्याने, भारवहन, व्यायाम केल्याने थकलेले उदा. रिक्षाचालक, मजूर.
- (2) अतिमद्यपान व अतिमैथुनाने क्षीण झालेले.
- (3) अत्यंत दुर्बल व्यक्तीमध्ये किंवा बृंहण आवश्यक असणारे
- (4) वातव्याधीने पीडित

- (5) Poliomyelitis.
- (6) Muscular dystrophy
- (7) Hemiplegia

मात्रा बस्तिचे वैशिष्ट्यः

- (1) अल्पमात्रा असल्याने रुग्णास सुखकर
- (2) बस्ति व्यापदाचे भय नाही
- (3) नेहमी देता येते. फारसे बंधन नाही. त्यामुळे रुग्ण व चिकित्सकांस सोयीचे.
- (4) फार तयारीची गरज नाही, OPD च्या रुग्णांना सहज देता येते.
- (5) विशेष पथ्यपालनाची गरज नाही.

पूर्वकर्म

- (1) रुग्ण परिक्षण
 - (2) उपकरण संकलन
 - (3) आतुरसिद्धता
 - (4) मात्रा निर्णय
- (1) **रुग्णाचे परिक्षण**— रुग्णाचे परिक्षण करून द्यावे. रुग्णात गुदस्थानातील व्याधी तर नाही याची खात्री करून घ्यावी.
 - (2) **उपकरण संकलन** -

| | |
|--------------------|---|
| (1) Syringe 100 ml | (6) टॉवेल |
| (2) Catheter | (7) मापक |
| (3) स्टील पात्र | (8) Hand gloves |
| (4) गॅस | (9) बस्तिसाठी आवश्यक स्नेह उदा. बला तैल, महामाष तैल इ. |
| (5) कोष्णजल | (10) पंचकर्म सहाय्यक - 01 |
 - (3) **आतुरसिद्धता** - अनुवासन बस्ति प्रमाणे.
 - (4) **मात्रा निर्णय** - स्नेहाची ऱ्हस्व मात्रा = 6 तोळे = 60 ml.

काही व्याधी उदा. ज्यामध्ये मल-मूत्राचे वेग नियंत्रण अल्प असते व नसते अशा रुग्णास 10ml, 20 ml मात्रेने बस्ति सुरू करावी (e.g. Hemiplegia, Lumber canal stenosis, GB syndrome etc.) व हळूहळू मात्रेत वृद्धी करावी.

वृंद माधवानुसार - 24 माशे (24 मिली) पासून वर्धमान मात्रेत प्रत्येक दिवशी 8 माशे (8 मिली) ने वाढवावी. 7 दिवशी 72 माशे (72 मिली) एवढी मात्रा होईल.

- (5) द्रव्य सिध्दता - रुग्णानुसार आवश्यक तैल पात्रात घेवून त्यात 4-5 ग्रॅम सैधव घालावे व त्यास अप्रत्यक्षअग्निने सुखोष्ण करावे.

प्रधानकर्म

- (1) बस्ति प्रणिधान - पूर्वोक्त अनुवासन बस्तिच्या पध्दतीने मात्रा बस्ति द्यावी. मात्रा बस्ति भोजनोत्तरच द्यावी.
- (2) बस्ति प्रत्यागमन - 12 ते 24 तास. यानंतरही बस्ति प्रत्यागमन झाले नाही व रुग्णास त्याचा काहीच त्रास होत नसल्यास उपेक्षा करावी.
- (3) निरीक्षण व चिकित्सा -
 - (1) ही निरापद बस्ति आहे.
 - (2) सम्यक लक्षणे अनुवासन बस्ति प्रमाणे.

पश्चात कर्म (Post operative)

- परिहार विषय/काल - यापूर्वी वर्णिलेले आहे. फार कष्टाने परिहार काल पालन करावे लागत नाही.
- भोजनक्रम - लघु, सुपाच्य.
व्यापद - हया बस्तिचे विशेष व्यापद आढळत नाही.

बस्ति कार्मुकता

वायू यंत्र-तंत्र धर आहे. शरीरातील सर्व क्रियांना जबाबदार वायू असून जर रुक्ष, लघु, खर, विशद इ. गुणांच्या आहार विहाराने शरीरामध्ये दुष्टी झाल्यास वायू चे नियमित कार्य विकृत झालेले असतात व व्याधीची निर्मिती होते. वात विट, श्लेष्मा, पित्त व इतर मलांना विक्षेप (transit/expulsion) व संहार (Retention/localisation) करणारा आहे. (अ.ह.सू. 19/86)

कफ व पित्त दोष स्वतः संचारणासाठी वायूवर अवलंबून आहेत. कोणत्याही दोषांमुळे सम्प्राप्ति घडण्यासाठी वायू तेवढाच जबाबदार आहे. त्यामुळे चिकित्सा करतांना वायू ला नियंत्रित करणे म्हणजे सफल चिकित्सा होय.

तिन्ही दोषांमध्ये वायू प्रधान असून ज्याप्रकारे समुद्रातील वादळ केवळ समुद्राच्या लाटा सहन करू शकतात त्याचप्रकारे वायूचा प्रकोप बस्तिच सहन करू शकतो. (सुं. चि. 35/38)

गुद हे शरीराचे मूल स्थान आहे. गुदस्थानामधे प्रचुर सिरा (vessels and nerves) आहेत. त्यामुळे गुदगत दिलेली बस्ति सर्व शरीरात पसरून वातशमनाचे कार्य करते. (च.पा.च.सि. 1/31वर)

आपादतलमूर्धस्थान दोषान् पक्वाशये स्थितः।

वीर्येण बस्तिरादत्ते खस्थोऽर्को भूरसानिव।।

च.सि. 7/64

बस्तिचे कार्मुकत्व स्पष्ट करतांना आचार्यांनी स्पष्ट केले आहे की, बस्तिद्रव्य शरीरात शोषले जात नाही तर बस्ति द्रव्य त्यांच्या वीर्याने (Active principle) स्रोतसांद्वारे शरीरात पसरली जातात व त्यांचे कार्य पायापासून तर डोक्यापर्यंत दिसून येतात.

ज्याप्रमाणे वृक्षमूलाच्या ठिकाणी सिंचन केल्यास पोषक तत्वे सर्व शाखा, पत्र, पुष्पांना मिळतात त्याचप्रमाणे पक्वाशयात दिलेला बस्ति सर्व शरीरावर कार्य करतो. (सु.चि. 35/25, च.सि. 1/31)

ज्याप्रमाणे सूर्य आपल्या उष्णतेने पृथ्वीवरील जलांश शोषून घेतो त्याचप्रमाणे पक्वाशयस्थ बस्ति आपल्या वीर्याने कटि, पृष्ठ, कोष्ठ, स्थानांतून दोषांचे विलोडन करून प्रत्यगमनाचे वेळी द्रव्य, मल, अपान वायूच्या साह्याने समूळ दोषांना बाहेर काढतो. (सू.चि. 35/27-28) या न्यायाने बस्ति कटिगत, पृष्ठ, मन्यागत (spondylosis, PID) यामध्ये कार्य करतो.

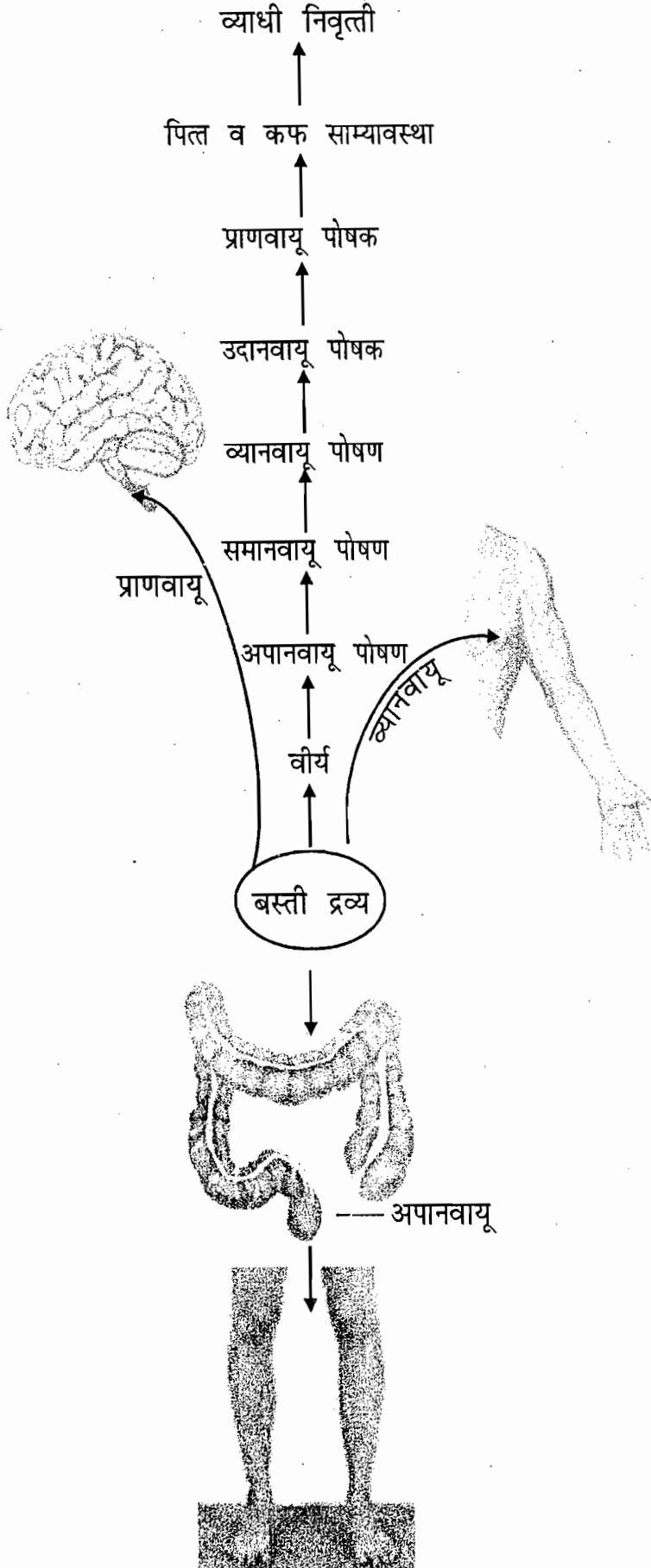
वाताचे स्थान पक्वाशय आहे व वायू हा व्याधीचा मूल आहे. बस्ति वायू साम्यावस्थेत ठेवण्याचे कार्य करतो. वायू साम्यावस्थेत असल्यास आपोआपच व्याधीचे शमन होते. ज्याप्रमाणे एखाद्या वृक्षाची मुळे कापल्यास त्या वृक्षाची शाखा, पत्र, पुष्प, फल, नष्ट होतात त्याचप्रमाणे बस्तिद्वारे विकृत वायूचे शमन झाल्यास शरीरातील व्याधीचे शमन होतात (च.सू. 20/15)

या उलट ज्याप्रमाणे वृक्षाच्या मूळाशी जल दिल्याने पुष्प, फळ योग्य काळी उत्पन्न होतात त्याप्रमाणे अनुवासन बस्तिने शरीराचे पोषण होऊन बल, वर्ण प्राप्ती होते.

बस्ति द्रव्य त्यांच्या वीर्यामुळे प्रथमतः पक्वाशयस्थ अपान वायूचे पोषण करतात. त्यानंतर समानवायू पर्यंत पोहचून समानाचे पोषण केले जाते. समानाचे पोषणानंतर व्यानवायूचे त्यानंतर उदान व प्राणवायूचे पोषण केले जाते. पाचही वायूंचे सम्यक पोषणानंतर वायू प्राकृत अवस्थेत राहून शारीर क्रियांमध्ये स्वस्थता आणण्याचे कार्य बस्तिद्वारे केले जाते. त्यानंतर बस्ति द्रव्यांचे कार्य पित्त व कफ दोषांवर होऊन त्यांना सम्यक अवस्थेत आणले जाते. बस्ति द्रव्यांचे वीर्य स्रोतसांद्वारे सर्व शरीरामध्ये उर्ध्व, तीर्यक व अधःगतीने पसरविण्याचे कार्य अनुक्रमे प्राण, व्यान व अपान वायूच्या साह्याने होत असते. हे पोषण केंदारकुल्या न्यायाने होते. (अ.सं.क. 5/68-72) तसेच ज्याप्रमाणे वस्त्र जलातील रंग शोषून घेतो त्याप्रमाणे बस्ति द्रवीकृत शरीरातील मल शोषून बाहेर काढतो. (अ.ह.सं 19/84)

बस्ति द्रव्यांच्या वीर्याने ग्रहणीपर्यंत पोहचते त्यामुळे बस्तिने अग्निवृद्धी होते (च.पा.च.सि. 3/14) बस्तिचे कार्य समान वायूचे पोषण करणे आहे. समान वायू जाठराग्नि प्रदीप्त ठेवण्याचे कार्य करतो. पर्यायाने बस्तिचे जाठराग्निवरील कार्य स्पष्ट होते. व्याधीच्या सम्प्राप्तीचा विचार केल्यास प्रत्येक व्याधीमध्ये जाठराग्निची दुष्टी असते व चिकित्सेचा अर्थ जाठराग्निची दुष्टी दूर करणे असा होय जे बस्तिने साध्य केले जाते.

बस्तिचे कार्य पक्वाशयावर अधिक आहे. पक्वाशय हे पुरीषधरा कलेचे आश्रय स्थान आहे.



त्याचप्रमाणे ग्रहणी पित्त धरा कलेचे आश्रय स्थान आहे. वरील विवेचन लक्षात घेता बस्तिचे पुरीषधरा कला व पित्तधरा कला यावरील कार्य स्पष्ट होते. डल्हणांनी पुरीषधराकला व अस्थिधरा केला एकच मानल्या आहेत तसेच पित्तधरा कला व मज्जाधरा कला हयासुद्धा एकच आहेत (डल्हण सू.क. 4/40 वर). यावरून बस्तिचे अस्थिधरा कला व मज्जाधरा कला यावरील कार्य स्पष्ट होते. त्यामुळेच बस्ति अस्थीसंबंधी (ortho) नाडीवह संस्थान (Nervous system), मस्तिष्क संबंधी व्याधीमध्ये प्रभावी कार्य करतांना अनुभवयास येते. त्यामुळेच बस्तिस अर्ध चिकित्सा मानली जाते तर काही वैद्य यांस पूर्ण चिकित्साही मानतात.

बस्ति केवळ वाताचीच चिकित्सा आहे असे नाही बस्ति पित्त, कफ, संसर्ग व सन्निवातज व्याधीचीही चिकित्सा आहे.

Modern View :

As on now only hypothetical data available regarding action of basti. The action of basti includes theory of action through vascular route, nervous route, Biofeed back mechanism. mechanism of transport across intestine by transcellular and paracellular

pathway include, passive diffusion, facilitated diffusion, active transport, carrier mediated transport endocytosis, pinocytosis. The rectum has rich blood supply and basti drugs can easily cross the rectal mucosa. Short chain fatty acid can be absorbed into the blood as they are more water soluble and allow direct diffusion from epithelial cells into capillary blood of villi. Basti Dravya- Honey saindhav, sneha, kalka, kashay form emulsion by making the churning in the specific manner described in the text, the large and middle chain fatty acid may break into small chain fatty acid which can get easily absorbed. As Ayurved texts mentioned, the active principles of drugs used in Basti get absorbed in system circulation by passing hepatic metabolism. Swapnil, 2011 reported in his study that triphaladi basti containing biomarker-garlic acid found in the circulation.

Anuvasan basti in the rectum and colon causes secretion of bile from the galbladder which leads to the formation of conjugate micelles, they are absorbed through passive diffusion [Gyanendra D. Shukla *et al* 2010].

Systemic biology concept: Action of basti on this concept reported by Gyanendra D. Shukla *et al* 2010 in their review article. The organs are inter connected at molecular level. Molecular incident is transformed at cellular level to tissue level and then organ level. Each molecule of the body is connected with mother molecule of the body by direct or indirect way.

When Basti in large intestine, it will affect another system. In another study it is proved that, basti nourishes the bacterial flora which helps in production of vit B, and to K and inhibits the production of pyruvic acid. This helps in prevent degeneration of myelin sheath spinal cord. Another drugs in basti like honey saindhav, milk are reach source of minerals as described earlier which get absorbed through large intestine and transferred to other system and helps to cure the disease of other systems e.g. ulcerative colitis.

Vagbhata described in his theory one types of vayu nourishes the other type of vayu i.e. apana to prana.

Basti may act by pinocytosis mechanism [Kadlimatti S *et al*, 2009]. Pinocytosis is mechanism for transport of molecules across membranes. The absorption of emulsion of Basti by diffusion i.e. transport of molecule from higher concentrations to lower concentration. There are many factors responsible for absorption like solubility of basti dravya, temperature of the drug, body (purvakarma like snehan-svedan), size of molecules, quantity, concentration, surface area of adsorption, vascularity, PH

It is considered that Niruha Basti is hyper osmotic which causes movement from cells of colon to lumen and facilitates the absorption of endotoxins into the solution and produce detoxification by elimination (Dr. Vasudeven *et al*)

Anuvasun Basti is hypo osmotic which may be absorbed into the blood. Sneha basti are responsible to regulate sympathetic activity, it decreases adrenaline and non-adrenaline to balance ANS. (Dr. Vasudeven *et al*)

In other view of researcher the action of basti is described in other way. As the time passed, the waste begins to stick on the wall of colon and block the intestinal wall openings and slow the elimination process which leads to intestines get distended and cause pressure on mesenteric blood flow. This pressure diminishes the oxygenated blood to the organs and deoxygenated blood to heart. This phenomenon leads to many diseases including IHD. Basti facilitate the lubrication as well clearing of intestinal wall and ensures normalized blood circulation which leads to minimize the ischemia of the organs (Vora^{MS}, 2011).

Action by enteric nervous system (ENS)

The gut has its own mind 'Enteric Nervous System (ENS) just like larger brain. This system send and receives impulses, records experiences and responds to emotions. This brain consists of sheaths of neurons embedded in the gut wall and contains 100 millions neurons which are more than the spinal cord, peripheral nervous system (Michal Carsons) A. big part of our emotions are probably influenced by the nerves in the gut. Basti may act all over the body by this system.

95% of the body's serotonin found in the bowel. Serotonin (5-Hydroxy tryptamine/5HT) is neurotransmitter that has tremendous influence over brain for many functions like sleep appetite, memory, mood behaviors (including sexual and hallucinogenic), pain (science daily.com, 2010) Basti may act on serotonin level and helps to pacify the diseases related neurological, psychological, pain etc. Gerson says there will be well known connection between diseases and lesions in gut nervous system as same in the brain and spinal cord e.g. multiple sclerosis.

In New Nature Medicine, study published online, the drug that inhibited the releases of serotonin from the gut counter acted the bone deteriorating disease osteoporosis. This can be helpful to understand relation between पुरीषधरा कला and अस्थिधरा कला and how the basti can act on 'अस्थीगत' व्याधी

बस्तिघटक व त्यांची उपयोगिता

माक्षिक -

- मधुर, कषाय, छेदन, रुक्ष, उष्णवीर्य, कफहर, व्रणशोधक, योगवाही (catalyst), सुक्ष्ममार्ग अणुसारित्व (penetration).
- बस्तिमध्ये मधुची मात्रा अधिक असल्यास अतिवृष (च.सि. 12/28)

- Contains mono sachharide, Protein, fat, 18-amino acids, vit B 12, B6, folic acid, vit. C and many minerals like Fe. Ca, Zn, K, P, Mg.
- It has healing properties.
- Most of the micro-organism do not grow in honey,
- Antioxidant properties

सैधव -

- सुक्ष्म, तिक्ण, लघु गुणामुळे स्रोतसांपर्कत पोहचण्याचे कार्य,
- लीन दोष बाहेर काढणे स्निग्ध गुणामुळे दोष विलयन,
- बस्ति निर्गमणासाठी मदत
- कमी मात्रेत लवण असल्यास अयोग (अ.ह.सू. 15/42)
- Having 74 traces of minerals. It has properties that helps to nerves.
- It is helpful in regulating acid-Alkaline balance maintaining osmosis.
- If promotes elimination of ontogenist animal proteins from the body which are difficult to degrade.
- It has property of stimulation of clonic action potential helpful basti action.
- Combination of madhu and saindhar helpful to maintain glucose and electrolytes.

स्नेह -

- स्निग्ध गुणामुळे मृदुकर,
- वायू दुष्टीनाशक,
- मल बाहेर काढण्यासाठी उपयोगी,
- स्रोतसातील संग (obstruction) दूर करणारे (च.वि 1/7)

कल्क -

- बस्तिचे कार्य कल्क द्रव्यावर अवलंबून असते.
- कल्क बस्तिची शक्ती वाढविण्याचे कार्य करते.
- मलाचा विश्लेष करण्याचे कार्य व्याधीनुसार कल्क द्रव्य बदलली जातात.
- Helpful in increasing permeability of the basti drug.

क्वाथ -

- बस्ति कार्य कषाय द्रव्यावर अवलंबून असतात.
- मात्रेमुळे शरीरात पसरणे,
- तेथील दोषांना आत्रात आणून निर्हरण करणे द्रव्यांच्या वीर्यानि सर्व शरीरावर कार्य करणे.

काही विशिष्ट बस्ति

1) एरण्ड मूलादि बस्ति (अ.ह.क. 4/7-10, च.वि. 3/8)

योग्य (Indications):

1. उरुशूल (Pain in thighs)
2. जंघाशूल (Pain in calf muscles)
3. पादशूल (Pain in lower limbs)
4. त्रिक-पृष्ठशूल (Pain in lumbo sacral region)
5. कफावृत्तवात
6. पूरीष, मूत्र, वायू ग्रह
7. आध्मान (Distension)
8. आनाह
9. अश्मरी (Calculus)
10. अर्श (Piles)
11. ग्रहणी दोष
12. Peripheral Vascular disorders

| द्रव्य | मात्रा |
|---------|----------|
| माक्षिक | 160 मिली |
| लवण | 10 ग्रॅम |
| स्नेह | 240 मिली |
| कल्क | 80 ग्रॅम |
| क्वाथ | 320 मिली |
| गोमूत्र | 160 मिली |
| एकुण | 960 मिली |

स्नेह - सहचरादि तैल, गुडुच्यादि तैल, धन्वंतर तैल अवस्थानुसार

कल्क - शतपुष्पा, हपुष, प्रियंत्रु, पिप्पली, जेष्ठमध, बला, रसांजन, वत्सक बीज (इंद्रयव), मूस्ता

क्वाथ - एरण्डमूल (तीन भाग), पलाश, लघुपंचमूल, रास्ना, अश्वगंधा, अतिबला, गुडूची, पूनर्नवा, आरग्वध, देवदारु (प्रत्येकी एक भाग), मदनफल - 1

(व्यवहारामध्ये गोमूत्राची मात्रा कमी करुन क्वाथाची मात्रा वाढवावी).

गुणधर्म - दीपन, पाचन, वातशामन

2) पिच्छा बस्ति (सु.चि. 38/86, च.चि. 14/(224-229) डल्हण टिका

योग्य (Indication)

1. अतिसार (Diarrhoea)
2. प्रवाहिका (Dysentery)
3. ग्रहणी (IBS)
4. गुदगत रक्तस्राव (Per rectal bleeding)
5. गुदभ्रंश (Prolapsed rectum)

बस्ति गुण - पिच्छिल

| द्रव्य | मात्रा |
|---------|-------------------|
| माक्षिक | 160 मिली |
| लवण | 10 ग्रॅम |
| स्नेह | 160 मिली |
| कल्क | 20 ग्रॅम |
| क्वाथ | 300 मिली |
| एकूण | साधारणतः 620 मिली |

स्नेह - चांगेरीघृत (अ.ह.) क्षीरषटफलघृत (भै.र)

कल्क - मधुयष्टी, बदर, नागबला, धन्वअंकुर शाल्मली, श्लेष्मान्तक सिद्ध क्षीर

क्वाथ - यवासामूल व पुष्प, कुश, काशमूल, शाल्मली, न्यग्रोध, उदुम्बर, श्रृंग, अश्वत्थशृंग, सिद्ध, क्षीर

कल्क - मोचरस, समांग, चंदन, उत्पल, वत्सक बीज, प्रियंगु, पद्मकेशर

क्वाथासाठी प्रत्येक द्रव्ये 2 पल (80 ग्रॅम) घेण्यास सांगितले आहेत व 1 प्रस्थ (अंदाजे 650 मिली) मध्ये सिद्ध करण्यास सांगितले आहे. प्रतिदिन या मात्रेत द्रव्ये घेऊन बस्ति देणे व्यवहारात शक्य होत नाही. त्यामुळे वर दिलेल्या मात्रेत प्रत्यक्षात वापरले जाते.

3) क्षीरबस्ति (च.सि. 8/3)

ही प्राप्त योगिकी बस्ति आहे. विशेषता क्षीरबस्ति सुकुमार व बालकांसाठी असून मृदु प्रकारची निरुह बस्ति आहे. बस्तिमुळे बल 'वर्ण' सुधारले जाते.

क्षीराद्यो प्रसृतौ कार्यो मधुतैल घृतात्रयः।

खजेन मथितो बस्तिर्वातघ्नो बलवर्णकृतः।

च.सि. 8/3

| द्रव्य | मात्रा |
|-------------|---------------------|
| माक्षिक | 1 प्रसृत = 80 मिली |
| स्नेह घृत | 1 प्रसृत = 80 मिली |
| तैल | 1 प्रसृत = 80 मिली |
| * क्षीरकषाय | 2 प्रसृत = 160 मिली |
| एकूण | 5 प्रसृत = 400 मिली |

उपयोगिता - शूल, परिणामशूल (कस्तुरे, 2009)

चक्रपाणि यांनी टिका करतांना क्षीर बस्तिमध्ये लवण वर्ज्य सांगितले आहे. *

* शास्त्रानुसार क्षीरबस्तिमध्ये केवळ क्षीराचा वापर करण्यास सांगितले आहे. परंतु व्यवहारात व अनेक संशोधनांचा अभ्यास केल्यास विविध द्रव्यांनी सिद्ध केलेल्या क्षीराचा वापर केल्यास अनेक व्याधीमध्ये उपयुक्तता सिद्ध झाली आहे.

4) तिक्तक्षीरबस्ति

अस्थाश्रयाणां व्याधीनां पंचकर्माणि भेषजम्।

बस्तयः क्षीरसर्षीपि तिक्तकोपहितानि च।।

उपयोगिता

1. कटिशूल
2. अस्थिमज्जागतवात
3. Spondylosis, spondylitis
4. Autoimmune Diseases like SLE, etc.

स्नेह - घृत-पंचतिक्तघृत गुग्गुल

तैल - धन्वन्तर तैल, बला गुडूच्यादि तैल

क्षीरकषाय - गुडूची किंवा पंचतिक्त (निम्न पटोल गुडूची, वासा, कंटकारी)

5) यापनबस्ति (च.सि. 12)

यापन बस्तिमध्ये प्रामुख्याने मांसरस, दुग्ध, मधु, घृत गुळ, सैधव असते. ज्याठिकाणी केवळ तैल असे वर्णन असल्यास मूर्च्छित तिळ तैल समजावे. यापन बस्तिची मात्रा नऊ प्रसृत असावी. चरकाचार्यांनी सिद्धीस्थानामध्ये 26 यापन बस्तिंचे वर्णन केलेले आहे. प्रत्यक्षात मुस्तादि यापन, बलादि यापन या बस्तिं वैद्यवर्गात अधिक प्रिय आहेत.

(a) मुस्तादि यापन (राजयापन बस्ति)

योग्य/उपयोगिता (Indications/Utility):

1. शुक्रजनन
2. मांसबल वृद्धि
3. क्षतक्षीण
4. कास (Cough)
5. शूल (Pain)
6. विषम ज्वर (Intermittent fever)
7. कुक्षिशूल (Pain in flanks)
8. उदावर्त (Retrograde intestinal movement)
9. मूत्रकृच्छ्र (Difficulty for urination)
10. विसर्प (Herpes)
11. प्रवाहिका (Dysentery)
12. शिरोरुजा (Headache)
13. जानूसंधिशूल (Joint pain)
14. उरु, जंघाशूल (Pain in thighs & calf)
15. अश्मरी (Calculus)
16. प्रमेह (Diabetes)
17. वातरक्त (Arthritis)
18. रसायन Rejuvenation
19. During chemotherapy to prevent complications
20. Spondylosis
21. Sub Acute combined degenerative disease

| द्रव्य | शास्त्रोक्त | व्यवहारात |
|-----------------|--------------------|-----------|
| माक्षिक | 1/2 प्रस्थ | 100 मिली |
| लवण | 1/2 कर्ष | 10 ग्रॅम |
| स्नेह (तैल+घृत) | 1/2 प्रस्थ | 160 मिली |
| कल्क | मात्रा स्पष्ट नाही | 30 ग्रॅम |
| क्षीरकषाय | 2 प्रस्थ | 300 मिली |
| मांसरस | 1/2 प्रस्थ | 100 मिली |
| एकुण | | 700 मिली |

स्नेह - तैल - क्षीरबला तैल

घृत - अश्वगंधादी घृत, सुकुमार घृत

कल्क - मधुयष्टी, कुटज, रसांजन, प्रियंगु, शतपुष्पा (प्रत्येकी 6 ग्रॅम)

कषायक्षीर - नागरमोथा, वाळा, बला, आरग्वध रास्ना, मंजिष्ठा, कटुकरोहिणी, त्रायमाणा, पूनर्नवा बिभीतक, गुडूची, लघुपंचमूल (उपलब्ध होणे कठीण) (प्रत्येकी 10 ग्रॅम) मदनफल (4-8 नग)

(b) बलादि यापन (च.सि. 12/16)

ही बस्ति प्रामुख्याने कफानुबंधी वात व्याधीसाठी उपयुक्त आहे.

योग्य (Indications):

1. शुक्रसंग
 2. मूत्रसंग (Retention of urine)
 3. वर्चसंग, आध्मान (Distention)
 4. गुल्म (Tumour)
 5. हृद्रोग (Heart diseases like cardiac myopathy)
 6. पार्श्वग्रह
 7. कटिग्रह
 8. पृष्ठग्रह
- } (Spondylitis, Spondylosis, PID)
9. संज्ञानाश (Loss of sensation)
 10. बलक्षय (General Disability, AIDS)
 11. रसायन (Rejuvenation)

| द्रव्य | शास्त्रोक्त | व्यवहारात |
|-------------------|-------------|-----------|
| माक्षिक | 1 प्रसृति | 80 मिली |
| लवण | 1 कर्ष | 10 ग्रॅम |
| स्नेह - तैल - घृत | 2 प्रसृति | 160 मिली |
| कल्क | मात्रा नाही | 30 ग्रॅम |
| क्षीरकषाय | 12 प्रसृति | 300 मिली |
| कांजी | - | 80 मिली |
| एकुण | 15 प्रसृति | 620 मिली |

स्नेह - तैल - बला तैल, महानारायण तैल, घृत-शतावर्यादिघृत, अश्वगंधादिघृत, महास्नेह

कल्क - मधुयष्टी, मदनफल, शतपूष्पा, कुष्ठ, पिप्पली, वचा, कुटज, रसांजन, प्रियंगु, अजवायन (प्रत्येकी 3 ग्रॅम)

क्षीरकषाय-बला, अतिबला, रास्ना, आरग्वध, मदनफल, बिल्व, गुडूची, पूनर्नवा, एरण्ड, अश्वगंधा, सहचर, पलाश, देवदारु, दशमूल, यव, कोल, कुलत्थ (प्रत्येकी 10 ग्रॅम)

वैशिष्ट्ये : यापन बस्ति आयुचे यापन (to support) करते व आयुवृद्धी करते.

निरुहो लेखना : प्रायो बृहणाः स्नेहबस्तयः।

यापनेषु उभयं तस्मात् नेष्टं तेषु अनुवासनम्।।

अ.सं.क. 5

1. निरुह बस्ति लेखन प्राधान्य आहे तर अनुवासन बस्ति प्राधान्याने बृहण करणारी आहे परंतु यापन बस्ति दोन्ही कार्य करणारी असल्याने यापन बस्ति निरुहाचा विकल्प असूनही व्यत्यास क्रमाने अनुवासनाची आवश्यकता नाही.
 2. या बस्तिमुळे अग्नि वर्धन होते.
 3. ही बस्ति वाजीकर व रसायन कर्म करणारी असल्याने उत्तम शुक्राची उत्पत्तीसाठी लाभदायक आहे. बल व मांस वृद्धीकर आहे.
 4. सर्वरोग प्रशमन करण्याची शक्ती यापन बस्तिमध्ये आहे.
 5. यापन बस्तिसाठी फार पथ्य पालन करण्याची आवश्यकता नाही.
 6. ही बस्ति निरापद आहे. व्यापद-शक्यता जवळ जवळ नसते.
- तरीही यापन बस्तिच्या काळात खालील गोष्टींचा त्याग करावा.

व्यायामो मैथुनं मद्यं मधूनि शिशिराम्बुच संभोजनं रथक्षोभो बस्तिष्वेतेषु गहितम्।। च.सि. 12/23

1. व्यायाम
2. मैथुन
3. मद्यसेवन
4. मधु सेवन
5. शीतभोजन (Refrigerator मधील पदार्थ Ice-Cream, Cold-drinks)
6. रथक्षोभ(traveling)

यापन बस्ति व्यापद(Complications):

शोफाग्निनाशपाण्डुत्वशूलार्शः परिकर्तिकाः।

स्युर्ज्वरश्चातिसारश्च यापनात्यर्थं सेवनात् ।।

च.सि. 12/30

1. शोफ (oedema)
2. अग्निनाश (Anorexia)
3. पाण्डू (Auaemia)
4. शूल (Pain)
5. अर्श (Haemorrhoids)
6. परिकर्तिका (Fissure-in-Ano)
7. अतिसार (Diarrhoea)

प्रमाणापेक्षा अधिक मात्रेत व अधिक संख्येत दिलेल्या बस्तिमुळे अर्श, परिकर्तिका ही लक्षणे उदभवण्याची शक्यता असते.

चिकित्सा - अरिष्टक्षीरसीध्वाद्या तत्रेष्टा दीपनी क्रिया।

च.सि. 12/31

1. शिवाक्षार पाचन चूर्ण, शंखवटी
2. द्राक्षासव, तक्रारिष्ट
3. दाडिमाष्टक चूर्ण

6) माधुतैलिक बस्ति

यस्मान्मधु च तैलं च प्राधान्येन प्रदीयते।

माधुतैलिक इत्येवं भिषग्निर्बस्तिरुच्यते।।

सु.चि 38/114

या बस्तिमध्ये मधु व तैल हे प्रमुख घटक असल्यामुळे या बस्तिस 'माधुतैलिक' म्हणतात

माधुतैलिक बस्ति हा निरुह प्रकारातील असून यापन, युक्तरथ, सिद्धबस्ति हे त्याचे पर्याय आहेत.

माधुतैलिक बस्ति राजे (उच्चपदस्थ अधिकारी), श्रीमंत, सुखासीन, सुकुमार, बाल, वृद्ध, यामध्ये दोषनिर्हरणाचे कार्य करते तसेच बल, वर्ण उत्तम करण्यासाठी ही बस्ति उपयोगी आहे. इतर बस्तिसारखे वाहन, मैथून, भोजन, मद्यपान इ. नियमांचे पालन करण्याचे बंधने नाहीत. उलट निरुहासारखे सर्व गूण प्राप्त होतात आणि व्यापद जवळ जवळ नसतात. ही पादहीन बस्ति (9 प्रसृत मात्रेची) आहे.

गुणधर्म - दीपन, पाचन, बल्य, वर्ण्य, बृहण, वृष्य, रसायन

योग्य (Indications):

1. मेदोरोग (obesity)
2. गुल्म (Lump)
3. कृमी (worm infestation)
4. प्लीहा (splenomegaly)
5. मलसंग (constipation)
6. उदावर्त (Retrograde intestinal movement)
7. प्रमेह (Polyurea, diabetes)
8. अर्श (hemorrhoids)
9. आंत्रवृद्धी (Hernia)

| द्रव्य | मात्रा | |
|---------|---------------------|--------------------------|
| | सुश्रूत चि | गयदास, डल्हण, शाउखं 6/28 |
| माक्षिक | 2 प्रसृत = 160 मिली | 1 पल = 40 मिली |
| लवण | 1 कर्ष = 10 ग्रॅम | 1/4 पल = 10 ग्रॅम |
| स्नेह | 2 प्रसृत = 160 मिली | 1 पल = 40 मिली |
| कल्क | 1/2 पल = 20 ग्रॅम | 1/2 पल = 20 ग्रॅम |
| कषाय | 4 प्रसृत = 320 मिली | 2 पल = 80 मिली |
| एकुण | 650 मिली | 160 मिली |

स्नेह - सहचर तैल, बला गुडूच्यादि तैल, धन्वन्तर तैल,

कल्क - शतपूष्पा

क्वाथ - एरण्डमूल (150 ग्रॅम), मदनफल 1 नग

देण्याचा काळ - माधुतैलिक बस्ति कोणत्याही ऋतुमध्ये, कोणत्याही काळात सर्व रोगांमध्ये दिली जाऊ शकते.

अयोग्य - माधुतैलिक बस्ति अजीर्ण अवस्थामध्ये देऊ नये व दिवास्वप्न वर्ज्य करण्यास सांगावे (सु.चि. 38/113)

7) पंचप्रासृतिकी बस्ति

ह्या बस्तिची मात्रा पाच प्रसृति असल्यामुळे यास पंचप्रासृतिकी बस्ति म्हटली आहे. बस्तिची उत्तम मात्रा द्वादश प्रसृति असून व्याधी, बल, प्रकृती इ. चा विचार करुन बस्तिच्या प्रमाणात उपाययोजना केली आहे. पटोलनिम्बादि ही बस्ति पंचप्रासृतिकी आहे. द्वादशप्रासृतिकीमध्ये कल्काची मात्रा दोन पल आहे त्याप्रमाणे ह्या बस्तिमध्ये कल्काची मात्रा स्पष्ट नाही. टिकेमध्ये ही मात्रा 'षडभागोनं पलं' असे वर्णन करुन 1/6 पल एवढी घेण्यास सांगितली आहे.

पटोल निम्बादि

योग्य (Indications):

1) प्रमेह

2) अभिष्यन्द

3) कुष्ठ

| द्रव्य | मात्रा |
|-------------|----------------------|
| स्नेह - घृत | 1 प्रसृति = 80 मिली |
| कल्क | 1/6 पल = 7 ग्रॅम |
| कषाय | 4 प्रसृति = 320 मिली |
| एकुण | 5 प्रसृति = 400 मिली |

स्नेह - तिक्तकघृत, पंचतिक्तघृतगुग्गुळ, मूर्च्छित तिळ तैल

कल्क - सर्षप

कषाय - पटोल, निम्ब, भूनिम्ब, रास्ना, सप्तच्छदा

8) क्षारबस्ति (वंगसेन-क्षारबस्ति/179-181)

1. जीर्ण विबंध (chronic constipation)
2. शूल (Pain)
3. आनाह (Tympanitis)
4. मूत्रकृच्छ्र (Difficulty in urination)
5. कृमी (Worms)
6. उदावर्त (Retrograde intestinal movement)
7. गुल्म (Lump)

| द्रव्य | मात्रा |
|-----------------|-------------------|
| गुळ (द्रव करुन) | 2 पल = 80 ग्रॅम |
| लवण | 1 अक्ष = 10 ग्रॅम |
| स्नेह | - = 80 मिली |
| कल्क | 1 अक्ष = 10 ग्रॅम |
| गोमूत्र | 8 पल = 320 मिली |
| अम्लिका | 2 पल = 80 ग्रॅम |

स्नेह - क्षारतैल, सहचरादि तैल

कल्क - शतपुष्पा

सर्व द्रव्यांना आधी वर्णिल्याप्रमाणे एकत्र करून वस्त्रगाळ करावे व सुखोष्ण करून बस्ति द्यावा.

क्षारबस्ति जेवणांतर दिली जाऊ शकते. क्षार बस्ति अधिक रुक्षता निर्माण करणारी असल्यामुळे आदल्या दिवशी स्नेह बस्ति देऊन दुसऱ्या दिवशी सकाळी क्षारबस्ति द्यावा व त्याच सायंकाळी पुन्हा स्नेह बस्ति द्यावा त्यामुळे आंत्राचा क्षोभ टाळता येईल.

9) वैतरण बस्ति (चक्रदत्त 73/25-32, वंगसेन-बस्तकर्माधिकार: 186)

योग्य (Indications):

1. कटि शूल व शोथ (Spondylitis)
2. उरुशूल व शोथ (Neuropathy)
3. पृष्ठशूल शोथ व शूल (Spondylitis)
4. उरुस्तम्भ (जीर्णविस्था)
5. जानुसंकोच (Knee Jt. Spasticity)
6. विषमज्वर (Intermittent fever)
7. क्लैब्य (Impotency)
8. आमवात (Rheumatic condition)
9. आनाह (Tympanitis)

| द्रव्य | मात्रा |
|--------------|-----------------------|
| गुळ | 1/2 पल = 20 ग्रॅम |
| लवण | 1 अक्ष = 10 ग्रॅम |
| स्नेह | इषत् मात्रा = 40 मिली |
| अम्लिका कल्क | 4 तोळे = 40 ग्रॅम |
| गोपय | 1 कुडव = 160 मिली |
| एकुण | 300 मिली |

गुळ - गुळामध्ये पाणी घालून मधुसारखा करावा व गाळून घ्यावे.

स्नेह - धन्वन्तरम् तैल, सहचरादि तैल दूध दूध

अम्लिकाकल्क - बीजरहीत अम्लिका रात्री पाण्यामध्ये भिजत ठेवावे, दुसऱ्या दिवशी त्याच प्लेटमध्ये दाबून करून एकजीव करावे व गाळून घ्यावे.

गोपय - गोपय चा अर्थ गोमूत्र व दुग्ध आहे. आमज विकारामध्ये कफनाशक म्हणून सर्वत्र गोमूत्राचाच वापर केला जातो. वैतरण बस्तिमध्ये गोमूत्राऐवजी दूधाचाही वापर केला जातो. चिकित्सकांनी दूधाचा उपयोग करतांना जीर्ण अवस्था ओळखावी आमवाताच्या जीर्ण अवस्थेत आमावस्था नसल्यास 'वैतरण वस्ती' देतांना गोमूत्राऐवजी दुग्ध उपयोगात आणण्यास हरकत नाही.

वैतरणवस्ती निरुह प्रकार असतांनाही जेवणांतर दिली जावू शकते:

वैतरण: क्षारबस्तिर्भुक्ते चापि प्रदीयते।।

चक्रदत्त 73/34

10) कृमीघ्न बस्ति (च.चि 8/9-10)

योग्य (Indications):

- 1) कृमी (worms)
- 2) ज्या व्याधीच्या सम्प्राप्ती मध्ये कृमी हे हेतु असल्यास

| द्रव्य | मात्रा |
|--------|--------------------------------------|
| स्नेह | 1 प्रसृत = 80 मिली |
| * कल्क | (स्पष्ट उल्लेख नाही) 1 पल = 40 ग्रॅम |
| कषाय | 5 प्रसृत = 400 मिली |
| एकुण | 6 प्रसृत = 480 मिली |

* कल्काची मात्रा बस्ति द्रव्याच्या $\frac{1}{12}$ एवढी घ्यावी हा सामान्य नियम आहे.

स्नेह - मूर्च्छित तैल, करंज तैल

कल्क - विडंग, पिप्पली (प्रत्येकी 20 ग्रॅम)

कषाय द्रव्य - विडंग, त्रिफला, शिगु, मदनफल, नागरमोथा, आखुपर्णी (दंती)

11) a. लेखन बस्ति (सु.चि. 38/82)

योग्य (Indications):

- 1) स्थौल्य (Obesity)
- 2) Hyper Thyroidism
- 3) Hyper Lipidemia

| द्रव्य | मात्रा |
|---------------------------------------|-----------------------------|
| गुळ | $\frac{1}{2}$ पल = 20 ग्रॅम |
| माक्षिक | 4 पल = 160 मिली |
| लवण | 1 अक्ष = 10 ग्रॅम |
| स्नेह | 6 पल = 240 मिली |
| कल्क | 2 पल = 80 ग्रॅम |
| कषाय | 8 पल = 320 मिली |
| आवाप { धान्याम्ल / गोमूत्र यवक्षार | 3 पल = 120 मिली |
| | 3 कर्ष = 30 ग्रॅम |
| एकुण | 24 पल = 960 मिली |

ही 24 पल मात्रेची बस्ति आहे.

स्नेह - मूर्च्छित तिल तैल, कटू रस द्रव्य सिद्ध तैल

कल्क - i. उषकादिगण (सैधव, शिलाजीत, कासीस, पुष्पकासीस, हिंग, तुत्यक (मोरचूद) यात केवळ धातूवर्ग असल्यामुळे काही वैद्य वर्ग यवान्यादि कल्क वापरतात

ii. यवानी, मदनफल, बिल्व, कुष्ठ, वचा, शतपुष्पा, मुस्ता, पिप्पली,

कषायद्रव्य - त्रिफला

आवापद्रव्य - गोमूत्र याचा पर्याय म्हणून धान्याम्ल ही वापरला जातो किंवा व्हिनेगर वापरले जाते.

b. लेखनबस्ति (वंगसेन)

| द्रव्य | मात्रा |
|-----------------------|----------|
| माक्षिक | 120 मिली |
| लवण | 10 ग्रॅम |
| स्नेह (मूर्च्छित तैल) | 120 मिली |
| कल्क | 25 ग्रॅम |
| कषाय | 160 मिली |
| गोमूत्र | 80 मिली |
| आवाप यवक्षार | 10 ग्रॅम |
| एकुण | 480 मिली |

कल्क - उषकादि गण किंवा हिंगू वचादि चूर्ण

कषायद्रव्य - त्रिफला

12) सर्वरोगहर निरुह (सु.चि 38/71-76)

योग्य (Indications):

- बल, मांस, शुक्र क्षय
- ओजोवर्धक असल्याने ओजोक्षयात
- गुल्म
- असृग्दर
- विसर्प
- मूत्रकृच्छ्र
- क्षतक्षय
- विषमज्वर
- अर्श
- ग्रहणी
- वातकुण्डल
- जानूशूल जंघाशूल
- शिरःशूल
- बस्तिशूल
- उदावर्त
- वातरक्त
- शर्करा
- अष्ठीला
- कुक्षिशूल
- उदर
- अरुची
- रक्तपित्त
- कफोन्माद
- प्रमेह
- आध्मान
- हृदग्रह

वरील व्याधीच्या यादीवरून स्पष्ट होते की ही बस्ति वात, पित्त, कफ ह्या तिन्ही दोषांचा शमन करणारा आहे त्यामुळे ह्या बस्तिस सर्वरोगहर बस्ति म्हटले आहे.

एष बस्तिः स्वस्थातुरविषयः सर्वरोगहरश्च।

डल्हण

| द्रव्य | मात्रा |
|-----------------|-------------------|
| गुळ | 1/2 पल = 20 ग्रॅम |
| माक्षिक | 3 पल = 120 मिली |
| स्नेह | 6 पल = 240 मिली |
| कल्क | 3 पल = 120 ग्रॅम |
| कषाय | 8 पल = 320 मिली |
| मांसरस | 1 पल = 40 मिली |
| क्षीर | 1 पल = 40 मिली |
| सौवीर/धान्याम्ल | 1 पल = 40 मिली |
| रसांजन | 1 पल = 40 मिली |
| एकूण | 24 पल = 960 मिली |

स्नेह - मूर्च्छित तिल तैल

कल्कद्रव्य - मदनफल, मधुयष्टी, मिसि (बारीक सौंफ), सैधव, इंद्रयव

सैधव मिश्रीत करतांना बस्तिद्रव्य संमेलन विधीनुसार माक्षिका समवेत प्रथम मिश्रीत करून नंतर इतर कल्क द्रव्य मिश्रीत करावीत.

कषाय द्रव्य - रास्ना, आरग्वध, पूनर्नवा, कुटकी, उशीर, नागरमोथा, त्रायमाणा, गुडूची, रक्तपूनर्नवा, पंचमूल, बिभीतक, बला

13) बृहण बस्ति (सु.चि. 38/83)

यापन बस्ति बृहण बस्ति आहेत. सुश्रुतांनी वर्णन करतांना बृहण बस्ति असा स्वतंत्र उल्लेख केला आहे. ही बस्ति बल व मांस वर्धन करणारी आहे.

योग्य (Indications):

- 1) बलक्षय
- 2) मांसक्षय Muscular wasting
- 3) ओजक्षय अवस्था

| द्रव्य | मात्रा |
|---------|---------------------------------|
| माक्षिक | 4 पल = 160 मिली |
| लवण | 1 अक्ष = 10 ग्रॅम |
| स्नेह | 6 पल = 240 मिली |
| कल्क | 2 पल = 40 ग्रॅम |
| कषाय | 8 पल = 320 मिली |
| मांसरस | 3 पल 7 *टंक = 125 मिली (Approx) |

*(1 टंक - 4 माशा)

स्नेह - गोघृत, अश्वगंधादिघृत, शतावर्यादिघृत

कल्कद्रव्य - काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपण्ठी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, गुडूची, कर्कटश्रुंगी, वंशलोचन, पद्मकाष्ठ, प्रपौडरीक, ऋध्वि, मृद्विका, जीवन्ती, मधुयष्टी

कषायद्रव्य - शालीपर्णी, विदारिकंद, बला, पुनर्नवा, पृथक्पर्णी, शतावरी, सारिवा, कृष्णसारिवा, जीवक, ऋषभक, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, कंटकारी, एरण्ड, हंसवादी, वृश्चीकाली, कपिकच्छू, गोक्षुर

या गणातील बरीचशी द्रव्ये बाजारात उपलब्ध नाहीत त्यामुळे शास्त्रात वर्णिल्या प्रमाणे पर्यायी बल्य द्रव्य घ्यावीत.

14) वातघ्न बस्ति (सु.चि. 38/77)

केवळ वात वृद्धी असल्यास ह्या प्रकारच्या बस्तिची उपाययोजना करावी.

योग्य (Indications): सर्व वात-व्याधीमध्ये

| द्रव्य | मात्रा | व्यवहारात |
|------------|------------------|-----------|
| माक्षिक | 3 पल = 120 मिली | 40 मिली |
| लवण | 3 टंक = 12 ग्रॅम | 10 ग्रॅम |
| स्नेह | 6 पल = 240 मिली | 100 मिली |
| कल्क | 3 पल = 120 ग्रॅम | 30 ग्रॅम |
| क्षीर कषाय | 8 पल = 320 मिली | 300 मिली |
| मांसरस | 1 पल = 40 मिली | 40 मिली |
| एकूण | 21 पल = 840 मिली | 480 मिली |

स्नेह - त्रिवृतस्नेह, क्षीरबला तैल, महास्नेह

कल्क - 1) त्रिवृत्त

क्षीरकषाय द्रव्य - 1) भद्रदाव्यादि गण

15) पित्तघ्न बस्ति (सू.चि. 38/78)

योग्य (Indications): पित्तरोग

| द्रव्य | मात्रा | व्यवहारात् |
|-------------|-------------------|------------|
| माक्षिक | 4 पल = 16 मिली | 80 मिली |
| लवण | 1 अक्ष = 10 ग्रॅम | 10 ग्रॅम |
| स्नेह | 4 पल = 160 मिली | 80 मिली |
| कल्क | 2 पल = 80 मिली | 30 ग्रॅम |
| क्वाथ | 8 पल = 320 मिली | 300 मिली |
| शर्करा | 1 पल = 40 ग्रॅम | 20 ग्रॅम |
| क्षीर | 4 पल = 160 मिली | 100 मिली |
| एकुण अंदाजे | 23 पल = 925 मिली | 560 मिली |

स्नेह - घृत - तिक्तकसर्पि, महातिक्तक घृत, चंदनादिघृत, दाडिमादि

कल्क - काकोल्यादि गण + शर्करा एकत्र करुन

कषाय द्रव्य - न्यग्रोधादि गणातील द्रव्ये

(वट, उदुम्बर, पिंपळ, प्लक्ष, मधूक, आम्रातक, अर्जुन, जम्बू, प्रियाल, रोहिणी (कटफल), वेतस, कदंब, बंदर, सल्लकी, पार्श्वपिप्पल)

16) कफघ्नबस्ति (सू.चि 38/79)

योग्य (Indications): कफरोग पित्तरोग

| द्रव्य | मात्रा | व्यवहारात् |
|-------------|-----------------------|------------|
| माक्षिक | 6 पल = 240 मिली | 80 मिली |
| लवण | 3 टंक = 12 ग्रॅम | 12 ग्रॅम |
| स्नेह | 3 पल = 120 मिली | 50 मिली |
| कल्क | 3 पल = 120 ग्रॅम | 30 ग्रॅम |
| क्वाथ | 8 पल = 320 मिली | 300 मिली |
| गोमूत्र | 3 पल 7 टंक = 125 मिली | 75 मिली |
| एकुण अंदाजे | 23 पल = 925 मिली | 500 मिली |

स्नेह - कटूतैल, त्रिफलादि तैल

कल्क - पिप्पल्यादि द्रव्य गण

कषाय - आरग्वधादिगण

उत्तर बस्ति

व्याख्या - उत्तरमार्गदीयमान तथा किंवा श्रेष्ठगुणतया उत्तरबस्तिः। च.पा.च.सि. 9/50-57

उत्कृष्टावयवे दानात् बस्तिः उत्तर संज्ञितः वंगसेन

पुरुष व स्त्रियांमध्ये मूत्रमार्गातून (Intra vesical) व स्त्रियांमध्ये अपत्यमार्गातून (Intra uterine) औषधी देण्याची क्रिया उत्तर बस्ति होय. उत्तर मार्गातून बस्ति दिली जाते म्हणून या क्रियेला उत्तर बस्ति म्हणतात. तसेच ही श्रेष्ठ गुणांची (उत्तर गुणांची) असल्यामुळेही या क्रियेला उत्तर बस्ति म्हणतात.

उत्तर बस्तिचे महत्त्व (Importance):-

- (1) सर्वश्रेष्ठ गुणांची बस्ति आहे.
- (2) मुत्र रोगांमध्ये उपयुक्त.
- (3) स्त्रियांच्या व्याधिंमध्ये उपयुक्त.
- (4) वंध्यत्वासाठी महत्त्वाची चिकित्सा.
- (5) मूत्राशय व गर्भाशय शोधन करण्यासाठी,
- (6) मार्गावरोध (Blockage) दुर करण्यासाठी उत्तम चिकित्सा.

उत्तर बस्ति यंत्रः बस्ति यंत्राचे दोन भाग आहेत (1) नेत्र (2) बस्तिपुटक. शास्त्रामध्ये वर्णित नेत्र व पुटकापेक्षा संध्यास्थितीत अर्वाचीन पध्दतीमध्ये तयार यंत्र सहज सुलभ उपलब्ध आहेत तसेच वापरण्यास सोयीस्करही आहेत.

1) **बस्ति नेत्रः** यास 'पुष्पनेत्र' पण म्हणतात. हे सुवर्ण वा रजत या पासून बनविण्याचे निर्देश आहेत. आचार्य चरकांनी लांबी 12 अंगुल (18 सेमी) व सुश्रुतांनी 14 अंगुल (21 सेमी) एवढी सांगितली तथा नेत्र छिद्राचे प्रमाण सर्षपबीज निघेल एवढा असावा.

स्त्रियांमध्ये पुष्प नेत्राची लांबी 10 अंगुल (15 सेमी) सांगितली आहे तथा नेत्र छिद्राचे प्रमाण मूगाचे बीज निघेल एवढे असावे.

पुष्पनेत्राचा आकार कनेर पुष्प वृंता सारखा तथा गोपुच्छप्रमाणे मूलभागात विस्तारीत व अग्रभागात संकुचित असावा. यास दोन कर्णिका असतात. एक मूलभागी बस्तिपुटक बांधण्यासाठी तर दुसरी मध्यभागी 6 ते 7 अंगुलावर.

बस्तिनेत्रप्रवेशः पुरुषांमध्ये - 6 अंगुल (9 सेमी) पर्यंत

स्त्रियांमध्ये - मूत्रमार्गात (Urethral) - 2 अंगुल (3 सेमी) पर्यंत

अपत्यमार्गात (Uterine) - 4 अंगुल (6 सेमी) पर्यंत

कन्यामध्ये - मूत्रमार्गात 1 अंगुल (1.5 सेमी) पर्यंत

अपत्यमार्गात- 2 अंगुल (3 सेमी) पर्यंत

* शक्यतो कन्यांमध्ये उत्तर बस्ति देणे टाळावे.

2) **बस्तिपुटकः** निरूह अुवासन बस्ति प्रमाणेच बस्तिपुटक उपयोगात आणावा, केवळ आकार लहान असावा.

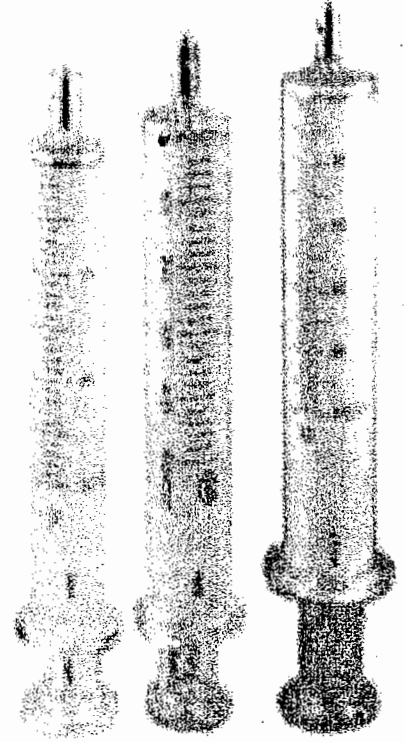
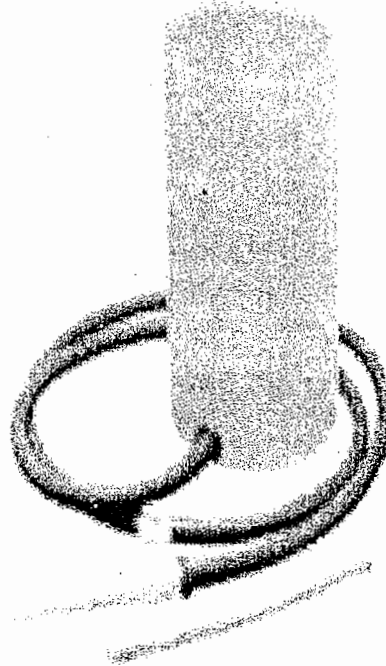
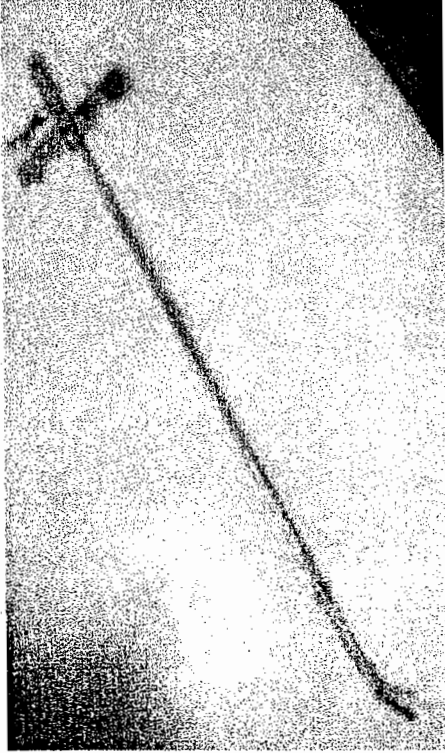
प्रचलीत उत्तर बस्ति यंत्रः-

(i) Plain Rubber Catheter

(ii) Rubins canula

(iii) Uterine sound

(iv) Syringe



स्त्रीयांमधे उत्तरबस्तिः

स्त्रीयांमधे अपत्यमार्गात व मुत्राशयामधे बस्ति दिला जातो. यात योनिधावन (vaginal douche) चाही अंतर्भाव होतो. उत्तरबस्ति स्नेह व निरूह दोन्ही प्रकारांनी दिली जाते. योनिधावनासाठी प्राधान्याने कषाय उपयोगात आणला जातो.

योग्य (Indications):

बस्तिजेषु विकारेषु योनिविभ्रंशनेषुच।।

योनिशूलेषु तीव्रेषु योनिव्यापत्स्वसृग्दरे।

अप्रस्रवति मूत्रे च बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यापि।। च.वि 9/63-64

1. बस्ति विकार (Diseases of Urinary Bladder)
2. योनिविभ्रंश (Prolapse of Uterus)
3. योनिशूल (Severe Pain in uterus)

4. असृग्दर (Menorrhagia)
5. मूत्र अप्रसवण (Anuria)
6. बिंदू बिंदू मूत्रता (Dribbling of Urine)
7. पुष्पनाश/अनार्तव (Amenorrhea excluding pregnancy or menopause)
8. अकाल रजःप्रवृत्ती (Irregular menses)
9. वंध्यत्व (Infertility)

अयोग्य (contraindication)

1. गर्भाशय ग्रीवा पाक (Cervicitis)
2. कन्या (Child female)
3. CA Uterus, CA cervix

सामान्य योग

1. फलघृत
2. सहचरादि तैल
3. धन्वन्तर तैल
4. कुटजघृत

बस्तिदान काल 1) चरकार्यानुसार उत्तरबस्तिपूर्व 2-3 स्नेह बस्ति द्यावा (च.सि. 9/68)

1. बस्तिरोग, योनी व गर्भाशय संबंधी व्याधीमध्ये उत्तरबस्तिपूर्वी 2-3 आस्थापन बस्ति देऊन शोधन करावे (अ.ह. सू. 19/70)
2. बस्ति एका दिवसात 2-3 वेळा दिली जाऊ शकते अथवा 3 दिवस प्रतिदिन बस्ति दिली जावू शकते. त्यानंतर 3 दिवस विश्रामकाल ठेवून पुनः 3 दिवसाचा बस्ति क्रम देता येऊ शकतो. (अ.सं.सू. 28/77-78). प्रत्यक्षात दिवसातून एकदाच बस्ति दिली जाते
3. स्त्रीणामार्तवकाले तु योनिर्गृह्णात्यपावृतेः।

विदधीत तदा तस्मादनृतावपि चात्यये।

योनिविभ्रंशशूलेषु योनिव्यापद्यसृग्दरे ।

अ.ह.सू. 19/77-78

स्त्रीयांमध्ये आर्तवकालामध्ये स्त्राव थांबल्यानंतर उत्तरबस्ति द्यावा. या काळात गर्भाशय स्नेह ग्रहण करण्यास योग्य असते.

योनिविभ्रंश योनिशूल, योनिव्यापद, असृग्दर या अवस्थांमध्ये बस्ति देण्यासाठी कोणताही काल पालन करण्याची आवश्यकता नाही.

चरक व वाग्भटाचार्यांनी आर्तव कालामध्ये उत्तरबस्ति देण्यासंबंधी वर्णन केलेले आहे परंतु याचा अर्थ आर्तवकाल न घेता ऋतुकाळात घ्यावा. सहाव्या दिवसापासून 3 उत्तरबस्ति दिल्यानंतर 3 दिवस विश्राम काल ठेवून पुनः 12 व्या दिवसापासून 3 उत्तर बस्ति द्यावेत (Nampoothiri, 2010)

पूर्वकर्म

1. संमतीपत्रक (consent form) 2. संभारसंग्रह
3. रुग्णपरिक्षण व योनिपरीक्षण 4. अभ्यंग-स्वेद
1. **संमतीपत्रक (consent form)** : यापूर्वी वर्णिल्याप्रमाणे रुग्णास समजेल अशा भाषेत असलेल्या संमतीपत्रकावर रुग्ण व/किंवा नातेवाईकांची स्वाक्षरी/अंगठा घ्यावा
2. **संभारसंग्रह** : निर्जंतूक केलेल्या सुसज्ज शस्त्रागार मध्ये उत्तरबस्ति साठी खालीलप्रमाणे उपकरण व द्रव्याची तयारी करुण ठेवावी.
 - i. बस्तिनेत्र व पुटक (syringes 100 ml, catheter 18 no.)
 - ii. Gloves
 - iii. Cotton
 - iv. Forceps, Sim's speculum
- v. उत्तरबस्तिद्रव्य - स्नेह (sterilized Oil)
3. **रुग्णपरीक्षण व योनिपरीक्षण** : उत्तरबस्ति देण्यापूर्वी रुग्णाचे आवश्यकतेनुसार खालील परिक्षण केलेले असावे
HSG (Hystosalpingography)
USG (Lower Abdomen)
Ovulation study
Urine - Routine and microscopic
योनिपरीक्षण : उत्तरबस्तिपूर्वी रुग्णाचे योनिपरीक्षण करावे ज्यामुळे स्थानिक व्याधी, विकृती लक्षात येतील
4. **अभ्यंग स्वेद** - उत्तरबस्ति देण्याचे दिवशी आतुरसिद्धता करण्यासाठी मल-मूत्र विसर्जनानंतर रुग्णास कटि, पृष्ठ, नितंब याभागी अभ्यंग व स्वेद करावे. यवागू + घृत पिण्यासाठी द्यावे (सू. चि. 37/108)
5. मात्रा - स्नेह - 20 मिली, कषाय - 160 मिली

प्रधानकर्म

आसन - रुग्णास उत्तानावस्थेत झोपून दोन्ही पाय जानूसंधीपासून दुमडून जानूसंधी वर करुन करावी (Lithotomy position) व रुग्णास मानसिक धैर्य देवून शरीर, सक्रिय शिथिल करण्यास सांगावे.

बस्ति प्रणिधान

a. **मूत्रमार्गगत (Through Urethral Orifice)** - बाह्ययोनि निर्जंतुकीकर द्रव्याने स्वच्छ करुन पूर्ण क्रियेमध्ये निर्जंतूकता राहिल यासाठी काळजी घ्यावी.

Labia विस्फारीत करुन वरच्या भागास उचलावे व मूत्रमार्ग (Urethral opening) निर्जंतूक द्रव्याच्या पिचूद्वारे खालच्या दिशेने, समोरुन मागच्या दिशेने स्वच्छ करावे.

पूष्पनेत्र (catheter) स्नेहामध्ये बुडवून हळुवार मूत्रमार्गात 2 अंगूल (2 इंचपर्यंत) घालावा. मूत्राशयामधून सर्व मूत्र बाहेर निर्हरीत होऊ द्यावे.

बस्तिपुटक वा syringe द्वारे आवश्यक मात्रेत निर्जंतूक केलेला सुखोष्ण स्नेह बस्तिनेत्रास जोडून मूत्रमार्गात हलक्या दाबाने प्रवेशित करावा

बस्तिनेत्र (catheter) हळुवार बाहेर काढावा catheter ऐवजी glass syringe चा सरळ वापर करावा [Rajendra H. Amilkantthawar 1JTL3(2), 2004]

b. गर्भाशयात (Uterine)

Sim's speculum व vulsellum च्या साहाय्याने गर्भाशय ग्रीवा (cervix) पकडून त्यास विस्फारीत करावा. Internal OS मध्ये catheter प्रवेशित करून आवश्यक मात्रेत स्नेह प्रवेशित करावा.

स्नेहमात्रा प्रत्येक दिवशी क्रमाने वाढवावी (अ.ह.सू. 19/81-82)

पश्चातकर्म

रुग्णास OT च्या बाहेर काढून वार्डमध्ये बेडवर Head low position मध्ये किमान तीन तास राहण्यास सांगावे

सायंकाळी लघू आहार घेण्याचा सल्ला द्यावा,

मैथून वर्ज्य करण्याचा सल्ला द्यावा

1. Peritonitis - अधिक मात्रेत दिल्याने
2. Cystitis, UTI असल्यास antibiotics
3. स्नेहप्रत्यागमन न होणे - शास्त्रामध्ये फलवर्तिचा वापर करण्यास सांगितले आहे. Catheterization करून स्नेह बाहेर काढता येऊ शकेल.

निरुहबस्ति, अभ्यंग-स्वेद

4. मूर्च्छा (shock) - Head low position → monitor vital

शीतपरिषेक, सूवर्णसुतशेखर, हेमगर्भपोटलीरस,

पुरुषांमध्ये उत्तरबस्ति :

पुरुषांमध्ये शिश्नावाटे मूत्रमार्ग-मूत्राशयामध्ये बस्ति प्रवेशित केली जाते. पुरुषांमध्ये उत्तरबस्ति प्रामुख्याने मूत्रवह, शुक्रवह स्रोतसांच्या व्याधीसाठी चिकित्सा म्हणून वापरली जाते.

प्रकार -

- i. अनुवासन - स्नेहप्रधान,
- ii. निरुह - कषायप्रधान

योग्य (indication):

1. मूत्रमार्गसंकोच (Urethral stricture)
2. अष्ठीला (BPH)
3. अश्मरी (calculus)
4. क्लैब्य (impotency)
5. वंध्यत्व (fertility)
6. बस्तिकुंडल (Painful bladder)
7. शुक्रदोष

अयोग्य (contraindication):

1. मूत्रमार्गातील तीव्र शोध (Urethritis)
2. ग्रंथी (Cyst/tumour)

| | | | |
|--------------|------------------|---|-------------------------------------|
| सामान्ययोग : | क्लैब्य, ध्वजभंग | - | सहचरादितैल |
| | शुक्रदोष | - | क्षीरबला तैल |
| | मूत्रमार्गसंकोच | - | तिळतैल, अश्वगंधादितैल, कासीसादि तैल |

पूर्वकर्म

- 1) संमतीपत्रक
 - 2) संभारसंग्रह
 - 3) रुग्णपरीक्षण
 - 4) अभ्यंग-स्वेद
1. **संमतीपत्रक (consent form) :** यापूर्वी वर्णिल्याप्रमाणे रुग्णास समजले अशा भाषेत असलेल्या संमतीपत्रकात रुग्ण किंवा नातेवाईकांकडून स्वाक्षरी/अंगठा घ्यावा.
 2. **संभारसंग्रह :** निर्जंतूक केलेल्या (fumigated) सुसज्ज शस्त्रागार (OT) मध्ये उत्तरबस्तिसाठी खालीलप्रमाणे सिद्धता ठेवावी
 - i. शलाका, बस्ति नेत्र व पुटक (probe, syringe, catheter)
 - ii. gloves
 - iii. cotton
 - iv. Penile clamp
 - v. उत्तरबस्ति द्रव्य - स्नेह वा कषाय (sterilized)उत्तरबस्तिसाठी वापरण्यात येणारे यंत्र, शस्त्र व औषधीद्रव्य autoclave करून घ्यावे.
 3. **रुग्णपरीक्षण :** उत्तरबस्ति देण्यापूर्वी मूत्रमार्गाचं परीक्षण करावे
Urogram, USG, Urine - R/M, Blood Sugar: - F/PP

4. अभ्यंग व स्वेद : विट्-मूत्र विसर्जनानंतर रुग्णाच्या कटि, पृष्ठ, नितंब, उदरभागी मृदू अभ्यंग व मृदू स्वेद करावा. स्नेहबस्तिप्रमाणे रुग्णास लघू आहार द्यावा.
5. मात्रा - स्नेह - 40 मिली ते 50 मिली,
निरुह - 80 मिली ते 100 मिली

प्रधानकर्म

अष्टांगहृदयकारांनी रुग्णास जानूसंधी एवढ्या उंच पीठावर बसुन हर्षित मेढ्रामध्ये (erected penis) उत्तरबस्ति प्रविष्ट करण्यास सांगितले आहे (अ.ह.सू. 19/73-74). प्रत्यक्षात OT टेबलावर रुग्णास उत्तान अवस्थेत झोपण्यास सांगावे. रुग्णास निर्वस्त्र करुन अधः शरीरावर निर्जंतूक वस्त्राने आच्छादीत करावे. शिशनभागास निर्जंतूक द्रव्याने स्वच्छ करावे.

डाव्या हाताने शिशनास धरुन उजव्या हाताने पूष्पनेत्र (catheter) हळूवार मूत्रमार्गामध्ये प्रवेशीत करावा. Catheter आत घालण्यासाठी सोईचे व्हावे यासाठी त्यास स्नेहामध्ये लिप्त करावा किंवा Xylocaine Gel चा वापर करावा यामुळे रुग्णास शूल होत नाही.

Catheter आतमध्ये गेल्यानंतर उर्वरित मूत्राचे निर्हरण झाल्यानंतर syringe द्वारे आवश्यक मात्रेत सुखोष्ण स्नेह वा कषाय प्रवेशीत करावा ह्यानंतर penile camp लावून रुग्णास उत्तान अवस्थेत पाय वर करुन झोपण्यास सांगावे.

Urethral stricture मध्ये catheter चा वापर न करता केवळ glass syringe चा वापर केला जातो.

पश्चातकर्म

30-40 मिनिटांनंतर बस्ति प्रत्यागमन होते. संहितामध्ये बस्तिप्रत्यागमन काल स्पष्ट वर्णिला गेलेला नाही. यास स्नेहबस्तिसारखा समजावा. दाह झाल्यास यष्टीमधून क्वाथ, मधू, शर्करा यांचा बस्ति द्यावा. उत्तरबस्ति क्रिया 3-4 वेळा करावी. रात्री मूद्ग यूष, मांसरस, लघू सुवाच्य उपहार द्यावा.

व्यापद -

1. Urethral Rupture
2. UTI, Cystitis - सुक्ष्मत्रिफळा, गोक्षुरादि गुग्गुळ, चंद्रप्रभावटी आवश्यकतेनुसार antibiotics
3. मूर्च्छा (shock)



7

नस्यकर्म (Errhine Therapy)

निरुक्ती : नस् - धातु गत्यर्थक अर्थानि तथा व्याप्ती या अर्थानि

नस् - नासिकायां - नासा (Nose) या अर्थानि

नस्य - नासा साठी हितकर

पर्यायीशब्द - शिरोविरेचन, शिरोरेचन

व्याख्या: औषधमौषध सिद्धो वा स्नेहो नासिकाभ्यां दीयत इति नस्यम् (सु.चि. 40/21)

नासायां भवं नस्यम् (अरुणदत्त)

औषधी वा औषधी सिद्ध स्नेह नासा मार्गानि देण्याची क्रिया 'नस्य' होय

नस्यकर्म स्वरस, क्वाथ, तैल, चूर्ण या सारखी औषधीद्रव्य उर्ध्वजत्रूगत दोषांचे शोधन करण्यासाठी, शमन करण्यासाठी किंवा स्थानिक धातुंचे पोषण-बंधन करण्यासाठी वापरण्यात येणारी पद्धती (Way of administration) आहे. नासा हा मार्ग आहे. आचार्यांनी नासा हा 'मार्ग' म्हणून उच्च स्थान दिलेले आहे. 'नासा हि शिरसो द्वारं तेन तद्वाप्य हान्ति तान्।' (अ.ह.सू.20/1) नासा हे शिराचे द्वार असून शिरःभागातील व्याप्त व्याधीसाठी 'नस्य' ही महत्त्वाची चिकित्सा आहे.

'नस्य' क्रियेद्वारे आयुर्वेदाने औषधी दानाचा सोपी व सोईस्कर क्रियेचा अविष्कार केला आहे. औषधांचे क्रियातत्व शरीरावर अल्पावधीत कार्य करत असल्यामुळे रुग्णास तात्काळ गुण मिळतो. त्यामुळे नस्य चिकित्सा अधिक लोकप्रिय ठरली. आधुनिक शास्त्रानेही त्यांच्या औषधी तात्काळ कार्य करण्यासाठी ह्या क्रियेस प्रगत केले (Nebulisation, Rotahalers, instillation)

नस्यकर्म महत्त्व व उपयोगिता (Significance/importance and Utility)

1. नासा हे शिराचे द्वार आहे. त्यायोगे शिरःप्रदेशातील व्याधीची चिकित्सा करण्यासाठी नस्य ही प्रमुख चिकित्सा आहे.
2. नस्य ही केवळ स्थानिक चिकित्सा नसून सार्वदेहीक चिकित्सा आहे. नस्यामुळे केवळ शिरस्थ दोषांचीच चिकित्सा केली जात नाही तर सार्वदेहीक दोषांचीही चिकित्सा केली जाते. नियमित नस्य घेतल्यास स्कंध, त्वचा उन्नत व प्रसन्न होऊन मन्या, अंस, वक्षप्रदेश दृढ होतात
3. नस्याद्वारे उत्तमांगातील अवयवांना बल प्रदान केले जाते. शिरस्थ स्नायु, संधी, अस्थि यांना दृढता प्राप्त होते.
4. इंद्रिय प्रामुख्याने उत्तमांगाच्या आश्रयाने कार्य करतात विविध इंद्रिये स्वतःच्या अधिष्ठानामध्ये राहून ज्ञानग्रहण करण्याचे कार्य करतात नस्यामुळे कर्ण, नासा, जिह्वा, नेत्र यांच्या आश्रयाने राहणाऱ्या इंद्रियांचे कार्य व्यवस्थित होण्यास मदत होते.

5. नस्य हे शुक्र व मज्जा धातुवर कार्य करते त्यामुळे रसायन व वाजीकरण कार्यात नस्याचे महत्त्व आहे.
6. नस्याद्वारे उर्ध्वजत्रुगत व्याधीचा नाश करण्यासाठी मदत होते.
7. नस्य चिकित्सा खालित्य-पालित्य, व्यंग इ. सौंदर्य चिकित्सेतही वापरली जाते.
8. नस्य हे केवळ शिरोविरेचन करणारे नसून बृंहण व शमन चिकित्सा उपयुक्त म्हणून आहे.
9. नस्य हे मानस रोगांसाठी उत्तम चिकित्सा पद्धती आहे. नस्याने केवळ जीर्ण व्याधीवरच चिकित्सा केली जात नाही तर तीव्र अवस्थांमध्येही (Acute condition) नस्य चिकित्सा तेवढीच उपयुक्त आहे. उदा. संन्यास, मोह, मूर्च्छा इ. अवस्थांमध्ये प्रथम नस्य तर रक्त खावामध्ये स्तम्भन करणारी चिकित्सा नस्याने केली जाते.
10. इतर शोधन चिकित्सेमध्ये नस्य कर्म अधिक सोपे मानले जाते. त्यातील संभावीत व्यापद अल्प असून रुग्णांनी सहजतेने स्वीकारण्यासारखे आहे.

नस्यद्रव्य (Knowledge of Drugs for Nasya)

चरकोक्त (च.सू. 2/3-5)

- | | | |
|-------------------------|-------------------|-----------------------|
| 1) अपामार्ग बीज | 2) पिप्पली | 3) मरिच |
| 4) विडंग | 5) शिग्रु | 6) सर्षप |
| 7) तुंबरु (नेपालीधनिया) | 8) अजाजी (जीरक) | 9) अजमोदा |
| 10) पीलू | 11) एला | 12) पृथ्विका (कलौजी) |
| 13) सुरसा (तुलसी) | 14) श्वेता (अर्क) | 15) कुठेरक (तुलसीभेद) |
| 16) फाणिञ्जक (तुलसीभेद) | 17) शिरीष बीज | 18) रसोन |
| 19) हरिद्रा | 20) सौवर्चल लवण | 21) सैधव लवण |

सुश्रुतोक्त (सु.सू. 39/6)

- | | | |
|----------------------------|-----------------------|--------------|
| 1) पिप्पली | 2) विडंग | 3) अपामार्ग |
| 4) शिग्रु | 5) सिद्धार्थक (सर्षप) | 6) शिरीष |
| 7) मरिच | 8) करवीर | 9) बिंबी |
| 10) अपराजिता (श्वेत) | 11) किणिहि (करभी) | 12) वचा |
| 13) ज्योतिष्मती | 14) करंज | 15) अर्क |
| 16) रसोन | 17) अतिविष | 18) शृंगबेर |
| 19) इंगुदी | 20) मेषशृंगी | 21) मातुलूंग |
| 22) मुरंगी (सरीजन रक्तफुल) | 23) पीलू | 24) जाती |

- | | | |
|--------------------|-------------|------------|
| 25) ताड | 26) मधुक | 27) लाक्षा |
| 28) हिंगू | 29) लवण | 30) मद्य |
| 31) गोशक्रु (गोमय) | 32) गोमूत्र | |

वाग्भटोक्त (अ.ह.सू. 15/5)

- | | | |
|----------------|--------------|--------------|
| 1) विडंग | 2) अपामार्ग | 3) त्रिकटू |
| 4) दारुहरिद्रा | 5) राल | 6) शिरिष बीज |
| 7) बृहती | 8) शिग्रु | 9) मधूक सार |
| 10) सैधव | 11) रसांजन | 12) एला |
| 13) एला (बृहत) | 14) पृथ्विका | |

नस्यासाठी उपयुक्त द्रव्यांचे चूर्ण, कल्क, क्वाथ, क्षीर, स्वरस, तैल, घृत, इ. पंचविध कषाय कल्पनांचा वापर केला जातो.

व्यावहारिक नस्य योग

अणुतैल - घटकद्रव्य - चंदन, अगरु, मधुयष्टी, बला, पौडरिक, विडंग, कमल, हरीतकी, दालचिनी मुस्ता, जीवंती, पद्मकेशर, शतावरी, बृहती, व्याघ्री, हरेणू, एला, तिळतैल.

उपयोग - स्वर, इंद्रिय प्रसन्न व निर्मल होतात. अर्दित, हनुग्रह, पीनस, अर्धावभेदक, मन्यास्तम्भ केश खालित्य-पालित्य.

षड्बिंदू तैल - घटकद्रव्य - एरण्डमूल, सुंठ, तगर, शतपुष्पा, जीवन्ती, रास्ना, सैधव, दालचिनी, मधुयष्टी, अजादुग्ध, तिळतैल, भृंगराजस्वरस

उपयोग - शिरशूल, जीर्णप्रतिश्याय, अर्धावभेदक, खालित्य-पालित्य, नेत्रकर, दंतदृढार्य

नस्यभेद

नस्यभेद तालिका विविध आचार्यांनुसार पूढील पानावर दिलेली आहे. चरकाचार्यांनी वर्णन केलेल्या नस्य प्रकारात सर्व आचार्यांनी वर्णन केलेल्या नस्य प्रकारांचा समावेश होतो. मात्र अष्टांगहृदयकारांनी वर्णन केलेले नस्य प्रकार अतिशय व्यावहारिक आहेत.

नस्यासाठी उपयोगात येणाऱ्या द्रव्यांचे कोणते अंग प्रयोगात आणले जातात त्यानुसार सात प्रकार केले आहेत.

शिरोविरेचनम् सप्तविधम् फलपत्रमूलकंद पुष्प निर्यास त्वगाश्रयभेदात्। च.वि. 8/154

- 1) फलनस्य - अपामार्ग, पिप्पली, विडंग, मरिच, शिग्रु, शिरीष, पीलू, अजवायन, अजमोदा, एला यांच्या फलांचा उपयोग केला जातो.

| नस्य भेद | | | | | | |
|--|---|---|---|----------------------|----------------------------|--|
| चरक | सुश्रुत | वाग्भट | कश्यप | शाङ्गधर | भोज | |
| च.सि. 9-89,91 | सू.चि. 40/4 | अ.ह.सू. 20/2,7 | का.सि. 2, 4 | शा.उ. 8/2,11,24 | डल्हण सु.चि 40/31 | |
| 1) नावन - i. स्नेह ii. शोधन | 1) शिरोविरेचन 2) स्नेहन i. नस्य ii. शिरोविरेचन iii. प्रतिमर्श iv. अवपीड v. प्रथमन | I. 1) विरेचन 2) बृंहण 3) शमन II. 1) स्नेह i. मर्श ii. प्रतिमर्श 2) कल्क-अवपीड 3) चूर्ण (विरेचन)ध्यान | I. 1) विरेचन 2) बृंहण 3) शमन II. 1) बृंहण 2) कर्षण III. 1) शोधन 2) पूरण | 1) रेचन 2) स्नेहन | 1) प्रायोगिक 2) स्नेहिक | |
| 2) अवपीड - i. शोधन ii. स्तम्भन | | | | | | |
| 3) ध्मापन | | | | | | |
| 4) धूम i. प्रायोगिक ii. वेरेचनिक iii. स्नेहिक | | | | | | |
| 5) प्रतिमर्श i. स्नेह ii. विरेचन | | | | | | |

- 2) पत्रनस्य - तुलसी, सप्तपर्ण, आरग्वध, मूलक, शृंगबेर, लसून, सर्षप, तालीशपत्र, तमालपत्र या द्रव्यांचा पत्राचा उपयोग केला जातो.
- 3) मूलनस्य - अर्क, अलर्क, कुष्ठ, नागदंती, वचा, भारंगी, ज्योतिष्मती, इंद्रायणा, अतिविषा, करंज यांचे मूळ नस्यार्थ वापरले जातात.
- 4) कंदनस्य - सुंठी, हरिद्रा, लसून, यांचे कंद उपयोगात आणले जातात.
- 5) पुष्पनस्य - लोध्र, सप्तपर्ण, निंब, अर्क यांची फुले नस्यार्थ उपयोगी आहेत.
- 6) निर्यासनस्य - हिंगू, देवदास, अगरू, शल्लकी, मधूक, लाक्षा, यांचे निर्यास उपयोगात आणले जातात.
- 7) त्वक्नस्य - गुडूचि, शोभाञ्जन, बृहती, दालचिनी, इंगुदी, मेषशृंगी यांच्या त्वचेचा वापर नस्यासाठी केला जातो.

सामान्य नस्यार्ह (नस्य योग्य) (General indications)

नस्य खालील व्याधीमध्ये करता येते खालील व्याधीला सामान्य अवस्था आहेत. प्रकारानुसार नस्य कर्माच्या विशेष अवस्था-विशेष व्याधी स्वतंत्र वर्णिल्या आहेत. चरकांनी (च.सि. 2/22) नस्याचे अयोग्य अवस्थांना सोडून सर्वच व्याधीमध्ये नस्य करण्यास सांगितले आहे. त्यापैकी विशेषतः खालील व्याधी नस्यार्ह आहेत.

- | | |
|--|--|
| 1) शिरस्तम्भ (stiffness of head) | 2) मन्यास्तम्भ (Neck stiffness-non meningeal) |
| 3) दंतस्तम्भ (stiffness of teeth) | 4) गलग्रह |
| 5) हनुग्रह (locking of mandibular joint) | 6) पीनस (chronic rhinitis) |
| 7) गलशुण्डिका (elongated uvula) | 8) गलशालूक (adenoids) |
| 9) शुक्र (नेत्ररोग) (corneal opacity) | 10) तिमिर (cataract) |
| 11) वर्त्मरोग (disease of eye lids) | 12) व्यङ्ग (pigmentation on face) |
| 13) उपजिह्विका (salivary cyst) | 14) अर्धाविभेदक (migrain) |
| 15) ग्रीवा रोग (disease of neck) | 16) स्कंध रोग (disease of shoulder) |
| 17) अंसशूल (scapular pain) | 18) नासारोग (diseases of nose) |
| 19) आस्य (मुख) रोग (diseases of mouth) | 20) नेत्ररोग (diseases of eyes) |
| 21) मूर्ध (disease related to brain) | 22) शिरोरोग (Headache) |
| 23) अर्दित (facial palsy) | 24) अपतन्त्रक (convulsive disorder like tetanus) |
| 25) अपतानक | 26) गलगण्ड (goitre) |
| 27) दंतशूल (toothache) | 28) दंतहर्ष (odontitis) |

29) दंतचाल (movable tooth)

30) अर्बुद (tumour)

31) स्वरभेद (Hoarseness of voice)

32) वाक्ग्रह (dysarthria)

33) गद्गदत्व (dysarthria)

सामान्य नस्य अयोग्य (Contra indications): (च.चि 2/20, अ.ह.सु. 20/11-13 सु.चि 40/47)

नस्य कर्म शक्यतो दुर्दिन अनृतो (अयोग्य वेळ) अवस्थांमध्ये करु नये. खालील काही अवस्था वा व्याधीमध्ये नस्य कर्म निषिद्ध आहे.

| | नस्य अयोग्य | केल्यास होणारे व्यापद |
|----|-------------------------------------|--|
| 1 | भुक्त भक्त (जेवणानंतर लगेच) | दोष उर्ध्वगत होऊन स्नेहसांना आवृत्त करतात |
| 2 | अजीर्ण | त्यामुळे कास, श्वास, च्छर्दि, प्रतिश्याय उत्पन्न होतात |
| 3 | पीत स्नेह | मुख-नासा स्त्राव, नेत्र उपदेह, तिमीर |
| 4 | पीत मद्य | शिरोरोग |
| 5 | पीत तोय (अधिक पाणी प्यायलेला) | |
| 6 | शिरःस्नाता (Head bath) | प्रतिश्याय |
| 7 | क्षुधार्त | वातप्रकोप |
| 8 | तृष्णार्त | तृष्णाधिक्य, मुखशोष |
| 9 | श्रमार्त | आस्थापनामध्ये सांगितलेले व्यापद |
| 10 | मत्त | उदा. ज्ञान, विभ्रंग, मानसोपघात |
| 11 | मूर्च्छित | |
| 12 | शत्रुदण्डहत (शस्त्राने जखमी) | तीव्र रुजा |
| 14 | व्यवाय क्लान्त (व्यवाथाने थकलेला) | शिर, उरः, स्कंध, नेत्र रुजा |
| 15 | व्यायाम क्लान्त (व्यायामाने थकलेला) | |
| 16 | पान क्लान्त (अधिक मद्याने व्याधीत) | |
| 17 | नवज्वर | नेत्रनाडीमध्ये दोष संचित होऊन 'तिमीर' होतो |
| 18 | श्लोकाभिताप | ज्वरवृद्धी |
| 19 | विरिक्त(विरेचन झालेला) | वायूवृद्धी, इंद्रिय उपघात |
| 20 | अनुवासीत | कफवृद्धी होऊन शिरोगौरव, कंडू, कृमिदोष |

| | | |
|----|----------------------|---|
| 21 | गर्भिणी | गर्भस्तम्भ, काणा (नेत्रदोष), कुणी (एक हाताने छोटा) पक्षहत (अर्धांग कार्यहिनता) पाठसर्पि उभयपाद क्रिया हानि (paraplegia) |
| 22 | नवप्रतिशयाय | स्रोतसामध्ये दोषांची व्याप्ती होऊन प्रतिशयाय वृद्धी |
| 23 | अनृत | पूतिनासा शिरोरोग |
| 24 | दुर्दिन | |
| 25 | गरार्त | गरदोष वृद्धी |
| 26 | श्रांत | तृष्णा, उद्गार |
| 27 | बाल | |
| 28 | वृद्ध | |
| 29 | वेगावरोधित (वेगार्त) | |
| 30 | रक्तस्रावित | |
| 30 | रक्तस्रावित | वायूवृद्धी |
| 31 | सुतिका | तृष्णा, वायूवृद्धी |
| 32 | श्वास | व्याधी वृद्धी |
| 33 | कास | |

I. नावन नस्य

सामान्यपणे नियमित देण्यात येणारे प्रमुख नस्य यास केवळ 'नस्य' म्हणतात. ज्या प्रक्रियेमध्ये अणुतैलासारखे स्नेह नासापुटात प्रविष्ट केले जाते त्यास नावन नस्य म्हणतात. या प्रकारात पिचु स्नेहामध्ये बुडवून नस्य दिले जाते.

दद्यादेशोऽणुतैलस्य नावनीयस्य संविधि। च.सू. 5/68

नस्याने ग्रीवा, स्कंध, उरः यास बल प्राप्ती होते, दृष्टी प्रसाद होऊन शिरःशून्यता नष्ट होते (सु.चि 40/22) नस्याचे कार्य कार्मुकतेच्या आधारे दोन प्रकार पडतात 1) स्नेहन नस्य, 2) शोधन नस्य - सुश्रुतांनी या प्रकारास शिरोविरेचन म्हटले आहे.

1) स्नेहन नस्य : स्नेहन नस्य सिद्ध औषधांचे घृत, तैलाने दिले जाते. सिद्ध स्नेहाच्या गुणानुसार नस्य वात कफ हर, पित्तरक्तहर, वातपित्तहर कार्य करते (डल्हण) स्नेहननस्य योग्य (सु.चि 40/22)

- 1 वातज शिरःशूल (Tension Headache)
- 2 दंतपात (Falling of teeth)
- 3 केशपात श्मश्रूपात (Falling of hairs mustache)

| | | |
|----|-------------------|---|
| 4 | तीव्र कर्णशूल | (Acute earache) |
| 5 | कर्णक्ष्वेद | (Tinnitus) |
| 6 | तिमीर | (Cataract) |
| 7 | स्वरोपघात | (Hoarseness of voice) |
| 8 | नासारोग | (Disease of nose) |
| 9 | मुखशोष | (Dryness of mouth) |
| 10 | अवबाहुक | (Frozen shoulder, cervical radiculopathy) |
| 11 | अकालजवली | (Premature wrinkles on skin) |
| 12 | अकालजपलीत | (Premature greying of hairs) |
| 13 | दारुणप्रबोध | (Difficulty in eye opening) |
| 14 | वात-पित्तज मुखरोग | |

स्नेह नस्याची उपयोगिता (च.सू. 5/57-60)

1. योग्य काळात सततच्या स्नेह (अणूतैल) नस्याने चक्षु, घ्राण व कर्णेन्द्रिय त्याचे कार्य उत्तम करतात.
2. केश, श्मश्रू श्वेत वा कपिल वर्णाचे होत नाही, केशवृद्धी योग्य होते
3. मन्या-स्तम्भ, शिरःशूल, अर्दित, हनुग्रह, पीनस, अर्धावभेदक, शिरःकम्प या सारख्या व्याधीच्या शमनासाठी उपयोगी ठरते.
4. कपाल प्रदेशीतील सिरा, स्नायु, कण्डरा, संधी यांना बल प्राप्ती होते.
5. स्वर उपचित, स्थिर होतो तर मुख प्रसन्न दिसते
6. उर्ध्वजत्रुगत व्याधी सहसा होत नाहीत
7. जरा (वार्धक्य) लवकर येत नाही.

मात्रा - (सु.चि 40/23)

- हिन मात्रा - 8 बिंदू
मध्यम मात्रा - 16 बिंदू (शुक्तीप्रमाण)
उत्तम मात्रा - 32 बिंदू (पाणिशुक्ती)

- भोज याचे नुसार - प्रायोगिक नस्य - 8 बिंदू
स्नेहिक नस्य - 16 बिंदू

2) शोधन नस्य : सुश्रुतांनी वर्णन केलेल्या शिरोविरेचन प्रकाराचा शोधन नस्यामध्ये अंतर्भाव केला जाऊ शकतो. शोधन नस्य प्रामुख्याने दोष बाहेर काढण्यासाठी उपयोगात आणले जाते. तीक्ष्ण द्रव्यांनी सिद्ध केलेले स्नेह शोधन नस्यासाठी वापरतात. शोधन नस्य प्रामुख्याने कफज, कफानुबंधीपित्तज व्याधीमध्ये केले जाते.

उपयोगी द्रव्य - पिप्पली, विडंग, शिगु अपामार्ग यांनी सिद्ध स्नेह

शोधन नस्य योग्य (Indications)

- | | |
|----------------------------------|---------------------------|
| 1 कफव्याप्त तालु (URTI) | 2 कफव्याप्त कण्ठ (URTI) |
| 3 कफव्याप्त शिर (Sinusitis) | 4 अरुचि (Anorexia) |
| 5 शिरोगौरव (Heaviness of head) | 6 शिरःशूल (Headache) |
| 7 पीनस (rhinitis) | 8 अर्धविभेदक (Migraine) |
| 9 कृमी (Worms) | 10 प्रतिश्याय (Cold) |
| 11 अपस्मार (Epilepsy) | 12 गंधज्ञान नाश (Anosmia) |
| 13 प्रसेक (Excessive salivation) | 14 अर्बुद (Tumour) |
| 15 कोठ (Skin rashes) | 16 Cerebral oedema |
| 17 Nasal polyps | 18 Hydrocephalus |

| | | | |
|----------|--------------|---|---------|
| मात्रा - | हिन मात्रा | - | 4 बिंदू |
| | मध्यम मात्रा | - | 6 बिंदू |
| | उत्तम मात्रा | - | 8 बिंदू |

II. अवपीड नस्य

शृतशीतस्वरसादीनां पिचुनाऽवपीडनात् अवपीडः।

डल्हण सु.चि 40/21

कल्कीकृताद् औषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः।

स्तेऽवपीडः समुच्चिष्टः तीक्ष्ण द्रव्यसमुद्भवः।।

शा.उ.खं. 8/12

हिम, फांट, स्वरस इ. च्या पिचुना पीडन करुन किंवा कल्कास पीडन करुन त्यातून निघणान्या द्रव द्रव्यांने नस्य करणे अवपीडन नस्य होय. यात नावनासारखे स्नेह नाही. सुश्रुतांनी यास शिरोविरेचनाचा विकल्प म्हटले आहे.

प्रकार - कार्मुकतेच्या आधारावर आचार्यांनी खालीलप्रमाणे प्रकार वर्णन केलेले आहेत. त्यांच्या नावासारखेच त्यांचे कार्य आहे.

| चरक | चक्रपाणि | डल्हण/विदेह |
|---------|----------|---------------|
| शोधन | शोधन | संज्ञाप्रबोधन |
| स्तम्भन | स्तम्भन | स्तम्भन |
| | शमन | |

योग्य (Indications): (सू.चि 40/44)

- | | | | | | |
|----|----------------------------|----|-----------------------|----|------------|
| 1 | अभिष्यन्न-कफादिव्याप्त शिर | 2 | सर्पदंशामुळे मूर्च्छा | 3 | क्षीण |
| 4 | रक्तपित्त (Epistaxis) | 5 | कृश | 6 | दुर्बल |
| 7 | भीरु (घाबरट) | 8 | सुकुमार | 9 | अपस्मार |
| 10 | मानसरोग | 11 | मद | 12 | स्थावर विष |
| 13 | अपतन्त्रक | 14 | चिंतायुक्त | 15 | भययुक्त |
| 16 | क्रोध युक्त | 17 | संज्ञानाशः | | |

योग -

- 1 पिप्पल्यादि, विडंगादि कल्क - शोधनासाठी
- 2 शर्करा, सुस्त, घृत, क्षीर, मधु, दूर्वास्वरस-उर्ध्वरक्तपित्तामध्ये स्तम्भन करण्यासाठी
- 3 मांसरस, कल्क-क्षीण, कृश दुर्बलासाठी
- 4 संज्ञानाश झाल्यास संज्ञाप्रबोधन नस्य द्यावे. हे शोधन प्रकारचे नस्य आहे.
- 5 हिंगु, व्योष, वत्सक नासास्त्रावासाठी

मात्रा - (डल्हण सु.चि 40/44-45)

हिन मात्रा - 4 बिंदू

मध्यम मात्रा - 6 बिंदू

उत्तम मात्रा - 8 बिंदू

III. ध्मापन नस्य किंवा प्रधमन नस्य

प्रधमनमिति नासायां चूर्णप्रक्षेपणं ज्ञेयम्। डल्हण सु.उ. 54/35 वर

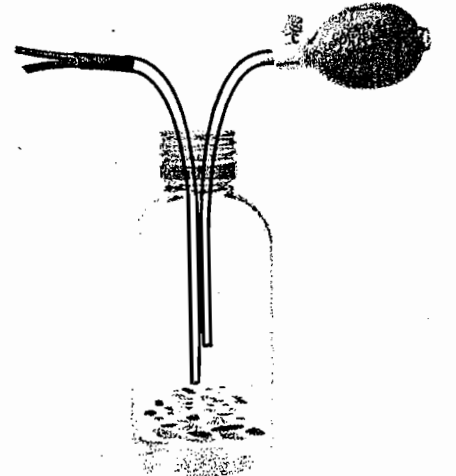
चूर्णासि नाडीद्वारे नासामध्ये क्षेपण करण्याची (फुंकर घालून नस्य देण्याची) क्रिया प्रधमन नस्य होय. प्रधमन नस्य शोधनप्रकारचे नस्य आहे.

विधी - द्विमुख असलेल्या नाडी मध्ये चूर्ण भरून त्यास नासामध्ये फुंकर घालून नस्य दिले जाते. काळानुसार यंत्रातही बदल झालेले आहेत. मुखाने फुंकर घालण्याऐवजी पम्प दाबल्याने तेवढ्याच गतीने चूर्ण नासात जाऊन प्रधमन नस्य केले जाते.

द्विमुखी नाडीची लांबी 6 अंगुल (9 सेमी)

मात्रा - 3 मुच्युटी (चिमूट)

विदेहानुसार - 2 तोळे (20 ग्रॅम) नस्य द्रव्य एका पातळ कापडी



पोटलीमध्ये बांधून पोटलीस नासा जवळ घेऊन जोराने नाकाने श्वास घ्यावे व ग्रहण करणे. यामध्ये पहिल्या विधीपेक्षा व्यापदाचे भय कमी असते.

योग - लवण, मरिच, विडंग, वचा, कटफल

योग्य (Indications):

चेतो विकारकृमि विषाभिपन्नानां चूर्ण प्रथमेत्।।

सू.चि. 40/46

अत्यन्त उत्कट दोषेषु विसंज्ञषुच दीयते

चूर्ण प्रथमं धीरेस्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः।।

शा.उ.खं. 8/17

- 1 मनोविकार (Psychosomatic)
- 2 कृमी (Worms)
- 3 विषाक्तता (सर्पदंशादि) (Snake bite)
- 4 दोषोत्कलेश
- 5 विसंज्ञता (Unconscious)
- 6 उदावर्त
- 7 शिरोरोग (कफप्रधान) (कटफल)

IV. धूमनस्य

तेन प्रायोगिक स्नैहिक वैरेचनिक धूमानां नासादीयमानानामिह ग्रहणं,

मुखपेयस्तु धूमो न नस्यम

च.पा. (च.सि. 9/91)

औषधी द्रव्यांचे धूम नाकाद्वारे ग्रहण करण्याची क्रिया धूम नस्य होय. जर धूम मुखाद्वारे ग्रहण केल्यास त्यास नस्य म्हणू नये. वाग्भटांनी धूमपान विधी वर्णन करतांना शिरोगत दोष उक्लिष्ट झालेले नसल्यास दोष उत्कलिष्ट करण्यासाठी मुखाद्वारे धूम ग्रहण करण्यास सांगितले आहे. धूम नस्य नासाद्वारे ग्रहण करून मुखाद्वारे सोडावे. मुखाद्वारे ग्रहण करून नासाद्वारे धूम सोडल्यास नेत्र विकार उत्पन्न होतात.

प्रकार - धूमनस्याचे 3 प्रकार आहेत

1. प्रायोगिक - नित्य ग्रहण करण्यासारखे धूम,
स्वस्थवृत्ताचे आचरण म्हणून रोज, ग्रहण करता येत
2. स्नैहिक - स्निग्ध व मधूर द्रव्यांचा उपयोग करून नस्य दिले जाते.
विशेषतः वात प्राधान्यामध्ये
3. वैरेचनिक - कफप्राधान्य दोषामध्ये तीक्ष्ण द्रव्यांचा धूम नस्य केले जाते,
हे शोधन प्रकारचे धूम नस्य आहे.

औषधी द्रव्य व यंत्र - धूम नस्याचे प्रकार त्यांच्या गुणांवर आधारीत आहे त्यामुळे गुणानुसार द्रव्यांची निवड करावी तसेच धूमनस्यासाठी चरकांनी धूमनेत्र (धूमपान नलिका) वर्णन केलेली आहे. प्रकारानुसार त्यांची लांबी बदलण्यास सांगितली आहे.

| अ.क्र | प्रकार | औषधी द्रव्य | धूम लांबी | मात्रा |
|-------|---------------------------|---|---|-------------|
| 1 | प्रायोगिक | हरेणू, प्रियंगु, केशर, चंदन, उशीर जटाभांसी मधुक, लोध्र, सर्जरस | लांबी - 24 अंगुल (36 सेमी) व्यास - करनिष्का (1 सेमी) | 2 वेळा |
| 2 | स्नेहिक | वसा, घृत, जीवनीय गणातील द्रव्यांची वर्ती तयार करुन | लांबी - 36 अंगुल (54 सेमी) | 1 वेळा |
| 3 | वैरेचनिक (मूर्धविरेचन) | श्वेत अपराजिता, अगरु पत्र, ज्योतिष्मती, हरताल, मनःशिला एलादि, तगर, कुष्ठ वर्ज्य | लांबी - 32 अंगुल (48 सेमी) | 3-4 वेळा |

धूमपान योग्य (Indications):

धूमयोग्यः पिबेद्योषे शिरोघ्राणाक्षिसंश्रिये।

च.सू. 5/46

- 1) शिरोरोग
- 2) नासागत दोष
- 3) नेत्रसंश्रयीत दोष

प्रतिमर्श नस्य व मर्श नस्य

प्रतिमर्शनस्यः

प्रतिमर्शस्तु नस्यार्थं करोति न च दोषवान।

च.सि. 9/116

अयं प्रतिमर्शः स्वल्प स्नेह प्रमाणोऽनुच्छिद्घ्नश्च सर्वकालिको ज्ञेयः।

च.पा. (च.सि 9/16-17)

प्रतिमर्श नस्य स्नेहाद्वारे अल्प मात्रेत दिला जाणारा नस्य प्रकार असून यामुळे दोष उत्पन्न होत नाही. हा नस्यप्रकार सर्वकाळ देय आहे.

प्रतिमर्श नस्याचे वैशिष्ट्ये:

1. व्याधीची वृद्धी होत नाही
2. दाढ्यकृत (शरीर दृढ करणारे कार्य)
3. सर्व ऋतुमध्ये देणे योग्य
4. कोणत्याही वयाच्या रुग्णांना देता येते.
5. दुर्बल, क्षीण, क्षत यामध्येही देता येते
6. व्यापद संभावना नसते
7. रोज दिल्याने मर्शासारखे कार्य
8. यास खास यंत्रणेची गरज नाही
9. इंद्रिय बल वाढवते.

विधी - स्नेहामध्ये तर्जनी 2 पर्वा पर्यंत बुडवून स्नेह बिंदू नासापूटामध्ये पडू द्यावे, रुग्णाने ते बिंदू नासाद्वारे आतमध्ये ओढून घ्यावे. स्नेहाची मात्रा इतकी असावी की स्नेह नासामधून कंठापर्यंत पोहचण्यास हवा मात्र गलभागी त्यामुळे स्त्राव होऊ नये. (च.पा).

मात्रा - 2 बिंदू (अंगुली 2 पर्वापर्यंत बुडवून जेवढी मात्रा पडेल ती मात्रा = 1 बिंदू)

काल - प्रतिदिन सकाळी व सायंकाळी

द्रव्य - तैलमेव च नस्यार्थे नित्याभ्यासेन शस्यते

शिरः श्लेष्मधामत्वात् स्नेहा स्वस्थस्य नेतरे।।

अ.ह.सू. 20/33

स्वस्थ व्यक्तीमध्ये नियमित नस्यासाठी केवळ तैलच वापरावे. याशिवाय दुसरे स्नेह वापरू नये कारण शिर हे श्लेष्मा स्थान आहे. तैल श्लेष्मास्थान विरोधी स्नेह आहे.

प्रतिमर्श नस्य देण्याचा काळ - (सु.चि 40/51-52, अ.ह.सू. 20/28, शा.उ.खं 8/41-45)

| अ.क्र. | प्रतिमर्श काळ | कारण व लाभ |
|--------|--|---|
| 1 | तल्पोत्थित काल (सकाळी झोपेतून उठल्यानंतर) | रात्री कफ लिप्त झालेला काढण्यासाठी, मनप्रसन्न |
| 2 | प्रक्षालित दंतानंतर (दंतधावनानंतर) | दंतदृढ, मूख सुगंधीत |
| 3 | ग्रह निर्गच्छतां (घराबाहेर पडण्यापूर्वी) | नासा स्नेह लिप्त असल्याने धूळीमुळे नासास बाधा होत नाही Allergic reaction होत नाही |
| 4 | व्यायामानंतर | श्रम परिहार होतो |
| 5 | व्यवायानंतर | श्रम परिहार होतो |
| 6 | खूप चालल्यानंतर | श्रम परिहार होतो |
| 7 | मल विसर्जनानंतर | दृष्टीची गुरुता कमी होते |
| 8 | मूत्र विसर्जनानंतर | दृष्टीची गुरुता कमी होते |
| 9 | कवल नंतर | दृष्टी प्रसादनासाठी मदत |
| 10 | अंजन घेतल्यानंतर | दृष्टी प्रसादनासाठी मदत |
| 11 | भोजनानंतर | स्रोतोशुद्धी, शरीर लाघव |
| 12 | वमनानंतर | कंठगत कफ निस्सारणासाठी |
| 13 | दिवास्वापानंतर | शेष निद्रा घालवण्यासाठी, कफवृद्धीमुळे झालेली गौरवता नष्ट होते, एकाग्र चित्त होते |
| 14 | सायंकाळी/रात्री (वाग्भट) | सुख निद्रा, प्रातः निद्रेतून लवकर उठण्यासाठी |
| 15 | शिरोभ्यंगानंतर (वाग्भट) | कफ निस्सारणसाठी |
| 16 | हास्यानंतर (सतत हसल्यानंतर)(वाग्भट) | वायू शमनासाठी |

प्रतिमर्श योग्य (Indications):

प्रतिमर्शः क्षतक्षामबालवृद्ध सुखात्मसु प्रयोऽयोऽकालवर्षेऽपि... अ.ह.सू. 20/26

क्षीणे तृष्णास्य सीर्षर्ति बाले वृद्धे च युज्यते

प्रतिमर्शेन श्याम्यान्ति रोगाश्चैव उर्ध्वजत्रूजाः।।

वलीपलितनाशश्च बलमिन्द्रियजं भवेत्।

शा.उ.खं. 8/45

- | | |
|------------------------------|--|
| 1 क्षतक्षाम (Weak by trauma) | 2 बाल (Child) |
| 3 वृद्ध (Aged) | 4 सुखात्मसु (Lead luxurious life) |
| 5 क्षीण/दुर्बल (Weak) | 6 उर्ध्वजत्रुगत रोग (Diseases relate to ENT) |
| 7 वलीत (Wrinkles) | 8 पलीत (Greying of hair) |
| 9 तृष्णा (Thirsty) | 10 आस्यशोष (Dryness of mouth) |

अयोग्य (Contra indications):

..... न त्विष्टो दुष्ट पीनसे।

मद्यपीतेऽबल श्रोत्रे कृमिदूषितमूर्द्धनि।

उत्कृष्टोत्किलष्ट दोषे च हीन मात्र तथा हि सः।।

अ.ह.सू. 20/26-27

- | | |
|---------------------------------|---|
| 1 दुष्ट पीनस (Chronic chinitis) | 2 मद्यपीत (Alcoholic) |
| 3 बाधीर्य (Deafness) | 4 कृमीज शिरोरोग (Ulcers or infestation of head) |
| 5 बहुदोष अथवा उत्किलष्ट दोष | |

वरील सर्व अवस्थांमध्ये दोष अधिक उत्किलष्ट असतात. प्रतिमर्श नस्याची मात्रा अल्प असल्याने दोष निर्हरण होत नाही म्हणून वरील अवस्थामध्ये प्रतिमर्श नस्य देऊ नये.

मर्श नस्य

मर्श नस्य हे प्रतिमर्श नस्यासारखेच असून केवळ मात्रेचा फरक आहे. मर्श नस्याची मात्रा प्रतिमर्श नस्यापेक्षा अधिक आहे. मर्श नस्यामध्ये व्यापद होण्याची संभावना आहे परंतु मर्श नस्य प्रतिमर्श नस्यापेक्षा तीव्र गुणकारी आहे. ज्याप्रकारे अच्छपान करणे व विचारणा सह स्नेहपान करणे, कुटिप्रावेशिक रसायनाचे गुणधर्म व वातातपिक रसायनांचे गुणधर्म तसेच अनुवासन बस्ति व मात्राबस्तिचे गुण यामधील जो फरक आहे तोच फरक मर्श व प्रतिमर्श नस्यांमध्ये आहे. अल्पमात्रेतील नस्याने अर्थातच गुण उशीरा मिळतील व कमी काळापर्यंत टिकतील.

योग्य -1) बहुदोष, 2) गंभीर व्याधी, 3) चिरकाली व्याधी, 4) उत्कलीष्ट दोष

मात्रा - अल्पमात्रा - 8 बिंदू - प्रती नासापूट
मध्यमात्रा - 16 बिंदू - प्रती नासापूट
उत्तमात्रा - 32 बिंदू - प्रती नासापूट

काल - दिवसातून एकदा

कार्मुकतेनुसार प्रकार (According to Action)

विरेचनं बृंहणं च शमनं च त्रिधाऽपि तत्। अ.ह.सू. 20/1

I. विरेचन नस्य - विरेचन नस्य उर्ध्वजत्रुगत बहूदोष वा उत्कल्लष्ट दोषांना बाहेर काढण्यासाठी दिले जाते. प्राधान्याने कफ प्रधान व्याधीमध्ये दिले जाते. व्याधीच्या काही अवस्थांमध्ये विरेचन नस्य देऊन बृंहण व शमन नस्य दिले जाते.

विरेचन वा रेचन नस्यासाठी शिरोविरेचन द्रव्यांनी सिद्ध स्नेह, क्वाथ, चूर्ण कल्क वा स्वरस यांचा उपयोग केला जातो. या व्यतिरिक्त सुश्रुतांनी मद्य, सैधव, मधु, आसव मूत्र यांचा ही वापर सांगितला आहे. (सु.सू. 23/5)

रेचक नस्याच्या शेवटी दोषांचा विचार करून स्नेह नस्य द्यावे. (अ.ह.सू. 20/21)

विरेचन नस्यार्ह (Indications):

विरेचनं शिरः शूल जाड्यस्यन्द गलामये।

शोफ गण्ड कुमिग्रन्थिकुष्ठापस्मार पीनसे।

अ.ह.सू. 20/2

- | | |
|---|--|
| 1. शिरःशूल (Headache) | 2. शिरोजाड्य (Feeling of dullness of head) |
| 3. स्यन्द (Conjunctivitis) | 4. गलामय (Diseases of throat) |
| 5. शोफ (उर्ध्वजत्रुगत)(Oedema)- e.g. Hydrocephalus | 6. गंड (Goitre) |
| 7. ग्रंथी (Glandular swelling, benign tumors) | 8. कुष्ठ (Skin diseases) |
| 9. अपस्मार (Epilepsy) | 10. पीनस (Rhinnorrhea) |
| 11. मुर्च्छा (Syncope) | 12. Acute sinusitis, nasal polyp |
| 13. *Myasthenia gravis (first phase) | 14. गंध नाश (Anosmia) |

(*Vasudevan M R et al)

द्रव्य - सिद्ध स्नेह - 1) शिरोविरेचन द्रव्य सिद्ध स्नेह, 2) षडबिंदू तैल

क्वाथ - 1) शिरोविरेचन गण - क्वाथ

चूर्ण - 1) त्रिकूट, 2) वचा, 3) कट्फल, 4) रास्नादि

स्वरस - 1) ताम्बूल पत्र स्वरस, 2) तूलसीपत्र स्वरस, 3) द्रोणपुष्पी स्वरस

II. बृंहण नस्य/तर्पण नस्य

बृंहण नस्यास चरकांनी तर्पण नस्य म्हटले आहे. वातप्राधान्य पित्तज वा क्षयज अवस्थांमध्ये बृंहण नस्य दिले जाते. बृंहण नस्य मांसरस, रक्त, खपूर (मोचरसादि निर्यास), दुग्ध, घृत यांनी केले जाते.

बृंहण नस्यार्ह (Indications):

बृंहणं वातजे शूले सुर्यावर्त स्वरक्षये।

नास्यास्य शोषे वाक्सङ्गे कृच्छ्रबोधेऽवबाहुके।। अ.ह.सू. 20/3

- | | |
|---|--|
| 1. वातज शिरःशूल (Tension headache) | 2. सुर्यावर्त (Frontal sinusitis) |
| 3. स्वरक्षय (Aphasia aponia) | 4. नासाशोष (Dryness of nose) |
| 5. वाक्संत्र (Difficulty in speaking, dysarthria) | 6. कृच्छ्रबोध (Difficulty in opening eye lids-blepherospasm, ptosis) |
| 7. अवबाहुक (Cercical spondylosis, periarthritis, frozen shoulder) | 8. निद्राबोध (Insomnia) |
| 9. Cerebral ataxia | 10. Macular degeneration |
| 11. अर्धविभेदक (Trigeminal neuralgia) | 12. वेपथू (Parkinsons, chorea) |
| 13. अर्दित (Facial palsy) | 14. Cerebral atrophy |

द्रव्य - तैल - 1) क्षीरबला तैल, 2) धान्वन्तरम् तैल

घृत - 1) महास्नेह, 2) बलादिघृत, 3) ब्राह्मीघृत

III. शमन नस्य :

उर्ध्वजत्रुगत दोषांचे शमन करण्यासाठी शमन नस्याचा उपयोग करतात. चरक व वाग्भटांनी शमन नस्याचे वर्णन केले आहे. शमन नस्य पित्त व पित्त-वातज अवस्थांमध्ये अधिक उपयोगी आहे. शमन नस्यासाठी सिद्ध तेल, घृत, दुग्ध वा जल सुद्धा वापरले जाते. अणू तैल शमन नस्यामध्ये सर्वश्रेष्ठ स्नेह आहे.

शमनं नीलिकाव्यङ्गकेशदोषक्षिराजिषु।

अ.ह.सू. 20/4

1. नीलिका (Localised hyperpigmentation)
2. केशदोष (Alopecia, graying of hairs, hair loss)
3. व्यंग (Extensive hyper pigmentation on face)
4. अक्षिराजी (Pannus)
5. रक्तपित्त (Hemorrhagic disease, epistaxis)
6. CVA

द्रव्य-अणूतैल

काल व मात्रा विचार

काल - आचार्यानी ऋतुनुसार व दोषांच्या प्राधान्यानुसार नस्याचे काळ वर्णन केलेले आहेत. ऋतुनुसार काल हा स्वस्थ व्यक्तीसाठी आहे. दोषांच्या अवस्थेनुसार व व्याधीच्या तीव्रतेनुसार या कोणत्याही काळात कृत्रिम वातावरणात नस्य केले जावू शकते.

ऋतुनुसार :

| | | |
|------------|---|----------------------------------|
| शरद व वसंत | - | प्रातः |
| शीतकाल | - | मध्यान्ह |
| ग्रीष्म | - | सायंकाळ |
| वर्षा | - | सूर्यप्रकाश असेल तेव्हा (सा-तपे) |

दोषानुसार :

- | | | |
|---------------|---|-----------------|
| कफज व्याधी | - | प्रातः |
| पित्तज व्याधी | - | मध्यान्ह |
| वातज व्याधी | - | सायंकाळ व रात्र |
- वातज शिरोरोग, हिक्का, अपतानक, मन्यास्तम्भ व स्वरभ्रंश व्याधीमध्ये रोज प्रातः व सायंकाळी नस्य द्यावे (अ.ह.सू. 20/15)
 - लालास्राव, सूप्ती, प्रलाप, अर्दित, कर्णनाद, तृष्णा, पूतिमुख या व्याधीमध्ये रात्री नस्य द्यावे.
- (शा.उ.खं. 8)

कालावधी (Durations):

सुश्रुतमतानुसार-

एकान्तरं द्व्यन्तरं वा सप्ताहं वा पुनः पुनः।

एक विंशतिरात्रं वा यावद्वा साधु मन्यते।।

सू.चि 40/42

एक किंवा दोन दिवसांच्या अंतराने दोषांची अवस्था बघून एक, दोन, सात दिवस किंवा 21 दिवस नस्य देता येते.

वाग्भटानुसार-

3, 5, 7 आणि 8 दिवस किंवा नस्याची सम्यक लक्षणे दिसेपर्यंत.

वातज शिरोरोग, हिध्म (hiccup), आयाम (tetany), अपतानक (episthotonos), मन्यास्तम्भ (neck stiffness-excluding meningitis), स्वर विभ्रंश (hoarsness of voice) यामध्ये रोज प्रातः व सायंकाळी नस्य करावे. इतर व्याधीमध्ये एक दिवसाआड 7 दिवस नस्य करावे.

भोजानुसार- अधिकाधिक 9 दिवस नस्य करावे.

मात्रा - नस्याची मात्रा ठरविणे हा सध्या शोधाचा विषय आहे. प्रत्येक आचार्यांच्या मते नस्याची मात्रा भिन्न-भिन्न वर्णीली आहे. चिकित्सकांनी आजच्या काळानुरूप, रुग्ण सहन करेल अशी मात्रा ठरवावी. नस्याची मात्रा 'बिंदू' मध्ये वर्णीली आहे. काही संस्थांनी यावर संशोधन करून 'बिंदू' चे आजच्या काळातील मान ठरविले आहे व त्यानुसार नस्य मात्रेचा प्रयोग केला जातो.

1 शाण = 4 मिली,

8 बिंदू = 1 शाण = 4 मिली,

1 बिंदू = 0.5 मिली = 10 थेंब (drops).

वैद्य बारापात्रे (एमडी-प्रबंध)

बिंदू - प्रदेशिन्यंगुलीपर्वद्वयान्मग्नसमुद्धृतात्। यावत् पतत्यसौ बिन्दुः..... अ.ह.सू. 20/9-10

तर्जनी अंगुली दोन पर्वापर्यंत द्रवामध्ये बुडवून अंगुली बाहेर काढल्यानंतर त्यातून पडणारी जेवढी मात्रा असेल ती सर्व मिळून एक 'बिंदू' एवढी मात्रा असावी. अर्थात दोन पर्वापर्यंत बुडवून मिळालेली मात्रा निश्चितच आपण समजत असलेल्या थेंबापेक्षा अधिक असेल म्हणून वरील मात्रा (1 बिंदू - 0.5 मिली) समजण्यास वाव आहे. त्यामुळेच आचार्यांनी सर्वसामान्य व्याधीमध्ये रोज नस्य न देता एकांतर किंवा दोन दिवसानंतर नस्य देण्यास सांगितले आहे. Nasal cavity मध्ये 15 मिली द्रव्याची क्षमता आहे त्यामुळे अधिक मात्रा ही विभागून दिली जावी.

| अ.क्र. | नस्य प्रकार | बिंदू प्रति नासापूट | | |
|--------|---------------------|----------------------------|--------------|--------------|
| | | ह्रस्व मात्रा | मध्यम मात्रा | उत्तम मात्रा |
| 1 | स्नेहन नस्य | 8 | 16 | 32 |
| 2 | शोधन नस्य | 4 | 6 | 8 |
| 3 | मर्श नस्य | 6 | 8 | 10 |
| 4 | प्रतिमर्श नस्य | 2 | 2 | 2 |
| 5 | अवपीड नस्य | 4 | 6 | 8 |
| 6 | प्रधमन नस्य (विदेह) | 3 म्यूच्यूटी - 300 मिग्रॅ. | | |

शाड्गधरानुसार नस्य मात्रा :

शाड्गधरांनी द्रव्यानुसार मात्रा वर्णीली आहे

तीक्ष्ण औषधी - 1 शाण

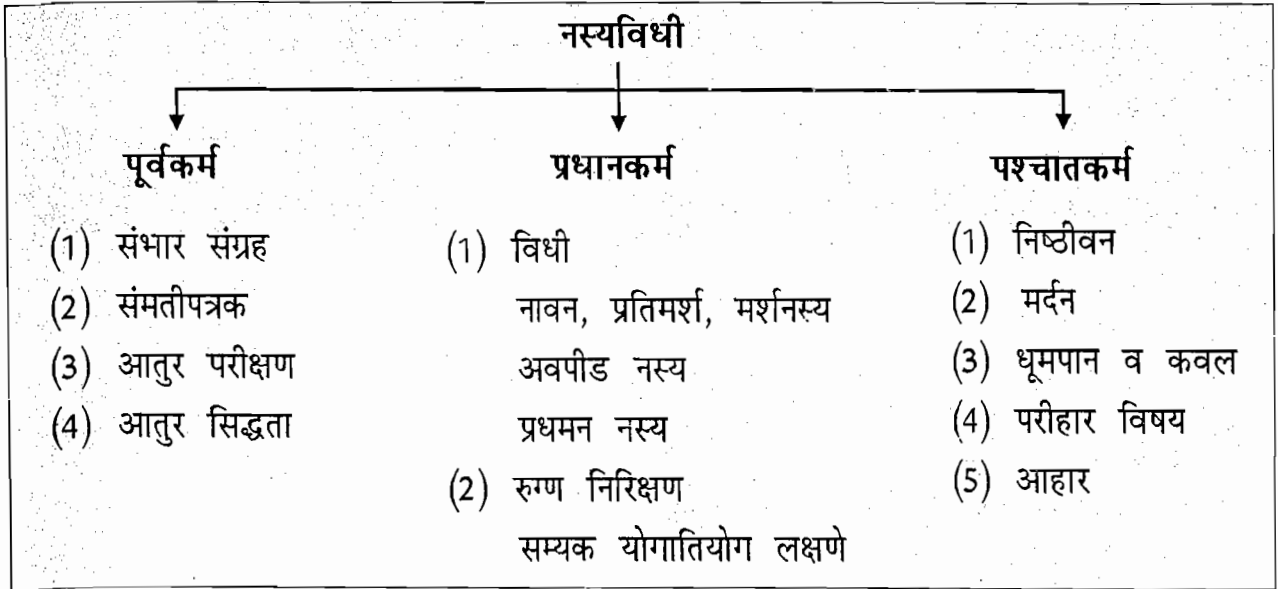
चूर्ण - 4 ग्रॅम

द्रव - 4 मिली

| | | | | |
|-----------------|---|------------------|---|------------|
| हिंगु | - | 1 यव (1/2 रत्ती) | - | 63 मिग्रॅ. |
| सैधव | - | 1 माशा (6 रत्ती) | - | 12 ग्रॅम |
| दुग्ध | - | 8 शाण (64 बिंदू) | - | 32 मिली |
| जल (औषधी सिद्ध) | - | 3 कर्ष | - | 30 मिली |
| मधुर द्रव्य | - | 1 कर्ष | - | 10 मिली |

नस्यविधि :

सामान्यतः नस्य विधी तीन प्रकारामध्ये विभागली गेली आहे. 1) पूर्वकर्म, 2) प्रधानकर्म, 3) पश्चातकर्म व्याधी, दोष, प्रकृती इ. चा विचार करुन नस्याचा कोणता प्रकार करावयाचा आहे याची निश्चिती करुन घ्यावी.



पूर्वकर्म

1. **संभारसंग्रह** : नस्यासाठी आवश्यक यंत्र, द्रव्य तसेच संभावित व्यापद लक्षात घेऊन त्यासाठी लागणारी औषधी आधीच तयार ठेवावीत.
 - 1) नस्य टेबल किंवा नस्य खूर्ची,
 - 2) गॅस,
 - 3) पातेले, वाटी,
 - 4) dropper, cotton, गोकर्ण (नस्ययंत्र)/ध्मापनयंत्र,
 - 5) टॉवेल पुसण्यासाठी व स्वेदनासाठी,
 - 6) स्नेह-अभ्यंगासाठी - 100 मिली

- 7) नस्य द्रव्य आवश्यकतेनुसार,
 - 8) धूमनेत्र,
 - 9) निष्ठीवन पात्र (spittoon).
2. **संमतीपत्रक (Consent form):** रुग्णास समजेल अशा भाषेत असलेल्या संमती पत्रकावर रुग्णाची स्वाक्षरी वा अंगठ्याचे ठसे घ्यावे. रुग्णास नस्य क्रिया व त्यापासून होणारे संभावीत लाभ व व्यापद याची माहिती द्यावी.
 3. **आतुर परीक्षण :** वय, बल पूर्ववृत्त नस्यार्ह, अनस्यार्ह इ. चे परीक्षण करावे.
इतर परीक्षण - BP, pulse, Eye tension etc,
CT-Scan, MRI (आवश्यकतेनुसार)
 4. **आतुर सिद्धता :** मल-मुत्र विसर्जन करण्यास सांगावे. रुग्णाने लघु आहार घेतलेला असावा. रिकाम्या पोटी मर्श नस्य निषेध आहे.
 5. **अभ्यंग-स्वेद :** रुग्णास उताणा (Supine) अवस्थेत टेबल वर झोपण्यास सांगून शिरोभाग, आस्यप्रदेश व ग्रीवा प्रदेशी कोष्ण तैलाने अभ्यंग करावे व त्यांनंतर मृदू स्वेद करावे. मृदू स्वेदासाठी उष्ण जलामध्ये टॉवेल बुडवून त्यास पिळून घ्यावे. त्यांनंतर टॉवेलमधून येणारे बाष्प व उष्ण टॉवेलने स्वेद करावे अन्यथा नाडीने मृदू स्वेद द्यावा.

आसन - नस्य टेबलावर रुग्णास शिरोभाग खाली येईल अशा पद्धतीने झोपवावे. डोकं 45° मध्ये खाली मागे झुकलेले राहिल याची काळजी घ्यावी. मानेखाली उशी ठेवूनही 45° मध्ये डोकं मागच्या बाजूस वाकवून नस्यासाठी योग्य आसन होते. पाय हलकेसे उन्नत असावे.

प्रधानकर्म

विधी - (Administration of Nasya)

- i) **नावन, प्रतिमर्श, मर्श नस्य :** वरीलप्रमाणे वर्णिलेल्या स्थितीत झोपवून रुग्णाच्या शिरोभागास उभे राहून उपचारकाने डाव्या अंगठ्याने नासाग्र वर करावे व डॉपरच्या सहाय्याने किंवा गोकर्णाच्या सहाय्याने योग्य मात्रेत एका नासापुटात स्नेह सोडावा. यावेळी दुसरा नासापुट अंगुलीने बंद करून रुग्णास खोल श्वास घेऊन औषधी आत ओढण्यास सांगावी. हीच क्रिया दुसऱ्या नासापुटात स्नेह सोडतांना करावी.
- ii) **अवपीड नस्य -** व्याधीनुसार योग्य कल्क एका कापडात घेवून त्यास पिळावे. त्यातून पडणाऱ्या बिंदू द्वारे वरील विधीनुसार नस्य करावे.
- iii) **प्रधमन नस्य -** एका बॉटल मध्ये आवश्यक मात्रेनुसार चूर्ण घ्यावे. या बॉटलच्या झाकणावर दोन छिद्र करून एका बाजूस द्विमुख नाडी बसवावी व दुसऱ्या बाजूस नाडीमध्ये bulb (BP apparatus

bulb) बसवावा द्विमुख नाडी रुग्णाच्या नासापुटामध्ये घालावी (नासापुटामधे फार आत जाणार नाही याची काळजी घ्यावी) व bulb जोराने दाबावा यामुळे बॉटलमधील चूर्ण नासामध्ये जाईल.

iv) धूमनस्य - धूमपाना सारखी विधी

रुग्ण निरिक्षण - रुग्णास 100 अंक मोजेपर्यंत त्याच स्थितीत ठेवून सम्यक योगाचे व व्यापदाचे निरिक्षण करावे.

सम्यक योग लक्षणे - (च.सि. 1/51, सु.चि. 40/32, 33, अ.ह.सू. 20/24)

1. उरःलघूता (Lightness of chest)
2. शिरोलाघव (Lightness of head)
3. चक्षु आदि इंद्रिय शुद्धता (Clarity of sense organs)
4. स्रोतोविशुद्धि (Clarity of channels)
5. सुखश्वास (Easy inspiration)
6. सुख स्वप्नप्रबोधन (Easy attainment of sleep & awakening)
7. विकारोपशम (Remission of the disease)
8. मनसुखम् (Feeling of happiness)

अयोग लक्षणे (च.सि. 1/51, सु.चि.40/35)

1. गलोपलेप (Coating of throat)
2. शिरोगौरव (Heaviness of head)
3. निष्ठीवन (Expectoration)
4. अक्षिस्तब्धता (Difficulty in eye movement)
5. नासाशोष (Dryness of nose)
6. मुखशोष (Dryness of mouth)
7. मूर्धशून्यता (Feeling of emptiness of head)
8. वातवैगुण्य
9. इंद्रियाणां च रुक्षता (Dryness of sense organs)
10. रोग अशांती

लक्षण व दोषांची अवस्था बघून अयोगामध्ये पुनः तीक्ष्ण शिरेविरेचन द्यावे (च.सि. 1/53)

अतियोग लक्षणे

1. शिरःशूल (Headache)
2. अक्षिशूल (Pain in eye)
3. शंखशूल (Pain in temporal region)
4. कण्डू (Itching)
5. शिरोगुरुता (Heaviness of head)
6. कफ प्रसेक (Excess salivation)
7. अरुचि (Anorexia)
8. पीनस (Rhinitis)
9. इंद्रिय विभ्रम (इंद्रियानी स्वतःचे कार्य योगा न करणे)
10. वातवृद्धी

पश्चातकर्म

1. **निष्ठीवन** - रुग्णास गलभागी आलेला स्राव निष्ठीवन पात्रात थुंकण्यास सांगावे. नस्य औषधी वा कफ रुग्णाने गिळू नये.
2. **मर्दन-स्वेद** - नस्य कर्मानंतर पादतल, स्कंध, हस्त, कर्ण, ग्रीवा, ललाट इ. भागाचे मर्दन करावे (अ.ह.सू. 20/20) आवश्यकतेनुसार मृदू स्वेद द्यावा.
3. **धूमपान व कवल** - नस्यानंतर औषधी द्रव्य युक्त धूमपान करावे त्यानंतर कोष्ण जलाने कवल करावा. यामुळे कंठशुद्धी होऊन सावशेष कफाचे निस्सारण होते.
4. **परिहार** - नस्यानंतर रुग्णाने खालील पथ्यापथ्याचे पालन करावे.
 - 1) निवांत स्थानी राहावे, एसी रुम टाळावी, रज, धूम, तीव्र प्रकाश टाळावा,
 - 2) स्नेह, मद्य, शीत अधिक द्रव द्रव्य घेऊ नये,
 - 3) प्रवास, क्रोध टाळावा,
 - 4) शीत स्नान, डोक्यासह स्नान करू नये.
5. **व्यापद व चिकित्सा** - व्यापद अयोगाने किंवा अतियोगामुळे होतात. व्यापद खालील प्रमुख कारणांमुळे होतात.
 - 1) **चिकित्सक**-चिकित्सकाने व्याधीचे व रुग्णाचे योग्य परीक्षण न केल्यामुळे अयोग्यामध्ये नस्य क्रिया केल्यास. मात्रांचे निर्धारण व्यवस्थित न केल्यास, चुकीच्या पद्धतीने नस्य केल्याने
 - 2) **औषध**-औषधांची गुणवत्ता योग्य नसल्यास,
 - 3) **रुग्ण** - परिहार विषय योग्य न पालन केल्यास,
 - 4) **परिचारक** - चिकित्सकांनी मार्गदर्शन केल्याप्रमाणे नस्य क्रिया न केल्यास

नस्य शिरोविरेक च व्यापदो द्विधाः स्मृताः।

दोषोत्कलेशात् क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम्॥ सु.चि 40/49

नस्य व्यापद दोन प्रकाराने होतात. स्नेहन नस्याने दोषोत्कलेश तर शिरोविरेचन नस्याने क्षय व्यापद उत्पन्न होतात. उत्कलेश अवस्थेमध्ये शोधन व शमन चिकित्सा करावी तर क्षयज व्यापदामध्ये बृंहण चिकित्सा करावी.

हीन वा अतिमात्रा, अतिशीत वा अतिउष्ण द्रव्य वापरल्यास किंवा नस्य देतांना शिर अधिक खाली

| अ.क्र. | व्यापद (च.सि 9/111-114) | लक्षण | चिकित्सा |
|--------|--|------------------------------------|---|
| 1 | अजीर्ण, भूक्तभक्त, चीततोय मधे नस्य दिल्यास | कफरोग, श्वास कास, पीनस अग्निमांद्य | कफनाशक उष्ण तीक्ष्ण औषधी त्रिभुवनकिर्ती, तुलसी व आर्द्रक स्वरस मधूसह, लक्ष्मीविलास रस |
| 2 | कृश, गर्भिणी, तृष्णार्तामधे नस्य दिल्यास | वातप्रकोप, शूल, अंगमर्द मुखशोष | बृंहण चिकित्सा-घृत, दुग्ध, अश्वगंधा शतावरी सिद्ध दुग्ध/घृत, अभ्यंग, स्वेद |
| 3 | ज्वर, मद्यपीत, शोकार्त यात नस्य दिल्यास | तिमीर रोग | रुक्ष, शीत, लेप, अंजन, पुटपाक |
| 4 | तीक्ष्ण औषधी, तीक्ष्ण नस्य | मूर्च्छा | कपाल व आस्यप्रदेशी शीतजलाने परिषेक Modern - Headlow position - Inj. Adrenalin, Dexa |

झुकवल्यास तृष्णा व उद्गार हे व्यापद उत्पन्न होतात. हे व्यापद दोषोत्कलेश तथा क्षयज कारणाने उत्पन्न होतात. चिकित्सा वरीलप्रमाणे करावी. (सु.चि. 40/48)

आहार- लघु आहार, शीत द्रव्य वर्ज्य

धूमपान

उर्ध्वजत्रुगत कफ व वात दोषांचा उत्कलेश झाल्यास धूमपान केले जाते. धूमपान ही केवळ व्याधीची चिकित्सा म्हणूनच नाही तर स्वस्थरक्षणार्थ दिनचर्येचा एक भाग म्हणूनही केली जावू शकते. वमनासारख्या शोधन क्रियेचे पश्चातकर्म म्हणून धूमपान केले जाते.

प्रकार -

स्निग्धो मध्यः स तीक्ष्णस्व वात वातकफे कफे योज्यो। अ.ह.सू. 21/2

- 1 स्निग्ध - वातदोष प्राधान्यासाठी
- 2 मध्य - वातकफ दोष प्राधान्यासाठी
- 3 तीक्ष्ण - कफ दोष प्राधान्यासाठी

स त्रिविधो भवति। शमनो बृंहणः शोधनश्च तथा कासघ्न वामनो व्रणधूपनश्च।

तत्र शमनः प्रायोगिको मध्यम इति पर्यायः। बृंहणः स्नेहनो मृदूरिति।

शोधनो विरेचन तीक्ष्ण इति च।

अ.सं.सू. 30/3

धूमः पञ्चविधो भवतिः तद्यथा- प्रायोगिकः स्नेहनो, विरेचनः कासघ्नो वामनीयश्चेति।

सु.चि.40/3

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहणस्तथा।

रेचना कासहाः चैव वामनो व्रणधूपनः॥शा.उ.खं.9

अष्टांग संग्रहकारांनी, आचार्य सुश्रुत, शाड्गर्धर यांनीही वरील प्रकारातच अंतर्भूत होतील अशा पद्धतीने धूमपानाचे प्रकार वर्णिले आहेत.

| ग्रंथ | प्रकार संख्या | धूमपान प्रकार |
|-------------------------------|---------------|---|
| अष्टांग संग्रह (सू. 30/3) | 3 | 1. शमन (प्रायोगिक / मध्यम), 2. बृंहण (स्नेहन/मृदू), 3. शोधन विरेचन/तीक्ष्ण) या व्यतिरिक्त i. कासघ्न, ii. वामक, iii. व्रणधूमपान |
| सुश्रुतसंहिता (चि. 40/3) | 5 | 1. प्रायोगिक, 2. स्नेहन, 3. वैरेचनिक, 4. कासघ्न, 5. वामनीय |
| शाड्गर्धर संहिता (उ.खं. 9) | 6 | 1. शमन (प्रायोगिक/मध्यम), 2. बृंहण (स्नेहीक/मृदू), 3. रेचन (शोधन/तीक्ष्ण), 4. कासघ्न, 5. वामक, 6. व्रणधूपन |

1. प्रायोगिक धूमपान - शमन प्रकारचे धूमपान असून मध्यम आहे. दोषांचे शमन करण्यासाठी प्रायोगिक धूमपान केले जाते. प्राधान्याने वात प्रधान व्याधींमध्ये उपयोगी खालील द्रव्याची वर्ती तयार करून धूमपान केले जाते.

द्रव्य - एलादि गण (कुष्ठ व तगर सोडून). कुष्ठ व तगर अधिक तीक्ष्ण असल्याने त्यांचा वापर केल्यास मस्तुलुंगाचे विलयन होते अर्थात अधिक तीक्ष्ण असल्याने यांचा वापर करू नये.

हरेणु, प्रियंगु, चंदन, उशीर

2. स्नेहिक धूमपान - बृंहण प्रकारचे धूमपान, मृदू आहे. वात प्राधान्य दोषांसाठी उपयुक्त यासाठी खालील द्रव्यांची वर्ती तयार केली जाते.

द्रव्य - एरण्ड बीज, देवदार, मोम (मेण), राळ, गुग्गुळ, वसा, घृत

3. वैरेचनिक धूमपान - तीक्ष्ण प्रकारचे धूमपान असून दोषांचे शोधन करण्यासाठी केले जाते म्हणून यास शोधन धूमपानही म्हणतात. कफ प्राधान्य दोषांसाठी प्रामुख्याने उपयोगी, यासाठी खालील तीक्ष्ण द्रव्यांची वर्ती तयार करून धूमपान केले जाते.

द्रव्य - विडंग, ज्योतिष्मती, मनःशील, हरताळ इ.

4. कासघ्न - 'कास' व्याधी दूर करण्यासाठी या धूमपानाचा उपयोग करतात.

द्रव्य - बृहती, कंटकारी, पिप्पली, शुण्ठी, मरिच, कासमर्द, हिंगु, मनःशिल, कर्कटश्रृंगी

5. वामनीय - वमन करण्यासाठी जे धूमपान केले जाते ते वामनीय धूमपान होय. यासाठी खालील

द्रव्यांची वर्ती तयार केली जाते.

द्रव्य - प्राण्यांचे स्नायु, चर्म, खूर, शिंग, शुष्क मासे, शुष्क मांस, गांडूळ इ. वा मदनफल.

धूमपान योग्य (Indications): (च.सू. 5/27-33, अ.ह.सू. 21/1, सू.चि 40/11)

धूमपान हे उर्ध्वजत्रुगत वात कफ दोषांसाठी निर्देशीत आहे 12 ते 80 वयोगटातील रुग्ण धूमपानास योग्य आहेत.

- | | |
|---|---|
| 1. शिरोगौरव (Heaviness of Head) | 2. शिरःशूल (Headache) |
| 3. पीनस (Chronic rhinitis) | 4. अर्धावभेदक (Migraine) |
| 5. कर्णशूल (Earache) | 6. अक्षिशूल (Painful eyes) |
| 7. कास (Cough) | 8. हिक्का (Hiccough) |
| 9. श्वास (Breathlessness) | 10. गलग्रह (Stiffness in throat) |
| 11. दंतचल (Lack of stability of teeth) | 12. लालास्राव (Excessive salivation) |
| 13. कर्णरोग (Diseases of ear) | 14. नेत्ररोग (Diseases of eye) |
| 15. नासारोग (Diseases of nose) | 16. पूतिनस्य (Chr. infection) |
| 17. मुख दौर्गध्य (Halitosis) | 18. दन्तशूल (Toothache) |
| 19. अरोचक (Tasteless mouth) | 20. हनुग्रह (Stiffness of mandible) |
| 21. मन्याग्रह (Stiffness of neck non meningeal involvement) | 22. कंडू (Itching) |
| 23. कृमी (Worm infestations) | 24. वैस्वर्य (Improper voice) |
| 25. गलशूण्डी (Infection in throat) | 26. उपजिह्वीका (Ranculla) |
| 27. खालित्य (Baldness) | 28. पिंजरीत्व (Premature graying of hair) |
| 29. केश पतन (Hair fall) | 30. क्षवथु (Sneezing) |
| 31. अतितंद्रा (Drowsiness) | 32. बुद्धिमोह (Confessional state) |
| 33. अतिनिद्रा (Excessive sleep) | |

धूमपान अयोग्य (Contra indications):

न पित्तरक्तार्ति..... पाण्डुरोगे जागरिते निशि। अ.ह.सू. 21/2-3

न विरिक्तः धूमविभ्रमात्। च.सू. 5/41-45

- | | |
|--------------------------|---------------------------------|
| 1. पित्त व रक्तज व्याधी | 2. विरिक्त (विरेचन कर्म झालेला) |
| 3. उदर (जलोदर) (Ascites) | 4. प्रमेह (Diabetes) |

- | | |
|---|---|
| 5. तिमिर (Defective vision, cataract) | 6. उद्गार (Belching) |
| 7. आध्मान (Distension of abdomen) | 8. रोहिणी (Severe throat infection, diphtheria) |
| 9. दत्तबस्ति (बस्ति दिले गेलेला) | 10. मत्स्य, मद्य, दुग्ध, दही, मधू, स्नेह, यवागू, विष, घेतलेला |
| 11. शिर आघात (Head injury) | 12. पाण्डू रोग (Anaemia) |
| 13. रात्रीजागरण करणारे, रात्री अभ्यास करणारे (Night duty) | 14. गर्भिणी (Pregnant woman) |
| 15. श्रमाक्लान्तः(Tired) | 16. मूर्च्छित (Unconsciousness) |
| 17. भ्रम (Giddiness, Menier's disease) | 18. तृषीत (Excessive thirst) |
| 19. क्षतक्षीण (Ulceration with in the chest) | 20. शंखक (Severe headache) |
| 21. भयभीत (Feared) | 22. अपतर्पीत (अपतर्पण चिकित्सा केलेला) |
| 23. बाल-वृद्ध | 24. दुर्बल (General disability) |
| 25. अल्पकफ असल्यास | |

धूमनेत्र -

बस्तिनेत्रसमद्रव्यं त्रिकोशं कारयेद्भुजु।

मूलाग्रेऽङ्गुष्ठ कोलास्थि प्रवेशं धूमनेत्रकम।

अ.ह.सू. 21/7

धूमनेत्र बस्तिनेत्रासाठी वापरण्यात येणाऱ्या धातूचे असावे त्यात तीन कप्पे असावे आणि नेत्र सरळ असावे. मूल भागाचे छिद्र अंगुष्ठ जाईल एवढे तर अग्रभागाचे छिद्र बोराचे बीज मावेल एवढे असावे. अशाप्रकारे धूमनेत्र तयार करण्याचे मुख्य कारण म्हणजे धूम सरळ गेल, नासा यातील Mucosa ला न लागता ते गाळून यावे आतील कप्प्यांमध्ये जड suspended particular Matter (SPM) खाली बसून राहावे व ते श्वसनामध्ये आत जाऊ नयेत.

लांबी : तीक्ष्ण धूमपानासाठी - 24 अंगुल (36 सेमी)

स्नेहन धूमपानासाठी - 32 अंगुल (48 सेमी)

मध्यम धूमपानासाठी - 40 अंगुल (60 सेमी)

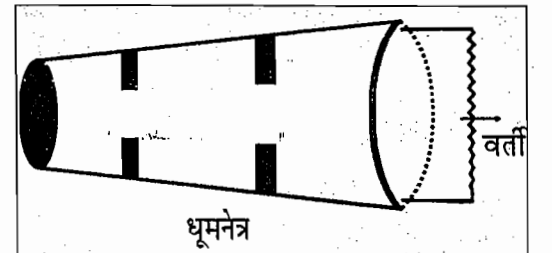
वामक धूमपानासाठी - 10 अंगुल (15 सेमी) - वाग्भट, शाड्गर्धर

16 अंगुल (24 सेमी) - सुश्रुत

व्रणधूपन - सुश्रुत/वाग्भट - 8 अंगुल 12 सेमी,

शाड्गर्धर - 10 अंगुल 15 सेमी

धूमयंत्र - सध्याच्या काळात 'हुक्का' सारखे यंत्र धूमपानासाठी वापरली जाऊ शकतात.



धूमपानासाठी द्रव्य

मृदुधूमपान

- | | |
|-------------------------------|--------------|
| 1. गुग्गुल | 2. मुस्ता |
| 3. स्थौण्य | 4. शैलेय |
| 5. नालदा | 6. उशीर |
| 7. वालक | 8. वरांग |
| 9. कौती | 10. मधूक |
| 11. बिल्वमज्जा | 12. एलावालुक |
| 13. श्रीवेष्टक | 14. सर्जरस |
| 15. ध्यामक | 16. मदनफळ |
| 17. प्लव | 18. सल्लकी |
| 19. कुंकुम | 20. माष |
| 21. कुदुरुक (शाल्मली निर्यास) | 22. तिळतैल |
| 23. बादाम, नारळ आदिचे स्नेह | 24. वसा |
| 25. मज्जा | 26. घृत |

शामनधूमपान द्रव्य -

- | | |
|------------------------|-----------------------------------|
| 1. शल्लकी | 2. लाक्षा |
| 3. पृथ्वीका | 4. कमल |
| 5. उत्पल | 6. न्यग्रोध |
| 7. उदुम्बर | 8. लोध्रत्वक |
| 9. सिता | 10. मधुयष्टी |
| 11. सुवर्णत्वक (बाहवा) | 12. पद्मक |
| 13. मंजिष्ठा | 14. गंधद्रव्य (कुष्ठ व तगर सोडून) |

तीक्ष्ण धूमपान द्रव्य -

- | | |
|----------------|-------------------------------------|
| 1. ज्योतिष्मती | 2. हरिद्रा |
| 3. दशमुल | 4. मनशील |
| 5. हरताल | 6. लाक्षा |
| 7. श्वेता | 8. तीक्ष्णगंधद्रव्य (विडंग, वचा इ.) |

धूमवर्ती - पद्धत 1 - बारा अंगुल (18 सेमी) लांब गवताची काडी (किंवा कोणत्याही वनस्पतीची काडी ज्यामध्ये पाण्यात बुडवल्यास फुगण्याची व वाळवल्यास संकूचीत होण्याचे गुण असेल 24 तास पाण्यात भिजत ठेवावी. नंतर वर सांगितलेले द्रव्यांचे चूर्ण करून पाच वेळा गवताच्या काडीवर लेप करावा. या वर्तीचा आकार यव धान्यासारखे मध्यभागी जाड असावा. ही जाडी अंगुष्ठा एवढी असावी.

नंतर यास छायाशुष्क करुन आतील गवताची काडी काढून घ्यावी. तयार झालेल्या वर्तीस घृतादि स्नेह लावून धूमनेत्रामध्ये घालून धूमनन करावे.

पद्धत 2 - 100 ग्रॅम आवश्यक धूमपान द्रव्यांचे चूर्ण घेवून त्यात आवश्यकतेनुसार लेप तयार होईल एवढे जल घालावे त्यानंतर 24×24 सेमी आकाराचा कापड घेऊन त्यावर औषधांचा लेप लावावा व कापडाची गुंडाळी (वर्ती) करावी. यास छायाशुष्क करुन आवश्यकतेनुसार लांब वर्तीचे तुकडे करुन ठेवावे व धूमनेत्राद्वारे धूमपान करावे.

योग्य धूमपान काल

| अ. | धूमप्रकार | चरक (8 काळ) | सुश्रुत (12 काळ) | वाग्भट (16 काळ) |
|----|-----------------------|--|--|--|
| 1 | प्रायोगिक (शमन) | 1. स्नानोत्तर 2. भोजनोत्तर 3. वमनोत्तर 4. क्षवथूत्तर (शिकेनंतर) 5. दंतधावनानंतर 6. नस्यानंतर 7. अंजनोत्तर 8. झोपेतून उठल्यानंतर | 1. दंतधावनानंतर 2. नस्यानंतर 3. भोजनोत्तर 4. शस्त्रकर्मानंतर | 1. जृंभानंतर 2. क्षुधोत्तर 3. मल त्यागानंतर 4. मूत्र त्यागानंतर 5. मैथूनोत्तर 6. शस्त्रकर्मानंतर 7. हास्यानंतर 8. दंतधावनानंतर 9. रात्री 10. भोजनोत्तर 11. नस्यानंतर |
| 2 | स्नेहिक (मृदु) | वातवृद्धीकाळात (च.पा.) | 5. मल-मूत्र वेगानंतर 6. क्षवथूनंतर 7. हसल्यानंतर 8. क्रोधानंतर 9. मैथूनोत्तर | वरील 1 ते 8 काल |
| 3 | वैरेचनीक (तीक्ष्ण) | कफवृद्धीकाळात (च.पा.) | 10. स्नानोत्तर 11. वमनोत्तर 12. दिवास्वापानंतर | 12. निद्रानंतर 13 नस्यानंतर (कफवृद्धी असल्यास) 14. अंजनानंतर 15. स्नानानंतर 16. वमनोत्तर |

धूमपान विधी :

संभारसंग्रह-

1. धूमयंत्र
2. धूमनेत्र
3. धूमवर्ती (दोषांनुसार)
4. घृत
5. कार्पास (cotton)
6. निष्ठीवन पात्र (spittoon)

पूर्वकर्म

- 1) रुग्ण परीक्षण - रुग्णाचे वय, बल, दोषावस्था यांचे परीक्षण करावे. उर्ध्वजत्रुगत परीक्षण करावे. शक्य असल्यास intraocular pressure इ. ची तपासणी करावी.
- 2) रुग्ण आसन - मल-मूत्र विसर्जन झाल्यानंतर योग्य काळात रुग्णास जानुसंधी एवढ्या उंचीच्या खुर्चीवर आरामदेह बसण्यास सांगावे.

प्रधानकर्म

रुग्णास खुर्चीवर सरळ बसवल्यानंतर वर्तीस घृत लावावे व धूमनेत्रामध्ये ठेवावी. धूमवर्तीस पेटवून ज्योत बंद करावी. वर्ती लाल होऊन धूम तयार होऊ लागल्यास धूमनेत्राच्या दुसऱ्या बाजूने एकेक नासापुटाने मुख उघडे ठेवून धूर ओढावा. धूर नेहमी मुखाद्वारे सोडावा नासाद्वारे धूर सोडल्यास नेत्रविकार उत्पन्न होतात.

प्राक् पिबेन्नासयोत्किलष्टे दोषे घ्राणशिरोगते।

उत्कलेशानार्थं वक्त्रेण विपरीतं तु कण्ठगे।।

अ.ह.सू. 21/10

- | | |
|-----------------------------------|--|
| नासा-शिरोगत दोष उत्कलेशीत असल्यास | - प्रथम मुखाद्वारे धूमपान, |
| कण्ठगत दोष उत्कलेशीत करण्यासाठी | - प्रथम नासाद्वारे, |
| प्रायोगिक व वैरेचनीक धूमपान | - नासाद्वारे (उरः व कंठ गत व्याधी असल्यास मुखाद्वारे, कर्ण, नेत्र, शिरोगत असल्यास नासाद्वारे), |
| स्नेहिक धूमपान | - मुखाद्वारे, नासाद्वारे, |
| कासघ्न व वामनीय धूमपान | - मुखाद्वारे. |

मात्रा - 3 वेळा धूमपान

(एक धूमपान - तीनदा धूर घेऊन तीनदा सोडल्यास),

मृदूधूमपान - 1 वेळा अथवा अश्रु दिसपर्यंत,

मध्यम धूमपान - 2 वेळा,

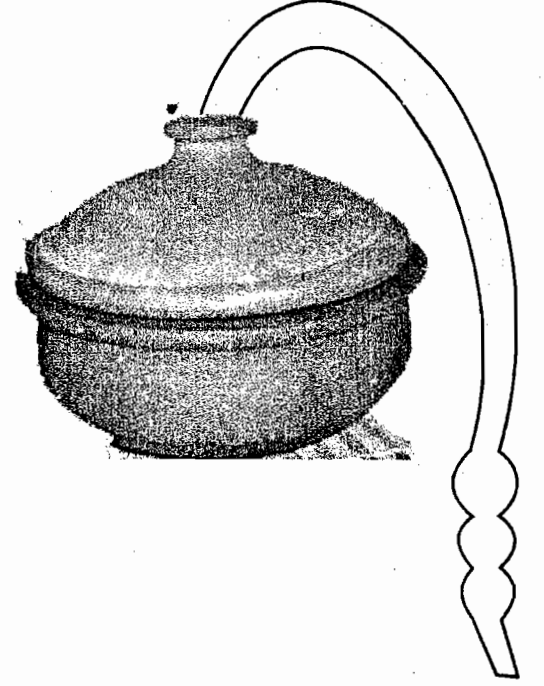
तीक्ष्ण धूमपान - 3-4 वेळा अथवा दोष निर्हरणापर्यंत

कासघ्न धूमपान - एका छिद्र असलेल्या शराव सम्पूटामध्ये निर्धूम निखारे, (शक्यतोवर खैर किंवा

बोरीच्या लाकडाचे) घेऊन त्यावर कासघ्न धूमद्रव्याचे स्नेहयुक्त चूर्ण किंवा त्याची वर्ती ठेवावी. वरील छिद्रयुक्त शरावामधून 10 अंगुल (15-20 सेमी) लांबीची नलीका बसवून घ्यावी. शरावामधून कासघ्न द्रव्याचा धूम नळीवाटे रुग्णास मुखाद्वारे घेण्यास सांगावा.

सम्यक योग लक्षणे -

1. हृद, कंठ, इंद्रिय संशुद्धी (Clarity of chest, throat, sense organs)
2. शिरो लघुत्वम् (Feeling of lightness of head)
3. उरो लघुत्वम् (Lightness of Chest)
4. कंठ लघुता (Lightness of throat)
5. दोष सम (Elimination of dosha)
6. कफ तनुत्व (Liquification of Kapha)
7. रोगप्रशमन (Remission of disease)



अयोग लक्षणे -

1. अविशुद्ध स्वर (Improper voice)
2. सफफ कंठ (Provocation of Kapha in throat)
3. स्तिमीत मस्तक (Heaviness in head)
4. रोग अप्रशमन (Non-remission of the disease)
5. दोषोत्कलेश (Aggravation of doshas - disease)

अतियोग लक्षणे -

1. शिरोताप-शोष (Burning sensation & dryness of head)
2. कंठशोष-ताप (Dryness of throat & burning)
3. तालुशोष-ताप (Dryness of palate & burning)
4. तृष्णाधिक्य (Thirsty)
5. मुह्यते (Confusion)
6. नासागत रक्तस्राव (Bleeding from nose)
7. शिरोभ्रम (Giddiness)
8. मूर्च्छा (Syncope)
9. इंद्रिय अपताप (Disturbed function of sense organs)

पश्चातकर्म

विशेष असे पश्चात कर्म नाही. रुग्णास काही काळ विश्रांतीचा सल्ला द्यावा. लगेच शीत जलाचा वापर करू नये.

घ्यावयाची काळजी -

- 1) नासाद्वारे धूर सोडू नये,
- 2) धूमपानाच्या सुरुवातीस ठसका लागून कास येण्याची शक्यता आहे. अधिक कास उत्पन्न झाल्यास धूमपान तात्काळ थांबवावे.

व्यापद -

बाधिर्यमान्ध्यमूकत्वं रक्तपित्तं शिरोभ्रमम्।

अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान्।। च.सू. 5/38

अकाली किंवा अतीमात्रेत धूमपान केल्यास खालील उपद्रव संभवतात

- 1) बाधिर्य (Deafness),
- 2) अंधत्व (Blindness),
- 3) मूकत्व (Inability to speak),
- 4) रक्तपित्त (Bleeding through nose),
- 5) शिरोभ्रम (Giddiness)

चिकित्सा - घृतपान, अंजन, नावन नस्य, तर्पण, कफ प्रकोप असल्यास रुक्ष

धूमपान उपयोगिता (Utility of Dhumpaana) -

कासः श्वासः पीनसो विस्वरत्वं पूतिर्गन्धः पाण्डुता केशदोषः।

कर्णस्याक्षिस्रावकण्ड्वर्तिजाड्यं तन्द्रा हिध्मा धूमपं न स्पृशन्ति।। अ.ह.सू. 21/22

धूमपान केल्यास खालील व्याधी होत नाहीत

- | | |
|---------------------------------|-------------------------------------|
| 1. कास (Cough) | 2. श्वास (Dyspnea) |
| 3. पीनस (Rhinorrhea) | 4. विस्वरत्वं (Hoarseness of voice) |
| 5. पूतिर्गन्ध (Halitosis) | 6. पाण्डुता (Pallor) |
| 7. केशदोष (Diseases of hairs) | 8. कर्णस्राव (Discharge from ear) |
| 9. मूखस्राव (Excess salivation) | 10. अक्षिस्राव (Discharge from eye) |
| 11. कंडू (Itching) | 12. अरति (Pain) |
| 13. जाड्य (Inertia) | 14. तन्द्रा (Lethargy) |
| 15. हिध्म (Hiccup) | |

नस्य कार्मुकता (Mode of Action)

नासा हे औषधी द्रव्य देण्याचा एक मार्ग आहे. पंचकर्मातील शोधनाच्या सिद्धांतानुसार जवळच्या मार्गाने शोधन अपेक्षित आहे, तेथे उर्ध्वजत्रुगत उत्कलेशीत दोषांना बाहेर काढणारी शोधन क्रिया म्हणजे नस्य व जवळचा मार्ग नासा. पंचकर्मातील बहुतांशी कर्म केवळ शोधनापूरतेच मर्यादित नाहीत तर बृंहण आणि शमनाचेही कार्य करणारे आहेत. त्यातीलच बसित व नस्य ही दोन कर्मे. म्हणूनच नस्य हे उर्ध्वजत्रुगत व्याधीमध्ये केवळ शोधनाचेच कार्य करत नाही तर शमन, बृंहण यासारखेही कार्य करते.

चरकाचार्यानी (च.सि. 2/22) नस्याची कार्मुकता स्पष्ट करतांना वर्णीले आहे की, नस्यामुळे औषधी द्रव्य शिरोभागात जाऊन तेथील विकृत दोषांना तेथे चिकटू न देता त्यांना बाहेर काढते. वाग्भटनीही (अ. सं.सू. 29/3) वर्णन करतांना हेच स्पष्ट केले आहे. नस्य द्रव्य श्रृंगाटक मर्मांमध्ये व्याप्त होऊन मूर्ध, नेत्र, कर्ण, कंठ व सिरामुखापर्यंत पोहचते व तेथील दोषांना अपकर्षण करून बाहेर काढते. म्हणूनच नस्य नेत्ररोग, कर्णरोग, कंठगत रोग व्याधीत उपयोगी सिद्ध आहे.

नासा ही शिरसो द्वारम्.... नासा हे शिराचे द्वार मानले जाते. त्यामुळे शिरासंबंधी व्याधीमध्ये नस्य ही प्रभावी क्रिया आहे. शिर हे उत्तमांग आहे, त्यास हृदयही म्हटले आहे याचाच अर्थ शरीराच्या प्रत्येक क्रिया शिरस्थ इंद्रियांच्या साहाय्याने चालत असतात. त्यामुळे शिरस्थ दोषांची स्थिती सामान्य असणे आवश्यक असते. म्हणून नस्याद्वारे उत्कलित दोषांचे शोधन केले जाते किंवा शमन नस्याने कुपीत दोषांचे शमन केले जाते तर दोष क्षयाच्या अवस्थेत बृंहण नस्याद्वारे बृंहण केले जाते.

शिरसी इंद्रियाणी इंद्रियप्राणवहानि च स्रोतांसि सूर्यमिव गर्भस्तयः संश्रितानि। च.सि. 9/4

शिरस्त इंद्रिय व इंद्रियांचे स्रोतस (channels carrying sensory and motor impulses) शिरापासून निघतात आणि ते सूर्याच्या किरणासारखे असतात अर्थात नासा इंद्रियांपैकी एक असल्याने त्याचा सरळ क्रियात्मक संबंध शिर (Brain) सोबत असतो त्यामुळेच नासा हा शिरोगत व्याधीसाठी औषध पोहचविण्याचा एक उत्तम व जवळचा मार्ग आहे. म्हणूनच शिरोसंबंधी उदा. शिरोशूल, अर्धावभेदक, आणि इतर इंद्रियसंबंधी व्याधीमध्ये नस्य उपयोगी ठरते.

सुश्रुतांनी नस्याच्या व्यापदामध्ये तीक्ष्ण नस्यामुळे 'मस्तूलुंग' (CSF) नासाद्वारे स्त्रवण्याचे वर्णन केले आहे (सू.चि. 40/100) वर वर बघता हा अशक्य वाटणारा व्यापद आजच्या आधुनिक काळात नासा व CNS यांच्याशी सरळ संबंध दर्शविणारा आहे.

Modern View- In the recent era the interest in intra nasal drug delivery as a non-invasive route is increased. As the nasal muosa offers numerous benefits as a target tissue for drug delivery, the drugs are being used intra nasally for topical, systemic and CNS action following the rule of acharya Nasa Hi Shiraso dvaram

Salient Features of anatomy of Nose -

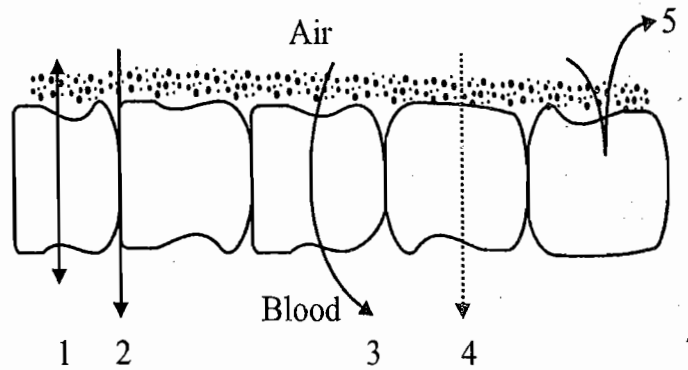
1. The nasal cavity is bounded by floor, roof, medial and lateral walls. Nasal cavity is lined with mucus layer hairs.
2. Anatomically nasal cavity fills the space between base of the skull and the roof of the mouth.
3. Above it is supported by ethmoid bones laterally ethmoid maxillary and inferior conchae bones.
4. Total volume of nasal cavity is 15-20 ml and surface area is about 150 cm².
5. It is divided by nasal septum into two halves. Both halves consist of i) nasal vestibule ii) atrium iii) respiratory region and iv) olfactory regions
 - i) **Nasal vestibule** - covered by stratified squamous and keratinized epithelium with sebaceous glands. It has high resistance against toxic environment in this region absorption of the drug is very difficult
 - ii) **Atrium** - stratified squamous cells, vascularisation is low permeability reduced.
 - iii) **Respiratory Region** - It is divided in superior, middle, inferior terminates, the nasal respiring mucosa is most important section for delivery of drugs systemically. It is highly vascularized constituted by epithelium, basement membrane and lamina propria. It has many permeable fenestrated capillaries, nerves, glands, immune cells.
 - iv) **Olfactory region** - located in the roof of the nasal cavity and extends a short way down the septum and lateral wall. Its neuro epithelium is the only part of CNS. It is pseudo stratified contains olfactory receptors. In this area there are small secreting glands (glands of Bowman). It is vascularized area and having high permeability.

Mechanism of Drug Absorption: Passage of drug through mucus is the first step in absorption. There are various theories are considered for the mechanism absorption. Drug transport across the nasal epithelium is assumed to occur by these mechanisms (indicated in diagrammatic representation).

- 1) Transcellular passive diffusion,
- 2) Paracellular passive diffusions,
- 3) Carriers mediated absorption and secretion,
- 4) Absorption through transcytosis,
- 5) Efflux transport.

Two main theories are considered predominantly

1. **Transcellular** : In this process drug diffuse through membrane. It is an active transports process. It is more suitable for lipophilic drugs, Sneha Nasya may absorb though this type of process.



2. **Paracellular** : In this process, drug is transported between the cells and transcytosis by vesicle carrier. It is a suitable mechanism for hydrophilic drugs e.g. avapidak, dugdha, Kwath nasya

Drug may act by two ways

1. **Vascular Path** : In nasal cavity the submucosa is rich vascularized. Large surface of the nasal cavity and relatively high blood flow promotes rapid absorption (Chien *et al*, 1989). The drug absorption is rapid because of high permeability of nasal epithelium and avoid hepatic first pass metabolism. During Purvakarma abhyang & mrudu swed is essential as per the text, it facilitates the drug absorption as abhyang and sweda (Fomentation) causes vasodilatation and increased blood circulation which is helpful in the drug absorption. Most of the drug absorption takes place by diffusion, the blood flow is essential to maintain the concentration form the site of absorption of blood. Kao *et al* stated that nasal absorption of dopamine was relatively slow due its vasoconstrictor effect.

2. **Neural Path** - The delivery of the drug from nose to CNS may occur via olfactory neuro epithelium and according to the study this may involve paracellular, transcellular and/or neuronal transport (Illium L, Nasal drug delivery possibilities problems and solution J-Control release 2003)

Graff *et al* confirmed olfactory epithelium and endothelial cells that surround the olfactory bulb which contains P.gp, is an efflux transported which plays the role in avoiding the influx drugs from nasal membrane. Transport from nasal cavity to CNS via trigeminal nerve system is already described by Thome RG *et al*. Drug delivery into CNS through internasal route has been reported in various studies specially in Alzheimer's diseases, brain tumors epilepsy, pain and sleep disorders, Nasya is already indicated in these diseases by Acharya.

Factors influencing nasal drug absorption :

A) Physicochemical-

a) **Molecular size and structure** - Nasal absorption decreases significantly when molecular weight of drug is greater than 1000 daltons

b) **Hydrophilicity/liphophilicity** - Liphophilic drugs generally well absorbed shown by Carbo *et al.* Nasal bioavailability near to 100% as per modern. Nasya preparations are more oil based, bioavailability would be the region.

c) **Solubility** - Before nasal absorption, the drug must be dissolved in watery fluids of nasal cavity to posterior absorption. eg. avapidak nasya, milk etc.

B) Prochemical & Physiological - The nasal mucosa is by itself an enzymatic barrier to nasally administered drug consisting of several proteolytic or hydrolytic enzymes.

C) Pharmaceutical -

a) **Formulation (PH & Osmolality)** - various formulation play important role is nasal absorption Ohwaik T *et al.*, stated in their study, absorption of secretin increased as PH decreased from 7 to 2.94. Its bioavailability also affected by NaCl concentration and maximum absorption obtained. In Samhita salt (Lavana), honey advised in certain Nasya.

b) **Droplet size** - The mean flow rate of mucocilliary clearance (MCC) system of the normal nose is 5 min/min to 18-20 mm/min. The particle within 10-20 μm are deposited in nasal cavity, while particles less than 1 μm pass with inspired air into lungs.

In Samhita mrudu paka is advised for nasya or dhoom nasya is advised. This is area of research for Ayurved physicians

c) **Delivery system** - Various delivery system affect the site of deposition and degree of absorption, hence in modern system nasal spray, Nasal drops, nasal jelly, nasal inert have been developed. In Ayurved navan nasya, pradhman nasya, avapidak nasya, dhoom nasya have been developed.

d) **Viscosity** - viscosity increases the contact time between drug and the nasal mucosa which enhances the potential of drug absorption. This has been observed during nasal delivery of insulin (Heidari *et al*)



8

रक्तमोक्षण (Blood Letting)

व्याख्या: शरीरातून दुषीत रक्त चिकित्सा करण्यासाठी निर्हरण करण्याच्या क्रियेला रक्तमोक्षण म्हणतात. यालाच अस्रविस्मृती म्हणतात.

अस्र - रक्त, विस्मृति - वहन करणे.

पर्याय - रक्त निर्हरण, रक्त स्रावण, शोणित मोक्षण

महत्त्व: ज्या प्रकारे बसित चिकित्सा अर्ध चिकित्सा मानली जाते त्याचप्रमाणे रक्तमोक्षण ही अर्ध चिकित्सा मानली जाते. या कर्मास शास्त्रीय विधीने प्रयोगात आणल्यास संपूर्ण चिकित्साही मानली जावी एवढे या चिकित्सेचे महत्त्व आहे.

ज्या व्याधीमध्ये शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष चिकित्सा करूनही उपशय मिळत नाही अशा अवस्थेत रक्तविस्रावण करावे (च.सू. 24/17, अ.ह.चि. 8) यावरून या चिकित्सेचे महत्त्व स्पष्ट होते..

रक्तमोक्षणाचे सामान्य सिद्धांत (General Principles of Raktamokshana)

रक्तमोक्षण ही शोधन क्रिया आहे. क्रिया करण्यासाठी चिकित्सकाने व्याधी सम्प्राप्ती, दोषांची अवस्था समजणे आवश्यक आहे. यासोबतच दोषांचे मुलस्थान लक्षात घेणे आवश्यक आहे. उदा. अतिसाराचे मूल विकृत स्थान आमाशय, तमकश्वासाचे विकृतस्थान आमाशय.

- रक्तमोक्षण करते वेळी अशुद्ध रक्त प्रथम विस्रावित होते (अग्रेस्रवतिदुष्टास्रम) हा निसर्ग नियम आहे. जे शरीरासाठी अहितकर ते बाहेर काढण्याची शरीराची प्रवृत्ती असते. जे दुषीत असते ते आधी निघते.
- रक्तमोक्षण ही प्रथमतः शाखा शुध्दी करणारी क्रिया आहे त्यानंतर याचा परिणाम कोष्ठावरही होतो.
- कोणत्याही शोधन क्रियेसाठी दोष उत्कलेषित होवून धातुपासून वेगळे होणे आवश्यक असतात त्यासाठी स्नेहन-स्वेदन पश्चात रक्तमोक्षण गुणकारी असते. परंतु इतर शोधन क्रियेच्या अपेक्षा रक्तमोक्षणासाठी स्नेह स्वेदनाची आवश्यकता कमी पडते.
- दुषीत रक्तस्राव झाल्यानंतर रक्तस्राव आपोआप बंद होतो. हा सामान्य नियम आहे.
- रक्तमोक्षणाने रक्त निर्हरणाची मात्रा 1 प्रस्थ (540 मिली) असावी.
(शोणितस्रावणमपि..... सिरायां मोक्षणीयः।। (सु.सू. 13/23)
- WHO ने रक्तनिर्हरणाची (रक्तदानाचे वेळी) मात्रा 300 मिली एवढी ठरवलेली आहे. त्याचे पालन केल्यास अधिक सोयीस्कर राहिल.
- रक्तमोक्षण दोष अवस्थानुसार, व्याधी अवस्थानुसार तथा रुग्ण अवस्थानुसार करावे.

- ज्या व्याधीमध्ये शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष चिकित्सेने यश येत नाही अशा वेळी रक्तविस्त्रावण करावे.

रक्तमोक्षणाचे महत्त्व (Significance & importance)

चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट या (तिन्ही) बृहत्रयींच्या ग्रंथकारांनी रक्तमोक्षण चिकित्सेची प्रशंसा केली आहे.

- रक्त व पित्त यांचे आश्रयाश्रयी संबंध आहेत. पर्यायाने रक्तविस्त्रावण केल्याने पित्तदोषाचे ही निर्हरण होते. त्यामुळे पित्त प्रधान व्याधीमध्ये रक्तमोक्षण एक प्रमुख उपाय सांगितला आहे.

पित्तं तु स्वेद रक्ताश्रयां..... तदन्यस्य बर्धनं सपणमौधम्। अ.ह.सू. 11/10

- जीवन हे रक्ताचे सर्वश्रेष्ठ कार्य आहे. जीवनचा अर्थ प्राण धारण करणे होय. रक्तास शरीराचे मुल म्हटले आहे. (च.सू. 1/42, सु.सू. 14/44), रक्ताचे कार्य मांसधातुची पुष्टी करणे व वर्णप्रसादन करणे आहे. रक्त सर्व धातुंच्या क्षय-वृद्धीचे कारण आहे. रक्त धातुंचे पूरण, स्पर्शज्ञानास सहाय्यता, इंद्रिय प्रसन्न ठेवणे इ. कार्य करतो ही सर्व कार्ये विशुद्ध रक्ताची आहेत. त्यामुळे आहारविहार किंवा मानसिक कारणांमुळे रक्त दुषीत झाल्यास रक्ताची ही सर्व कार्ये प्रभावित होतील. त्यामुळे शुद्ध रक्त निर्मिती होणे आवश्यक आहे. म्हणून रक्त दुष्ट झाल्यास ही सर्व प्रभावीत कार्ये सामान्यस्थितीत आणण्यासाठी रक्तमोक्षण ही प्रभावी चिकित्सा होवू शकते.
- शरद ऋतूमध्ये स्वभावतः पित्ताचा प्रकोप होतो. सोबतच रक्त दूषण होते. यासाठी विरेचन अथवा रक्तमोक्षण किंवा दोन्ही चिकित्सा महत्त्वपूर्ण आहेत.
- रक्त व धातुमध्ये वात दोषादि प्रकुपित होवून दुष्टी करतात. चिकित्सकाद्वारे या अवस्थेची उपेक्षा झाल्यास कंडू, शोफ, राग, वेदना ही लक्षणे उत्पन्न होतात. (सु.सू. 14/23) दुष्ट रक्ताची चिकित्सा न केल्याने होणाऱ्या व्याधींना रक्तप्रदोषज किंवा शोणितज व्याधी म्हटले जाते. ह्या अवस्थेमध्ये रक्त-पित्तहर चिकित्सा करण्याचा उपदेश केला आहे. अर्थात रक्तविस्त्रुति करण्यास सांगितले आहे.

कुर्यात् शोणितरोगे तु रक्तपित्त हरी क्रियाम्।

विरेकमुपवासंच स्त्रावणं शोणितस्य च।।

च.सू. 24/19

- या आधी उल्लेखित असल्याप्रमाणे शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष चिकित्सेने उपशय न मिळाल्यास रक्तज व्याधी समजून अशा व्याधीमध्ये रक्तविस्त्रावण करावे.

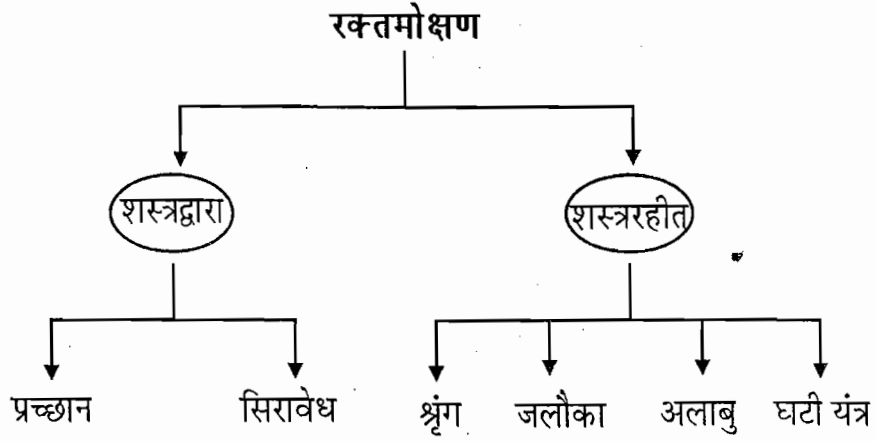
शीतोष्ण स्निग्धरूक्षाद्यैरूपकांताश्च ये गदाः।

सम्यक् साध्या न सिध्दंति रक्तजास्तान् विभावयेत् ।। च.सू. 24/17, अ.ह.सू. 27/5

अशा प्रकारे पंचकर्मांमध्ये व चिकित्सेमध्ये रक्तमोक्षणाचे महत्त्व आहे.

प्रकार (Classification): रक्तमोक्षणाचे प्रमुख 2 प्रकार आहेत.

- (1) शस्त्राद्वारे
- (2) शस्त्ररहीत (अनुशस्त्राद्वारे)



- 1) **शस्त्राद्वारे:** रक्तविस्त्रावण शस्त्राद्वारे केले जाते. हे दोन प्रकारचे आहे.

तत्रश्च विस्त्रावणं द्विविधम्। प्रच्छानं सिराव्यधनंच।।

सु.सू. 14/25

- अ) **प्रच्छान** - शस्त्राद्वारे त्वचेवर वरवर काप देवून रक्तमोक्षण करण्याची क्रिया (Superficial skin incision) प्रच्छान क्रिया आहे.
- ब) **सिरावेध/सिराव्यध** - सिरेतून व्यधन करून (Puncturing the vein) रक्तविस्त्रावण करण्याची क्रिया

- 2) **अनुशस्त्राद्वारे:** रक्त विस्त्रावण करण्यासाठी Steel इ. धातुच्या उपकरणांचा उपयोग केला जातो. ज्या क्रियामध्ये प्रत्यक्ष लोह उपकरणाचा वापर न करता विस्त्रावण केले जाते त्यास अनुशस्त्र विस्त्रावण म्हणतात. अनुशस्त्र सुकुमार, भित्री रुग्णांसाठी उपयोगात आणले जातात. यांचे खालील प्रमाणे प्रकार आहेत.

- (अ) **जलौकावचरण**- जलौकाद्वारे रक्तविस्त्रावण करणे प्राधान्याने पित्त दोषांमध्ये हितकर असते.
- (ब) **शृंगावचरण** - गायीच्या शृंगाद्वारे दुषीत रक्ताचे निर्हरण केले जाते. प्राधान्याने वात प्रधान दोषांमध्ये उपयोग केला जातो.
- (क) **अलाबू अवचरण** - अलाबू/लौकी द्वारे रक्तविस्त्रावण केले जाते. प्राधान्याने कफ प्रधान दोषांमध्ये उपयोग केला जातो.
- (ड) **घटीयंत्र** - घट/घडयाच्या आकाराचे यंत्र. याद्वारे रक्तविस्त्रावण केले जाते. शास्त्रामध्ये गुल्म व्याधीसाठी प्राधान्याने उपयोग सांगितला आहे. Cupping glass प्रमाणे याचा उपयोग केला जातो.

जलौकाः क्षारदहनः काचोपल नखादयः।

अलोहान्यनुशस्त्राणि तान्येवंच विलल्पथेत्।।

अ.ह.सू. 26/27

या व्यतिरिक्त अष्टांगहृदयकारांनी क्षार, दाहकर्म (अग्निकर्म), काच, दगड, नख इ. अलोह उपकरणांना अनुशस्त्र म्हटले आहे. चिकित्सकांनी आपल्या कुशलतेनुसार युक्तीपूर्वक यांचा वापर करावा.

रक्तमोक्षणाचे नियम

(1) व्याधीस्थान व व्याप्तीनुसार:

वरील रक्तमोक्षण प्रकार चिकित्सकांनी व्याधी स्थानानुसार, दोषानुसार, दूषित रक्ताची अवस्था तथा रुग्ण अवस्था याचा तर तम भावाने विचार करून निर्णय घेणे आवश्यक आहे.

गृह्णाति शोणितं श्रृंगं दशांगुलमितं बलात्।

जलौका हस्तमात्रं तु तुम्बी च द्वादशांगुलम्।।

पद्मंगुलमात्रस्य शिरा सर्वांग शोधिनी।। शा.उ. 12/26

श्रृंगाने रक्तविस्त्रावण केल्यास त्याचा प्रभाव 10 अंगुल पर्यन्त, जलौकाने एक हस्त (24 अंगुल) पर्यन्त, तुम्बीने विस्त्रावण केल्यास त्याचा प्रभाव 12 अंगुल तर प्रच्छान कर्माने प्रभाव एक अंगुल पर्यन्त राहतो. परंतु सिरावेध करून रक्तमोक्षण केल्याने उपशय प्रभाव सर्व शरीरभर असतो.

(2) दोषानुसार:

भिषग् वातन्वितं..... जलौकाभिः।

च.चि. 21/69-70

उष्णसमधुरं तद्सेवना।

सु.सू. 13/3-7

युंजान्नालाबुधरिका..... श्रृंगेण निर्हरेत।

अ.ह.सू. 26/49

वातदुष्टी - श्रृंगाद्वारे रक्तमोक्षण; कारण गोश्रृंग उष्ण, मधूर व स्निग्ध आहे. वाताच्या शीत, रूक्ष गुण चिकित्सा करण्यासाठी महत्त्वपूर्ण.

पित्तदुष्टी - पित्त हे रक्तदुष्टीचे प्रमुख कारण आहे. यामध्ये जलौकाद्वारे रक्तविस्त्रावण केले जाते. कारण जलौका शीत आहे आणि पित्ताच्या उष्ण, कटू, गुणांच्या चिकित्सेसाठी जलौका महत्त्वपूर्ण आहे.

पित्तदुषीत रक्ताचे अलाबू किंवा घटीयंत्राने विस्त्रावण करणे निषेध आहे. कारण यांच्या उष्णगुणांमुळे पित्तदुष्टी वाढण्याची शक्यता असते. अवस्थेनुसार श्रृंगाचे वातदुष्टी सोबतच पित्तदुष्टीमध्येही विस्त्रावण करता येते.

कफ दुष्टी - अलाबूद्वारे रक्तमोक्षण करावे. अलाबू कटू, रूक्ष, तीक्ष्ण आहे. त्यामुळे कफाच्या मधुर, शीत, स्निग्ध गुणाची चिकित्सा करण्यासाठी अलाबू उपयोगी.

वात व कफ दुष्टीमध्ये अलाबू अथवा घटीयंत्राने रक्तविस्त्रावण करणे प्रशस्त आहे.

कफदुष्टीमध्ये श्रृंगाने विस्त्रावण करू नये कारण कफदुष्टीमध्ये श्रृंगाने विस्त्रावण केल्यास रक्त स्कंदित (Clotting) होते.

(3) दुषीत रक्तावस्थानुसार:

प्रच्छानेतैकदेशस्यं व्यापकेऽसृजि।।

अ.ह.सू. 26/53-54

सिरांविषाग..... त्वचिस्थिते।

सु.शा. 8/25-26 डल्हणटिका

- रक्त एका स्थानात दुषीत असल्यास प्रच्छानकर्माने विस्त्रावण उत्तान/त्वचा समीप स्थानात.
- रक्त ग्रथीत (अवगाढ) असल्यास जलौकावचरण.
- रक्त त्वचेमध्ये सुप्तता (loss of sensation)(अवगाढतर) असल्यास श्रृंग, अलाबू व घटीयंत्राने रक्तविस्त्रावण.
- रक्त सर्वांग व्याप्त (अवगाढतम्) असल्यास सिरावेध करावा.

(4) रुग्ण अवस्थानुसार रक्तमोक्षण:

श्रृंगालाबु सुकुमारोपायौ..... सिराव्यधनंच।

सु.सू. 13/2 वर डल्हण टिका

नृपाद्यबालस्थ..... जलौकसः।

सु.सू. 13/2

रुग्णाचे बल, अवस्थानुसार रक्तविस्त्रावण करावे.

सुकुमारांसाठी - श्रृंग व अलाबू

परमसुकुमारांसाठी - जलौकावचरण

असुकुमारांसाठी - प्रच्छान तथा सिरावेधन

- (5) रक्ताची पूर्ण दुष्टी जाई पर्यन्त रक्तस्त्राव करू नये. सशेषदोष ठेवावे. कारण यामुळे अतिप्रवृत्ती होण्याची भीती असते.
- (6) शेषदोष जलौका, अलाबू, श्रृंगावचरणाने निर्हरीत करावे किंवा शमन चिकित्सा करावी.

रक्तमोक्षण योग्य (Indications of Raktamokshan):

रक्तमोक्षण रक्तप्रदोषज व्याधीमध्ये केले जाते तसेच स्वस्थ व्यक्तीमध्येही स्वास्थरक्षणार्थ रक्तमोक्षण केले जाते. सामान्यपणे खालील रुग्णांमध्ये रक्षणमोक्षण केले जाते.

- | | |
|---------------------------------|---|
| (1) कुष्ठ (Skin diseases) | (2) विसर्प (Herpes, Pemphigus, infective) |
| (3) पिडका (Skin eruption) | (4) रक्तपित्त (Bleeding disorder) |
| (5) असृग्दर (Uterine bleeding) | (6) गुदपाक (Proctitis) |
| (7) मेदूपाक (Suppurative penis) | (8) मुखपाक (Stomatitis) |
| (9) प्लीहा (Splenomegaly) | (10) गुल्म (Abdominal mass, Gastritis) |
| (11) विद्रधी (Abscess) | (12) निलिका (Blue pigmentation) |

- | | |
|---|---|
| (13) कामला (Jaundice) 'avoid hepatitis B' | (14) व्यंग (Pigmentation) |
| (15) पिप्लव (Mole) | (16) तिलकालक (Mole) |
| (17) दद्रु (Ring worm) | (18) चर्मदल (Skin thickening/ lesions with scales) |
| (19) शिवत्र (Leucoderma) | (20) पामा (Scabies) |
| (21) अस्रमंडल (Redish patch on the skin) | (22) अक्षिरोग (Eye diseases) |
| (23) पुतिआस्यगंधता (Halotosis, Foul smelling) | (24) उपकुश (Gingivitis) |
| (25) प्रमीलक (Anxiety state) | (26) रक्तमेह (Hematuria) |
| (27) वातरक्त (Gout) | (28) वैवर्ण्य (Discolouration) |
| (29) अग्निमांद्य (Dyspepsia) | (30) पिपासा (Excessive thirst) |
| (31) गुरूगात्रता (Heaviness of body) | (32) संताप (Fever) |
| (33) अतिदौर्बल्य (Excessive debility) skin diseases) | (34) अरूचि (Anorexia) |
| (35) शिरोरूजा (Headache) | (36) अन्नपान विदाह (Hyperacidity) |
| (37) तिक्तोद्गार (Bitter eructation) | (38) अम्लोद्गार (Sour eructation) |
| (39) कटुउद्गार (Pungent eructation) | (40) क्लम (Exhausted) |
| (41) क्रोधाधिक्यता (Anger) | (42) बुध्दीसंमोह (Confusion state) |
| (43) लवणास्यता (Salty taste) | (44) स्वेद (Excessive sweating) |
| (45) शरीरदौर्गंध्य (Bad odour) | (46) मद (Intoxication) |
| (47) कंप (Tremor) | (48) स्वरक्षय (Reduced voice) |
| (49) अतिनिद्रा (Excessive sleep) | (50) अतितमोदर्शन (Darkness in front of eyes) |
| (51) कंडू (Itching) | (52) कोठ (Urticarial rash) |
| (53) मशक (Mole) | (54) न्यच्छ (Black pigmentation) |
| (55) इंद्रलुप्त (Alopecia) | (56) अर्बुद (Tumor) |
| (57) अंगमर्द (Bodyache) | (58) उपजिह्विका (Uvulitis) |
| (59) रक्तत्वक (Redness of the skin) | (60) रक्तनेत्रता (Redness of eyes) |
| (61) रक्तमुत्रता (Hematuria) | (62) भ्रम (Giddiness) |
| (63) अर्श (Hemorrhoids) | |

वरील व्याधीचा विचार करता सामान्यपणे रक्तमोक्षणाई व्याधीचे खालील प्रकारे वर्गीकरण केले जाऊ शकते.

- | | |
|------------------------------|----------------------|
| (1) कुष्ठ (क्षुद्र-महाकुष्ठ) | (4) मानस व्याधी |
| (2) पाकयुक्त व्याधी | (5) अग्निमांद्यजन्य |
| (3) रक्तप्रदोष व्याधी | (6) रूजायुक्त व्याधी |

जलौकावतरण

जलामध्ये प्राप्त होते म्हणून 'जलौका' हे नाव पडले आहे. जलौका सविष आणि निर्विष अशा दोन प्रकारच्या आहेत. सविष जलौका चिकित्सेमध्ये वापरण्यास निषिद्ध आहेत.

सविषजलौकाचे उपद्रवः

ताभिर्दष्टे पुरुषे दंशे श्वयथुरति मात्रं कंडूमूर्च्छा

ज्वरो दाहश्छर्दिः मदः सदनमिति लिंगानि भवन्ति।।

सु.सू. 13/9

सविषा वर्जयेत्ताभिः कण्डूपाकभ्रमज्वराः।

अ.ह.सू. 16/37

सविषजलौकाच्या दंशाने शोथ, कंडू, मुर्च्छा, ज्वर, दाह, छर्दि, मद ही लक्षणे उत्पन्न होतात. त्यामुळे चिकित्सेसाठी निर्विष जलौकाच वापरावी.

शास्त्रीय विवेचनः

| | | |
|---------|---|--------------------------------|
| Kingdom | - | Animala |
| Pylum | - | Annelida |
| Class | - | Clitellata |
| Order | - | Hirudinia |
| Family | - | Hirudinidae |
| Genus | - | Hirudo |
| Species | - | H. Medicinalis, H. Manillensis |

चिकित्सा प्रयोगासाठी निर्विष जलौकांच्या अनेक प्रजाती आहेत. त्यापैकी आशियामध्ये H. Manillensis ह्या प्रजातीचा चिकित्सेसाठी उपयोग करतात तर युरोपमध्ये H. Medicinalis ही प्रजाती उपयोगात आणतात. या व्यतिरिक्त H. Orientalis, H. Verbana या प्रजातीपण चिकित्सेसाठी वापरल्या जातात.

Morphology: - Leeches are hermaphrodite which are, produced by sexual matting, laying eggs near the water & humid place. They are 20 cm in length, green, brown or greenish brown. They have two suckers one at each end called anterior and posterior sucker. Anterior sucker consisting of the jaw & teeth. Posterior is used for leverage. Medicinal leeches have three jaws (triparlite) and above hundred sharp teeth on them to incise the host. The incision

leaves a mark which is an inverted 'Y' inside the circle.

After piercing the skin and injecting anticoagulant (Hirudin) and anesthetics they suck out blood. Adult leech can suck the blood ten times of its body weight which is 5-15 ml*. These leeches can alive for upto one year between feeding. [Wells MD, et al (1993) "The medical leech an old treatment revisited", microsurgery 14(3) (PMID-8479316)]

भेद:

आयुर्वेदानुसार सविष व निर्विष असे दोन भेद आहेत व या प्रत्येकाचे 6-6 प्रकार आहेत.

- 1) **सविष जलौका:** (सु.सू. 13-9; अ.ह.सू. 26-36)
 - (a) कृष्णा (भृशंकृष्णा) - अंजनचूर्ण वर्ण, डोके थोडे मोठे, कज्जलीवर्ण (डल्हण)
 - (b) कर्बुरा (रक्तश्वेत) - वर्मि मास्याप्रमाणे, कुक्षिप्रदेशी रेखा, डल्हणानुसार वर्मिमत्स्याकार म्हणजे सर्पाकार
 - (c) अलगर्दा - शरीरावर रोमसदृश्य रेषा, कृष्णमुखी
 - (d) इंद्रायुधा - चित्रविचित्र वर्णाची
 - (e) सामुद्रिका - किंचीत कृष्ण व पीत वर्णीय
 - (f) गोचंदना - गोवृषणाप्रमाणे दोन भागात विभक्त, अणुमुखी, पिच्छिल व चपळ.
- 2) **निर्विष जलौका** (सु.सू. 13-12):
 - (a) कपिला - कपिल वर्णाची, मनःशील वर्णासारखी, पार्श्व व पृष्ठ बाजूस मुद्ग वर्ण, स्निग्ध
 - (b) पिंगला - किंचित रक्तवर्ण, वृत्ताकार
 - (c) शंकुमुखी - यकृतवर्ण, तीक्ष्ण मुखी
 - (d) मूषिका - मूषिका समान आकृती, तसाच वर्ण व दुर्गधी
 - (e) पुंडरीक मुखी - मुद्ग वर्ण, श्वेतकमला सारखे मुख
 - (f) सावरीका - स्निग्ध, कमलपत्रासमान वर्ण, 18 अंगुल लांब (पशुंच्या रक्तमोक्षणात उपयोगी)

निर्विषा शैवल श्यावा वृत्तानीलोऽध्वराजयः।

कषायपृष्ठास्तन्व्यंगः किंचित्पीतोदराश्च याः।।

अ.ह.सू. 26-38

वाग्भटानुसार निर्विष जलौका शेवाळासारखी शामवर्णाची वृत्ताकार असते. पृष्ठ वटत्वक वर्णाचे (कषायवर्ण) असून नील वर्णाची रेषा असतात. उदर किंचीत पीत वर्णाचे व शरीर कोमल असते.

निषिध्द जलौका -

स्थूलमध्याः परिक्लिष्टा पृथ्व्यो मंदविचेष्टताः।

अग्राहिण्योऽल्पपायिन्यः सविषाश्च न पूजिताः।।

सु.सू. 13-18

जी जलौका मध्यभागी स्थूल असून, दिसण्यास भयजनक आहे व आकाराने मोठी आहे व मंद चेष्टा करणारी आहे ती अल्प रक्त आचुषण करते. अशा जलौकेद्वारे रक्तमोक्षण करू नये.

जलौकावचरण योग्य (Indications):

रक्तमोक्षणासाठी योग्य असणाऱ्या सर्व रुग्णांमध्ये जलौकावचरण करता येते. मात्र काही विशेष अवस्थांमध्ये जलौकावचरण अधिक प्रभावी आहे.

जलौकावचरण योग्य अवस्था:

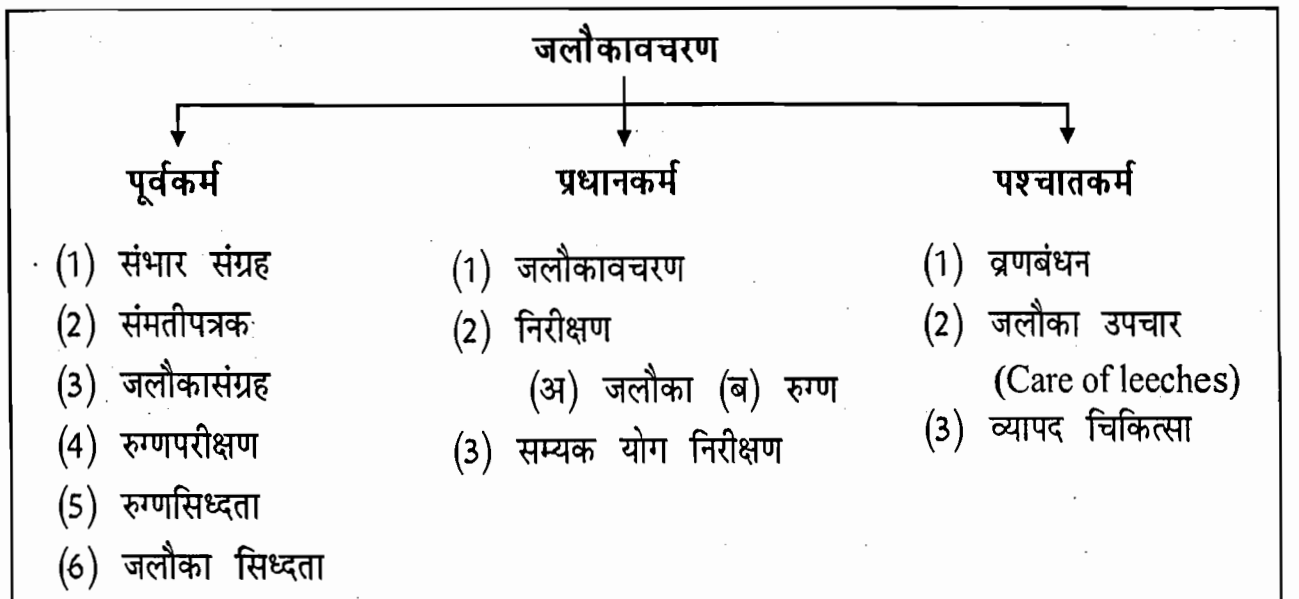
- (1) पित्तदुष्टीमुळे रक्तदुष्टीची अवस्था
- (2) स्त्री, बालक, वृद्ध व सुकुमार रुग्णांमध्ये

जलौकावचरण योग्य व्याधी:

गुल्मार्शी विद्रधीन् कुष्ठ वातरक्त गलामयान्।
नेत्ररूग् विषदीसर्पान् शमयति जलौकसः।।

- (1) गुल्म - Abdominal mass
- (2) अर्श - Hemorrhoids
- (3) विद्रधी - Abscess
- (4) कुष्ठ - Skin disease
- (5) वातरक्त - Gout, peripheral vascular disease
- (6) गलामय - Disease of throat
- (7) नेत्ररूक - Painful eyes
- (8) विसर्प - Acute infection of the skin

वरील निर्देशीत व्याधीच्या व्यतिरिक्त चिकित्सकांनी आपल्या कुशलतेने अन्य व्याधींमध्येही जलौकावचरण करावे. उदा. आमवात, शिरशूल, युवानपिडिका, Diabetic gangrene, chronic ulcers, Raynaud disease यामध्ये जलौकावचरणने उत्तम गुण येतो.



पूर्वकर्म

(1) संभार संग्रह (Procurement)

- (1) टेबल
- (2) निर्विष जलौका
- (3) Gauze, cotton
- (4) हरिद्रा
- (5) Kidney tray
- (6) Needle

(2) **संमतीपत्रक (Written consent):** रुग्णास पंचकर्मातील या क्रियेमुळे होणाऱ्या लाभ व व्यापदाची जाणीव करून द्यावी व रीतसर त्याला समजणाऱ्या भाषेत असलेले संमतीपत्रक भरून घ्यावे. त्याची/त्याचे नातेवाईकांची सही/अंगठा घ्याना.

(3) **जलौका संग्रहण:** जलौकावचरण चिकित्सा सध्याच्या काळात आकर्षणाची चिकित्सा बनली आहे. मात्र जलौका मिळवणे हे काम महत्प्रयासाचे झालेले आहे. शास्त्रामध्ये संग्रहणासाठी विशेष पध्दतीचा उल्लेख केला आहे. सुश्रुताचार्यानुसार तर जो वैद्य जलौका ग्रहण, प्रजाती पोषण व रक्तावचरण पद्धती जानतो तोच वैद्य साध्य रोगांची चिकित्सा करू शकतो (सु.सू. 13-24). जलौका संचयाचा 'शरद ऋतू' उत्तम काळ आहे.

पोषण (Preservation): एका मोठ्या मातीच्या मडक्यामध्ये थोडा चिखल व भरपूर पाणी ठेवून त्यात संग्रहीत केलेली निर्विष जलौका ठेवावी. यात रोज पाणी बदलत राहावे.

सध्याच्या काळात Aquarium मध्ये जलौका ठेवून संरक्षित करणे अधिक सुलभ आहे. वापरलेल्या जलौकांचे वेगळे डबे ठेवावेत.

(4) **रुग्णपरिक्षण :** सर्वप्रथम जलौकावचरण योग्य रुग्णाचे सामान्य परिक्षण करावे. यात रुग्णाचे BP, Pulse इ. जलौकावचरण पूर्व रुग्णाचे BT, CT करून घ्यावे.

(5) **रुग्णसिध्दता (Preparation of the patient):** जलौकावचारणापूर्वी रुग्णाची विशेष सिध्दता करावी लागत नाही. सुश्रुतानुसार चांगल्या उपशमासाठी स्नहेन स्वेदन करणे अधिक लाभदायक आहे. तीन दिवसांपर्यन्त अल्प स्नेहपान (30 ml) करून चवथ्या दिवशी अभ्यंग व स्वेदन करून पाचव्या दिवशी जलौकावचरण करावे. तत्पूर्वी जलौकावचारणाच्या दिवशी विरूक्षण चिकित्सा करावी कारण स्निग्ध त्वचेवर जलौका लागत नाही (यासाठी शक्यतो अभ्यंग टाळावे). साबणाने स्थान स्वच्छ करू नये कारण गंधामुळे जलौका लागत नाही.

रुग्ण जलौकावचरणासाठी घाबरत असल्यास डोळ्यावर पट्टी बांधावी, केवळ रक्तमोक्षणार्ह अंग खुले ठेवून बाकीचा भाग टॉवेलने आच्छादित करावा.

- (6) **जलौकासिध्दता:** एका पात्रामध्ये पाणी घ्यावे व त्यात 2 चम्मच हरिद्रा चूर्ण घालावे. त्यानंतर जलौका Aquarium/मडक्यामधून बाहेर काढून पात्रा मध्ये घ्यावी. 48 मिनिट पर्यन्त जलौका या पात्रात ठेवावी यामुळे जलौकाचे शोधन होवून जलौका अधिक चपळ होते. त्यानंतर शुद्ध जलौका जलाच्या पात्रात ठेवावी. ही जलौका रक्तविस्त्रावणासाठी उपयुक्त असते.

प्रधानकर्म

जलौका अंगठा व तर्जनीच्या साह्याने पकडून जलौकामुख इच्छित स्थानी त्वचेवर लावावे. Cotton ओलं करून जलौका पकडण्यास सोपं पडते. जलौकेने दंश केल्यानंतर Cotton bandage चा तुकडा ओला करून जलौकावर झाकावे.

कधी-कधी जलौका इच्छित स्थानी लागत नाही अशावेळी सुईद्वारे (Needle) त्वचेवर विद्ध करून रक्तस्राव करावा. रक्तबिंदूवर नंतर जलौका पुन्हा लावावी. त्यामुळे जलौका लागण्यास मदत होते.

- (1) **जलौका निरीक्षण** - जलौका आचूषण करत असतांना जलौकेचे निरीक्षण करावे. जलौका मध्यभागी फूगत जाते. जलौका रक्त आचूषण झाल्यानंतर स्वतःहून दंशस्थान सोडते.

चिकित्सकास अपेक्षित मात्रेत आचूषण झाले असे वाटत असल्यास व जलौकाने दंशस्थान सोडलेले नसल्यास अशावेळी चिकित्सकाने हरिद्राचूर्ण जलौकामुखावर सोडावे त्यामुळे जलौका तत्काळ दंशस्थान सोडते.

- (2) **रुग्ण निरीक्षण** - जलौका इच्छित स्थानी लागलेली आहे किंवा नाही, रक्त आचूषणाच्या वेळी किंवा पश्चात शूल, कंडू इ. लक्षणे उत्पन्न होत तर नाही ना? याकडे लक्ष द्यावे.

चिकित्सक रुग्णाचे बल, व्याधीस्थान, व्याधी अवस्था यानुसार एक किंवा अधिक जलौका एका वेळी लावू शकतात. अनुभवी चिकित्सकाद्वारे दुषीत व्रणासाठी एका पायास एकाच वेळी 100 जलौका लावण्याचे उदाहरण आहे.

- (3) **सम्यक योग** -

(1) विक्षत स्थानातील दाह व शूल प्रशमन. दुष्टरक्तापगमनात रागरूजां शमः। अ.सं.सू. 35/7

(2) 5-15 मिली पर्यन्त रक्तविस्त्रावण

पश्चातकर्म

- (1) **व्रण बंधन (Care of wound)** - जलौकाच्या लालास्रावामध्ये Hirudin असते जे Anticoagulant म्हणून कार्य करते. यामुळे जलौका दंशस्थान सोडल्यानंतरही व्रणामधून रक्तस्राव होत असतो. यासाठी व्रणाची योग्य काळजी घेणे गरजेचे असते. व्रणास साधारणतः हरिद्राचूर्णाचे पट्टबंधन केले जाते.

आचार्यानी अवस्थेनुसार खालीलप्रमाणे व्रणावर कर्म करण्यास सांगितले (सु.सू. 13/23)

- (1) सम्यक योग - शतधौतघृताचा पिचू
- (2) हीनयोग - दंशस्थानी मधुचे पीडन - याने रक्तस्त्राव अधिक होतो.
- (3) अतियोग - शीत परिषेक, बंध
- (4) मिथ्यायोग - कषाय, मधूर, स्निग्ध, शीत द्रव्यांचा प्रदेह.

(2) **जलौका उपचार (Care of leeches)** - रक्त आचुषीत जलौका Kidney tray मध्ये घेवून तिच्या मुखावर हरिद्राचूर्ण टाकावे. यामुळे जलौका रक्तवमन करते. जलौकास पूर्ण वमन करू द्यावे. त्यानंतर तर्जनी व अंगठ्याच्या साह्याने अलगद पश्चभागापासून मुखाभागापर्यन्त पिळावी. अधिक दाबाने जलौकास क्षती पोहचणार नाही याची दक्षता घ्यावी व नंतर शुध्द जलाच्या पात्रात सोडून द्यावी. यु पात्रावर रुग्णाचे नाव, तारीख लिहून चिट्ठी चिकटवावी.

शुध्द जलामध्ये जलौका चपळतेने क्रिया करित असल्यास सम्यक वमन झाले असे समजावे. असावधानीमुळे रक्त वमन ठीक न झाल्यास जलौका मृत होवू शकते. या रोगास 'इंद्रमद' म्हटले आहे.

(3) **व्यापद (Complications)** - चिकित्सकाच्या असावधानतेमुळे निर्विष जलौकाच्या ऐवजी सविष जलौका लावल्यास दंशस्थानी शोथ, कंडू, मुर्च्छा, ज्वर, दाह, च्छर्दि, मद ही लक्षणे दिसतात.

चिकित्सा:

- (1) 'महागद' पान, अंजन, नस्य (सु.क. 5/61-62) (महागद-त्रिवृत्त, लांगली, मधुयष्टी, हरिद्रा, मंजिष्ठा, अमलतास, पंचलवण, त्रिकटु)
- (2) आरोग्यवर्धिनी, 250 mg BD
- (3) हरिद्राखण्ड 2-5 gm BD
- (4) कैशोर गुग्गुल 500 mg BD
- (5) मंजिष्ठादी क्वाथ 40 ml BD

* जलौका दंशस्थानी कधी कधी बराच काळ रक्तस्त्राव (oozing) होत राहते.

चिकित्सा- अर्जुनचूर्ण, हरिद्राचूर्ण+स्फटिका ने व्रणाचे संधान कर्म करावे.

व्रण उपचाराकडे दुर्लक्ष झाल्यास, व्रण दुष्ट होण्याची शक्यता असते. अशावेळी Emergency treatment ची ही गरज पडू शकते.

Management according to modern medicine: -

- Antibiotic in septicemic condition.
- Inj.- T.T.

शृंगावचरण

गोशृंगाच्या साहयाने रक्तनिर्हरण करणे शृंगावचरण होय. यासाठी गोशृंग घेवून बाहेरच्या बाजूने काच/Blade च्या साहयाने घासून स्वच्छ गुळगुळीत केले जाते. शृंगाच्या टोकदार बाजूस छोटे छिद्र पाडून आतली बाजू पोकळ केली जाते. रूंद भाग त्वचेवर लावून निरूंद बाजूकडून आचुषणाद्वारे रक्तनिर्हरण केले जाते.

लांबी - 7 अंगुल (10 15 cm)

गोशृंग उष्ण, मधुर व स्निग्ध असल्याने वात दोष प्राधान्य रक्त दुष्टीमध्ये रक्तनिर्हरणासाठी उपयोगात आणले जाते. आजही खेडे गावांमध्ये परंपरेने वैदू लोक दुष्ट रक्ताच्या व्याधीमध्ये शृंगाद्वारे रक्तावसेचन करतात. मात्र सध्याच्या काळात वैद्य गण प्रत्यक्ष व्यवसाया मध्ये नगण्य प्रमाणात उपयोग करतात.

शृंगावचरण योग्य:

- (1) वात दुषीत रक्त
- (2) वात पित्तज रक्त व्याधी
- (3) सुकुमार
- (4) त्वक्रोगी

अयोग्य - कफानुबंधीत रक्त दुष्टी

पूर्वकर्म

- संग्रह - (1) गोशृंग
(2) Scalpel/Blade
(3) Cotton, Gauze
(4) मधुयष्टी, हरिद्रा चूर्ण

रुग्ण परिक्षण - रुग्णाचे सामान्य परीक्षण - Pulse, BP etc.

- BT, CT, Platelet.

रुग्ण सिध्दता - रुग्णाची विशेष सिध्दता करण्याची गरज नाही तरी चांगले गुण येण्यासाठी स्नेहन स्वेदन करणे हितकर आहे. अल्पमात्रेत स्नेह 3 दिवस आभ्यन्तरतः देवून चवथ्या दिवशी अभ्यंग व स्वेदन करावे.

प्रधानकर्म

5 व्या दिवशी सकाळी शृंगावचरण करावे. यासाठी सर्वप्रथम व्याधीस्थानावर Scalpel ने प्रच्छान करावे. प्रच्छान करतेवेळी Scalpel ने दुर (distal) ते जवळ (proximal), तीव्र गतीने काप घ्यावे.

रक्तस्रावीत झाल्याबरोबर त्वरीत श्रृंगाचा रूंद भाग प्रच्छान केलेल्या स्थानी लावून सारख्या दाबाने दाबून ठेवावे व अरूंद भागावर कापड ठेवून आचुषण करावे. आचुषणा ऐवजी निर्वात करण्यासाठी Syringe किंवा Pump यांचा देखील वापर करता येतो.

थोड्या वेळानंतर निर्वात करणे बंद करून श्रृंग बाजूला करावे.

पश्चात कर्म

(1) व्रण प्रक्षालन (त्रिफला क्वाथाने)

(2) मधुयष्टी, हरिद्रा व्रण बंधन

निरीक्षण: (1) अतिरक्तस्राव होत तर नाही याची काळजी घेणे.

(2) कंडू, दाह इ. लक्षणे

(3) शूल, कंडू प्रशामन

व्यापद व चिकित्सा:

(1) अतिरक्तस्राव, कंडू, दाह, दुष्ट व्रण

चिकित्सा: लाक्षणिक-आधी वार्णिल्या प्रमाणे.

अलाबू अवचारण

अलाबू (*Lagnaria vulgaris*) अर्थात लौकी (भोपळा), तुम्बी,

अलाबूद्वारे रक्त विस्त्रावण करणे म्हणजे अलाबू अवचारण होय.

अलाबू तिक्त, रूक्ष, तीक्ष्ण गुणात्मक असल्याने कफ दुष्ट रक्त निर्हरणासाठी योग्य आहे. अलाबूच्या मुखभागी छिद्र करून आतील मज्जा काढून घ्यावी. अलाबू आतून पोकळ केल्यानंतर त्यास वाळवावे व रक्तनिर्हरणासाठी उपयोगात आणावा.

अलाबू अवचारण योग्य (Indications):

(1) कफदुष्ट रक्ताचे व्याधी

(2) सुकुमार

(3) ग्रथीत रक्तावस्था

अयोग्य (Contra indications):

(1) पित्त दुषीत रक्त

पूर्वकर्म

(1) संभारसंग्रहः

- | | |
|--------------------|-----------------------|
| (1) अलाबू | (4) Gauze |
| (2) Scalpel, blade | (5) मधुयष्टी, हरिद्रा |
| (3) Cotton | (6) तैल |

(2) रुग्ण परिक्षणः सामान्य परिक्षण Pulse, BP इ. - BT, CT, Platelet

(3) रुग्ण सिध्दता: विशेष सिध्दतेची आवश्यकता नाही परंतु चांगल्या परिणामांसाठी 3 दिवस आभ्यंतर स्नेहपान करून 4 थ्या दिवशी अभ्यंग-स्वेदन करावे.

प्रधानकर्म

5 व्या दिवशी प्रातःकाली रुग्णास सुखासनात बसवावे, सर्वप्रथम Scalpel ने व्याधीस्थानावर प्रच्छान करावे. ज्यावेळी रक्तस्राव सुरू होईल त्याच वेळी कार्पास पिचू तेलामध्ये बुडवून त्यास जाळावे व अलाबूच्या अंतभागी ठेवावे व अलाबू मुख प्रच्छान केलेल्या स्थानी लावावे. अलाबू आडव्या स्थितीत पकडावे ज्यामुळे पिचू जळत असतांना अग्नी त्वचेस लागणार नाही. आतील पिचू अलाबूमध्ये ऑक्सीजन असे पर्यन्त जळेल व नंतर विझला जाईल. यामुळे आतमध्ये निर्वात (vacuum) निर्माण होवून, प्रच्छान केलेल्या स्थानातून रक्त विस्रावीत होईल. 10 ते 15 मिनिटांनंतर अलाबू काढून घ्यावा.

निरीक्षण - (1) शूल प्रशमन, कंडू प्रशमन

व्यापद - (1) चिकित्सकाच्या/रुग्णाच्या निष्काळजीपणाने अग्निदाह (Burn)

चिकित्सक - शतधौतघृत

पश्चातकर्म

- (1) व्रणप्रक्षालन
- (2) व्रण बंधन हरिद्रा/मधुयष्टी चूर्णाने.

घटीयंत्र अवचारण

घटीयंत्र छोटया आकाराचा मातीचा घट आहे. याचा उपयोग अलाबू सारखाच केला जातो.

योग्य (Indication):

- (1) पित्त दुष्टी युक्त रक्तज व्याधी
- (2) रक्त ग्रंथीत असलेल्या जागी (Congestion of blood)

ही क्रिया Cupping therapy सदृश्य आहे.

Cupping Therapy:

Cupping therapy is the method of using glass or plastic cups to create localized pressure by a vacuum either by heat or by suction. The surface of human body responds by bulging into the vacuum cup. Cupping therapy has been found in ancient records dating back 3500 years and is still used by many alternative medicine practitioners. This therapy is very much popular in china.

Healing aspect of cupping therapy is through the release of toxins in your body. The suction from the cups can penetrate deep into the tissue causing release of toxins. It triggers the lymphatic system, clears the blood vessels and activates the skin.

Indications:

- | | |
|------------------------|-----------------------------------|
| (1) Colds & influenza | (9) Dermatological disorders |
| (2) Headaches | (10) Stroke |
| (3) Abscess, cellulite | (11) Post surgery adhesions |
| (4) Arthritis | (12) Gynecological disorders |
| (5) Rheumatism | (13) Varicose veins |
| (6) High BP | (14) Stiffness of the back & neck |
| (7) Gastric pain | (15) InAthlets |
| (8) Liver disorder | |

सिराव्यध (Venesection)

रक्तमोक्षणासाठी सिरेतून सूचिकेद्वारे वेधन, रक्तनिर्हरण करण्याची क्रिया सिराव्यध होय. हया क्रियेची महती सांगतांना म्हटले आहे की सर्व शरीरात दुष्टी असल्यास सिराव्यधाने चिकित्सा करता येते. व्याधीमध्ये सर्वात जर दुष्य होत असेल तर ते 'रक्त' त्यामुळे सर्वात जास्त व्याधीचे अधिष्ठान रक्ताच्या आश्रयाने असते म्हणून 'रक्त विसृती' ही प्रथम चिकित्सा मानली आहे. सिराव्यध ही क्रिया धैर्यवान, बलवान रुग्णांमध्ये केली जाते. जेवढे इतर रक्तमोक्षणार्ह व्याधी आहेत त्या सर्व व्याधीमध्ये सिराव्यध करता येते. या व्यतिरिक्त खालील व्याधीमध्ये प्रामुख्याने सिराव्यध केले जाऊ शकते.

सिराव्यध योग्य (Indication):

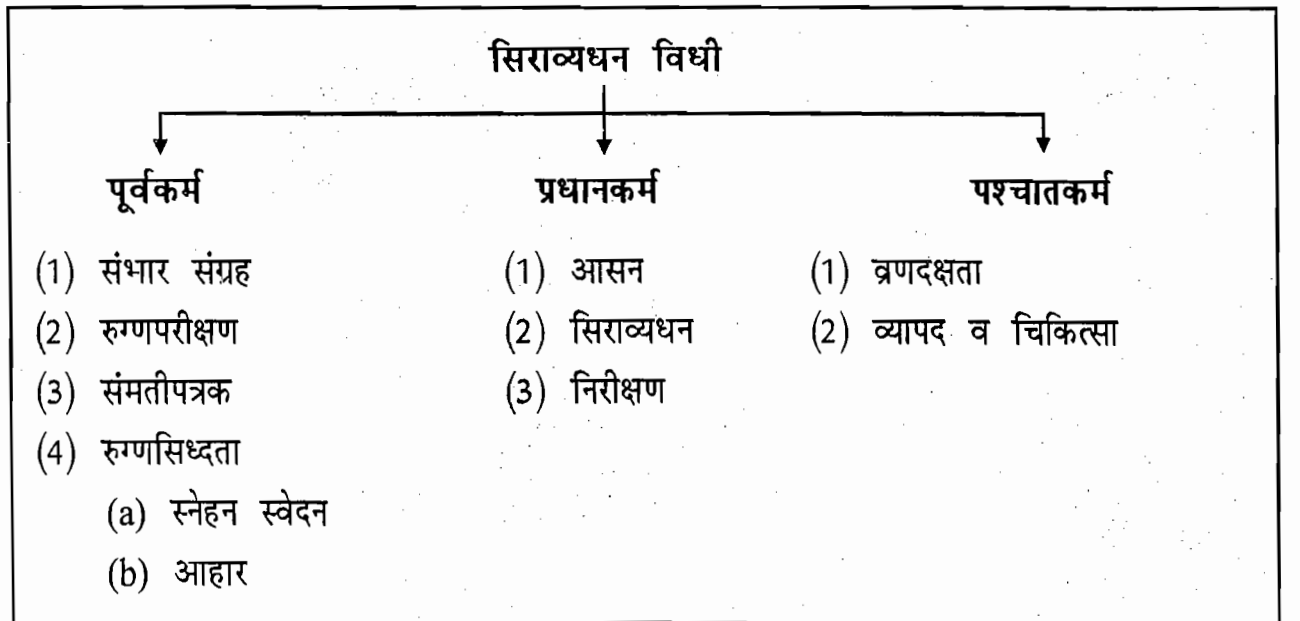
- | | |
|---|----------------------------------|
| (1) विसर्प (Herpes, Pemphigus) | (2) प्लीहा वृद्धी (Splenomegaly) |
| (3) विद्रधी (Abscess), अंतःविद्रधी (Appendicitis) | (4) गुल्म (Abdominal mass) |
| (5) अग्निमांद्य (Dyspepsia) | (6) ज्वर (Fever) |
| (7) मुखरोग (Diseases of mouth) | (8) नेत्ररोग (Diseases of eye) |
| (9) मद (Intoxication) | (10) तृष्णा (Excessive thirst) |

- | | |
|---|-----------------------------------|
| (11) लवणास्यता (Salty taste) | (12) कुष्ठ (Skin diseases) |
| (13) वातरक्त (Peripheral vascular disease/Gout) | (14) रक्तपित्त (Bleeding) |
| (15) कटू उद्गार (Pungent eructation) | (16) अम्लोद्गार (Sour eructation) |
| (17) भ्रम (Vertigo) | |

सिराव्यध अयोग्य (Contraindication):

- | | |
|--|--|
| (1) बाल (Child) | (2) वृद्ध (Old age) |
| (3) रूक्ष (Dehydrated) | (4) भीरू (Feared) |
| (5) क्षतक्षीण | (6) परिश्रांत |
| (7) अध्वकलान्त (जास्त पायी चालल्याने थकलेले) | (8) मद्यपी (Alcoholic) |
| (9) स्त्री कर्षित (अत्याधिक मैथूनाने थकलेले) | (10) शोधीत (वमन, विरेचन, आस्थापन दिलेले) |
| (11) अनुवासीत | (12) जागरीत (न झोपलेले) |
| (13) गर्भिणी (Pregnant) | (14) पक्षाघात (Hemiplegic) |
| (15) प्रवृद्ध ज्वर (Hyper pyrexia) | (16) आक्षेपक (Convulsive disorder) |
| (17) कास, श्वास, शोष रोगी (Cough, Breathless ness) | (18) उपवासीत, पिपासीत |
| (19) मुच्छा (Syncope) | |

सिरोवेधन अयोग्यकाल: हवा अति थंड, अति उष्ण अथवा अत्यंत जोराचा वारा वाहत असतांना



पूर्वकर्म

(1) संधार संग्रहः

- (1) Needle No. 18, Scalp vein No. 20 - आवश्यकतेनुसार
- (2) IV Set (IV set चा Needle कडच्या बाजूने वरील बाजूस 20 सेमी चा तुकडा करावा. Regulator यात राहिल अशी व्यवस्था ठेवावी.)
- (3) BP Apparatus & Tourniquet
- (4) Bandage, cotton
- (5) Kidney tray, measuring glass
- (6) Disinfectant
- (7) सिरावेध रक्तस्राव वाढविणारी द्रव्य
- (8) रक्तस्कंदन करणारी द्रव्य

(2) रुग्णपरीक्षणः

- सामान्य परीक्षण weight BP, Pulse
- BT, CT, Platelet इ. HIV

रुग्ण रक्तमोक्षणासाठी योग्य आहे याची पुनः तपासणी करून घ्यावी.

(3) **संमतीपत्रक (Written consent):** रुग्णास पंचकर्मातील या क्रियेमुळे होणाऱ्या लाभ व व्यापदाची जाणीव करून द्यावी व रीतसर त्याला समजणाऱ्या भाषेत संमतीपत्रक भरून घ्यावे त्याची/त्याचे नातेवाईकांची सही/अंगठा घ्यावा.

(4) रुग्णसिध्दताः

- (1) **स्नेहन-स्वेदन** - रुग्णास आभ्यन्तर स्नेहपान अल्प मात्रेत (30 मिली) व्याधीनुसार 3 दिवसांपर्यन्त करावे. त्यानंतर रुग्णास अभ्यंग व स्वेदन करावे. प्रत्येकच व्याधीत स्नेहपानाची गरज पडेल असे नाही. परंतु उत्तम परिणामांसाठी स्नेहपान, अभ्यंग, स्वेदन करणे हितकर असते. आत्यायीक अवस्थेत याची गरज नाही.
- (2) **आहार** - रक्तमोक्षणाच्या 45 मिनिटांपूर्वी रुग्णास लघु आहार घेण्यास सांगावे. अन्न सेवनानंतर आहार रसा बरोबर दोष रस रक्तानुगत होतात. त्यामुळे या काळात आम/दोष बाहेर काढणे सोपे होते.
अन्न सेवनानंतर लगेच सिराव्यध करू नये कारण यावेळी शाखागत रक्तस्राव कमी असतो. त्यामुळे दोष निर्हरण नीट होत नाही.

प्रधानकर्म

स्नेहन स्वेदन केलेल्या रुग्णाचे रक्तमोक्षणासाठी प्रकाशयुक्त खोलीमध्ये आणून त्यास धैर्य द्यावे व विश्वासात घ्यावे कारण बऱ्याचदा काही रुग्ण रक्त पाहिल्याबरोबर मूर्च्छित होतात किंवा रुग्णाच्या डोळ्यावर पट्टी बंधन करावे.

रुग्ण आसन: रुग्णास सामान्यतः उत्तान अवस्थेत टेबलवर लेटवून विस्त्रावण करणे सोयीचे असते. सिरा व्यवस्थीत दिसणे व सिरा उत्थान अवस्थेत येणे हे महत्त्वाचे असते.

- (1) **हस्तसिरावेधन (for ex. Elbow, wrist, dorsum of palm)** - अंगठा आतमध्ये आवळून उत्तान अवस्थेत (Supine position) हात बाहेरच्या बाजूला विस्तारीत (Extended) करावा किंवा बसलेल्या अवस्थेत.
- (2) **पादसिरावेध** - बसलेल्या अवस्थेत रुग्णास सामान्य अवस्थेत पाय ठेवण्यास सांगावे किंवा दुसरा पाय थोडा संकुचित करून वर उचलण्यास सांगावे ज्यामुळे सिरा उन्नत दिसतील.
- (3) **मन्यागत** - लेटलेल्या स्थितीमध्ये उशी (pillow) मानेच्या खाली ठेवून रुग्णाचे डोके त्यास आरामदायक व सिरा उन्नत होतील अशा स्थितीत ठेवण्यास सांगावे.

खरेतर चिकित्सकांनी त्यांच्या कौशल्यानुसार रुग्णास आरामदायक व वेध सिरा उन्नत होतील अशा पध्दतीने आसनस्थ करावे.

सिराव्यधन:

- (1) BP यंत्राच्या Cuff/Tourniquet ने सिरावेध करण्याच्या स्थानापासून 3 ते 4 इंच अंतरावर बांधावे. पंपाच्या साह्याने दाब आवश्यकतेनुसार कमी अधिक करता येईल ज्याद्वारे सिरांवरचे बंधन आवश्यकतेनुसार कमी अधिक करता येऊ शकेल.
- (2) सिराव्यध स्थान निर्जंतुकी करणाऱ्या द्रव्यांनी (Spirit/Betadine) यांनी व्यवस्थीत स्वच्छ करून घ्यावे.
- (3) सिरा अधिक विस्तारीत उत्तानासाठी चिकित्सकाने तर्जनीच्या साह्याने वेध सिरेवर ताडन करावे.
- (4) यानंतर Needle द्वारे सिरेचे व्यधन करावे, यावेळी Needle उर्ध्व किंवा अधो किंवा तीर्थक गतीने नसावी. सिरेच्या दुसऱ्या भिंतीला भेदन होणार नाही अशाप्रकारे काळजीपूर्वक वेधन करावे व रक्त बाहेर येऊ लागल्यास सिरा वरील दाब थोडा कमी करावा. अशा प्रकारे सिरेचे व्यधन झाल्यानंतर रक्त पात्रात जमा करावे व निरीक्षण करावे.
- (5) रक्त निर्हरणाच्या वेळी दाब फार कमी किंवा फार अधिक नसावा. रक्त प्रवाह अधिक किंवा अल्प नसावा. रुग्णास दुसरे व्यापदात्मक लक्षण उत्पन्न होत नाही याची काळजी घ्यावी.

निरीक्षणः

- (1) रक्ताच्या वर्णाचे निरीक्षण करावे. सुरूवातीस रक्त अल्प कृष्ण छटा (Blackish Red) असणारे निघते, जसे जसे रक्त निर्हरण होते त्याबरोबर रक्तातील काळेपणा कमी होऊन उजळ होत जातो. सुरूवातीला दुष्ट रक्त विस्त्रावीत होत असते.
- (2) कफ दुष्ट रक्ताच्या अवस्थेत रक्त अधिक घन (Thick) असते व पिच्छिल (Sticky) असते. यामुळे रक्त विस्त्रावणाच्या वेळी स्कंदन लवकर झाल्याने Needle अवरोधीत होण्याची शक्यता असते.
- (3) रक्त निर्हरणाची मात्रा सम्यक लक्षणां वरून ठरवावी. रक्ताचा वर्ण कृष्ण वर्णा पासून उजळ होत असल्यास रक्त निर्हरण थांबवून घ्यावे. आयुर्वेद ग्रंथानुसार निर्हरणाची मात्रा मध्याच्या काळानुसार अधिक आहे. त्यामुळे अधिकाधिक मात्रा WHO च्या नियमानुसार 250 मिली गृहीत धरावी. प्रत्यक्षात मात्र व्याधीसाठी एवढ्या मात्रेत रक्त निर्हरण केले जात नाही. Blood donation च्या नावाने स्वस्थ व्यक्तीने स्वास्थ्यासाठी एवढी मात्रा निर्हरण करणे योग्य आहे.

पश्चातकर्म

- 1) व्रण दक्षता: सम्यक लक्षण/मात्रा निर्हरणानंतर Needle बाहेर काढून पिचू वेधन स्थानावर दाबून धरावे ज्यामुळे रक्त स्राव बंद होईल.

सम्यक योग लक्षणोः (सु.सू. 14/32-33)

- (1) स्वयंमेव अवतिष्ठते - स्वतः स्राव बंद होणे.
- (2) लाघवता - शरीरामध्ये हलकेपणा
- (3) वेदना शमन
- (4) व्याधी प्रशमन
- (5) मन प्रसन्नता

2) व्यापद व चिकित्सा:

अयोगः (सु.सू. 14/15)

- (1) शोफ (Inflammation)
- (2) दाह (Burning)
- (3) राग (Redness)
- (4) पाक (Abscess Formation)
- (5) वेदना (Pain)

तद्युष्टंशोणितम् अनिर्हियमाणं शोफ दाह राग पाक वेदना जनयेत् । सु.सू. 14/29

(The above symptoms occur in thrombophlebitis)

अतियोगः (सु.सू. 14/30)

- | | |
|-------------------------------------|-----------------------------|
| (1) शिरोभिताप (Headache) | (2) आन्ध्य (Blindness) |
| (3) तिमीर (Refractive error) | (4) अधिमंथ |
| (5) धातुक्षय (Loss of fluid, dhatu) | (6) आक्षेपक (Seizures) |
| (7) पक्षाघात (Hemiplegia) | (8) एकांगरोग (Paralysis) |
| (9) तृष्णा (Thirsty) | (10) दाह (Burning) |
| (11) हिक्का (Hiccup) | (12) श्वास (Breathlessness) |
| (13) पाण्डू (Anemia) | (14) मृत्यु (Death) |

अयोग किंवा अतियोग होण्याची कारणे-

- (1) रुग्ण भयभीत झाल्यास
- (2) बंधन (Tourniquet) शिथिल झाल्यास
- (3) शस्त्र (Needle) अनुकुचीदार नसल्यास किंवा block during double prick
- (4) रुग्णाने अत्याधिक भोजन केलेले असल्यास
- (5) वेग निर्धारण केलेला असल्यास

अयोग चिकित्सा: रक्तस्राव होत नसल्यास इलायची, कर्पूर, कुष्ठ, तगर, देवदारू, विडंग, चित्रकुट, आगारधूम, हरिद्रा, अर्क अंकुर, करंज यातील मिळणाऱ्या औषधांचे चूर्ण करून सैधव लवण व तिल तैल यांच्या सोबत मिश्रीत करून व्रणमुखावर घर्षण करावे.

अतियोग चिकित्सा: अति रक्त स्रावणासाठी संधानकर्म, स्कंदन, पाचन व दहन कर्म करावे.

(1) खालील औषधींचा व्रणमुखावर लेप करावा.

- | | | |
|------------|--------------|-------------------|
| (1) लोध्र | (2) यष्टीमधू | (3) प्रियंगु |
| (4) पतंग | (5) गैरीक | (6) सर्जरस |
| (7) लाक्षा | (8) रसांजन | (9) शाल्मली पुष्प |
| (10) शंख | (11) यव | (13) माष |

(2) शीतल भोजन, शीत परीषेक, शीत गृह (AC Room असल्यास)

(3) क्षारकर्म

(4) अग्निकर्म (Cautery)

(5) दूध, मूग, युष

सिरावेधन स्थान (Sites of venesection):

| व्याधी | स्थान | सिरा (Veins) |
|------------------------------------|--|--|
| शिरोरोग | ललाट (forehead) | Supratrochlear vein |
| नेत्ररोग | अपांग (outer canthus of eye) उपनासा (near nose) | Middle temporal vein or Facial vein (angular) vein |
| कर्णरोग | Pinna | Superficial temporal vein (Anterior aspect) Posterior auricular vein (Posterior aspect) |
| नासारोग | नासाग्राच्या वर | Vein of ala nasi |
| पिनस (Rhinnorhea) | नासा, ललाट | Supratrochlear vein |
| मुखरोग | जिह्वा ओष्ठ हनु | Deep lingual vein Superior and inferior labial vein Facial/retro mandibular vein |
| ग्रंथी (Tumors above neck) | ग्रीवा कर्ण शंख शिरोभागी | - Ext. Jugular vein - Post. auricular, ext. jugular vein - Superficial temporal vein - parietal or frontal of superficial temporal or occipital vein. |
| उन्माद | उरोभागी अपांग ललाट | - Middle temporal vein - Supra trochlear vein |
| अपस्मार | हनुसंधी भूमध्य | - Facial vein or retromandibular vein - Supratrochlear vein. |
| प्रवाहिका (सशूल) | श्रोणी (2 अंगुल सोडून) | |
| शुक्र, मेदुरोग | मेदुर (Penis) | - Dorsal vein of penis |
| * गलगंड | उरू | - Long saphenous vein |
| गृध्रसी | जानुसंधीच्या 4 अंगुल वर/खाली | - Long saphenous vein |
| * अपची (Cervical lymphadenitis) | इंद्रबस्ति (2 अंगुल खाली) | - Short saphenous vein |

| व्याधी | स्थान | सिरा (Veins) |
|--|--|---|
| क्रोष्टुकशिर्ष पाददाह/खुड (RA) विपादिका (Chilblains of feet) चिप्प (Onycho graphosis) वातकंटक (Pain at heels, calcaneal spur/plantar fascitis) हर्ष (Pins & needles sensation) | गुल्फसंधी (4 अंगुल वर) क्षिप्र मर्माच्या 2 अंगुल वर पादांगुल व नजीकच्या अंगुल यांच्यामधील | - Long saphenous vein Dorsal venous arch of foot |
| विश्वाची (Pain in lower end of the hand) (Tennis elbow, carpal tunnel syndrome, etc.) | कूर्परसंधीच्या 4 अंगुल वर/खाली | Cephalic vein |
| कक्षाविद्रधी | पार्श्व, कक्षा | |
| पार्श्वशूल, कक्षा * तृतीयक (Tertian fever) | स्तनमध्य दोन्ही अंसच्या मध्य (between shoulder joint) | |
| * चतुर्थक (Quotidian fever) | स्कंधाच्या अधभागी | |

* व्याधीमध्ये आचार्यानी रक्तमोक्षणासाठी सांगितलेली स्थाने यांचा समन्वय निश्चितपणे लावता येत नाही यासाठी अधिक संशोधनाची गरज आहे.

वरील स्थानानुसार वेधन केल्यास उपशय मिळते. परंतु ज्या स्थानी सिरा उन्नत दिसत नसतील किंवा वेधनासाठी सम्यक नसतील अशावेळी नजीकची सिरा (मर्मस्थानसोडून) वेधन करावे.

गृध्रस्थापिव विश्वाच्यां यथोक्तानामदर्शने।

मर्महीने यथासन्ने देशेऽन्यां व्यधयेत् सिराम्।।

अ.ह.सू. 27/17-18)

रक्तमोक्षण कार्मुकता (Mode of Action of Raktamokshan)

रक्तमोक्षण ही अर्धचिकित्सा म्हटली आहे. याचा अर्थ रक्तमोक्षणाचे स्थान चिकित्सेमध्ये तेवढेच महत्त्वाचे आहे. सुश्रुत आचार्य सिरांना 'सर्ववह सिरा' म्हणतात. सिरांमध्ये रक्तासोबतच कफ, पित्त, वात हे सर्वच दोष वाहत असतात. तसेच रक्तासोबत रसही वाहत असतो त्यामुळे रस दुष्टी असो की इतर दोषांची दुष्टी असो रक्ताच्या आशयाने दुष्टी असतेच. त्यामुळे रक्तमोक्षणाने एक प्रकारे दोषांचे शोधन होते.

आचार्यानी हे स्पष्ट केले आहे की शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष अशी चिकित्सा करूनही जर व्याधीचे शमन होत नसेल तर रक्तप्रदोषज व्याधी समजून रक्तविस्त्रावण करावे. (शीतोष्ण स्निग्ध व्यधयेत सिराम्।। अ.ह.सू. 27/4-5)

निसर्गतः शरीरामध्ये मल बाहेर काढण्याची प्रवृत्ती असते. ज्यावेळी रक्तदुष्ट होते त्यावेळी ते स्वतःहून बाहेर निघण्याचा प्रयत्न करीत असते, उदा. Epistaxis. शरीरामध्ये बाकीच्या मलांसाठी निघण्यासाठी मार्ग आहे. तसे रक्तासाठी नसल्याने दुष्ट रक्त स्वतःचे मार्ग तयार करते. त्यामुळे चिकित्सकांनी दुष्ट अवस्थेत ते मार्ग रक्तमोक्षणाने करून दिल्यास दुष्ट रक्त बाहेर येऊन रोगोपशमन होण्यास मदत होते. हिप्पो सारखे प्राणी स्वतःहून रक्तमोक्षण करून घेतात ते याचेच उदाहरण आहे.

वमन, विरेचन हे शोधन कर्म कफ, पित्तावर उत्तम आहे. वमन विरेचनाने कोष्ठातील दोष काढता येतात. दोष शाखेत गेल्यास रक्तदुष्टी करतात म्हणून शाखेतून दोषांचे शोधन करण्यासाठी रक्तमोक्षण उत्तम कार्य करते. असेही पित्त हे रक्ताच्या आश्रयाने असल्यामुळे पित्तदुष्टीची चिकित्सा रक्तमोक्षणाने सौकर्य होते. बस्तिमुळे जशी कोष्ठ शुद्धी होते व बस्ति केवळ वातस्थानातीलच नव्हे तर पित्त व कफ यांनाही स्वस्थानात ठेवण्यासाठी सहाय्य करते तसे रक्तमोक्षणाने प्रथम शाखा शुद्ध होवून कोष्ठावरही इष्ट परिणाम पडतो.

शरद ऋतूमध्ये पित्तप्रकोप होतो, आश्रयाआश्रयी संबंधाने रक्तप्रकोप होवून रक्तदुष्टी होते त्यामुळे शरद ऋतूमध्ये रक्तमोक्षण विरेचनासोबतच श्रेष्ठ चिकित्सा म्हटली आहे. त्यामुळे कितीतरी रक्त प्रकोपज व्याधीचे शमन करता येते. स्त्रियांना वयाच्या पित्त काळात निसर्गानेच रजप्रवृत्तीच्या रूपाने रक्तमोक्षण दिले आहे. यामुळे रजःनिवृत्तीच्या (Menopausal) काळी पित्तप्रधान उदा. क्रोध, मानसिकताण इ. लक्षणे दिसतात अशावेळी रक्तमोक्षणाने यावर उत्तम चिकित्सा केली जाऊ शकते.

चय एवं जयेत दोषम्' यानुसार चय अवस्थेतच दोषांना जिंकणे आवश्यक आहे. दोषपाकापेक्षा धातुपाक अधिक घातक असतो. धातुपाकाची अवस्था येण्यापूर्वीच रक्तमोक्षण केल्यास प्रकोपावस्था येत नाही त्यामुळे 'विद्रधी अचिरोत्थं असं विसात्रः' याच न्यायाने विद्रधी अंतर्विद्रधीमध्ये रक्तमोक्षण प्रमुख चिकित्सा वर्णिली आहे. याच न्यायाने Appendicitis मध्ये होणारे शूल रक्तमोक्षणाने कमी होते.

अग्रे स्रवति दुष्टासं कुसुम्भादिव पीतिका। अ.ह.सू. 27/37, ज्याप्रमाणे कुसुम्भाच्या फुलातून आधी पीतस्राव होतो तसेच रक्तमोक्षणामध्ये सुरूवातीस दुष्ट रक्तच बाहेर येते. त्यामुळे स्थानाचा विचार न करता कोणत्याही स्थानातून रक्तमोक्षण केले तर आधी दुषीत रक्तच बाहेर पडणार.

यकृत प्लीहा हे रक्तस्थान आहे. यकृतव्याधी, मद्यपान, ज्वर इ. मध्ये रक्तक्षोभ होतो. त्यामुळे यकृत प्लीहा वृद्धीवर रक्तमोक्षण केले जाते. यामुळे यकृतावरील ताण कमी केला जाऊन यकृताचे कार्य सुधारले जाते. रक्तमोक्षण हे शरीरावरील ताण कमी करण्याचे कार्य करते. रस व रक्तातील दोष काढण्याचे कार्य रक्तमोक्षणाने होते. वायू वृद्धीने किंवा आमामुळे वायू अवरोधीत होतो व रसरक्ताचे मार्ग अवरोधीत होतात. त्याचाच परिणाम संधीशूल होणाऱ्या व्याधीची सम्प्राप्ती घडण्यात होते. उदा. आमवात,

क्रोष्टुकशीर्ष. रक्तमोक्षणाने अवरोधीत वायू व दुष्ट रक्त काढल्याने वायू मार्गस्थ होवून सम्प्राप्ति विघटनाने रूजा शमन होते. रक्तमोक्षणाने अशुद्ध रक्त बाहेर पडते पण त्याही आधी अवृद्ध वायू त्याच्या चल व लघु गुणाने बाहेर पडतो त्यामुळे तात्काळ शूल प्रशमन होते. स्थौल्य, प्रमेह, हृदरोग यावरही अशाच प्रकारे रक्तमोक्षण उपयोगी ठरते.

रक्तमोक्षणाने संतर्पणोत्थ शारीरिक स्थिती हलकी होते व त्यासोबतच मानसिक प्रसन्नता वाढते. त्यामुळे रक्तमोक्षण हे उत्तम Tranquilliser म्हटले जाते व मानसिक व्याधीची चिकित्सा म्हणून उपयोग केला जातो.

Modern View:

Dr. M. Lous and others were done lot of work on bloodletting on pneumonitis, erysipelas, skin diseases found good result during 1832.

Bloodletting therapy has been used for its pain relieving and heat reducing action. The increase in HSP-70 (Heat Shock Protein70) has been proven to promote the survival rate of cells. HSP-70 involved to regulate lipopolysachhrade induced cytokine production. This protein plays a role of mitigating the adverse reaction of endotoxin during infection or the other pathological stresses.

Bloodletting therapy leads to remarkable increase of local HSP-70 and reduction of Interleukin-1. It is effective in adjusting disorders of immune functions. This process activate the production of HSP-70 and inhibit the section of IL-1 [Yuxing lin *et al*, effect of Bloodletting therapy on HSP-70 & IL-1. A journal for physicians by physicians Vol-16#3]

By the structure and use of the spleen, use of spleen is to hold redundant blood, or to afford it a temporary asylum, when the blood vessels are excited. Spleen some time obstructed by the blood, that it cannot perform the function in which case bloodletting is indicated. Hence it is useful in fever. [From Rush's Medical Inquiry & observation Vol-4, Philadelphia 1815]

During bloodletting, the antihistamines liberate in the blood. As the histamines are responsible for allergy, the symptoms like itching, patches diminished by bloodletting due to antihistamines liberations.

Hirudin A-65, residue anticoagulant proteins in leech prevents the clotting of blood, which has diuretic and antibiotic properties (MS & D Research Lab Pensalvennia). The leech has 'calin' which prevents blood coagulation, "Destabilase" a endo-epsilon (gamma-Glu) lys-iso peptidase protein, inhibits arterial thrombus formation by inhibition of induced and spontaneous platelet aggregation. Its saliva has anesthetic effect which is responsible for pain insensitivity. The action of leech by its biological substances by normalization and improvement of capillary circulation, expressed anti-inflammatory effect, anti-stressful and

adaptogene effects, immunostimulating and immunomodulating effects, antibacterial effect and improvement of an endocellular exchange and realization of these mechanism has both local and general character.

Biological active substances containing in saliva glands of medicinal leeches can restore blood circulation in the nidus of inflammation, remove an ischaemia of organs, provide capillary tissue exchange and due to it can carry out of the transport of chemical drug into the Indus of inflammation, improve immune protection and regeneration of tissue.

Probably the effect of "rejuvenation" which may be noticed after leech therapy the appearance of shine in eyes, the improvement of skin elasticity, the appearance of luster, the disappearance of the mask of tiredness on patients faces. It is possible by mechanism of increasing vascularization of skin and internal organs. Probably, due to the action of girudin and gialuronidaze (the factor of penetration) improving not only blood circulation in organs-targets, but in other organs and tissues due to the best capacity of capillary-tissue exchanging and so on. The using of leeches promotes the increasing of local immunity well (www.leeches.biz/hirudotherapy.htm)



9

PHYSIOTHERAPY

Definition: Physiotherapy is the primary health care that promotes wellness, mobility and independent functions. It helps in rehabilitation to overcome movement disorders or musculoskeletal system. Physiotherapy is helpful from birth to old age.

History : In 460 BC Hippocrates and later Galenus reported as first practitioner of physiotherapy. Physiotherapy was widely used in orthopedic in 18th century in Gymnastic to treat gout like diseases by exercise of joints. As per the latest documented origin of physiotherapy as professional is per Henrik Ling who was father of Swedish gymnastics who founded the Royal Central Institute of gymnastics in 1813 for massage, manipulation and exercise.

In 1887 physiotherapist were given official registration for Sweden's national board of Health and Welfare. The first research paper on physical therapy was published in march 1921 is PT review.

Common Treatment Methods :

- 1) Exercise to improve mobility and strengthen muscles.
- 2) Joint manipulation and mobilisation to reduce pain and stiffness.
- 3) Muscle Re-education to improve control.
- 4) Airway clearance techniques and breathing exercise
- 5) Soft tissue mobilisation (Massage)
- 6) Acupuncture
- 7) Hydrotherapy

Approach of Physiotherapy : There are wide range of techniques in physiotherapy some of there are as follows.

1. **Movement and Exercise :** Therapeutic exercise designed to strengthen the affected body part. They need to be repeated regularly for a number of weeks. There are evidence to show physical exercise can help to manage and prevent more than 20% different health condition. There are 50% lower risk of developing silent killer diseases like coronary heart diseases (CHS) & CVE (Cerebrovascular episodes, diabetes, cancer).
2. **Manual therapy :** Manual therapy involves using the hands to mobilise joints and soft tissues. It-

- improves blood circulation
- helps to drain fluid from parts of the body
- improves movement of the joints
- helps to relieve pain

It is beneficial in musculoskeletal disorders & pain.

3. **Transcutaneous Electrical Nerve Stimulation (TENS)** : A Battery operated machine generated electric current passes to the affected area by two electrodes. The tingling sensation produced due to current block the pain signals.
4. **Ultrasound (Ultrasonic therapy)** : High frequency sound waves can treat deep tissue injuries by stimulating blood circulation and cell activity. This is helpful in muscle spasm and pain.
5. **Cryotherapy** : Ice is applied over the affected part of the body. This is helpful in pain and muscular spasm.
6. **Short wave diathermy (SWD)**: It is operated by machine which passes high frequency alternating current and gives the relief. It is useful in inflammations degenerations of the joint and relieves the pain.
7. **Hydro therapy (Aquatic therapy)** : In hydrotherapy the exercises are done under the water usually a warm, shallow swimming pool or special hydrotherapy pool. It is often used with children adults having physical and learning disabilities.

The movement can be performed more easily under water than air due to buoyancy in water eliminates gravity.

Infrared Therapy

Infrared radiation is type of electromagnetic therapy which range for $6.78\mu\text{m}$ to 1 mm wavelength. Effects of infrared modalities are primarily superficial and affect cutaneous blood vessels and nerves. It is beneficial in subacute condition to reduce pain and inflammation. Infra red is more useful than visible radiation of heating because body absorbs more, penetration depth of infrared is more.

Device :

150-250 wat infrared lamp is a device

Indications :

1. Acute and subacute inflammation
2. Acute muscle train
3. Ligamental sprain

4. Acute and chronic pain
5. Acute swelling
6. Bursitis
7. Tenosynovitis
8. Tendinitis
9. Muscular spasm
10. Acute contusion

Contraindication :

1. Acute musculoskeletal condition
2. Impaired circulation
3. Peripheral muscular disease
4. Skin anaesthesia

Mode of Action :

Due to heat, vasodilatation occurs which increase O₂ supply, nutrients and help to eliminate CO₂ and metabolic waste.

Procedure:

150-250 wat infrared lamps are available covering the area 20x30 cm eg. shoulder back, elbow, neck with focusing beam. The distance from the lamp should be 8' to 24' During the procedure lamp should be moved regularly to avoid burn, the heating should be tolerable to the patient. Use of infrared lamp should be 5-20 min. for session, 1-6 times per day

Ultra Sound Therapy

Ultra sound is based on biological effect of ultrasonic oscillations which are not electric.

Ultrasound (US) is form of mechanical energy which is not electrical energy but it falls into electrophysical group. US refers to mechanical vibrations in the form of sound wave which is passed to the material (targeted tissue), which causes oscillation in the molecular vibration in the tissue resulted into heat generation and produce thermal changes in the tissue.

Audible sound wave ranges from 20Hz to 20000Hz frequency. Beyond this upper limit, the mechanical vibration is known as ultrasound. This ranges from 1 to 3 MH (1MHz = 1 million cycles per second).

An ultrasound (US) therapeutic system consists of two parts

1. Generator of High frequency electric current
2. Application probe. the ultra sound sources consists of piezoelectric transducer which converts electrical energy into crystal into mechanical vibration (sound waves). Begins at $1.0\text{w}/\text{cm}^2$ and increase intensity until the patient feels heat.

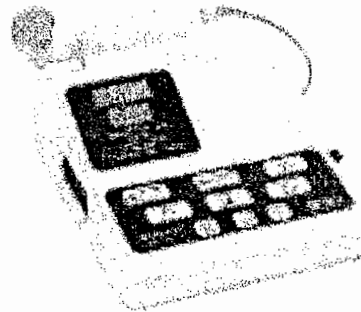
Indications :

1. Chronic joint pain
2. muscle and neural disease
3. Varicose ulcers
4. Spasm
5. Subacute and chronic inflammation



Contraindication :

1. Pregnancy
2. Malignancy
3. Bleeding
4. Hemophilia
5. application over - eye, cardiac area in advanced heart diseases or where pacemaker implanted.



Procedure :

US is performed with ultrasonic machine that has ultrasound transducer. A small amount of gel is applied over the target part and slowly move the head in circular direction. Different stages and settings can be managed on the ultrasound machine to control depth of penetration.

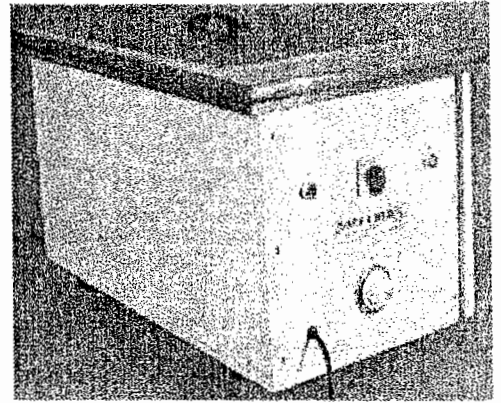
Wax Bath

Wax bath is a therapy that involves painting of hands, feets, elbow by heated wax or wax with liquid paraffin to relieve pain and treat muscle injury.

Body releases the endorphins at the site of pain for relief, the pain will continue if the path is blocked and endorphin cannot get through. Endorphins travel through the blood, airway and subcutaneous layer. The subcutaneous area is accessible through many tiny holes in the skin. Gradually raising the temperature of the skin around the affected area warms the subcutaneous layer and triggers a gland at the base of the brain to release endorphins at the site of the affected area to relieve pain.

Indication :

1. Sport related injuries
2. Fibromyalgia
3. Bursitis
4. Tendinitis
5. Rheumatism
6. Arthritis

**Procedure :**

Wax is heated in a container or specially designed instrument. The temperature is maintained by regulator. When the wax is melted, a hand, foot or elbow dip in the wax or the injured part should be patted by brush and allowed to air-dry for two minutes, with this procedure repeated for five to ten times according to severity.

After there are enough wax layers, the body part should be wrapped and left stand for 15 minutes. Once hardened the wax is ready to peel off.

The precautions should be taken that patient can bear the temperature and avoid burn.



BIOMEDICAL WASTE

BioMedical waste means infectious waste or medical waste. It consists of solids, liquids, sharps, generating during the diagnosis, treatment, research or production of biological products. It includes syringes, needles live vaccines, lab samples, body parts, bodily fluids, excretion, drugs or other pharmaceutical products. It must be properly managed and disposed off to protect the public health from dangerous hazards. If the waste is not destroyed by burning at the prescribed temperature of $1150 \pm 0^\circ\text{C}$, it produces Persistent Organic Pollutants like dioxins and furans. The waste products are to be burned rather than burring under the land.

The Biomedical Waste Management & Handling Rules, 1998 came into force on 1998. Central Govt. notified these rules for the management and Handling of biomedical wastes generated from Hospitals, clinics, other institutions under section 6, 8 & 25 of EP Act, 1986. As per rule it is mandatory for all hospital, clinics practicing Allopathic, Ayurvedic, homeopathic medicines to register with civic body. Under IC-2 (infection control) for accreditation to Ayurved Hospital by NABH it is necessary to manage BioMedical waste.

The Segregation, Packaging, Transportation and Storage shall be done as under:-

1. Bio-medical waste shall not be mixed with other wastes.
2. Bio-medical waste shall be segregated into containers/bags at the points of generation in accordance with Schedule II
3. The containers shall be labeled according to Schedule III.

The State Pollution Control Board is the Authority for grant of Authorization.

For violating the provisions of these Rules, the Board can file a complaint under section 15 of EP Act which provide for imprisonment which may extend upto 5 years with fine. The Board can also have directions for closure of any defaulting hospital/clinic/ institution under section 5 of EP Act as per powers delegated by the Central Govt.

HOSPITAL WASTES

| | |
|--|---|
| Non Infectious | Infectious |
| Biodegradable Non Biodegradable Non Sharps | Sharps |
| Solids | Liquids |
| Incinerable | Non Incinerable (Autoclave, Microwave) |

SCHEDULE I
(See Rule 5)
CATEGORIES OF BIO-MEDICAL WASTE

| OPTION | WASTE CATEGORY | TREATMENT & DISPOSAL |
|---------------|---|---|
| No. 1 | Human Anatomical Waste (human tissues, organs, body parts) | Incineration / deep burial |
| No. 2 | Animal Waste(from hospitals, animal houses) | Incineration / deep burial |
| No. 3 | Microbiology & Biotechnology Waste (wastes from laboratory cultures) | Local autoclaving / microwaving / incineration |
| No. 4 | Waste Sharps (needles, syringes, scalpels, blades, glass, etc. that may cause puncture and cuts) | Disinfection by chemical treatment / atoclaving / microwaving and mutilation / shredding |
| No. 5 | Discarded Medicines and Cytotoxic drugs(wastes comprising of outdated, contaminated and discarded medicines) | Incineration / destruction and drugs disposal in secured landfills |
| No. 6 | Solid Waste (Items contaminated with blood, body fluids including cotton, dressings, soiled plaster casts, lines, beddings, other material contaminated with blood) | Incineration / autoclaving / microwaving |
| No. 7 | Solid Waste (wastes generated from disposable items other than the sharps such as tubings, catheters, intravenous sets etc). | Disinfection by chemical treatment / autoclaving / microwaving and mutilation / shredding |
| No. 8 | Liquid Waste (waste generated from laboratory, washing, cleaning, house keeping and disinfecting activities) | Disinfection by chemical treatment and discharge into drains. |
| No. 9 | Incineration Ash(ash from incineration of any BMW) | Disposal in municipal landfill |
| No. 10 | Chemical Waste | Chemical treatment and discharge into drains for liquids |

SCHEDULE II

(see Rule 6)

COLOUR CODING AND CONTAINER FOR DISPOSAL OF BMW

| COLOUR CODING | TYPE OF CONTAINER | WASTE CATEGORY | TREATMENT OPTIONS as per Schedule I |
|--------------------------|--|------------------------|--|
| Yellow | Plastic Bag | Cat. 1, 2, 3 & 6 | Incineration / deep burial |
| Red | Disinfected container / Plastic Bag | Cat. 3, 6, & 7 | Autoclaving / Microwaving / Chemical Treatment |
| Blue / White Translucent | Plastic Bag / puncture proof container | Cat. 4, Cat. 7 | Autoclaving / Microwaving / Chemical treatment and destruction shredding |
| Black | Plastic Bag | Cat. 5, 9 & 10 (Solid) | Disposal in secured landfill |

WASTE GENERATED FROM PANCHAKARMA PROCEDURE

| Sr No | Procedure | Waste |
|-------|---------------|---|
| 1 | Abhyang | Oil, gauze piece |
| 2 | Swedan | Kashay, k alka, Pinda Sweda Pottali Bahya basti black gram |
| 3 | Vaman | Vomitus, Kashay, plastic aprons |
| 4 | Basti | Catheter, Syringes, Gloves |
| 5 | Raktamokshan | Dead Leech, Needles, Gloves, Scalp vein, IV set, Blood, Gauze piece, Swab |
| 6 | Nasya | Swab, dropper |
| 7 | Murdhni Kriya | Oil, bandage, Talam, Takra, Milk, Lepa, Black gram flour |
| 8 | Pizchichil | Oil |
| 9 | Uttar basti | Catheter, oil, gauze piece |
| 10 | | Unused medicine which are outdated |

COLOUR CODING AND CONTAINER FOR DISPOSAL OF BMW

| COLOUR CODING | TYPE OF CONTAINER | WASTE CATEGORY |
|--------------------------|--|--|
| Yellow | Plastic Bag | Cat. 1, 2, 3 & 6 gauze piece, Vomitus, |
| Red | Disinfected container / Plastic Bag | Dead used Leech, Needles, Gloves, Scalp vein IV set, Blood, Gauze piece, Swab, Catheters |
| Blue / White Translucent | Plastic Bag / puncture proof container | Cat. 4, Cat. 7 Needles, Scalp vein |
| Black | Plastic Bag | Cat. 5, 9 & 10 (Solid) Out dated medicines, discarded medicines |



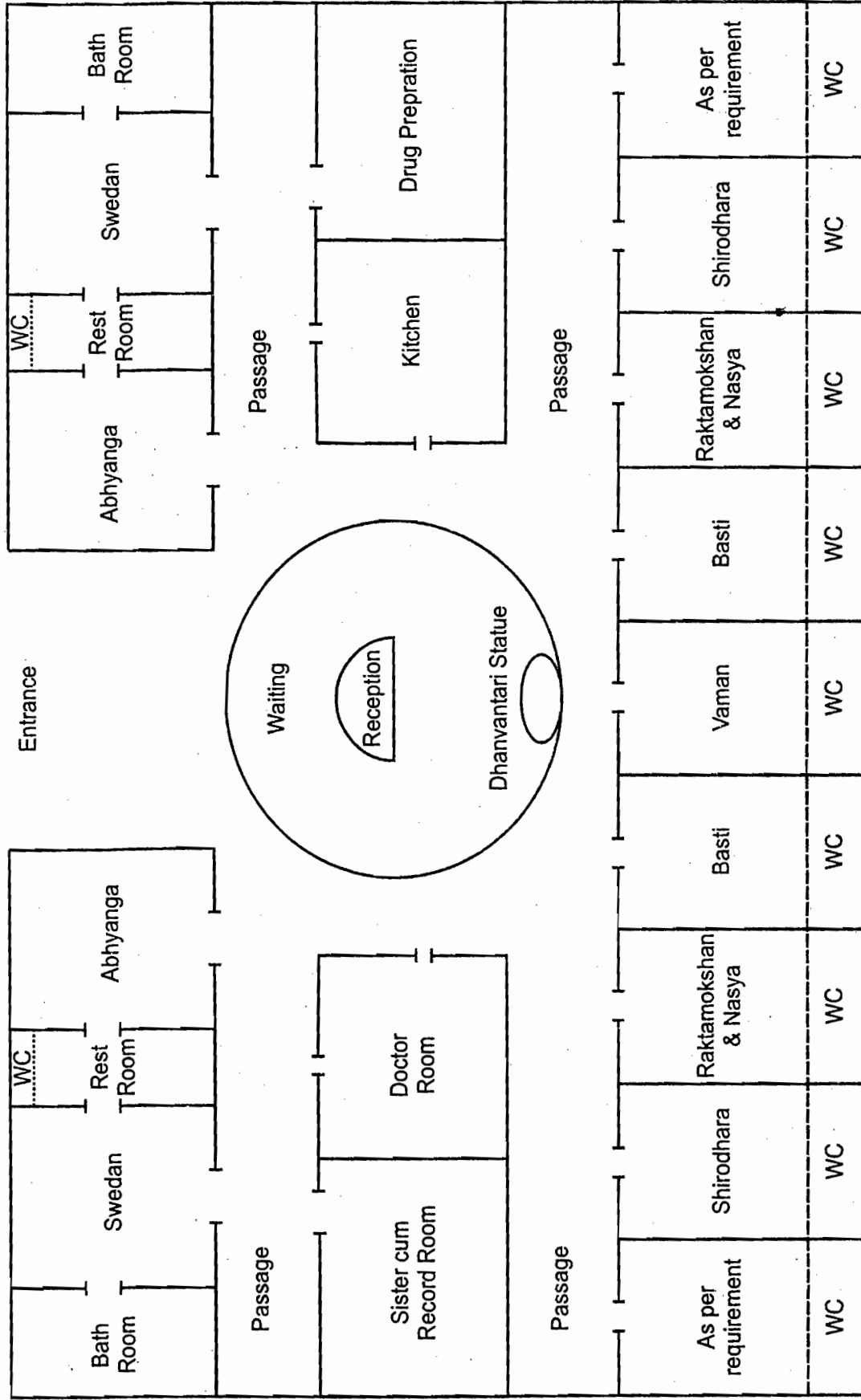
rial
aving/
aving/
nd
ndfill

c gram
od,
lour

Panchakarma Theatre

Male Section

Female Section



Male Section

Female Section

संदर्भग्रंथ

1. Ashtanghrudaya (Vashbata Sutrasthana - II) Translation & Comentary - T. Sreekumar, 2009
2. व्यावहारिक पंचकर्म विज्ञान - वैद्य नचिकेत वाचासुंदर, 2011
3. Principles & Practice of Panchakarma - Dr. Vasant C. Patil, 2011
4. चरकसंहिता (श्री चक्रपाणि विरचितया आयुर्वेद दीपिका व्याख्यया संवाहिका) राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान प्रकाशन, 2006
5. Ayurveda an Effective Solution Dr. M.S. Vora, 2011
6. आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान - वैद्य ह. श्री. कस्तुरे, 2006
7. सार्थ वाग्भट - वाग्भटकृत - भाषांतर ग. कृ. गर्दे, 2010
8. चक्रदत्त - चक्रपाणिदत्त निरचित - व्याख्याकार - रविदत्त शास्त्री, 2000
9. Principles and Practice of Vasti - Dr. M.R. Vasudevan & Dr. L. Mahadevan, 2010
10. Select Research paper on safety and efficany of Panchakarma. CCAMS Dept. of AYUSH, Govt of India, 2008
11. Panchakarma problems & Solution - Dr. M.R. Vasudevan etc.
12. The legacy of charaka - Ms. valiattion, 2009
13. The Legacy of Sushruta - M.S. Vallatham, 2011
14. शार्ङ्गधरदंहिता - शार्ङ्गधराचार्य, व्याख्याकार डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, 1998
15. Chikitsa Sangraham - Vaidyaradnam P.S. Varier, 1992
16. आयुर्विज्ञान मूलभूत शब्दावली - भारतसरकार, 2005
17. कायचिकित्सा (चतुर्थ भाग) - प्रो. अजयकुमार शर्मा, 2010
18. चर्मरोगनिदर्शिका, संपादक - आचार्य रघूविरप्रसाद त्रिवेदी, 1991
19. Panchakarma Therapy -Prof. R.H. Singh, 2007
20. Panchakarma Ed. E. Surendran, 2006
21. विद्ध आणि अग्निकर्म चिकित्सा - डॉ. रा.ब. गोगटे, 2006
22. Sirassekadi Vidhi- Dr. Menon, Ed. Dr. M. Prasad, 2009
23. Snehasvedangal, Seminar Paper, Kottakkal Ayurveda Series, 2008
24. Snehan Therapy in Ayurveda - Vd. V.C. patil, 2008

25. अस्रविस्फुति अर्धचिकित्सा - डॉ. त्र्य. म. गोगटे, 2003
26. Efficacy of Ayurveda in the management of Psoriasis - Manojkumar Shamkuwar, Lalchand Jaiswal, 2012
27. आयुर्वेदीय पंचकर्म चिकित्सा - आचार्य मुकुन्दलाल द्विवेदी, 2012
28. Bhavaprakash of Sribhava Misra, Ed. Bramhashankar Misra, 2002
29. Synopsis of Panchakarma Procedures, NRIP, CCRAS, 2010
30. सहस्त्रयोग संग्रह - संपादक महेन्द्रपालसिंह आर्य, 1990
31. कश्यप संहिता (वृद्धजीवक तंत्र) भाषानुवाद श्रीसत्यपाल भिषगाचार्य, 1998
32. चरकसंहिता - CD-CCRAS
33. सुश्रुतसंहिता - CD-CCRAS
34. Panchakarma Illustrated - Dr. G.S. Acharya, 2008
35. The Panchakarma treatment of Ayurveda Dr. T.L. Devaraj, 1998
36. सुश्रुतसंहिता (निबंध संग्रह व्याख्यासह) री डल्हणाचार्य विटचित्रा - यादवजी त्रिकमजी आचार्य (संपादन), 2010
37. अष्टांगहृदयम् (श्री अरुणदत्त विरचितया सर्वांगसुंदर व्याख्यया) डॉ. अण्णा कुंटे तथा कृष्णाशास्त्री (प्रतिसंस्कर्ता), 2011
38. Harrison's - Principles of Internal Medicine 18th Edition (International Edition) Vol. 1 & 2 Ed., Dom Longo *et al*, 2011
39. Davidson's - Principles and Practice of Medicine, Ed., Nicki R. Colledge, 21st Edition, 2010
40. Text book of Medical Physiology Gyton's and Hall 12th Edition, 2010
41. Manual of Medical Emergencies - Ed (S) Ashok Grover *et al*, 2007
42. P.J. Mehta's Emergencies in Medical Practice - Ed Ajay K. Kantharia, 2006
43. Dr. Nitin Jindal M.D. Thesis, 2005

Female Section

Panchakarma literature

Male Section